अष्टछाप तथा ताल्लपाक
के
कवियों का तुलनात्मक अध्ययन

(1989 माता कुसुम कुमारी अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दीतर पुरस्कार
नजीबाबाद—उत्तर प्रदेश द्वारा प्राप्त ग्रन्थ)

डा. (श्रीमती) आर. सुमन लता

प्रकाशक
दक्षिणांचलीय साहित्य समिति
1-1-405/7/1 गांधीनगर, हैदराबाद-500 380

अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों का तुलनात्मक अध्ययन

Partial Financial Support for Printing and Publishing this volume has been received from TIRUMALA TIRUPATI DEVASTHANAMS, TIRUPATI.

First Edition–March 1989, 1000 Copies

तिरुमल तिरुपति देवस्थानम् की आंशिक आर्थिक सहायता से प्रकाशित।

प्रथम संस्करण–मार्च 1989, एक हज़ार प्रतियाँ

मूल्य : रु. 170-00

प्रकाशक :

दक्षिणांचलीय साहित्य समिति

1-1-405/7/1, गांधीनगर,

हैदराबाद, 500 380.

मुद्रक :

किरण प्रिन्टर्स

5-2-674, रिसाला अब्दुल्ला,

हैदराबाद-500 195

Ashtachap Thatha Tallapak Ke Kaviyon Ka Tulnatmak Adhyayan

by DR. (Smt.) R. SUMAN LATA

Published by :

Dakshinanchaliya Sahitya Samiti

1-1-405/7/1, Gandhinagar,

Hyderabad-500 380

Price Rs. : **170-00**

"कदंब सूनु कुण्डलं तुचारु गण मंडलं
ब्रजांगनैव बल्लभं नमामि कृष्ण दुर्लभं ।
यशोदया समोदया सगोपया सनंदया
युतं सुखैक दायकं नमामि गोप नायकम् ।"

(आदिशंकराचार्य)

पूज्य पिताजी की दिव्य स्मृति में—

सुमन

दो शब्द

आध्यात्मिक, दार्शनिक एवं भक्तिपरक अभिव्यक्तियों का संबंध पद साहित्य से मानव के आरंभिक जीवन काल से जुड़ता है। पद की रचना एवं संगीत का अटूट संबन्ध भी है। दोनों एक साथ मिलकर मानव सभ्यता और संस्कृति के इतिहास के निर्णायक तत्त्व भी बनते हैं।

भारत में भक्त कवियों ने आध्यात्मिक, दार्शनिक एवं भक्ति भावावेग-परक अभिव्यवितयों के क्षेत्र को इतना अधिक संपन्न किया है कि इस प्रकार के उदाहरण अन्यत्र संसार की किसी भी भाषा में दुर्लभ है, यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी।

संगीत शास्त्र के विकास ने पद-रचना को और विशिष्टता प्रदान की है। पद का मुख्य लक्ष्य दिव्यनाम कीर्तन रहा है। पद के माध्यम से भक्ति पद्धतियों का आविष्कार और भक्ति का प्रचार एवं प्रसार होने लगा। उसकी रचना पद्धति में भी इसी लक्ष्य की पूर्ति परिलक्षित होती है।

हिन्दी और तेलुगु साहित्यों के क्षेत्र में पद का महत्व 11 वीं 12 वीं शताब्दियों में ही देख सकते हैं। जयदेव से सूत्र पाकर चैतन्य महाप्रभु से बल लेकर विद्यापति आदि से दृढ़ होकर संपूर्ण हिन्दी भक्ति साहित्य को पद ने हिला दिया है। इसी प्रकार तेलुगु लोकगीतों के बल पर शैव वचनों (भक्ति परक पदों) ने शैव-भक्ति के प्रचार को जो वेग प्रदान किया था उससे अनु-प्राणित होकर ही वैष्णव पद-साहित्य ने तूफानी वेग ग्रहण किया है। भक्ति को एक आन्दोलन का रूप प्रदान करने में दोनों प्रान्तों में गीत या पद ने साहित्य को संपन्न करते हुए एक अनोखा योगदान भी दिया। विभिन्न भक्ति सिद्धान्तों को, पद्धतियों को, दार्शनिक विचारों को, तत्त्वज्ञान संबन्धी रहस्यों को गीत ने जन-जन तक पहुँचाया है।

हिन्दी के अष्टछाप कवियों का केन्द्र श्रीनाथ मंदिर रहा है तो ताल्लपाक के कवियों का केन्द्र श्रीवेंकटेश्वर का मंदिर। श्रीकृष्ण और श्रीनिवास में एक अद्भुत संबन्ध भी है। श्रीनिवास (श्री वेंकटेश्वर) श्रीकृष्ण के बाद के अवतार माने जाते हैं। दोनों की लीला के केन्द्र भी मंदिर के आसपास के प्रान्त ही रहे हैं। प्रान्त और लीला प्रदेश एवं मंदिर के केन्दों का यह साम्य भक्ति भावना के प्रवेग को बढ़ाने वाले रहा है। क्षेत्रीय संस्कृति, सामाजिक व्यवहार, संबन्ध सूत्रों के साथ जुड़कर श्रीकृष्ण और श्रीनिवास आकर्षण के केन्द्र और भाव के आलंबन रहे हैं। जहाँ तक कवि समूहों का प्रश्न है यह स्पष्ट ही है कि अष्टछाप के कवि और ताल्लपाक के कवि लगभग समकालीन ही रहे हैं। एक अन्तर है अष्टछाप के कवि गुरु परंपरा से दीक्षित कवि हैं तो ताल्लपाक

के कवि वंश-परंपरा के साथ संबद्ध और भक्ति में दीक्षित। इस अन्तर को छोड़कर सभी ने लीला गान किया है, मधुर भक्ति का प्रसार एवं प्रचार किया है। श्रीनिवास श्रीकृष्ण के परावतार होने के कारण श्रीकृष्ण की सभी लीलाएँ श्रीनिवास की लीलाओं के रूप में वर्णित की जा सकती हैं और यही ताल्लपाक के कवियों ने किया भी है।

सन् 1300 से 1700 तक के बीच का समय तेलुगु और हिन्दी साहित्यों में गीत के लिए उज्ज्वल युग कहा जा सकता है। जिस प्रकार तेलुगू में अन्नमाचार्युलु के द्वारा गेय साहित्य को एक नया मोड़ मिला है उसी प्रकार हिन्दी में सूर ने अपने पदों के द्वारा हिन्दी गेय साहित्य को एक नया संस्कार दिया है। दोनों क्षेत्रों में इन महान व्यक्तित्वों ने वस्तु, रूप और शैली का जो नया मानदण्ड स्थापित किया है उसको विस्तार देने का श्रेय अष्टछाप के कवियों और ताल्लपाक के कवियों को मिलता है। अष्टयाम विधि के अनुरूप गीतों की रचना कर दोनों वर्गों के कवियों ने पद की रचना की विशेषता को नयी दिशा भी दी है। लीला वर्णन युक्त पद तो भागवत दर्शन के अनुरूप ही है। कहा जाता है कि श्री वल्लभाचार्य अपनी यात्राओं में तिरुपति गये थे और वहाँ की पद्धतियों का पालन ब्रजभूमि में करवाया है। सूरदास और अन्य अष्टछापी कवियों के लीला-पदों में यह प्रभाव देखा जा सकता है। मधुर भक्ति के साथ गेय का प्रसार अन्नमाचार्युलु ने ही किया है। इसका विकास अष्टछाप के कवियों में दिखाई देता है। इस प्रकार सम्बन्ध और प्रभाव सूत्रों से अष्टछाप के कवि और ताल्लपाक के कवि जुड़ जाते हैं।

गेय साहित्य की अनेक विशेषताओं का इस तुलनात्मक अध्ययन के माध्यम से उद्घाटन करके श्रीमती आर. सुमन लता जी ने हिन्दी और तेलुगु साहित्य को ही नहीं, भारतीय गेय साहित्य को भी एक नयी भूमिका प्रस्तुत की है जिसके आधार पर भारत की सार्वदेशिक एकता को समझने की दिशा में जिज्ञासु पाठक को सहायता मिल सके। जिस अध्यवसाय और गंभीर चिंतन के आधार पर प्रस्तुत शोधकार्य संपन्न किया गया है वह अत्यंत स्तुत्य है। विश्वास है, तुलनात्मक अध्ययन के क्षेत्र में किए गए इस प्रयास का विज्ञ पाठक स्वागत करेंगे।

हैदराबाद
15-4-89

डा. वै. वेंकटरमणराव
आचार्य एवं अध्यक्ष,
हिन्दी विभाग
हैदराबाद विश्वविद्यालय

Towards Oneness

In the literatures of a Nation where ups and downs occur, the phenomenon of contact in language and thought is noticed. The mutual interactions and influences of individuals. languages, literatures and cultures are so compelling that there is no escape from the contact phenomena. It is more so in the modern context of technological advancement where the whole world is forced to come closer in understanding but yet maintain distance with apprehensions, and reservations. As a result, the mutual influences in the involution of contact seem to be quite predominant and yet look inexplicably subtle. This feature of complexity can be explained only when one has the ability to reconstruct the series of seemingly disconnected sequences in their true perspective as otherwise the source and the target or the root and cause seem to be displaced in the time and space. The popular folk tale in Telugu—'The King and his seven sons' reveals this truth unmistakably.

Comparative studies in languages or literatures may unrevel the striking points of comparability. But that would not suffice unless we comprehend the connecting spirit behind the two to bring the beauty of comparability to focus. I am sure that researchers would agree with me when I say that Dr. Smt. R. Suman Lata, in her thesis on, "Ashtachap and Tallapaka poets—A comparative study" has not merely made a surface study of comparisions but has tried in depth to focus upon the minds of her readers the underlying spirit and beauty of such a study to the core.

As the Ashtachap Poets—one perhaps not quite familiar to the common readership in the South of India, so may be the case about the Tallapaka family of poets in the North, why only to the North, as a matter of fact, even to the readership in the South, the Tallapaka Poets were not familiar at all until some eighty years ago. Veturi Pabhakara Sastri, (my reverned father) a celebrated Literateur and

Versatile genius reintroduced the name of Annamayya to the Telugu reading Public in this century. His consistent efforts and sustained research on that topic have since borne fruit. The publication of his masterly introduction to "Annamacharya Charita" (1948) brought into focus the nature and magnitude of the Tallapaka poets' literary output. Inspite of all these efforts, if the name of the Tallapaka poets has not still spread widely across India, I attribute the lapse to the linguistic barriers that exist and the lack of translation/publication mechanism in bridging the gaps of communication. The criticism levelled against us that in our Nation we usually come across Telugoos, Tamils, Maharashtrians, Kashmiris, Bengalis and so on, but not Indian in general, could as well be levelled in the domain of India literature. We have to remove this impression and build up the image of Indianness in our country in every respect. Multi-lingual approach alone should save the situation. Noteworthy excerpts from the literatures in the regional languages have to be translated into Hindi and English and comparative studies encouraged.

In this regard Dr. Suman Lata's comparative research study not only projects the relevance of the past to the present but also bridges the gulf between the North and South. I compliment the authoress and her guide in successfully seeing this work through. National readership should give help and encouragement to the writer so that the literary world could expect many more scholarly works from her.

Hyderabad. **Dr. V. Ananda Murthy.**

3-4-1989,

आशंसा

विभिन्न भाषाओं में और विभिन्न लिपियों में लिखे गए भारतीय साहित्य की आत्मा एक है। पं. राधाकृष्णन जी ने ठीक ही कहा था कि Scripts are different but the soul is same. अनेकता में एकता की पहचान के लिए भारतीय भाषाओं में परस्पर साहित्यिक आदान-प्रदान तथा विभिन्न साहित्यिक प्रवृत्तियों का तुलनात्मक अध्ययन की अत्यंत आवश्यकता है। राजनीतिक अंधड़ के कारण संकुचित और स्वार्थपूर्ण बनती जा रही भावना को पुनरुज्जीवित करने के लिए देश की विभिन्न साहित्यों के परिचय के अतिरिक्त अन्य कोई साधन नहीं है। राष्ट्रीय भावात्मक एकता की दिशा में अनुवाद एवं तुलनात्मक अध्ययन का महत्त्वपूर्ण योगदान है और रहेगा।

भारतीय साहित्य के इतिहास में मध्ययुग के भक्ति साहित्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। भक्ति आन्दोलन ने अपने विभिन्न रूपों और आयामों में भारतीय जनमानस को प्रफुल्लित एवं आप्लावित किया था। उसमें सगुण लीलागान करने कृष्ण भक्त अष्टछाप के कवियों एवं आन्ध्र के ताल्लपाक नामक भक्त-परिवार के कवियों ने संगीत और साहित्य के मणिकांचन योग से, भक्ति-भावना की ऐसी धारा प्रवाहित की जो देश के भावात्मक समैक्य को प्रस्फुटित करता है।

डा. श्रीमती आर. सुमनलता ने अष्टछाप और ताल्लपाक के कवियों के कविकर्म के सौन्दर्य और शिल्पसौन्दर्य की सुष्ठु तुलना करते हुए, यह शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया। युगीन परिस्थितियों के अध्ययन द्वारा श्रीमती सुमनलता ने भारतीय समाज की एकरूपता एवं विचार धारा के साम्य को प्रस्फुटित किया है और वैष्णव भक्ति के सिद्धान्तों के आधार पर अष्टछाप एवं ताल्लपाक के कवियों की भक्ति भावना के मूल स्रोतों की गवेषणा का, उसके विश्लेषण का प्रयत्न किया है।

अष्टछाप और ताल्लपाक के कवियों की कृतियों के भावपक्ष एवं कलापक्ष का अध्ययन साम्य और वैषम्य के धरातल पर सराहनीय रूप से हुआ है। भारत की सांस्कृतिक एकता को उजागर करने के प्रयास में सुमनलता का शोधकार्य वास्तव में अनुकरणीय है। मैं उन्हें इस सत्प्रयास के लिए हार्दिक बधाई देता हूं।

भाषा भेद के होते हुए भी, भारत के प्रादेशिक साहित्यों में निहित एकता के सूत्रों को उभारकर, सुधी पाठकों के समक्ष रखकर, डा. सुमनलता ने भावात्मक एकता की साधना के क्षेत्र में प्रशंसनीय योगदान किया है। मात्र शोधकार्य की अपेक्षा इस तुलनात्मक शोध की उपादेयता, राष्ट्रीय धरातल पर स्पृहणीय है। तदर्थ मैं श्रीमती सुमनलता को हार्दिक साधुवाद देता हूँ।

आशा है, विद्वज्जन इस प्रयास का स्वागत करेंगे।

हैदराबाद,
श्री रामनवमी
14-4-1989

—**डा. भीमसेन निर्मल**
प्रो. एवं अध्यक्ष,
सारस्वत परिषद्, हिन्दी विभाग,
उस्मानिया विश्वविद्यालय

प्रकाशकीय

दक्षिण भारतीय भाषा-साहित्यों को अखिल भारतीय स्तर पर प्रसारित एवं प्रचारित करने तथा अहिन्दी भाषी हिन्दी लेखकों के सद्साहित्य के प्रकाशन और वितरण को दृष्टि में रखकर सन् 1972 में दक्षिणांचलीय साहित्य समिति की स्थापना की गयी और तब से आजतक लगभग बीस उत्कृष्ट ग्रंथों का प्रकाशन इस संस्था के द्वारा संभव हुआ है ।

समिति द्वारा प्रकाशित ग्रंथों में भक्ति-साहित्य का अपना महत्वपूर्ण स्थान रहा। भक्तितत्व और तेलुगु साहित्य, सूर और पोतना के काव्य में भक्तितत्व आदि इसी शृंखला की कड़ियाँ हैं। डा. (श्रीमती) आर. सुमनलता की 'अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों का तुलनात्मक अध्ययन' का संबध हिन्दी तथा तेलुगु के कृष्ण भक्त कवियों तथा उनके अनुपम साहित्यों से है ।

भक्ति का संबंध मानव की रागात्मक अनुभूति तथा सर्वेश्वर के साथ रागात्मक संबंध स्थापित करने के लिए विह्वल जीवात्मा के सर्वात्म समर्पण की भावना से है। यह वह भावना है जो जीवात्मा के अंतरंग को शान्ति प्रदान करती है, जीवन को सामान्य लौकिक धरातल से ऊपर उठाकर पारमार्थिक स्तर तक पहुँचा देती है, जहाँ अहं का पर्यवसान इदं में हो जाता है। अहं का इदं में विलयन भारतीय मनीषा की दार्शनिक भावभूमि का वह चरम सोपान है, जहाँ पहुँच कर समस्त लौकिक भेद-भाव समाप्त हो जाता है। यह स्थिति या दशा इतनी प्रकाम्य और वरणीय है कि समस्त भारतीय साहित्यों का मध्यकालीन युग इसी एक भावबिन्दु पर केन्द्रित रहा और संपूर्ण भारतीय जनता एक बार भक्ति रसामृत सिंधु में निमज्जित हो उठी। चाहे निर्गुण संत हो या सगुण संत, चाहे रामभक्त हो या कृष्णभक्त सब एकात्म भाव की जननी भक्ति भावना से वलयित रहे। संपूर्ण भारतीय जन-मन और साहित्य में तरंगित यह भक्ति-सिंधु भारतीय आचार-संहिता, नीतिशास्त्र, धर्माचरण और सामाजिक समचिन्तता का दिग्दर्शक है।

डा. सुमनलता ने हिन्दी तथा तेलुगु के कृष्ण भक्त कवियों की रागात्मक अनुभूति एवं वैचारिक तत्व चिन्तन में अन्तर्लीन एकत्व भाव का दिग्दर्शन कराने के लिए हिन्दी के अष्टछाप तथा तेलुगु के ताल्लपाक कवियों का तुलनात्मक अध्ययन सविस्तार यहाँ प्रस्तुत किया है। चाहे हिन्दी के कवि सूरदास हो, चाहे तेलुगु के कवि अन्नमाचार्य हो, उनमें भाषा माध्यमों में अन्तर है, पर उनका हृदय एक है। बाहरी भिन्नताओं में भी दर्शित आन्तरिक समन्वय

भारतीय संस्कृति की निजी विशेषता है और विदुषी शोधकर्त्री ने इस तत्व पर विशेष बल दिया है। उन्होंने इन भक्ति साहित्यों में निहित संगीततत्व तथा सांस्कृतिक परिवेश का भी मूल्यांकन किया है। डा. सुमनलता ने किसी बद्ध पूर्वधारणा से बिलकुल दूर रहकर दोनों साहित्यों का गहन अध्ययन करके जो निष्कर्ष निकाले हैं, वे उनकी पर्यवेक्षण-क्षमता एवं विषय-विवेचन क्षमता के दिग्दर्शक हैं। उनका यह शोध प्रबंध दोनों भाषाओं के कृष्ण साहित्य का समीचीन अध्ययन करने में सहायक होगा ही, साथ ही भारत की भावात्मक एकता के सूत्र को पूर्वाधिक सक्षम एवं सशक्त बनाये रखने की दिशा में महत्वपूर्ण पीठिका भी सिद्ध होगा।

डा. सुमनलता का दोनों भाषाओं पर समान अधिकार है, अतः वैचारिक विच्छिति के लिए अवकाश ही नहीं रहा। उनके निष्कर्ष सारपूर्ण, तथ्यात्मक एवं प्रामाणिक हैं। मुझे पूरी आशा है कि उत्तर-दक्षिण के काव्य मर्मज्ञ एवं विद्वज्जन इस ग्रंथ का स्वागत करेंगे तथा लेखिका को उत्तरोत्तर साहिती-सेवा की प्रेरणा प्रदान करेंगे।

गान्धीनगर
हैदराबाद-500 380
15-4-1989

डा. एन. पी. कुट्टन पिल्लै
मंत्री, दक्षिणांचलीय साहित्य
समिति।

प्राक्कथन

समन्वय की भावना प्राय: भारत की अपनी निजी विशेषता है। इस विशाल देश में अनेक भिन्न तत्व गोचर होते हैं। फिर भी देश एक सूत्र में बंधा हुआ है। यह बात जब सोचते हैं तो विस्मय होता है कि इस बिशालकाय देश को एक सूत्र में बाँध कर रखने वाले ऐसे कौन से तत्व काम कर रहे हैं? इस प्रश्न के साथ अनायास ही यह उत्तर भी सामने स्पष्ट रूप में आ जाता है कि भारत जैसी कर्मभूमि को वैदिक धर्म से लेकर, पौराणिक साहित्य, राम तथा कृष्ण आदि पुराण पुरुषों का व्यक्तित्व और इनसे बनी-बनायी अपनी निजी संस्कृति और सभ्यता आदि बातें अन्तर्वाहिनी की तरह, पार्श्व संगीत की तरह देश को चलाती आ रही हैं। इन्हीं कारणों से भारत एक है। सर्वप्रथम इस एकता का कार्य शंकराचार्य ने आरम्भ किया था। पश्चात् वैष्णव आचार्यों ने अपने सुलभ भक्ति मार्ग में सभी को आत्मसात् करते हुए अग्रसर किया। उसी प्रवाह में देश के कोने-कोने से लोग गोता लगाने लगे और भक्तिरस की दिव्य अनुभूति पाने लगे। फलस्वरूप सम्पूर्ण भारत में उत्तम भक्ति साहित्य का सृजन हुआ। इससे देश की सांस्कृतिक एकता भी दृढ़ हो गयी।

राम तथा कृष्ण को लेकर, रामायण और महाभारत को आधार बना कर भारत में विस्तृत साहित्य का सृजन आज तक हो रहा है। जिसे देखकर लगता है कि, "हरि अनन्त हरि कथा अनंता" का कथन सत्य है। मध्ययुग में तो राम और कृष्ण काव्यों की बाढ़ ही आ गयी थी। कृष्ण के काव्य में लोकरंजन तत्व अधिक होने के कारण अधिक रचनाएँ कृष्ण को नायक बना कर की गयीं। महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित अष्टछापी कवियों ने ब्रजभाषा में उत्तम कृष्ण काव्य रचा। आचार्य शुक्ल जी के इन शब्दों में कितनी सत्यता है—"आचार्यों की छाप लगी आठ वीणाएँ श्रीकृष्ण की प्रेमलीला का कीर्तन करने उठीं, जिनमें सबसे ऊँची, सुरीली और मधुर झनकार अन्धे कवि सूरदास की वाणी की थी।···मनुष्यता के सौन्दर्य पूर्ण और माधुर्य पूर्ण पक्ष को दिखा कर इन कृष्णोपासक वैष्णव कवियों ने जीवन के प्रति अनुराग जताया।" उसी प्रकार से रामानुजाचार्य जी के विशिष्टाद्वैत संप्रदाय में दीक्षित ताल्लपाक के कवियों ने भी दक्षिण की प्रसिद्ध भाषा तेलुगु के साथ-साथ संस्कृत में भी अनेक रचनाएँ कीं। भक्ति के साथ-साथ साहित्य को इन कवियों ने संगीत और संस्कृति का योगदान दिया। इन कवियों ने सहस्र कंठों से भगवान के प्रति अपने दृढ़ विश्वास, प्रेम व भक्ति का गान किया। ब्रज में

स्थित भगवान कृष्ण तथा तिरुपति क्षेत्र में स्थित भगवान वेंकटेश्वर अथवा बालाजी की तनजा, वित्तजा और मानसी सेवा से अपने आपको धन्य कर लिया।

संगीत तथा साहित्य के प्रति आरंभ से ही रुचि होने के कारण सहज रूप में सूर तथा अन्नमाचार्य की रचनाओं की ओर मैं आकृष्ट होने लगी। इसी के आधार पर मुझे शोध कार्य की दिशा एक अंत: प्रेरणा के रूप में प्राप्त हुई। अत: मैंने "अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों का तुलनात्मक अध्ययन" को अपना शोध का विषय बनाया।

प्रस्तुत प्रबन्ध छ: अध्यायों में विभाजित किया गया है। प्रथम अध्याय में आलोच्य कवियों का समय (15 वीं और 16 वीं शती) और उस युग की विभिन्न परिस्थितियों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। द्वितीय अध्याय में अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों की जीवन, व्यक्तित्व, प्रेरणा और प्रभाव का अध्ययन है। तृतीय अध्याय में आलोच्य कवियों की रचनाओं का, विशेषकर ताल्लपाक के कवियों का विस्तृत अध्ययन है। चतुर्थ अध्याय में आलोच्य कवियों की भक्ति पद्धति पर यथा संभव प्रकाश डाला गया है। पंचम तथा छठे अध्यायों में क्रमश: आलोच्य कवियों के भाव तथा कलापक्षों का अध्ययन है। अध्ययन की सुविधा के लिए हर अध्याय के अन्त में साम्य और वैषम्यों पर प्रकाश डाला गया है। अंत में इन सभी तत्वों को समेटते हुए उपसंहार, तत्पश्चात् सहायक ग्रन्थ सूची दी गयी है।

इस शोध कार्य का मार्ग दर्शन, विषय-वस्तु का विभाजन, रूपरेखा और अन्य सभी प्रकार से अपने सुयोग्य निर्देशन में डा. रामकुमार खण्डेलवाल जी (आचार्य व भूतपूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, उस्मानिया विश्व विद्यालय) ने मुझे अपने गम्य पर पहुँचाने का परिश्रम उठाया। उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। गूँगे के गुड़ जैसी इस स्थिति में केवल सूर के ये शब्द ही मैं दुहरा सकती हूँ—"गुरु बिन ऐसी कौन करे······सूर स्याम बिन ऐसो समरथ दिन में लै उधरै।"

इसी संदर्भ में मैं अपने हिन्दी विभाग के प्रति कृतज्ञता प्रकट करती हूँ। शोध कार्य की स्वीकृति और इस शोध कार्य से संबंधित आवश्यक पुस्तकें मुझे विभाग से समय-समय पर मिलती रहीं। पुस्तकों के साथ-साथ महत्वपूर्ण सुझाव व प्रोत्साहन भी अपने गुरुजन—विशेषकर डा. (श्रीमती) ज्ञान अस्थाना (भूतपूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष), डा. भीमसेन 'निर्मल' जी (आचार्य एवं अध्यक्ष, सारस्वत समिति) तथा ललित कुमार पारीख (आचार्य एवं अध्यक्ष) के वात्सल्य

व मार्ग दर्शन के बिना शायद आज यह ग्रन्थ विद्वज्जनों के सम्मुख रखने का साहस मैं नहीं कर सकती । अतः मैं उनके प्रति अत्यंत आभारी हूँ ।

इस शोधकार्य के समय मुझे डा. चन्द्रभान रावत जी (हैदराबाद) तथा डा. वेटूरि आनंद मूर्ति जी (तेलुगु विभाग, उ. वि. वि.) से आवश्यक मूल ग्रन्थ व सामग्री के साथ-साथ सलाह तथा सहकार भी मिलते रहे । अतः उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना मेरा प्रथम कर्तव्य है ।

यह कार्य जो तिरुपति क्षेत्र में ताल्लपाक के कवियों की रचनाएँ, ताम्रपत्र और भगवान बालाजी के दर्शनों से आरंभ हुआ था, वही कार्य वाराणसी में विश्वनाथ मंदिर तथा वहाँ के विश्वविद्यालय के संदर्शन से संपन्न हुआ । यहाँ पर भी वही समन्वय की भावना ! तिरुपति तथा वाराणसी के विश्व विद्यालयों के संदर्शन के समय मुझे आचार्य एस. टी. नरसिंहाचारी जी (तिरुपति) तथा आचार्य रामनरेश वर्मा जी (वाराणसी) से मिलने तथा चर्चा करने का सुअवसर मिला था ।

पारिवारिक जीवन में रहते हुए अगर आज मेरा यह कार्य संपन्न हुआ है तो पूरा श्रेय मेरे पति डा. बी वी. एस मूर्ति को ही मिलता है । इसी संदर्भ में अपने बच्चों के सहयोग का भी उल्लेख करना अनिवार्य है ।

अपने इस ग्रंथ को सही समय पर सुन्दर आकृति में लाने का श्रेय 'किरण प्रिंटर्स' (हैदराबाद) को मिलता है ।

मान्यवर विद्वानों से मैं अपनी त्रुटियों के प्रति क्षमा याचना करते हुए अपने शोध कार्य को उनके सामने प्रस्तुत करने का साहस कर रही हूँ ।

7-4-89
शुक्ल उगादि
हैदराबाद

भवदीया
आर. सुमन लता

विषयानुक्रम

प्रथम अध्याय

अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों की युगीन परिस्थितियाँ 1–49

राजनीतिक परिस्थितियाँ, धार्मिक परिस्थितियाँ, सामाजिक परिरिस्थितियाँ, साहित्यिक परिस्थितियाँ—तुलना ।

द्वितीय अध्याय

अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों की जीवनी और व्यक्तित्व 50–86

अष्टछाप की जीवनी, ताल्लपाक के कवि जीवनी, प्रेरणा, प्रभाव, महत्व—तुलना ।

तृतीय अध्याय

अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों की रचनाएँ 87–160

अष्टछाप की रचनाएँ, ताल्लपाक के कवियों की रचनाएँ—तुलना ।

चतुर्थ अध्याय

अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों की भक्ति पद्धति 161–258

वैष्णव भक्ति के कुछ समान सिद्धान्त, भक्ति का दार्शनिक पक्ष, अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों के दार्शनिक विचार, भक्ति के मूल उपादान, भक्ति के भेद, अष्टछाप की भक्ति साधना, ताल्लपाक के कवियों की भक्ति साधना, वैधी भक्ति, सेवा विधि, भक्ति साधना के स्थल, अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों की भक्ति पद्धति की तुलना ।

पंचम अध्याय

अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों का भावपक्ष 259–348

वात्सल्य रस, सख्य भाव, श्रृंगार रस, करुण रस, अन्य रस, अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों के भावपक्ष की तुलना

षष्ठ अध्याय

अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों का कलापक्ष 349–390

भाषा, मुहावरे और लोकोक्तियाँ, अलंकार, शैली, छन्द, संगीत, वर्णन कुशलता, अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों के कलापक्ष की तुलना ।

उपसंहार 391–398

सहायक-ग्रन्थ सूची 399–406

प्रथम अध्याय

अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों की युगीन परिस्थितियाँ

"देश का धार्मिक वातावरण तब न जाने कितने ही नास्तिक व अवैदिक दर्शनों और ढोंगी वीभत्सपूर्ण साधनाओं से कलुषित था। राजनैतिक वातावरण में स्वार्थ संकुचित मनोवृत्ति पूर्ण अहिंसा प्रवृत्ति और अवाध विलास भोग की अनुरक्ति आमूलतः व्याप्त थीं। सामाजिक वातावरण में लोभ मोहादि से प्रेरित प्रवंचना, कपट, ऐंद्रिय लोलुपता, ऐहिक परायणता का सर्वत्र फैलाव था।" (डा. एम. संगमेशम्—अन्नमाचार्य और सूरदास)

* * *

1.1. प्रस्तावना :–

अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों ने जिस समय साहित्य की सृष्टि की थी और जिन परिस्थितियों में अपना जीवन बिताया था—उस युग को हिन्दी साहित्य में "भक्ति काल" के नाम से जाना जाता है। व्यक्ति के जीवन के साथ-साथ साहित्य पर चाहे किसी भी युग में क्यों न हो, तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव अवश्य पड़ता है। अतः उन परिस्थियों का अध्ययन नितान्त आवश्यक है। हिन्दी साहित्य के अष्टछाप कवियों के सम्बन्ध में एव तेलुगु भाषा के ताल्लपाक के कवियों के विशेष अध्ययन से पहले, पृष्ठिभूमि के रूप में उनकी समकालीन परिस्थितियों का विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है। आलोच्य कवियों के समकालीन परिस्थितियों के अध्ययन से पहले उनका समय निश्चित करना होगा। इसके लिए निम्नलिखित तालिका उपयुक्त सिद्ध होगी—

1.2. अष्टछाप का समय[1] :–

कवि	जन्म (वि. सं.)	मरण (वि. सं.)	कवि	जन्म (वि. सं.)	मरण (वि. सं.)
सूरदास	1535	1642	नन्ददास	1590	1639
कुम्भनदास	1525–26	1638–39	चतुर्भुजदास	1597	1642
परमानन्ददास	1550	1640	गोविन्द स्वामी	1562	1642
कृष्णदास	1553	1632–38	छीत स्वामी	1567	1642

1. डा. दीनदयाल गुप्त तथा प्रभुदयाल मीतल आदि विद्वानों के ग्रंथों के आधार पर

ताल्लपाक के कवियों का समय[1] **:–**

अन्नमाचार्य	1481	1560
पेदतिरुमलाचार्य	1515	1611
चिनतिरुमलाचार्य	1545	1619
चिन्नन्ना	1557	1615
तिरुवेंगलप्पा	1572	1622

तिम्मक्का–(यह अन्नमाचार्य की पत्नी थीं अत: इनका समय लगभग वही रहा होगा जो अन्नमाचार्य जी का है।)

इस तालिका से हमें यह विदित होता है कि ताल्लपाक के कवियों का समय संवत् 1481 से आरम्भ होकर संवत् 1622 तक समाप्त होता है। अष्टछाप के कवियों का समय सं. 1525–26 से आरम्भ होकर सं. 1642 तक समाप्त होता है। अत: उनकी युगीन परिस्थितियों का अध्ययन करने केलिए हमें स्थूल रूप से हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल (1400 वि. से 1700 वि.) का लेना समीचीन होगा।

1.3. भौगोलिक सीमाएँ :

भारत के उत्तर में हिमालय, दक्षिण में हिन्द महासागर, पूरब में बंगाल की खाड़ी और पश्चिम में अरब सागर देश के लिए प्राकृति संरक्षक हैं। भारत देश उत्तर एवं दक्षिण के दो भागों में प्राकृतिक रूप से ही विंध्य पर्वतों के कारण बँटा हुआ है। अत: देश एक होते हुए भी दोनों के इतिहास में अन्तर है। चूँकि अष्टछाप व ताल्लपाक के कवि क्रमश: उत्तर एवं दक्षिण भारत से सम्बन्धित हैं, इस अध्याय में उक्त कवियों की समकालीन उत्तर एवं दक्षिण भारत की परिस्थितियों का अलग-अलग अध्ययन प्रस्तुत कर रहे हैं। इन परिस्थितियों का विभाजन इस प्रकार से किया जा सकता है–

(1) राजनीतिक (2) धार्मिक
(3) सामाजिक और (4) साहित्यिक परिस्थितियाँ

1.4. राजनीतिक परिस्थितियाँ :

1.4.1. उत्तर भारत :–"हिन्दी साहित्य के भक्ति काल के इस सुदीर्घ समय का राजनीतिक इतिहास की दृष्टि से दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। (क) सं. 1375 से 1583 तक (सन् 1318–1526) (ख) सं. 1583 से 1700 तक (सन् 1526–1643)। प्रथम भाग में दिल्ली पर तुगलक और लोधी वंश के शासकों ने राज्य किया और द्वितीय भाग में मुगल वंश के बाबर,

1. ताल्लपाक कवुल कृतुलु विविध साहिती प्रक्रियलु–वेटूरि आनंदमूर्ति

हुमायूँ, अकबर, जहाँगीर तथा शाहजहाँ ने। राजनीतिक दृष्टि से प्रायः यह काल विक्षुब्ध, अशान्त तथा संघर्षमय काल था।"[1]

उत्तर भारत में मुसलमानी आक्रमणों को रोकने के लिए राजपूत वीरों ने पूरा-पूरा प्रयत्न किया था किन्तु उस समय सिन्धु प्रदेश को छोड़कर सारा उत्तर भारत आठ छोटे बड़े राज्यों में विभक्त हो गया था। ये थे—जैजाक मुक्ति, बघेलखण्ड, मालवा, अणहिलबाड़ा, शाकंभरी, ग्वालियर, कन्नौज एवं बिहार-बंगाल।[2] किन्तु उनमें आपसी फूट के कारण और व्यापक राष्ट्रीयता के अभाव के कारण शत्रु के सामने एक संगठित रूप में खड़े न हो सके। फलतः देश में मुसलमानों की सत्ता जम गयी। दसवीं शताब्दी के अन्त में महमूद गजनवी और शहाबुद्दीन गौरी के आक्रमणों से चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गयी थी। आपसी फूट के ही कारण अत्यन्त शक्तिशाली राजा पृथ्वीराज चौहान एवं जयचंद भी क्रमशः गौरी और कुतुबुद्दीन ऐबक के हाथों से हत्या कर दिये गये थे। मोहम्मद गौरी ने जिन प्रदेशों को जीता, उन पर सन् 1206 में कुतुबुद्दीन ने गुलामवंशीय शासन की नींव डालीं। बलवन इस वंश का प्रसिद्ध सुलतान था जिसने साम्राज्य का विस्तार भी किया। किन्तु उत्तराधिकारियों की आयोग्यता के कारण शासन खिलजी वंशजों के हाथ में चला गया। "अलाउद्दीन खिलजी (सन् 1296) तथा मुहम्मद ने अपने सतत प्रयासों से केन्द्रीय शासन को सुदृढ़ बना कर अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया। किन्तु उनके आँख मूँदते ही सब कुछ चौपट हो गया। फलतः चौदहवीं तथा पंद्रहवीं शताब्दियों में बहुत से मुसलमानों तथा हिन्दुओं के प्रादेशिक राज्य उठ खड़े हुए।"[3] अलाउद्दीन के समय ही दक्षिण में मुसलमानों का प्रवेश हुआ। सन् 1320 में दिल्ली की गद्दी पर गयासुद्दीन तुगलक बैठा। उसने शासन की अव्यवस्था को सुधार कर बंगाल, महाराष्ट्र एवं आंध्र प्रान्तों पर अपना राज्य स्थापित कर लिया। किन्तु कहीं न कहीं किसी न किसी प्रान्तीय शासक से उसे निरन्तर संघर्ष करता ही रहना पड़ा। सन् 1325 में मुहम्मद बिन तुगलक सुलतान बना। इसी समय दौआब, बंगाल, (27), मूआबर (1334-35), मुलतान और सिन्ध आदि के विद्रोह हुए। 1351 में फिरोज तुगलक गद्दी पर बैठा। उसके उत्तराधिकारी आपसी लड़ाइयों में लगे रहे। इन्हीं परिस्थितियों में सन् 1398 में तैमूर का आक्रमण हुआ। सम्पत्ति की

1. हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ—डा. शिवकुमार शर्मा पृष्ठ 108
2. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास पंचम भाग—संपादक : डा. दीनदयाल गुप्त, पृष्ठ 3
3. हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ—डा. शिवकुमार शर्मा, पृष्ठ 109

लूट-मार, गाँवों को जलाना, स्त्री-पुरुष-बूढ़े बच्चों को कैद करना, एक लाख हिन्दुओं की सामूहिक हत्यायें आदि अनेक ऐसे आंतक मचाये कि दिल्ली सल्तनत की जड़ें हिलने लगीं। इससे देश की अवस्था और भी बिगड़ गयी। उस समय ऐसी शक्ति न रही, जो शान्ति या सुरक्षित दशा स्थापित करती।[1] इस आक्रमण के बाद मालवा और जौनपुर भी स्वतंत्र बन गये। चारों ओर छोटी-छोटी रियासतें बढ़ने लगीं।[2]

सन् 1414 से 1451 तक सैयद वंशीय सुलतानों का दिल्ली पर अधिकार रहा। ······अंतिम सैयद सुलतान ने बिना लड़े सन् 1451 में दिल्ली का साम्राज्य बहलोल लोदी को सौंप दिया। लोदी वंश ने लगभग 75 वर्ष (सन् 1431–1526 तक) दिल्ली में शासन किया। सिकन्दर लोदी के समय में तो हिन्दुओं पर अत्याचार करने का एक आन्दोलन सा चला था। वह उत्तरी भारत को फिर से अपने शासन में ला सका, किन्तु वह दृढ़ता वापस न मिल सकी! यह काल शनैः शनैः लड़ाइयों से घिरता गया। उसका पुत्र इब्राहीम उतना चतुर न था। अतः बाहर के आक्रमणकारी बाबर ने उसे पूर्णतः परास्त कर दिया।[3]

देश के आंतरिक कलह एवं सूबेदारों से नियंत्रण का अच्छा अवसर पा कर बाबर ने देश पर आक्रमण किया। उसने पानीपत के मैदान में राणा सांगा को हरा कर सन् 1526 में भारत में मुगल शासन की नींव डाली। सन् 1530 तक एक बड़ा साम्राज्य स्थापित हो गया था किन्तु व्यवस्थित नहीं हो सका क्योंकि बाबर की मृत्यु सन् 1530 में हो गयी। उसका पुत्र हुमायूँ चारों ओर से शत्रुओं से घिर गया। दिल्ली का शासन उसकी अशक्तता के कारण शेरशाह के हाथ में गया। सन् 1545 में शेरशाह की आकस्मिक मृत्यु तक हुमायूँ ने कई बार अपना राज्य वापस पाने के लिए युद्ध किया किन्तु असफल ही रहा। शेरशाह की मृत्यु के पश्चात् सिकन्दर सूर को हरा कर (सन् 1555) एक बार फिर हुमायूँ के द्वारा ही शासन मुगलों के हाथ में आया। अगले वर्ष ही हुमायूँ की मृत्यु हो गयी। उस समय अकबर केवल 13 वर्ष का बालक था। "ऐसी अवस्था में उसके राज्य को चुनौती दी जा रही थी। बाह्य एवं प्रदेशीय शासक भी अकबर से राज्य छीनने के लिए तैयार बैठे

---

1. मध्य युगीन भारत, पी. सरन्, पृष्ठ 315
2. विस्तार के लिए देखिए–दिल्ली सलतनत–भारतीय विद्या भवन प्रकाशन।
3. विस्तार के लिए देखिए मध्ययुगीन भारत–पी. सरन् और द दिल्ली सलतनत –भारतीय विद्याभवन प्रकाशन।

थे ।"[1] पर अकबर ने ने अपनी चतुरता व दक्षता से सबका सामना किया । धीरे धीरे उसका राज्य विस्तृत हो गया । अफगान, गोंडवाना, राजपुताना—चित्तौड़ सन् (1568) रणथम्भोर, कलिजंर (1569) जोधपुर, बीकानेर, बंगाल, गुजरात आदि स्वतंत्र राज्यों को उसने एक के बाद एक जीत लिया । साथ ही दक्खिन में भी अपना साम्राज्य फैलाया । अकबर ने साम्राज्य का तीन सोपानों में विस्तार किया था जिसे इस प्रकार से विभाजित कर सकते हैं—

1. उत्तर भारत—सन् 1558 से 76 तक
2. पश्चिमोत्तर सीमायें—सन् 1580 से 96 तक
3. दक्खिन—सन् 1598 से 1601 तक[2]

अत: इतिहासकार अकबर को ही मुगल साम्राज्य के वास्तविक संस्थापक मानते हैं ।[3]

"दिल्ली के सम्राट अकबर के सामने देश के छोटे-छोटे हिन्दू और मुसलमान राजाओं ने एक एक कर घुटने टेक दिये ।" किन्तु 'मेवाड़ के राणा प्रताप ने उसकी अधीनता न मानी और आजीवन लड़ता रहा । प्रताप का पुत्र अमरसिंह जहाँगीर से 16 वर्ष लड़ा पर अन्त में उसने अधीनता मान ली । शाहजहाँ के शासन के अंतिम दिनों में बुन्दुलखण्ड में चंपतराय और महाराष्ट्र में शिवाजी की स्वतंत्रता की चेष्टायें प्रकट हुई ।"[4]

अकवर को मृत्यु के पश्चात् जहाँगीर को राज्य सन् 1605 में मिला । उसे भी अधिकांश समय विद्रोहों को दबाते हुए तथा विद्रोहियों को दंड देते हुए ही बिताना पड़ा । शाहजहाँ सन् 1627 में अपने सभी शत्रुओं का सामना कर अधिकार अपने हाथ में लेने में सफल हुआ ।[5] राज्य प्राप्त करने के पश्चात् कई क्षेत्रों में देश उन्नति कर लगा । इस प्रकार से सम्पूर्ण देश मुसलमान शासन के समय में कई वंशजों के राज्य आते गये और जाते गये । "अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ के समय को छोड़ कर मुसलिम काल का शेष सारा

---

1. हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास—पंचम भाग—पृष्ठ 6
2. विस्तार के लिए-शार्ट हिस्टरी आफ मुसलिम रूल इन इंडिया-ईश्वरी प्रसाद ।
3. एन आवुट लाइन हिस्टरी आफ इंडियन प्यूपिल—एच. आर. घोषाल के आधार पर ।
4. हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ : शिवकुमार शर्मा, पृष्ठ 100
5. विस्तार के लिए देखिए—शार्ट हिस्टरी आफ मुसलिम रूल इन इंडिया, अध्याय—16, ईश्वरी प्रसाद ।

समय मारकाट, गृह कलह, विदेशी आक्रमणों के आतंक तथा युद्ध का काल रहा है।"[1] सब के सब (राजा) राज्याकांक्षा से प्रेरित होकर हिन्दू राज्यों पर चढ़ाइयाँ करते थे। स्वार्थ और स्वायत्त अधिकार के लोग से प्रेरित हो कर वे आपस में भी कभी फूट, कभी खून-खराबी और कभी विद्रोह मचाया करते थे।...धार्मिक और राजनैतिक-दोनों दृष्टियों से हिन्दू सताये जा रहे थे और हिन्दुओं की ओर से इसका प्रबल विरोध था।"[2]

हिन्दुओं के साथ-साथ मुसलिम प्रजा भी उतनी सुखी नहीं थी क्योंकि शिया और सुन्नी के बीच नित्य संघर्ष होते थे।

सम्पूर्ण मुगल इतिहास में अकबर का युग सभी प्रकार से स्वर्ण युग था। "अकबर ने अपनी शक्ति, बुद्धिमत्ता, दूरदर्शिता एवं दृढ़ता के कारण अपनी शासन व्यवस्था को सदृढ़ किया। उसने एक ओर तो अनेक प्रान्तीय शासकों को पराजित कर अपने राज्य का विस्तार किया तथा दूसरी ओर हिन्दू राजाओं से मधुर सम्बन्ध स्थापित किये।"[3]...उन्हें मान-मर्यादा के साथ उच्च पदों पर आसीन किया। हाँ, हिन्दुओं के प्रति अपनी इस उदारता के कारण उसे मुल्ला और मौलवियों के विरोध का सामना करना पड़ा।

उत्तर भारत की इन राजनैतिक परिस्थितियों के अध्ययन के पश्चात हमें यह देखना होगा कि अष्टछाप कवियों के जीवन काल में कितने राजाओं ने राजगद्दी को सम्हाली थी।

अष्टछाप के समय में दिल्ली और आगरे के सिंहासन पर निम्नलिखित बादशाहों ने राज्य किया :[4]

1. बहलोल लोदी	— सन् 1451 ई. : 1487 ई.	लोदी वंशज
2. सिकन्दर लोदी	— सन् 1489 ई. : 1517 ई.	,,
3. इब्राहीम लोदी	— सन् 1517 ई. : 1526 ई.	,,
4. बाबर	— सन् 1526 ई. : 1530 ई.	मुगल वंशज
5. हूमायूँ	— सन् 1530 ई. : 1539 ई.	,,
6. शेरशाह सूरी	— सन् 1539 ई. : 1545 ई.	
7. इसलाम शाह	— सन् 1545 ई. : 1554 ई.	

1. हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ—डा. शिवकुमार शर्मा, पृष्ठ 110
2. अन्नमाचार्य और सूरदास—डा. एम. संगमेशम्, पृष्ठ 28
3. हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास—पंचम भाग, पृष्ठ 6
4. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय—डा. दीनदयाल गुप्त, पृष्ठ 28

KABUL
KASHMIR
Srinagar
Peshawar
Kandahar
BALUCH AND PATHAN TRIBES (INDEPENDENT)
R. Jhelum
R. Chenab
LAHORE
R. Beas
R. Ravi
R. Sutlej
MULTAN
Panipat
DELHI
R. Indus
OUDH
R. Brahmaputra
R. Jumna
R. Gumti
R. Ganges
R. Gogra
AGRA
TATTA
R. Chambal
Gwalior
AJMIR
BIHAR
Benares
Patna
ALLAHABAD
MALWA
BENGAL
INDEPENDENT AND TRIBUTARY CHIEFS
AHMADABAD (GUJARAT)
GONDWANA
R. Nerbudda
KHANDESH
R. Mahanadi
R. Tapti
ORISSA
BERAR
Diu Is. (Portuguese)
Daman (Portuguese)
Bassein (Portuguese)
AHMADNAGAR (NOT FULLY SUBJUGATED)
R. Godavari
GOLCONDA
BIDAR
R. Krishnu
BIJAPUR
Goa (Portuguese)
R. Tungabhadra
Nellore
Mangalore
R. Kaveri
Calicut
POLYGARS
Madura
THE MUGHAL EMPIRE AT THE DEATH OF AKBAR (1605)
External Boundary of Empire
Other Boundaries
Akbar's Provinces thus DELHI

8. मुहम्मद आदिलशाह— सन् 1554 ई. : 1555 ई.
9. सिकन्दर शाह — सन् 1554 ई. : 1555 ई.
10. हुमायूँ (फिर से) — सन् 1555 ई. : 1556 ई. मुगल वंशज
11. अकबर — सन् 1556 ई. : 1605 ई. ,,

1.4.2. दक्षिण भारत :

विंध्य पर्वतों के कारण दक्षिण भारत का अपना विलक्षण व्यक्तित्व प्राचीन काल से है। जितनी आसानी से उत्तर भारत पर विदेशी आक्रमण होने की संभावना थी, उतनी आसानी से दक्षिण पर नहीं। अतः उत्तर भारत में अपनी सत्ता जमाने के बाद ही मुसलिम शासकों ने दक्षिण पर चढ़ाइयाँ आरम्भ कीं। देश पर मुसलमानी आक्रमणों के समय दक्षिण में चार प्रमुख वंशज—मदुरा के पांड्य वंशज, द्वारसमुद्र के होयसल वंशज, देवगिरि के यादव वंशज और वरंगल के काकतीय वंशज राज्य कर रहे थे। तेरहवीं शताब्दी का इतिहास इन चार मुख्य राज्यों के परस्पर वैमनस्य तथा संघर्ष से परिपूरित रहा और अन्य छोटे-छोटे राज्य भी इन्हीं के साथ लड़ने भिड़ने में अपना समय व्यतीत करते रहे। इस समय देश की राजनैतिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में कोई उल्लेखनीय उन्नति नहीं हुई।[1] अलाउद्दीन अपने चाचा की हत्या कर सन् 1296 में सुलतान बन गया और दिल्ली में अपने आपको सुस्थिर बनाने के पश्चात् उसने दक्षिण की ओर अपनी दृष्टि फेरी। दक्षिण की अपार सम्पत्ति के बारे में जानकारी पा कर उसने चढ़ाइयाँ आरम्भ कीं। प्रथम आक्रमण में दक्षिण के हिन्दू राजा ने मुसलमानी आक्रमणकारियों को बुरी तरह से पराजित किया। किन्तु दूसरी बार मलिक काफूर के नेतृत्व में जो आक्रमण हुआ उसमें देवगिरि और वरंगल के राजाओं को क्रमशः सन् 1307 और सन् 1310 में लोहा मानना ही पड़ा। अपार सम्पत्ति की भेंट के साथ सुलतान से सत् सम्बन्ध स्थापित कर लिए। इसी सम्पत्ति के मोह में सुदूर दक्षिण पर भी सुलतान ने आक्रमण शुरू कर दिये। दुर्भाग्यवश होयसल के राजा को हराने में देवगिरि के राजा ने सहायता दी। श्रीरंगम, चिदम्बरम् और मदुरा के प्रमुख मंदिरों को सन् 1311 से लूटा गया। केवल मदुरा के पांड्य राजा ने ही इन मुसलमानी आक्रमणकारियों के सामने कभी हार नहीं मानी।[2]

अलाउद्दीन खिलजी के पश्चात् सन् 1320 में उत्तर भारत का शासन

---

1. मध्ययुगीन भारत—पी. सरन्, पृष्ठ 171
2. द दिल्ली सलतनत—भारतीय विद्याभवन प्रकाशन के आधार पर।

तुगलक वंशजों के हाथों में गया। यहाँ तक आते-आते दक्षिण के राजाओं ने दिल्ली सुलतान के आधिपत्य के जुए को उतार फेंका था और राज कर भी देना बन्द कर दिया था। उन्होंने मुसलमानों को उन स्थानों से निकाल दिया था, जिन पर वे अपना अधिकार स्थापित कर चुके थे।[1] अत: तुगलक वंशज भी बराबर दक्षिण पर आक्रमण करते ही रहे। इसके प्रथम सुलतान गयासुद्दीन तुगलक और दूसरे सुलतान मुहम्मदबिन तुगलक (सन् 1325) केवल राज कर से संतुष्ट नहीं थे। वे दक्षिण में भी इस्लाम धर्म, संस्कृति और साहित्य फैलाना चाहते थे। वे दक्षिण को अपने राज्य का हिस्सा बनाना चाहते थे। इन कारणों से दक्षिण में सशक्त विरोध हुआ।

मुहम्मदबिन तुगलक के शासन के उत्तरार्ध के आरम्भ से ही दक्षिण में हिन्दू व मुसलमान नेताओं के विद्रोह आरम्भ हो गये थे। सन् 1336 में संगम के पाँच बेटों ने जिनमें "हरिहर" और "बुक्का" दो नाम प्रसिद्ध हैं, दिल्ली सम्राट की अधीनता को सफलता पूर्वक हटा कर एक स्वाधीन हिन्दू राज्य की नींव डाली जिसमें थोड़े ही समय में कृष्णा के दक्षिण का समस्त प्रदेश सम्मिलित कर लिया गया। इस साम्राज्य की राजधानी जगत् प्रसिद्ध नगरी "विजयनगर" हुई। इसके थोड़े दिन बाद 1346—47 में दक्षिण में कुछ सैनिकों ने विद्रोह करके अलाउद्दीन हसन बहमन शाह के नेतृत्व में "बहमनी" राज्य स्थापित कर दिया।[2] यह है दक्षिण भारत की स्वाधीनता संग्राम का इतिहास। बहमनी व विजयनगर राजाओं का वृत्तांत आगे दिया जा रहा है।

1.4.2.1. बहमनी राज्य : मुहम्मद बिन तुगलक के शासन काल में ही सन् 1346—47 में बहमनी राज्य की स्थापना हुई। इसके प्रवर्तक "अबुल मुजफ्फर अलाउद्दीन हसन बहमन शाह" था। उसने अपनी राजधानी गुलबर्गा बनायी। उसका राजकीय नाम बहमन शाह था, इसी कारण उसके उत्तराधिकारी 'बहमनी" कहलाये। राजा होते ही बहमनशाह ने नासिक, अकालकोट, भूम व मुंदार्गी आदि प्रदेशों पर आक्रमण किये, पर राज्य का विस्तार न हो सका। विजयनगर राजाओं से तीव्र संघर्ष के कारण बहमनी राजा न दक्षिण की ओर, न उत्तर की ओर अपना राज्य विस्तार कर सके। देशी मुसलमान और विदेशी अमीर (ऊँचे पदों में स्थित अल्प संख्यक) के बीच ईर्ष्या अधिक मात्रा में थी। बहमनी सुलतान शिया थे। इस कारण

1. मध्ययुगीन भारत—पी. सरन, पृष्ठ 262
2. वही—पृष्ठ 294—95

दिल्ली के सुन्नी सम्राट इन्हें पसन्द न करते थे। परवर्ती बहमनी शासकों ने अपनी राजधानी बीदर बनायी। सन् 1358 में अहमदशाह का पुत्र मुहम्मद शाह सुलतान हुआ जिसे एक ही समय में विजयवगर व वरंगल दोनों राजाओं से युद्ध करना पड़ा।[1] सन् 1363 में वरंगल के राजा ने गोलकुण्डा भेंट कर और बड़ी मात्रा में सम्पत्ति दे कर मुहम्मद शाह से संधि स्थापित कर ली। तीसरे सुलतान मुजाहिद (1375–78) ने रायचूर दोआब पर पूरी तरह से अधिकार कर लिया। पाँचवें बादशाह मुहम्मद द्वितीय सन् 1378–97 के शासन काल में शान्ति रही। आठवें सुलतान के समय फिर विजयनगर से युद्ध छिड़ गया। नवें सुलतान अहमद ने तेलंगाना के राजा को मार कर अपना अधिकार जमा लिया।[2] इस प्रकार एक के बाद एक अठारह सुलतानों ने ने शासन कर लिया था। दसवाँ बादशाह अलाउद्दीन अहमद (1435–58) के हाथ में विजयनगर के राजा बुरी तरह से हार गये थे। किन्तु तेरहवें सुलतान के पश्चात् प्रान्तीय अमीरों की प्रबलता के कारण सलतनत के टुकड़े होने में देर न लगी। बहमनी सुलतानों के सच्चे हितैषी राजमंत्री "गाबान" अपनी चतुराई, नीति और शासन के साथ-साथ अपने उत्तम चरित्र के कारण भी प्रसिद्ध थे। किन्तु ईर्ष्या और षड़यंत्र के कारण उसकी हत्या हो गयी और साथ ही बहमनी राज्य भी पाँच हिस्सों में बँट गया। वे थे—

1. एमाद शाही वंश–बरार में
2. निजामशाही वंश–अहमदनगर में
3. आदिलशाही वंश–बीजापुर में
4, कुतुबशाही वंश–गोलकुण्डा में
5. बरीदशाही वंश–बीदर में

ये सभी वंशज सदा लड़ाइयों में लगे रहते थे। विलासिता भी बढ़ गयी थी। आखिरी दिनों में अहमदनगर और गोलकुण्डा मुगल साम्राज्य में जोड़े गये थे। बरार पहले ही अहमदनगर में विलीन हो गया। बीजापुर बीदर में सम्मिलित कर दिया गया। सन् 1538 के आसपास बहमनी राज्य का अन्त हो गया। बहमनी वंश में कुल मिलाकर चौदह सुलतान हुए। केवल कुछ

---

1. विस्तार के लिए देखिए—मध्ययुगीन भारत–पी. सरन, पृष्ठ 344 और द दिल्ली के सलतनत–भारतीय विद्याभवन, पृष्ठ 249—50
2. विस्तार के लिए देखिए–"मध्ययुगीन भारत–द दिल्ली सलतनत और एन एन आउट लाइन हिस्टरी आफ इंडियन प्यूपिल।

सुलतानों के सिवा अन्य सभी क्रूर व भयंकर थे, जिन्होंने हिन्दुओं का रक्त बहाने में कभी भी कमी नहीं की। बहमनी राज्य का स्थापक हसन गंगू एक अच्छा शासक था, किन्तु वह भी हिन्दुओं के प्रति निर्दयता से ही व्यवहार करता था।[1] प्रशासन सम्बन्धी जानकारी होने के कारण केवल निम्न स्तरों पर हिन्दू नियुक्त किये जाते थे।

1.4.2.2 विजयनगर साम्राज्य : तेरहवीं सदी के अन्त तक सम्पूर्ण आर्यावर्त धीरे-धीरे मुसलमानों के अधीन हो गया। हिन्दू राज्य केवल नर्मदा नदी पार दक्षिण में रह गये। दक्षिण के हिन्दू राजाओं ने अपनी शूरता और वीरता के कारण मुसलमानों को दक्षिण में कदम रखने से बराबर रोका।[2] सन् 1336 में दक्षिण में विजयनगर साम्राज्य की स्थापना हुई। वरंगल के काकतीय राजा प्रताप रुद्र के कोष विभाग के दो भाई हरिहर-राय और बुक्काराय ने रायचूर प्रदेश में तुंगभद्रा नदी के किनारे स्वामी विद्यारण्य का शुभ आशीष ले कर विजयनगर का निर्माण किया। "इस नगर तथा राज्य की स्थापना उस हिन्दू जागृति तथा प्रतिक्रिया का परिणाम था, जो उस समय दक्षिण में मुसलमानों के आक्रमण और धार्मिक अत्याचारों के कारण उत्पन्न हो गयी थी।"[3] धीरे-धीरे विजयनगर साम्राज्य उत्तर में कृष्णा नदी तक, दक्षिण में कावेरी और पूरब पश्चिम में समुद्र से एक किनारे से दूसरे किनारे तक फैल गया। ये बहमनी राज्य के कारण उत्तर की ओर और अधिक न बढ़ पाये। विजयनगर व बहमनी दोनों ही राज्य सशक्त थे और इसलिए संग्राम भी भीषण होते थे। एक दूसरे को हरा कर दक्षिण पर अपनी सत्ता जमाने का प्रयत्न दोनों राज्यों ने आजीवन किया।

विजयनगर के वंशों में "सालुव" और "तुलुव" वंशज प्रसिद्ध थे। सन् 1340 में "हरिहर" प्रथम राजा बना और उसने दक्षिण से मुसलमानों को भगाने के प्रयत्न में वरंगल के राजा कृष्णनायक की सहायता की। हरिहर के पश्चात् उसका भाई "बुक्काराय" सन् 1353 में राजा बना, जिसे पूरब, पश्चिव व दक्षिणी समुद्रों के राजा के नाम से जाना जाता था। हरिहर द्वितीय, जो सन् 1379 में राजा बना, शान्तिप्रिय था। उसने किसी मुसलमानों से युद्ध न कर, अपनी शक्ति व समय को शासन संगठित करने

1. हिस्टरी आफ मुसलिम रुल—ईश्वरीप्रसाद, पृष्ठ 151
2. देखिए—विजयनगर चरित्रा—पैर्राजु. एन., पृष्ठ 5
3. मध्ययुगीन भारत—पी. सरन्, पृष्ठ 349

GUJARAT
Cambay
Diu
Daman
Surat
R. Tapti
MALWA
R. Nerbudda
KHANDESH
Burhanpur
Gawilgarh
GONDWANA
BERAR
Daulatabad
Nasik
Jalna
Pathri
Junnar
Paithan
Ahmadnagar
Nander
AHMADNAGAR
Chaul
Bidar
Warangal
R. Godavari
ORISSA
GOLCONDA
Gulbarga
BIDAR
Golconda
Rajamundry
Ellore
BIJAPUR
Bijapur
Talikota
Raichur Doab
Mudgal
R. Krishna
R. Tungabhadra
Goa
Kurnool
Udayagiri
Vijayanagar
R. Penner
Nellore
Honavar
Pulicat
Bangalore
Vellore
Mangalore
VIJAYANAGAR
Mysore
Seringapatam
Cannanore
Calicut
R. Kaveri
Negapatam
Trichinopoly
Tanjore
Cochin
Madura
Quilon
Tinnevelly
Tuticorin
CEYLON
THE SULTANATES OF THE DECCAN AND THE HINDU KINGDOM OF VIJAYANAGAR IN THE SIXTEENTH CENTURY
Boundaries
Debatable Area

में लगाया। दक्षिण में उसके सेनाध्यक्ष ने कई नये प्रदेशों को जीत कर साम्राज्य में सम्मिलित किया।[1] हरिहर की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र केवल स्वल्प अवधि के लिए ही राजगद्दी पर बैठ सका। इसके बाद देवराव द्वितीय राजा बना, जिसे जीवन भर बहमनी सुलतानों से संघर्ष में ही बिताना पड़ा। इसी के राज्यकाल में इटली के निकोलोकोण्टी और फारस के दूत अब्दुर्रजाक विजयनगर आये थे जिन्होंने उस राज्य के वैभव का अति सुन्दर शब्दों में वर्णन किया।

विजयनगर के इतिहास में ही नहीं वरन् सम्पूर्ण दक्षिण भारत के इतिहास में सुप्रसिद्ध राजा, तुलुवा वंशज श्रीकृष्ण देवराय हुए जो सन् 1509 में गद्दी पर बैठे। उन्होंने राजा बनते ही बहमनी राजाओं से अपना बदला लिया और उड़ीसा को भी जीत कर उनके राजा गजपति की कन्या से विवाह किया।[2] उनका साम्राज्य कटक से सालसीट तक और दक्षिण में मैसूर तक फैल गया था। यह युग इतिहास में स्वर्ण युग के नाम से विख्यात है। श्रीकृष्ण देवराय कलम और तलवार दोनों के सिपाही थे। कई युद्ध होने के बावजूद साम्राज्य उन्नति के शिखर पर पहुँचा था। पुर्तगाल से व्यापार और सत्सम्बन्ध थे। कृष्णदेवराय के समय माना जाता है कि खुले बाजारों में हीरे, माणिक, मोती, पन्ने और अनेक मूल्यवान वस्तुओं की बिक्री होती थी। विदेशी यात्रियों ने इन सबका वर्णन किया है। राजा स्वयं वैष्णव धर्मावलम्बी थे पर प्रजा को धर्म के सम्बन्ध में पूरी स्वतंत्रता थी। इतिहात में इतने प्रभावशाली, इतने वैभवशाली और कुशल राजा कम ही हुए हैं। कृष्णदेवराय के पश्चात् साम्राज्य का ह्रास हुआ। बढ़ते हुए इस हिन्दू राजा और राज्य को देखकर सभी मुसलमान रियासतों—बीजापुर, अहमदनगर, गोलकुण्डा और बीदर ने एक संगठन बना कर सन् 1965 में बड़ी भारी तैयारी की और विजयनगर पर चढ़ाई की। कृष्णा नदी के किनारे तालिकोटा के पास सेनायें ठहरीं। "उसी मैदान में बड़ा भारी युद्ध हुआ। अन्त में विजयनगर की सेना पराजित हुई और उसकी शक्ति नष्ट हुई। विजेताओं ने बड़ी मारकाट की। तत्कालीन राजा रामराय पकड़ा गया और निजामशाह ने उसका सर काट लिया। फिर उन्होंने विजयनगर को लूटा और उसका संहार किया। विजयनगर की जनता के साथ जैसा नृशंस और घृणित व्यवहार शत्रुओं ने किया,

---

1. मध्ययुगीन भारत : पी. सरन् पृष्ठ 349—50
2. विजयनगर चरित्रा—पैर्राजु एन., पृष्ठ 183

वह अकथनीय है।"[1] इस युद्ध का विस्तृत वर्णन फरिश्ता और सूवेल की रचनाओं में मिलता है। –कृष्णदेवराय के पश्चात् अच्युत राय, सदाशिव राय, रामराय राजगद्दी पर बैठे। किन्तु उनकी दुर्बलता के ही कारण विजयनगर राजाओं को राक्षस तंगड़ी (तालिकोटा) के इस महान् संग्राम में हार माननी पड़ी। सन् 1570 में एक नये "अरवीटि" वंश की स्थापना हुई जिसमें सदा-शिवराय, रंगराय द्वितीय, वेंकटराय राजा बने। किन्तु इसके पश्चात् मुग़ल आक्रमणों के कारण सन् 1665 तक इस राज्य का नामोनिशान मिट गया।[2] मुसलमानों ने राज्य के एक बड़े हिस्से को अपने वश में कर लिया। तंजावूर और मदुरा में स्वतंत्र राज्यों ने जन्म लिए।

ताल्लपाक के कवियों के समय निम्नलिखित राजाओं ने विजयनगर साम्राज्य में राज्य किया था—[3]

1. देवराय द्वितीय	– सन् 1422 ई. : 1446 ई.	संगम वंशज
2. विजयराय द्वितीय	– सन् 1446 ई. : 1447 ई.	,,
3. मल्लिकार्जुन राय	– सन् 1446 ई. : 1465 ई.	,,
4. विरूपाक्ष राय	– सन् 1465 ई. : 1485 ई.	,,
5. नरसिंह राय	– सन् 148[illegible] ई. : 1490 ई.	सालुव वंशज
6. तिम्मा	– सन् 1490 ई. : 1491 ई.	,,
7. इम्मडि नरसिंहा	– सन् 1491 ई. : 1505 ई.	,,
8. नरसनायक	– सन् 1490 ई. : 1503 ई.	तुलुवा वंशज
9. वीर नरसिंह	– सन् 1503 ई. : 1509 ई.	,,
10. कृष्णदेव राय	– सन् 1509 ई. : 1529 ई.	,,
11. अच्युत राय	– सन् 1530 ई. : 1542 ई.	,,
12. सदाशिव राय	– सन् 1542 ई. : 1565 ई.	,,

1.4.3 उत्तर और दक्षिण भारत की राजनैतिक परिस्थितियों की तुलना :

आलोच्य युग की उत्तर एवं दक्षिण भारत की राजनैतिक परिस्थितियों इस अध्ययन से कुछ तथ्य सामने आते हैं। भारत देश पर मुसलमानों का

1. मध्ययुगीन भारत–पी. सरन्, पृष्ठ
2. विस्तार के लिए देखिए–आंध्रुल चरित्रा–बी. एस. एल. हनुमंतराव–406-407
3. दि दिल्ली सल्तनत–भारतीय विद्याभवन प्रकाशन–विजयनगर चरित्रा–निडदबोलु वेंकटराव–आंध्रुल चरित्रा–डा. बी. एस. एल. हनुमंतराव आदि ग्रंथों के आधार पर।

आक्रमण एक प्रलय तुल्य था। देश की परिस्थितियाँ बदलने लगीं। देश की स्वतंत्रता के साथ साथ संस्कृति भी मिटने की दुर्दशा आ गयी थी। अतः आलोच्य युग में सारे देश में राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक संघर्ष हो रहे थे। इन राजनैतिक संघर्षों के कारण प्रजा सुख और चैन का नाम भूल गयी थी। सारा देश छोटी-छोटी रियासतों में बँट गया था, जो एक दूसरे से सदैव लड़ते थे। राज्यकांक्षा के कारण शासक वर्ग से रक्त बहाया जाता था।

दक्षिण भारत पर भी आलोच्य युग तक आते-आते मुसलमानी आक्रमण तीव्र हो गये। साथ ही दक्षिण में मुसलमानी-राज्य भी स्थापित हो गये। यद्यपि दक्षिण अब भी हिन्दुओं के ही हाथ में था किन्तु सदैव ही उन्हें मुसलमानों से संघर्ष करना पड़ता था। आंध्र राज्यों ने विशेष कर विजयनगर के राजाओं ने मुसलमानों की शक्ति को रोकने का भरसक प्रयत्न किया।

दुर्भाग्यवश स्वयं बलशाली होने पर की उत्तर एवं दक्षिण दोनों प्रदेशों के हिन्दू राजाओं में आपसी फूट के कारण भारत देश में धीरे-धीरे इस्लाम धर्म व राज्य की स्थापना हो गयी थी। उत्तर भारत में राजपूतों का उदाहरण ले सकते हैं तो दक्षिण में विजयनगर, कोंडवीडु के रेड्डी राजा, होयसल आदि का भी यही इतिहास है। "आंध्र राजाओं में आत्माभिमान आवश्यकता से अधिक मात्रा में होने के कारण एक दूसरे से सदैव लड़ने में ही कुशल रहते थे। जैसे कपाय नायक के राजाओं ने आंध्र प्रदेश पर शासन जमाना चाहा तो रेड्डी राजा विमुख हो गये। वेलम राजा मुसलमानों के सहायक बन गये। इस प्रकार धीरे-धीरे आपसी वैमनस्य के कारण पराधीनता पल्ले पड़ी।[1] इसे हम स्वदेश प्रेम और राष्ट्रीयता के भाव के ह्रास की चरम सीमा मान सकते हैं। "सामूहिक राष्ट्रीयता की कल्याणकारी भावना के अभाव ने भारतीय राजाओं की दूरदर्शिता को जैसे सर्वथा लुप्त कर दिया था। फलस्वरूप एक-एक करके सभी भारतीय शासक अपनी स्वतंत्रता खो बैठे।"[2]

दक्षिण में बहमनी राजाओं में भी आपसी फूट थी। धर्म और राजनैतिक दोनों कारणों से दक्षिण भारत में विजयनगर और बहमनी राजा आखिरी साँस तक लड़ते ही रहे। साथ ही उत्तर भारत के मुसलमान शासक भी दक्षिण पर बराबर हमला करते रहे।

---

1. आंध्रुल चरित्रा—नेलटूरु वेंकटरमणय्या, पृष्ठ 37
2. हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास—पंचम भाग, पृष्ठ 7

अकबर और श्रीकृष्णदेवराय जब राजा बने थे उस समय राजनैतिक परिस्थितियाँ अत्यन्त हलचल पूर्ण थीं। फिर भी एक सफल राजा होने के कारण दोनों ने अपने-अपने राज को संभाल लिया।

उत्तर भारत में अकबर का शासन काल और दक्षिण में श्रीकृष्णदेवराय का समय स्वर्णयुग के नाम से इतिहास में विख्यात है। कला, संस्कृति धर्म, साहित्य और अन्य कई क्षेत्रों में देश अपने चरम स्थिति पर पहुँच गया था। प्रजा इन शासकों को सम्मान के साथ देखती थी। इन सबके बाद भी अध्ययन से यह पता चलता है कि राजनैतिक परिस्थितियाँ दोनों क्षेत्रों में हलचल पूर्ण थीं। अकबर की अपनी धार्मिक सहिष्णुता के कारण कई विरोध सहने पड़े और मुल्लाओं ने बिहार और बंगाल के सरदारों को उकसाकर अकबर को अपने आखिरी वर्षों में अपने पुत्र सलीम का ही विद्रोह सहना पड़ा। शाहजहाँ और औरंगजेब ने भी राज्याधिकार पाने के लिए क्या-क्या चाल नहीं चलीं? इतिहास के पन्ने इनके साक्षी हैं। इसी प्रकार से विजयनगर के इतिहास में भी सालुव वंशजों ने संगम वंशजों से बल प्रयोग से ही राज्य छीना था और सालुव वंशजों से तुलुव वंशज।[1] अर्थात् "राजनीति में कोई पवित्रता न रही थी। उसमें कूटनीति, हिंसा और छल को उचित समझा था।"[2] कृष्णदेवराय को अपने राज्य की रक्षा के लिए, हिन्दुओं की एकता के लिए अत्यन्त सावधानी के साथ सेना पर अधिक ध्यान ही देना पड़ा। हर पल, हर घड़ी सतर्क रहने पर भी विजयनगर के राजा तालिकोटा के मैदान में हार ही गये।

1.5 धार्मिक परिस्थितियाँ :

भारत को वैदिक भूमि कहा गया है। यहाँ के जीवन का आधार चार वेद है। वेदों में पहले कर्मकाण्ड की प्रधानता थी। इसके बाद उपनिषदों में कर्मकाण्ड के स्थान पर ज्ञानकाण्ड को महत्व दिया गया था। गीता के द्वारा जीवन मूल्यों को एक भावात्मक मोड़ मिला था। शास्त्रों ने वेदों का विरोध किया था।[3] कुछ समय के पश्चात् बौद्ध और जैन धर्मों का उदय हुआ जिन्होंने वेदों और वर्णाश्रम धर्म को नकारते हुए करुणा और अहिंसा का प्रतिपादन किया। विदेशी आक्रमणों के कारण भी भारत के इस प्राचीन धर्म में धक्का पहुँचने लगा। हाँ, अपने धर्म को जीवित रखने के लिए सतर्क

---

1. विजयनगर चरित्रमु—डा. नेलटूरु वेंकटरमणय्या के आधार पर।
2. हिन्दी साहित्य—युग और परिस्थितियाँ—शिवकुमार, पृष्ठ 126
3. सूर साहित्य : नव मूल्यांकन—डा. चन्द्रभान रावत के आधार पर।

हिन्दू जाति भी नयी-नयी स्मृतियों की रचना, समयानुकूल व्याख्या, वर्ण-व्यवस्था आदि में संशोधन, व्रत, तीर्थ आदि में स्त्रियों और शूद्रों को भी प्रवेश आदि कार्यों के द्वारा धर्मोन्नति का भरसक प्रयत्न करने लगी। इसी समय शैव और वैष्णव देवी देवताओं की प्रधानता बढ़ने लगी। बौद्ध धर्म की सरलता के कारण देशी-विदेशी सभी उसे अपनाने लगे। जैन धर्म में आदर्श था और तीर्थकरों की मूर्तियाँ पूजी भी जाती थीं। इसी विभेद के आधार पर वे भी श्वेताम्बर और दिगम्बर नाम से अलग-अलग हो गये थे। मध्ययुग तक आते-आते बौद्ध धर्म भी हीनायान और महायान में विभक्त होकर आपसी फूट में जुट गये थे। हिन्दुओं ने भगवान बुद्ध को भी दशावतारों में सम्मिलित कर लिया था। हिन्दू धर्म के उद्धार के लिए शंकराचार्य (799—920 ई.) ने उपनिषद, ब्रह्म सूत्र एवं गीता, जो प्रस्थान त्रई कहलाये जाते थे की ज्ञानात्मक व्याख्या की थी। पाखण्डियों के कारण हिन्दू धर्म को आघात पहुँचा था उसे ठीक करने के लिए उन्होंने सारे देश का भ्रमण किया और हिन्दू धर्म को पुन: स्थापित करने में अत्यन्त समर्थ हुए। देश के चारों भागों में उत्तर में बदरीनाथ, दक्षिण श्रृंगेरी, पूरब में पुरी जगन्नाथ और पश्चिम में द्वारका में स्वयं (शंकर) मठ स्थापित किये थे और अद्वैत सिद्धांत का प्रचार किया था। इसके पश्चात् कई आचार्य हुए थे और सम्पूर्ण भारत पर उनका प्रभाव पड़ा।

इस पृष्ठभूमि के आधार पर हम तनिक आलोच्य युग की धार्मिक परिस्थितियों की ओर अब ध्यान दे सकते हैं।[1]

1.5.1 उत्तर भारत:

उत्तर भारत में मुसलमानों की राजसत्ता धीरे-धीरे जम रही थी यद्यपि इसके लिए कहीं न कहीं संघर्ष चल रहा था। अपना शासन जमाने के साथ-साथ वे अपने धर्म को भी तलवार के सहारे ही क्यों न हो, प्रचार करना चाहते थे।

मध्य युग तक आते-जाते, हिन्दू धर्म की पाचक प्रवृत्ति नष्ट हो गयी थी इसलिए वह मुसलमान धर्म को पचा न सका। इसका कारण यह था कि

1. Hindu Religion at the opening of this period presented a blending of ritualistic religion of Vedic age, the Humanitarian principles of Buddha and the pre-Aryan religious forms and symbols'.

(Social, Cultural and Economic History of Vol. II, Page 85.)

मुसलमान धर्म का आधारभूत एक मात्र सिद्धान्त यह था कि ईश्वर एक ही हो सकता है, अनेक नहीं। अतः मुसलमान यह कभी न मान सकते थे कि उनका अल्लाह भी हिन्दुओं के लाखों देवी-देवताओं में से एक हैं।"[1] अतः दोनों धर्मावलम्बियों को एक दूसरे से संघर्ष करना पड़ा।

महमूद गजनवी और गौरी आदि आरम्भिक मुसलमानी आक्रमणकारी भारत के मंदिरों से अमूल्य सम्पत्ति को लूटने के लिए ही आये थे, अपने धर्म के प्रसार एवं प्रचार के लिए नहीं। सम्पत्ति के लालच में ही उन आक्रमण-कारियों ने अनेक हिन्दू मंदिरों को नष्ट किया। मूर्तियों को तोड़ा। अनेक हिन्दुओं को अपने तलवार की बलि दिया और चारों ओर अतंक मचा दिया। यद्यपि आलोच्य युग तक आते आते, वे आकर यहाँ बस गये हैं किन्तु फिर भी हिन्दू धर्मावलम्बियों की मूर्ति पूजा आदि की अवहेलना करते थे। अपने धर्म के प्रचार के लिए इन्होंने भी वही पुराना रास्ता—मंदिरों को ध्वंस करना, मूर्तियों को तोड़ना, और धार्मिक पुस्तकों को जलाना आदि अपनाया। सारे उत्तर भारत में एक प्रकार का भयंकर वातावरण उपस्थित कर दिया। मानों हिन्दुओं पर अत्याचार करना उनके लिए एक धार्मिक आन्दोलन ही था। यद्यपि हिन्दू भी उत्साह के साथ मंदिरों का निर्माण करते ही रहे किन्तु उनके मन में एक प्रकार की उदास भावना छा गयी थी। उनके ईश्वर जिन्होंने "यथा यथा कि धर्मस्य" के अनुसार जब-जब धर्म की हानि होती है, तब-तब आकर अपने भक्तों की रक्षा करने का वादा किया था इतने घोर कृत्य होने पर भी मौन ही थे। चारों ओर त्राहि-त्राहि मच रही थी। इन असहाय परिस्थितियों में जनता केवल मौन रूप से भगवान से प्रार्थना ही कर सकती है कि शीघ्र ही उनका उद्धार हो।

इसी समय नाथ संप्रदाय का भी प्राचुर्य था जो निर्गुण निराकार ब्रह्म की उपासना और भोग की महत्ता का प्रतिपादन करते थे। इनमें प्रसिद्ध गोरखनाथ थे और इनके अलख निरंजन का प्रभाव दोनों धर्मों पर पड़ा।

भारत में इस्लाम के आगमन के साथ-साथ सूफी धर्म का प्रचार भी हुआ। किन्तु ये "प्रेम के पीर" के साधक धार्मिक मामलों में अत्यन्त उदार थे।" भगवान और भक्त का सम्बन्ध इनके मत में प्रेम का सम्बन्ध है। भारतीय सूफी संप्रदाय की विशेषता है, इस्लामी एकेश्वरवाद के साथ वेदान्ती—ब्रह्मवाद का अनमेल गठबन्धन। भारती सूफी साधकों पर नाथपंथी

---

1. मध्ययुगीन भारत—पी. सरन् पृष्ठ 359

योगियों तथा सिद्धों का भी प्रभाव गहरा पड़ा।[1] 12 वीं और 14 वीं सदियों में सूफी धर्म का बहुत प्रसार हुआ जिसे हिन्दू और मुसलमान दोनों ने आदर की दृष्टि से देखा।

यह बौद्ध धर्म की क्षीण अवस्था का भी युग था। इस युग की विशेषता यह थी कि एक ओर मुसलमान धर्म का प्रचार हो रहा था तथा दूसरी ओर हिन्दू धर्म में भी भिन्न-भिन्न प्रकार के धार्मिक आन्दोलन हो रहे थे।[2]

केवल अकबर ही एक ऐसा बादशाह था जिसने अपने प्रजा को सभी प्रकार से सुखी एवं समृद्ध बनाने के लिए सभी धर्मों को उदार भावना से देखा। इस संदर्भ में उसे मुल्लाओं से शत्रुता भी मोल लेनी पड़ी। उनका "दीनइलाही" सभी धर्मों के समन्वयों का सार था। इन सबके बावजूद "अकबर के पूर्ण प्रयत्न करने पर मुसलमान और हिन्दुओं में उद्दिष्ट समन्वय स्थापित नहीं हो सका। जहाँ तक हिन्दू धर्म के पुनरुद्धार का सम्बन्ध है उत्तर भारत का सामंत कुछ अपवादों को छोड़कर विधर्मियों के अधीन हो चुका था। वह साहित्य और कला का मर्मज्ञ आश्रयदाता तो था, पर वह धार्मिक दृष्टि से अधिक जागरूक नहीं था"[3] अकबर के राजत्व काल में भक्ति का आन्दोलन देशव्यापी हो गया था।

उत्तर भारत में भक्ति, सगुण और निर्गुण दो प्रकार की थी और इन दोनों के बीच सदा वैमनस्य थे। निर्गुण उपासक ब्रह्म को निराकार मानते थे तो सगुणोपासक ब्रह्म को साकार। अतः एक दूसरे के बीच स्पर्धा और संघर्ष रहता था। शाक्त, नाथ, शैव आदि अन्य अनुयायी होने पर भी अधिकतर पूजा राम या कृष्ण की करते थे और इन दोनों पर लिखा गया साहित्य हमें उत्तर भारत के भक्ति युग में अधिक मात्रा में प्राप्त होता है। सगुण और निर्गुण दोनों प्रकार के शिष्यों के गुरु रामानन्द थे। रामभक्ति शाखा में राम के साथ-साथ हनुमान जी की भी उपासना की जाती थी। वल्लभाचार्य जी कृष्ण और माधुर्य भक्ति के प्रेरक और उन्नायक थे। उन पर बंगाल देश की भक्तिधारा का भी प्रभाव था। संत कवियों ने हिन्दू मुसलमानों का समन्वय करने का प्रयत्न किया था और सगुण और निर्गुण का भी। यह थी उत्तर भारत की तत्कालीन धार्मिक स्थिति।

---

1. अन्नमाचार्य सूरदास—संगमेशम्, पृष्ठ 35
2. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय : दीनदयाल गुप्त, पृष्ठ 34
3. हिन्दू और तेलुगु वैष्णव भक्ति साहित्य—डा. के. रामनाथन्, पृष्ठ 10

1.5.2 दक्षिण भारत:

जब वैदिक धर्म का ह्रास हो कर बौद्ध, जैन, नाथ आदि अवैदिक धर्मों का प्रसार हो रहा था, वेदों की निन्दा हो रही थी, इन परिस्थितियों में सुदूर दक्षिण में (आज का केरल) महात्मा शंकराचार्य का उद्भव हुआ था। देश भ्रमण कर उन्होंने सभी विद्वान और पंडितों को अपने शास्त्रार्थ में हर कर अद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन और वैदिक धर्म का उद्धार किया था। इसी समय कुमारिल भट्ट (ई. 7 वीं सदी) भी हुए थे जिन्होंने भी नास्तिकों को वाद-विवाद में हराया। "शंकराचार्यजी का व्यक्तित्व समग्र तेजस्विता से मंडित होकर प्रकट हुआ। "गीता" की भावात्मक क्रान्ति को भी उन्होंने ज्ञानात्मक बना दिया। इस आघात से वेद विरोधी स्वर कुछ मन्द हुआ—चाहे समाप्त न हुआ हो। एक तीव्र प्रवाह में पड़ी हुई जनता कुछ रुकी चाहे ज्ञानवादी मूल्यों के साथ तादात्म्य न कर पायी हो।"[1] उन्होंने ब्रह्म को छोड़ कर जीवन, जगत् और सारी सृष्टि को काल्पनिक मिथ्या माना है। शंकर के बाद कई नये दार्शनिक संप्रदाय दक्षिण में हुए।

"दक्षिण भारत में ईसा की चौथी शताब्दी में विष्णु-प्रेम-भक्ति की रसमयी धारा आलवार भक्तों द्वारा प्रसारित की गयी।……आलवार भक्त 12 हुए हैं जिन्होंने भागवत धर्म और वैष्णव भक्ति का प्रचार किया था। इन भक्तों में स्त्री प्रचारिकायें भी थीं।……आलवार भक्तों के सिद्धान्त ही विभिन्न वैष्णव संप्रदायों की पृष्ठिभूमि हैं। ये भक्त सांसारिक विषयों को अनित्य मानते थे।"[2] दसवीं शताब्दी में विष्णु भक्ति की धारा दक्षिण से उमड़ी जिसे उत्तर भारत में लाने का श्रेय स्वामी रामानन्द को प्राप्त होता है।

दक्षिण भारत आलोच्य काल में अधिकतर हिन्दुओं के ही हाथ में था। विशाल हिन्दू साम्राज्य स्थापना की प्रतिज्ञा के साथ विजयनगर राज्य का जन्म हुआ था। हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान के लिए उन्होंने तीन प्रमुख साधनों को अपनाया था—मंदिरों का उद्धार, ब्राह्मणों का संरक्षण तथा विज्ञान का पोषण। तत्कालीन धार्मिक संघर्ष में सामंत और विद्वान् दोनों ही शक्तियाँ संयुक्त हो कर हिन्दू धर्म की जर्जर अवस्था को पुनर्जीवित कर रहे थे।"[3]

---

1. सूर : नव मूल्यांकन—डा. चन्द्रभान रावत—पृष्ठाधार
2. हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास—पंचम भाग, पृष्ठ 23 सं. डा. दीनदयाल गुप्त,
3. हिन्दी और तेलुगु वैष्णव—भक्ति साहिन्य—के. रामनाथन्, पृष्ठ 10

सन् 1360–1500 तक आन्ध्र प्रदेश में मुसलमानी आक्रमणों के कारण परिस्थितियाँ बहुत कुछ बदल गयीं थी। इस युग में आंध्र प्रदेश में वैदिक धर्म, शैव, वैष्णव, जैन, नाथ और सिद्ध मतों का बोलबाला था। काकतीय राजा जैन धर्म से शैव धर्मावलम्बी बन गये थे। दक्षिण भारत की विशेषता है शैव और वैष्णव धर्मों के बीच तीव्र संघर्ष। कई विष्णु मंदिरों को शिवालय और शैव मंदिरों को विष्णु मंदिर बना दिया गया था। वीर शैव और वीर वैष्णव धर्मों का बोलबाला बढ़ गया था। एक दूसरे की निन्दा तीव्र वाणी में करते थे। शैव धर्मावलम्बी इतने पाखण्डी थे कि न चाहने पर भी बलात् रूप से प्रजा को शैव धर्म में दीक्षा दे देते थे।[1] शैव धर्मावलम्बी राजा भी वैष्णव और अन्य धर्मावलम्बियों को सताते थे। वे राजा लोग शैवों के कुकर्मों को भी क्षमा कर देते थे। अतः कई लोग चतुराई से भभूति व रुद्राक्ष पहन कर राजा का श्रेय पा लेते थे।[2] "राजानुमत धर्म" के अनुसार राजा जिस धर्म को अपनाता प्रजा भी उसे ही अपनाने लगती थी।

आलोच्य युग तक आते-आते हरिहर की उपासना का प्रचार होने लगा, ताकि शैव और वैष्णवों में कुछ समन्वय हो। विजयनगर के राजा भी पहले शैव धर्मावलम्बी थे किन्तु बाद में वैष्णव बन गये थे। परन्तु उनकी प्रजा को अपना धर्म चुनने की स्वतंत्रता थी। अपने चरम उत्कर्ष में होने के कारण विजयनगर साम्राज्य में भक्ति के प्रचारकों को और भी अधिक सुविधाएँ मिल रही थी। रेड्डी राजा भी जो पहले शैव थे परवर्ती समय में वैष्णव बन गये थे।

कुछ विलम्ब से ही क्यों न हो, किन्तु मुसलमानों का आगमन दक्षिण में भी हुआ। इसका प्रभाव धार्मिक क्षेत्र पर भी पड़ा। प्रतापरुद्र (काकतीय वंश के राजा) रूपी रवि के अस्त हो जाने से लोक में मुसलमानी अंधकार व्याप्त हुआ।···प्रजा मुसलमानों को देखते ही अपने प्राण खो बैठे। देवी-देवताओं की प्रतिमायें तोड़ी गयीं।···गोमांस भक्षण, मंदिरा का पान, ब्राह्मणों का वधन आदि इन कष्टों से त्रिलिंग (आंध्र) प्रदेश की रक्षा कौन करेंगे ? पूजा के अभाव में मंदिर खण्डहर बने और उनमें मृदंग नाद के स्थान पर सियारों का रुदन सुनाया जा रहा था।···धर्म और वेदों का नाश हो गया।[3] यह है

1. पांडुरंग माहात्म्य–तेनालि रामकृष्ण
2. आमुक्त माल्यदा—श्रीकृष्णदेवराय
3. विजयनगर चरित्रमु–नेलटूरुवेंकट रमणय्या, पृष्ठ 5

तत्कालीन धार्मिक स्थिति का सजीव चित्रण । अब तक जो शैव वैष्णव, जैन आदि भेदभाव थे, मुसलमलानों के आगमन के बाद इन विवादों का रूप बदल गया । "अब इन सभी को सम्मिलित करना पड़ा । कितने ही वेद विरोधी धर्मों को अब वेद सम्मत कहला कर आत्म रक्षा करने की नौबत आयी । जो ऐसा न कर सके उनको इस्लाम धर्म को स्वीकार करना पड़ा । लेकिन इस्लाम में शरण लेने पर भी इनकी स्थिति नहीं उभर पायी । पूर्ववासना अब भी बनी रही । किन्तु तत्काल में एक बला टल गयी ।"[1] दक्षिण में हिन्दू और मुसलमानों के बीच संघर्ष राजनैतिक क्षेत्र में अधिक था, धार्मिक क्षेत्र में कुछ कम ।

दक्षिण में सगुण भक्ति की मान्यता रही । "इस सगुण भक्ति की दो शाखायें थीं शैव भक्ति तथा वैष्णव भक्ति शाखा । आंध्र में श्री रामानुजाचार्य के वैष्णव धर्म को ही प्रजा में अधिक मान्यता प्राप्त हुई । इसीलिए तेलुगु क्षेत्र के उपास्य देवों में राम और कृष्ण के अतिरिक्त विष्णु को भी पर्याप्त सम्मान प्राप्त हुआ ।"[2] दक्षिण में, विशेष कर तेलुगु क्षेत्र में, श्री रामानुज के श्री संप्रदाय के अतिरिक्त राम और कृष्ण से सम्बन्धित पृथक संप्रदाय नहीं मिलते ।[3] सगुण और निर्गुण में भी यहाँ उतने तीव्र संघर्ष नहीं हुए ।

दक्षिण भारत में विशेषकर आंध्र प्रदेश में कई छोटे-मोटे देवी-देवताओं की उपासना दिन-ब-दिन बढ़ने लगी । वीर शैव अपने अंगों को विशेषकर अपने सिर को बलि चढ़ाते थे ।[4] महाराष्ट्र से विठोबा की पूजा आरम्भ हुई ।

शैव और वैष्णवों के बीच, अद्वैत और विशिष्टद्वैत के मध्य तीव्र विवाद होते थे । एक दूसरे की निन्दा करते थे आरोप लगाते थे । माना जाता है कि वल्लभाचार्य जी श्रीकृष्ण देवराय के समय विजयनगर गये थे । उनका विजयनगर के प्रसिद्ध द्वैताचार्य व्यासतीर्थ से विवाद हुआ था ।[5]

1.5.3 उत्तर तथा दक्षिण भारत की धार्मिक परिस्थितियों की तुलना :

उत्तर भारत में शासन मुसलमानों का था, जो अपने धर्म के प्रचार में भी जुटे हुए थे । किन्तु दक्षिण में अधिक राजा हिन्दू ही थे । अत: "जहाँ

---

1. अन्नमाचार्य और सूरदास–डा. एम. संगमेशम्, पृष्ठ 39
2. हिन्दी और तेलुगु वैष्णव भक्ति साहित्य–डा. के. रामनाथन्, पृष्ठ 11
3. वही–पृष्ठ 14
4. आंध्रुल सांघिक चरित्रा–सुरवरम् प्रतापरेड्डी के आधार पर
5. आंध्रुल चरित्रा–डा. बी. एस. एल. हनुमंत राव, पृष्ठ 433

उत्तर भारत में हिन्दू और मुसलमान धर्मों का संघर्ष अन्तर्मुख होकर चल रहा था, वहाँ दक्षिण में यह बहिर्मुख होकर। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि उत्तर भारत में हिन्दू मुसलिम संघर्ष धार्मिक धरातल पर चल रहा था और दक्षिण में वही राजनैतिक क्षेत्र में अग्रसर था।"[1] उत्तर भारत में हिन्दू जनता के हृदय में एक प्रकार की उदासीन भावना थी क्योंकि उनके मंदिर, मूर्तियाँ, धार्मिक पुस्तकें उनकी आँखों के सामने ही नष्ट किये जा रहे थे। अकबर के प्रयत्नों के बाद भी हिन्दू और मुसलमानों के बीच समन्वय नहीं हो सका था। जहाँ तक दक्षिण का प्रश्न है, स्थिति कुछ भिन्न थी। यहाँ के हिन्दू राजा और प्रजा दोनों ने मिलकर इस्लाम का विरोध किया था। "दक्षिण में ब्राह्मण का राजाओं से जितना सम्पर्क था और जितने घनिष्ट सहयोग के साथ ये दोनों शक्तियाँ स्वधर्म रक्षक बनी हुई थीं, उतना सहयोग उत्तर भारत में संत और सामंत के बीच नहीं था। इसका कारण यह है कि दक्षिण का सामंत उत्तर भारत के सामंत के समान विधर्मियों के शासन से अभिभूत और पराजित नहीं था।"[2]

उत्तर भारत में जहाँ तक सगुण-निर्गुण का भेद भाव चल रहा था, दक्षिण में शैव वैष्णव का तीव्र संघर्ष था। उत्तर भारत में आलोच्य युग में अकबर जैसे बादशाह और कबीर आदि संत कवि हिन्दू मुसलिम एकता के लिए कार्यरत थे। दक्षिण में भी समन्वय की भावना आलोच्य युग में हम देख सकते हैं, किन्तु हिन्दू और मुसलमानों के मध्य नहीं, बल्कि शैव और वैष्णवों के बीच। विजयनगर के राजा वैष्णव धर्म स्वीकार करने पर भी शैवों का भी आदर करते थे। काकतीय राजा भी शैव धर्मावलम्बी होने पर भी पर धर्म सहिष्णुता उनमें थी। विजयनगर राज्य में विभिन्न धर्मावलम्बी थे। हिन्दुओं के साथ-साथ जैन, मुसलमान और ईसाई भी थे। वैष्णव धर्मावलम्बी जब जैनों की हिंसा कर रहे थे तो बुक्काराय ने उन्हें शान्त किया। राजधानी में विरुपाक्ष मंदिर के पास ही जैन मंदिर भी है। जैन और मुसलमानों की प्रार्थनाओं के लिए भी सुविधायें थीं।[3] वर्णाश्रम की व्यवस्था थी। इसी समय हरिहर की उपासना आरम्भ हुई थी। पोतना, तिक्कना आदि कई कवियों ने अपनी रचनाओं में शिव-केशव का अभेद बताया

---

1. हिन्दू और तेलुगु वैष्णव साहित्य—के. रामनाथन्, पृष्ठ 12
2. हिन्दी और तेलुगु वैष्णव साहित्य—के. रामनाथन्, पृष्ठ 10—11
3. आंध्रुल चरित्र—बी. एस. एल. हनुमंत राव, पृष्ठ 429

था। वैसे हिन्दी के क्षेत्र में महान् समन्वयकारी गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी "अगुनहिं-सगुनहिं नहिं कछु भेदा" के साथ-साथ "शिव द्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहु मोहिं न पावा।"[1] कह कर समन्वय का मार्ग अपनाया।

जहाँ परिस्थितियों के कारण उत्तर भारत में जनता को इस्लाम धर्म स्वीकारना पड़ा तो दक्षिण में राजा के प्रभाव के कारण कई शैव धर्मावलम्बी वैष्णव बन गये। दक्षिण में भी नाथ और सूफी संप्रदायों का प्रभाव पड़ रहा था।

सगुण भक्ति शाखा के उपास्य देव राम और कृष्ण उत्तर तथा दक्षिण दोनों प्रान्तों में अत्यन्त लोकप्रिय थे। साथ-साथ श्री सम्प्रदाय के कारण दक्षिण में विष्णु, बाला जी, श्रीरंगनाथ, वरदराज स्वामीजी की भी पूजा अधिक मात्रा में थी। राम के साथ हनुमान जी की दोनों प्रदेशों में पूजा होती थी। उत्तर भारत में कृष्ण और राधा की युगल उपासना भी होती थी किन्तु दक्षिण में कृष्ण के साथ रुक्मिणी, सत्यभामा अथवा पद्मावती।

1.6 सामाजिक परिस्थितियाँ :

भारतीय इतिहास हमें यह बताता है कि इस देश पर यवन, शक, कुशान और हूण आदि कई विदेशी आक्रमण हुए थे। उनके साथ-साथ उनकी संस्कृतियों ने भी हमें प्रभावित किया। यह भारतीय सभ्यता और इतिहास की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। किन्तु मुस्लिम आक्रमणकारी तो एक नये राज्य एवं धर्म प्रचार करने के लिए तैयार हो कर आये थे। श्री जवाहरलाल नेहरू ने अपने ग्रंथ "भारत की खोज" में इस पर सुन्दर प्रभाव डाला है। मुसलमानों ने देश के सामने धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि कई प्रकार के संकट खड़े कर दिये थे। अन्य संस्कृतियों की भांति इसे भारत आसानी से अपना नहीं सकता था क्योंकि मूल रूप से दोनों दो भिन्न छोर पर थे। समाज और धर्म जो मध्य युग में जीवन के अत्यन्त प्रमुख अंग थे इन दोनों क्षेत्रों में हिन्दू एवं मुसलमानों में कई अन्तर थे। इनके विभेद के बारे में स्पष्ट करते हुए लेख "हिस्टरी एण्ड कलचर आफ इंडियन पीपुल" में प्रो. यू. एन. घोषाल इस प्रकार लिखते हैं–

"They differed fundamentally in theological conception, method of worship and every thing connected with

---

1. रामचरितमानस

daily devotion to God. To Hindus, images and temples were most sacred objects, but both these were anathema to the Muslims. Their philosophical notions and sacred literature, their conception of heaven and hell, of this life and the next, in short the whole out look on men and things lacked a cammon basis, Similarly, they differed widely between their social rules and regulations. The ideal of brotherhood of Islam and the theoritical equality among its adherents, was in strange contrast to the caste system and untouchability of the Hindus. Restriction on inter-marriages, inter-dining and remarriage of widows among Hindus was repugnant to Islam's teachings which permitted divorce, remarriage of females and almost free marriages with a few restrictions. They also differed in the laws of succession, disposal of dead, their dress, modes of eating and greeting.

The Muslim conquerors therefore created problems which India had not experienced before."[1]

दोनों वर्ग अपनी अपनी इन सभी भिन्न मान्यताओं को फैलाना चाहते थे।

1.6.1 उत्तर भारत :–राजनैतिक उथल पुथल के साथ-साथ धार्मिक संघर्षों के कारण उत्तर भारत की सामाजिक स्थिति आलोच्य युग में संघर्ष पूर्ण थी। उत्तर भारत में कई लोग विशेष कर निम्न जातियों वाले स्वेच्छा से अथवा दबाव के कारण इस्लाम धर्म को धीरे धीरे अपनाने लगे। ये अपनी पुरानी मान्यताओं, रीति-रिवाज, व्यवहार और विश्वासों को साथ लेकर नये धर्म में कदम रखने लगे। शासक वर्ग और उनके निकट सम्बन्धी उच्च स्थिति में थे। ये नये धर्मावलम्बी निम्न वर्ग के थे, वें अपनी पुरानी मान्यताओं को न छोड़ पाते थे अत: अमीरों और इनके बीच सामाजिक एवं आर्थिक असमानताएँ उत्पन्न हो जाती थीं। अत: इस धर्म परिवर्तन के कारण भारत के इस वर्ग में कोई विशेष उल्लेखनीय, परिवर्तन नहीं आया। "शासक वर्ग, अधिकारी, अमीर और उनके आश्रितों के यहाँ सुख-सुविधा, भोग-विलास

---

1. A Social, Cultural and Economic History of India—Vol. II P. 29

ऐश-आराम की सभी सामग्री जुटी रहती थी।"[1] अतः आर्थिक असमानता का दोष बना ही रहता था।

भारतीय समाज स्मृतियों के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नामक चार वर्णों में उनके कार्य क्षेत्र के आधार पर बंटा हुआ था। किन्तु समय की गति के साथ-साथ ये वर्ग उनके श्रम विभाजन के अनुसार न होकर, मात्र उनके जन्म के आधार पर होने लगे। अतः आलोच्य युग तक आते-आते समाज में संकीर्णता के साथ-साथ कट्टरता भी बढ़ने लगी। "समाज में कई जातियाँ, उपजातियों का निर्माण हुआ और वर्ण व्यवस्था ने अत्यन्त जटिल रूप धारण किया। अतः इस समय तक सामाजिक संकीर्णता का भाव इतना प्रबल होता गया कि वह समाज क्रमशः जातियों का एक समूह मात्र बन गया था।"[2]

ब्राह्मण वर्ग अपने आपको सर्वश्रेष्ठ घोषित कर अन्यों को नीची दृष्टि से देखने लगा। हाँ, उत्तर भारत में शासक मुसलमान थे अतः उन्होंने ब्राह्मणों के इस दावे को स्वीकार नहीं किया। अकबर ने भी ब्राह्मणों की विद्वता को मान्यता दी थी, न कि उनकी पूज्यता को। ब्राह्मण अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए प्रजा में अंधविश्वासों का प्रचार करते थे। "उत्तर में वे धर्म और मंदिरों की आड़ लेकर अपने मार्ग प्रशस्त कर रहे थे।"[3]

उस युग में क्षत्रिय अत्यन्त वीर, शासन प्रिय और युद्ध प्रिय भी थे। उत्तर भारत के क्षत्रिय, विशेष कर राजपूत योद्धा देश को मुसलमानों से रक्षा करने के लिए हर पल, हर घड़ी सतर्क रहते थे। दुर्भाग्यवश उनके आंतरिक भेद-भाव ही उनके रास्ते में विघ्न डालते थे। अतः राजपूतों के लिए किसी आदर्श के हेतु, यथा देश व जाति अथवा धर्म की रक्षा के लिए युद्ध करना ही धर्म न था, प्रत्युत युद्ध करना मात्र ही वे अपना धर्म मानते थे। उनके लिए युद्ध किसी उद्देश्य का उपाय मात्र नहीं रह गया था किन्तु निष्प्रयोजन, अकारण युद्ध करना ही धर्म हो गया था।"[4] एक जाति दूसरे जाति में मिल नहीं सकती थी और सभी स्वतंत्र प्रिय होने के कारण

---

1. अन्नमाचार्य और सूरदास : एन. संगमेशम्, पृष्ठ 40
2. संत साहित्य की भूमिका—परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ 8
3. हिन्दी और तेलुगु वैष्णव भक्ति साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन—के. रामनाथन्, पृष्ठ 25
4. मध्य युगीन भारत—पी. सरन्, पृष्ठ 17

संगठित रूप में एक नेता के सामने सिर नहीं झुकाते थे। मध्य युग के ब्राह्मण व क्षत्रियों के सम्बन्ध में इस प्रकार कह सकते हैं—"इस युग की देन थी एक नये प्रकार की क्षत्रिय जाति जिसके विभिन्न वर्ग समयान्तर में राजपूत नाम से प्रसिद्ध हुए। इनके आविर्भाव के साथ-साथ एक स्वार्थी ब्राह्मण वर्ग को भी बड़ा बल मिला। ये वर्ग राजपूतों का पथप्रदर्शक, धार्मिक नेता और उनके मन व बुद्धि का अधिष्ठाता बन गया। ब्राह्मणों का आतंक समस्त हिन्दू मात्र के ऊपर छा गया और इस कार्य में राजपूतों ने इनकी पूरी सहायता की। दोनों के स्वार्थ की सिद्धि इसी में थी कि वे एक दूसरे का समर्थन करें—ब्राह्मण शास्त्रों से और क्षत्रिय शस्त्रों से।"[1]

वैश्य वर्ग के हाथ में प्राचीन काल की ही तरह व्यापार था और मध्य युग में भी सुसम्पन्न थे। वे व्यापार में लाभ पाने के हेतु सभी रास्ते अपनाते थे। शूद्र तथा अन्य निम्न जातियों की स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी। "धर्म ग्रंथों के पढ़ने-पढ़ाने का अधिकार शूद्रों तथा अंत्यजों को न था।"[2] उनके पास खाने-पीने के लिए और ओढ़ने के लिए कुछ न था और ये गरीब जनता से बहुत सताई जाती थी। इन्हें मंदिरों में प्रवेश करने का अधिकार नहीं था। शिक्षा, संस्कार और सामाजिक अधिकार सभी दृष्टियों से निम्न जातियाँ पिछड़ी हुई थीं। ऊँच-नीच एवं विभिन्न जातियों के बीच खाई चौड़ी होती गयी। आपस में ईर्ष्या-द्वेष बढ़ने लगा। निम्न वर्ग की प्रजा दो प्रकार से सताई जा रही थी। एक विदेशी आक्रमणकारियों का आतंक और दूसरा अपने ही समाज के उच्चवर्गियों का शोषण।

विदेशी आक्रमण, धार्मिक अंधत्व और बढ़ती हुई विलासता के इस वातावरण में स्त्रियों की दशा संतोषजनक न होना स्वाभाविक ही था। वैदिक युग में जो मान और सम्मान उन्हें प्राप्त था, वह न रह गया। मुसलमानी आक्रमणों के पश्चात् मध्य युग तक आते-आते वे मात्र विलासता की मूर्ती बन गई थी। सती प्रथा, कट्टर परदा प्रथा, बाल्य विवाह, भारी दहेज, वेश्यावृत्ति आदि सभी बुराइयाँ आ गई थी। स्त्री-शिक्षा पर निषेध था। बहु पत्नी प्रथा पर कोई नियंत्रण नहीं था क्योंकि इस्लाम धर्म में इसकी पूरी छूट थी। हिन्दू धनिक वर्ग बहु विवाह को एक सामाजिक सम्मान मानता था। वैदिक युग में नारी जो अर्धांगिनी के पद पर प्रतिष्ठित थी, मध्य

---

1. मध्ययुगीन भारत—पी. सरन्, पृष्ठ 16
2. वही— पृष्ठ 354

युग तक आते-आते पुरुष की चरणदासी मात्र रह गई। राजपूतों के घरानों में कन्या का पैदा होना ही बहुत बड़ा दुर्भाग्य समझा जाता था। अकबर ने सामान्य व्यक्ति के बहु विवाह पर कड़ा नियंत्रण रखा था। उसने सती प्रथा का भी निषेध किया था किन्तु उसे बहुत सफलता नहीं मिली। समाज में विधवाओं की दशा अत्यन्त हीन थी। उन्हें नौकर-चाकरों से भी हीन समझा जाता था। हाँ मातृत्व का रूप सबसे वंदनीय था, विशेषकर राजपूतों में।[1] स्त्रियों के स्वातंत्र्य पर हर प्रकार के "परदे" आ गये थे। अकबर जैसे उदार राजा ने भी परदा के सम्बन्ध में अत्यन्त कठिन आज्ञायें दी थीं। "कोई भी जवान स्त्री अगर बिना परदे के मार्ग पर दिखाई दें तो उसे तुरन्त वेश्यागृह में भेजा जायेगा, और उसे वही पेशा अपनाना पड़ेगा।[2] हाँ हिन्दू स्त्रियों से अधिक मुसलिम बहनों की सम्पत्ति में भाग निश्चित रूप से मिलता था। इस युग में स्त्रियाँ ही नहीं वरन् पुरुष भी कई प्रकार के शृंगार करते थे। समाज का अमीर वर्ग मादक द्रव्यों का उपयोग बहुलता से करता था। विवाह धूम-धाम से मनाये जाते थे। हिन्दू एवं मुसलिम धर्म के अनुयायी कई उत्सव और मेले मनाते थे।

"जहाँ अनेक हिन्दुओं ने धर्म परिवर्तन शायद मुसलिम शासकों की दमन-नीति के कारण किया होगा वहाँ अवश्य ही बहुतों ने अपने संकीर्ण दृष्टि वाले हिन्दू भाइयों के तिरस्कार और दुव्यहार से विवश होकर धर्म परिवर्तन किया।"[3] किन्तु मुसलमानों की सामाजिक अवस्था भी बहुत कुछ संतोषजनक नहीं थी। "वे बड़ी विलासी हो गये। साम्राज्य के प्रायः सभी बड़े-बड़े पद उनको दिये जाते थे। वे कोई कमाई का पेशा नहीं करते थे। आर्थिक चिन्ता न होने तथा भोगविलास के कारण उनकी शक्ति नष्ट हो गयी।"[4] "विजेता होने के नाते उनमें अहंकार, सत्ता पिपासा, धन लिप्सा एवं क्रूरता अधिक थी। उनकी देखा-देखी उनके सरदार या सामान्य मुसलिम दरबारी भी स्वयं को हिन्दुओं से श्रेष्ठ समझा करते थे। प्रारंभिक साहसी योद्धाओं की वीरता क्रमशः लुप्त प्राय नष्ट होनी लगी तथापि विलास-प्रियता में कमी नहीं

---

1. सोशल, कलचरल एण्ड इकानोमिक हिस्टरी आफ इंडिया—वाल्यूम-2 के आधार पर, पृष्ठ 44, 45, 47
2. वही पृष्ठ 42
3. मध्ययुगीन भारत—पी. सरन्, पृष्ठ 370

आयी ।"[1] फलतः ईसा की चौदहवीं शताब्दी के अन्त में मुसलमानों में बल और स्फूर्ति का ह्रास होने लगा ।

1.6.2 दक्षिण भारत :–दक्षिण में राजा एवं प्रजा दोनों हिन्दू-धर्मावलम्बी थे । अतः हिन्दू धर्म के उद्धार के साथ-साथ वर्ण व्यवस्था का पालन होना सहज ही था । वर्णाश्रम धर्म की नीति के अनुसार ब्राह्मण श्रेष्ठ समझे जाते थे । उन्हें राजा के आदर के साथ-साथ कई प्रकार की सुविधाएँ भी प्राप्त थीं । "वहाँ हिन्दू राजा ब्राह्मणों का सम्मान करते थे और उनको बौद्धिक विकास के लिए अवसर प्रदान करते थे ।"[2] ब्राह्मणों को किसी भी प्रकार से कुपित करने की हिम्मत किसी में नहीं थी, क्योंकि कुपित ब्राह्मण भयंकर शस्त्र अथवा अग्नि के समान हैं । उसकी पूजा करने से वह प्रसन्न होकर वर देगा ।[3] उस समय के साहित्य में भी स्थान-स्थान पर ब्राह्मणों का गुण-गान, महत्ता और उनके कर्तव्यों का वर्णन मिलता है । इसी मान और सम्मान के कारण राजा लोग ब्राह्मणों से कर वसूल नहीं करते थे । किन्तु शैव धर्म के तीव्र प्रचार के कारण दक्षिण में वर्ण व्यवस्था कुछ शिथिल होने लगी । फलस्वरूप ब्राह्मणों की महत्ता का भी कम होना स्वाभाविक था । शैव धर्म के प्रचारकों ने ब्राह्मणों की भरसक निंदा की । साथ ही, अब्राह्मणों को मंदिरों में अर्चक बनाया गया था ।[4] किन्तु चारों ओर इसका तीव्र विरोध होने लगा । सन् 1359 के आस-पास आंध्र प्रांत पर भी–मुसलमानों ने कदम रखा । धर्म का नाश देखकर प्रजा को उनके प्रति द्वेष होने लगा । एक बार फिर रेड्डी राजाओं की ब्राह्मणों के प्रति श्रद्धा विशेष सशहनीय है । ब्राह्मणों में एक शाखा "नियोगी" ब्राह्मणों को वे गाँव के पटवारी बनाते थे । रेड्डी राजाओं की उदारता के कारणों से ब्राह्मणों के पास सोना और चाँदी अधिक मात्रा में होते थे । उनकी वेशभूषा भी काफी आडम्बर युक्त होती थी ।[5] मंत्री, सेनापति, विद्याधिकारी दीक्षागुरु और पुरोहित आदि उच्च स्थानों पर ब्राह्मणों को

---

1. कबीर और समर्थ रामदास का काव्य : तुलनात्मक अध्ययन–नलिनी–हर्षे–6 (अप्रकाशित)
2. हिन्दी और तेलुगु वैष्णव भाक्ति साहित्य—डा. के. रामनाथन्, पृष्ठ 25
3. आन्ध्र महाभारत–नन्नया–आदि पर्व
4. विस्तार के लिए आंध्र साहित्यमु: सांघिक जीवन प्रति फलनमु–डा. एन. वी. एस. रामाराव
5. वही–पृ. सं–103-132 के आधार पर

नियुक्त किया जाता था ।[1] विजयगनर राजाओं का युग (सन् 1500) वैदिक पुनरुत्थान और वर्ण व्यवस्था का सुस्थिर युग था । ब्राह्मण लौकिक तथा वैदिक दोनों कर्म करते थे । सामान्य पुरोहित लौकिक कार्य करते थे जैसे—"वैश्यों के घरों में पूजा पाठ करवाना, ग्रहणों के समय जप-तप, जात से बहिष्कार किये गये ब्राह्मणों का प्रायश्चित करना" आदि-आदि । अपने यश को स्थाई बनाने के लिए ब्राह्मणों को सर्वश्रेष्ठ घोषित करते थे ।[2] वैदिक कर्मों के अन्तर्गत "प्रात: काल ही उठकर भगवान की प्रार्थन करना, फूल, फल, कुश आदि पूजा सामग्री एकत्रित करना, वैदिक मंत्रोच्चारण और शिष्यों को विद्यादान" आदि इनके कर्तव्य थे ।[3]

विजयनगर युग में ब्राह्मण षड़ांग, वेदों का अध्ययन, मीमांसा, तर्क, पुराण, धर्मशास्त्र आदि विद्याओं में प्रकांड पंडित थे । यज्ञ तथा स्मार्त कर्म ब्राह्मणों के ही हाथों में था ।[4]

सन् 1600 तक जाते—आते यद्यपि वैदिक धर्म की महनता स्वीकारने पर भी, वर्ण व्यवस्था कुछ क्षीण होने लगी थी । इसका कारण इस्लाम धर्म का प्रभाव था । ब्राह्मणों की स्थिति कुछ गिर गई थी । पचांग पठन, भिक्षाटन, आशीर्वाद आदि केवल लौकिक कार्यों के साथ-साथ कभी-कभी शववाहक भी बन जाते थे ।[5]

दक्षिण भारत में इस युग में वर्णाश्रम धर्म का पालन करना ब्राह्मणों को सुखी रखना, आश्रितों की रक्षा करना, अपराधियों को दंड देना और प्रजा को न्याय देना आदि क्षात्र धर्म माने गये थे । राजा लोगों द्वारा ब्राह्मणों को मंदिर, जमीन, धन आदि दान किए जाने के कई उल्लेख प्राप्त होते हैं । विजयनगर साम्राज्य में राजा ने ब्राह्मणों के लिए स्थान-स्थान पर धर्म शालाएँ खोलकर उचित भोजन की व्यवस्था की थी ।[6] दक्षिण में, विशेषकर आन्ध्र प्रदेश में क्षत्रियों के साथ-साथ रेड्डी, वेलमा और नायक आदि वंशजों में भी क्षात्र धर्म का पालन होता था । राजाओं का जीवन अत्यन्त वैभवशाली था ।

---

1. आंध्रुल सांघिक चरित्रा—सुखरम् प्रताप रेड्डी, पृष्ठ 92
2. वही,
3. मनुचरित्रा—अल्लसानि पेद्दना—
4. आंध्रुल सांधिक चरित्रा—सुखरम्प्रताप रेड्डी, पृष्ठ 223 के आधार पर
5. वही, पृष्ठ 94
6. आंध्रुल सांधिक चरित्रा—सुखरम्प्रताप रेड्डी, पृष्ठ 236

विजयनगर तथा अन्य राजाओं के वैभव का विस्तार पूर्वक वर्णन हमें साहित्य में स्थान-स्थान पर मिलता है। जैसे कस्तूरी, इत्र, और गुलाब जल आदि सुगन्धित द्रव्यों का उपयोग, तरह-तरह के आभूषण और अलंकार, रेशम आदि के अति सुन्दर वस्त्र, बढ़िया भोजन आदि।[1] एक या दो को छोड़कर अन्य सभी राजाओं ने अन्य धर्मों के प्रति उदारता ही दिखाई। "सारी प्रजा को श्रद्धा एवं भय के साथ राजा के वश में रहना चाहिए।...निम्न जाति के, मूर्ख, असत्यवादी, द्रोहबुद्धि वाले, विदेशी और धर्म का पालन न करने वालों को राजा को आश्रय नहीं देना चाहिए। राजा को क्रूर न होते हुए लोभ के बिना सत्य के मार्ग पर चलना चाहिए।[2] यथा संभव तत्कालीन राजा इन धर्मों का पालन करते थे। साथ ही, प्रजा पर अत्याचार करने वाले प्रादेशिक सामंत बसरदार को भी वे सजा देते थे।"[3] कर व्यवस्था बहुत भारी थी। खेती-बाड़ी, खाने, पशु-संपदा, यात्रा व्यापार, बाग-बगीचे, विवाह, चारगाह, आयात-निर्यात, आदि कितने ही विषयों पर कर वसूल किया जाता था।

प्राचीन काल से ही व्यापार दक्षिण में भी वैश्यों के हाथ में ही था। चीन, बर्मा, इंडोनेशिया, सिंहल, मलाया, अरब आदि देशों से इस युग में व्यापार चलता था। रत्न, आभूषण और कई प्रकार के वस्त्र, आभूषण, खाद्य पदार्थ आदि का व्यापार किया जाता था। जगह-जगह हाटें होती थीं। व्यापारी लोग अपने माल हाथी, बैल जैसे पशुओं पर लाद कर हाट तक पहुँचाते थे। बड़े व्यापारियों के पास ऐसे भारवाही पशु ज्यादा होते थे और वे उन सबको एक बार "खेप" लाद कर बाजार जाते थे। छोटे व्यापारी खुद अपना माल ढोते थे या सर पर बौझ लाद कर फेरी लगा कर इधर-उधर अपनी चीजें बेचा करते थे।"[4] समुद्र व्यापार भी आलोच्य युग में दूर-दूर तक होता था।"[5] श्रीकृष्ण देवराय के युग में ही पुर्तगालियों ने भारत में कदम रखना और व्यापार करना आरभ कर दिया था।

भारत के निम्न वर्ग शूद्र तथा अन्य छोटी-मोटी जातियाँ आती थीं। दक्षिण में शैव धर्म के प्रचारकों ने सबसे पहले शूद्रों को मंदिरों में प्रवेश

---

1. विस्तार के लिए देखिए—आंध्रुल सांघिक चरित्रा
2. आंध्र साहित्यमु—सांघिक जीवन प्रतिफलनमु रामाराव, पृष्ठ 212
3. अन्नमाचार्य और सूरदास—संगमेशम्, पृष्ठ 42
4. अन्नमाचार्य और सूरदास साहित्य का समाज शास्त्रीय अध्ययन, पृष्ठ 85
5. आंध्रुल सांघिक चरित्रा—प्रताप रेड्डी के आधार पर।

करवाना, उनके साथ खाने-पीने की व्यवस्था आदि का तीव्र प्रयत्न किया था। किन्तु इसका चारों ओर से विरोध हुआ। शूद्र जुलाहे का काम करते थे। इनमें कई भेद और उपशाखाएँ भी थीं।[1] तेलुगु के महान् कवि श्रीनाथ की रचनाओं से हमें ज्ञात होता है कि इस युग में शैव धर्म की उच्च स्थिति के समय भगवान शिव को माल्यार्पण करने वाले, दूध दुहने वाले भगवान की मूर्ति को नहलाने वाले पुजारी, वैद्य, आदि निम्न वर्ग के कहार, लुहार आदि ही हुआ करते थे।

आलोच्य युग तक आते-जाते स्त्रियों की स्थिति दक्षिण में भी उतनी संतोषजनक नहीं थी। मुसलमानी आक्रमणों के कारण उनका जो स्वातंत्र्य छीना गया था वह कभी वापस नहीं आया। उनका कार्यक्षेत्र केवल घर की चहारदीवारी तक सीमित हो गया था। इस युग में पुरुष विलासिता के जीवन में डूबकर वेश्याओं के साथ और एक साथ कई स्त्रियों से सम्बन्ध रखते थे। इसीलिए आलोच्च युग के साहित्य में "दक्षिण नायक" अधिक चित्रित हुए हैं। किन्तु स्त्रियों के लिए एक ही पति, एक ही विवाह आदि कठिन से कठिन नियम लगाये गये थे।[2] विदेशी आक्रमणों के कारण स्त्रियों के लिए परदा प्रथा भी आरम्भ हो गयी थी। हाँ, मध्यम एवं निम्न वर्गों की की तुलना में पर्दा प्रथा का पालन राजघरानों में अधिक किया जाता था।[3] सती प्रथा और बाल विवाह भी प्रचलित था। चोल राजाओं के युग में (8-13 सदी) स्त्रियों को दक्षिण में पति की सम्पत्ति अपने आप मिल जाती थी।[4] शैव धर्म के प्रचारकों ने ही स्त्रियों की स्वेच्छा पर जोर दिया था। स्त्री और पुरुष सोलह श्रृंगार करते थे, जिसका विस्तृत वर्णन देशी साहित्य में ही नहीं वरन् विदेशी यात्रियों की रचनाओं में भी प्राप्त होता है। धनिक वर्ग और राजा महाराजा अति सुन्दर वस्त्र, आभूषण आदि धारण करते थे।[5]

1.6.3 उत्तर और दक्षिण भारत की सामाजिक परिस्थितियों की तुलना :

"आलोच्य युग की सबसे प्रधान विशेषता इस्लाम धर्म का भारत में

---

1. आंध्रुल सांघिक चरित्रा—सुखरम् प्रतापरेड्डी, पृष्ठ 200
2. आंध्रुल चरित्रा : संस्कृति—खण्डवल्लि लक्ष्मी रंजनम्, पृष्ठ 81
3. सोशल, कलचरल एण्ड इकनामिक हिस्टरी आफ इंडिया—वाल्यूम-2, पृष्ठ 42-43
4. वही—पृष्ठ 47
5. आंध्रुल सांघिक चरित्र—सु. प्रताप रेड्डी के आधार पर।

बलात रूप से प्रवेश था। परिणामतः भारतीय समाज में मुसलमानी काल में आकर जाति-पाँति का भेद और भी बढ़ गया। मुसलमानी धार्मिक-अत्याचार से बचने के लिए हिन्दुओं को खान-पान, ब्याह-शादी आदि के कड़े बंधन बढ़ाने पड़े…। इससे "हिन्दू सभ्यता में प्रगतिशीलता के स्थान पर स्थिर-रूढ़िवाद तथा कठोरता ने पैर जमा लिया।"…आपस में छुआ-छूत पहले से ही घुस आयी थी।"[1]

आलोच्य युग को हम वर्णाश्रम व्यवस्था का पुनरुद्धार का युग कह सकते हैं। उत्तर भारत से अधिक दक्षिण भारत के शासक वर्ग ने ब्राह्मणों को प्रश्रय दिया। दोनों प्रदेशों में ब्राह्मणों ने अपने आपको सर्वश्रेष्ठ घोषित कर लिया था। कभी-कभी अपनी बिगड़ी हुई आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए ब्राह्मण लोग प्रजा में अंधविश्वास बढ़ा कर और मंदिरों की आड़ में शोषण करते थे। दक्षिण भारत में राजा हिन्दू होने के कारण ब्राह्मणों को अधिक सम्मान देने के साथ-साथ उनके बौद्धिक विकास के लिए अवसर प्रदान करते थे।

उत्तर भारत में राजपूत तथा दक्षिण में क्षत्रिय, रेड्डी, वेलमा आदि राजाओं में क्षात्र धर्म प्रचलित था। यह वर्ग शासन प्रिय होने के साथ-साथ युद्ध प्रिय भी था। दुर्भाग्यवश एक वंश या राजा दूसरे वंश या राजा से युद्ध करना मात्र ही क्षात्र धर्म समझते थे। अतः देश में सदा युद्ध छिड़ जाते थे। इन्हीं कारणों से इस्लाम धर्म अ र मुससमानी सत्ता भारत में जम गये। दोनों प्रदेशों के राजा ऐश और विलासिता का जीवन बिताते थे। उनके वैभव का चित्रण तत्कालीन साहित्य में स्थान-स्थान पर हुआ है।

"राज्य की आय का बहुत बड़ा भाग हिन्दू राजा और मुसलमान सुलतान दोनों ही भोग विलास तथा अपने अन्य शौक की चीज़ों पर खर्च करते थे।"[2] जैसे बड़े-बड़े भवन, दुर्ग आदि का निर्माण, मसजिद और मकबरों को बनवाना, नये-नये शहर बसाना, दरबार की शान शौकत पर खर्च करना, बाहरी मेहमानों पर खर्च करना आदि आदि।

समाज की अर्थ व्यवस्था पर नियंत्रण करने के कारण दोनों ही क्षेत्रों में वैश्य वर्ग समृद्ध था। वे समुद्र तथा अन्य मार्गों के द्वारा देश-विदेशों से व्यापार करते थे।

"निम्न वर्ग की दोनों ही क्षेत्रों में दयनीय अवस्था थी। उसके शोषण

---

1. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय : डा. दीनदयाल गुप्त, पृष्ठ 33
2. मध्ययुगीन भारत—पी. सरन्, पृष्ठ 377

पर ही विलासिता की उच्च प्राचीरें खड़ी हुई थीं। फिर भी उन्हें समाज में कोई सम्मान पूर्ण स्थान प्राप्त नहीं था। शिक्षा, संस्कार और सामाजिक अधिकार सभी दृष्टियों से निम्न जातियाँ पिछड़ी हुई थीं।"[1] इन पिछड़ी हुई जातियों का उद्धार करने के लिए उत्तर एवं दक्षिण दोनों प्रदेशों में भरसक प्रयत्न हुआ। उत्तर में संत कवि एवं दक्षिण में शैव धर्मावलम्बियों ने वर्णाश्रम धर्म का विरोध किया और क्रांति लाने की चेष्टा की। यद्यपि इसमें उन्हें बहुत अधिक सफलता नहीं मिली, किन्तु प्रयास हुआ।

आर्थिक स्थिति के आधार पर समाज तीन वर्गों में बँटा हुआ था। पहला उच्चा वर्ग था। "जिसमें राजे महाराजे और दूसरे छोटे-बड़े शासक सामन्त गण, बड़े-बड़े राजकीय पदाधिकारी धनवान, रईस और दौलतमन्द शामिल थे। दूसरे वर्ग में शामिल थे छोटे-छोटे सामन्त और सरकारी पदाधिकारी और प्राय: बड़े-बड़े शहरों में रहने वाले सामान्य व्यापारी-लोग। तीसरे वर्ग में, जिसकी तादाद सबसे बड़ी थी, गाँव के किसान लोग और मजदूर पेशा तथा सरकारी फौज के सिपाही, विशेष कर पैदल सेना के लोग और अन्य उसी दर्जे के कर्मचारी शामिल थे। इसमें कोई संदेह नहीं कि इन तीनों वर्गों की आर्थिक अवस्था में भारी अन्तर था।"[2]

शासक वर्ग, अधिकारी और उनके आश्रितों के यहाँ सुख-सुविधा, भोग विलास, ऐश-आराम की सभी सामग्री जुटी रहती थी। एक पुरुष कई स्त्रियों से विवाह करना, वेश्याओं से सम्पर्क रखना आदि अपनी सामाजिक मर्यादा को बढ़ाने के साधन समझते थे। नगर में रहने वाले एवं उच्च वर्ग के व्यक्तियों का जीवन विलासमय था। लेकिन स्त्रियों पर कट्टर परदा, सती, बाल विवाह आदि सभी बुराइयाँ बीत रहीं थीं। मध्य युग तक आते-आते वैदिक युग में सम्मान प्राप्त नारी की स्थिति बहुत अधिक गिर गयी थी। नारी का स्थान हृदय से होते-होते नीचे की ओर फिसलते हुए पैरों तक आ गिरा जिसे कभी भी पुरुष एक ठोकर मार कर ठुकरा सकता है। उत्तर भारत के सन्त कवि एवं दक्षिण के वेमना आदि कवियों ने नारी को माया और ठगिनी माना। उससे सावधान रहने की चेतावनी दी। इतनी बुराइयों के पश्चात् भी स्त्रियों की प्रतिभा कहीं "वीरांगनाओं" के रूप में तो कहीं विदुषी या कवयित्री के रूप में दोनों ही क्षेत्रों में प्रकट हुई।

---

1. हिन्दी और तेलुगु वैष्णव भक्ति साहित्य—रामनाथन, पृष्ठ 25
2. मध्य युगीन भारत—पी. सरन्, पृष्ठ 376

स्त्री पुरुष सभी सोलह श्रृंगार करने में रुचि लेते थे। विभिन्न प्रकार के आभूषणों का वर्णन उस युग के साहित्य में हमें मिलता है। अबुल फजल ने 'आइने अकबरी' में स्त्री और पुरुषों के आभूषणों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। मुसल्मान बादशाह भी कीमती मणि-माणिक्य-मोती आदि पहनते थे।[1] विजयनगर राजाओं के रहन-सहन एवं ठाटबाट का वर्णन न्यूनिज, निकोली कोंटी तथा बार्बोसा आदि विदेशी यात्रियों ने विस्तार से किया है। अब्दुल रजाक ने धनिक वर्ग के बारे में लिखा है कि वे कानों में, कंठ में, हाथों में और उंगलियों में आभूषण पहनते थे।[2]

उत्तर और दक्षिण भारत में होली, दीपावली, दशहरा, शिवरात्रि, राखी आदि त्यौहारों को मनाने की विधि के बारे में देशी साहित्य के साथ-साथ विदेशी यात्रियों की रचनाओं में भी उल्लेख प्राप्त होते हैं। साथ ही अपने अपने प्रदेश के विशेष सांप्रदायिक त्यौहारों में भी राजा और प्रजा भाग लेते थे। मुसलमान शासक और प्रजा भी इसमें भाग लेते थे।

"इन सब बातों से यही निकलता है कि परम्परागत चातुर्वर्ण्य-जनित स्तर विभेद की अपेक्षा किसी एक समय विद्यमान धन-मान, पदवी-प्रतिष्ठा, विद्या, कौशल, साहस, शौर्य आदि के कारण बनने वाले स्तरविभेद अधिक होते हैं।"[3]

1.7. साहित्यिक परिस्थितियाँ :

साहित्य एवं समाज अन्योन्याश्रित हैं। उन्हें पृथक नहीं किया जा सकता। धर्म समाज का ही एक अंग है। प्राय: संसार के सभी-भाषाओं में सर्वप्रथम धार्मिक ग्रंथों का ही जन्म हुआ। भारतीय साहित्य भी इसका अपवाद नहीं हैं। भारतीय जन जीवन की नींव वैदिक धर्म में है। अत: प्राचीन काल से वेद, उपनिषद्, पुराण और तत्सम्बन्धी साहित्य का जन्म हुआ है। अत: समाज, धर्म और साहिाय को हम एक त्रिकोण से तुलना कर सकते हैं।—यथा
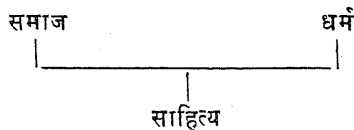
1. विस्तार के लिए देखिए—सोशल कलचरल एण्ड इकनामिक हिस्टरी आफ इंडिया—वालयूम—2 पृष्ठ 51—52
2. आंध्रलु सांघिक चरित्र-सुखरम् प्रतापरेड्डी के आधार पर।
3. अन्नमाचार्य और सूरदास साहित्य का समाज शास्त्रीय अध्ययन—एम. संगमेशम्—पृष्ठ 94

मध्ययुगीन भारतीय साहित्य भी इसका अपवाद नहीं हैं। मुसलमानी आक्रमणों के कारण राजनैतिक, सामाजिक व धार्मिक परिस्थितियों में उथल-पुथल हो रही थी। चारों ओर संघर्ष ही संघर्ष चल रहा था। इन परिस्थितियों में सम्पूर्ण भारत में भक्ति की लहर उमड़ आयी। क्या उत्तर क्या दक्षिण देश के सभी भागों में भक्ति साहित्य का जन्म हुआ। उस युग के साहित्य को हम संस्कृत, द्रविड़, प्रादेशिक भाषाओं के साथ-साथ अरबी, फारसी और उर्दू भाषाओं में लिखे गये साहित्य के रूप में विभाजित कर सकते है। इस्लाम धर्म का प्रभाव अन्य सभी क्षेत्र—जैसे कला, धर्म, समाज और संस्कृति पर पड़ने पर भी संस्कृत साहित्य पर कुछ नहीं पड़ा। इस युग में नयी एवं स्वतंत्र रचनाओं का जन्म नहीं हुआ। केवल भाष्य, टीका और अनुवाद ही हुए। वे भी मानों केवल पढ़े-सिखे इने-गिने लोगों के लिए ही हुए।

2.7.1. उत्तर भारत : उत्तर भारत में राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियों के साथ-साथ धर्म के प्रचार के कारण भी हिन्दू प्रजा अन्तर्मुख हो गयी। साथ ही दक्षिण से भी भक्ति की धारा उमड़ कर उत्तर भारत में आयी। इन परिस्थितियों में भक्ति साहित्य का जन्म हुआ।

2.7.1.2. संस्कृत : इस्लाम धर्म के आगमन के बहुत पहले ही संस्कृत का महत्व क्षीण होने लगा था। महान् संस्कृत लेखकों की परम्परा भी रुक गयी थी। ......विदेशी शासकों का संस्कृत को प्रश्रय न देना और उसकी अपनी कुछ अन्य कमियाँ शायद इसके कारण थे। मूल रचनाओं के स्थान पर विविरणों को अधिक महत्व दिया गया।[1] इन सबके बावजूद रामायण और महाभारत के आधार पर रचनाएँ हुई। गद्य, पद्य, ऐतिहासिक काव्य, नाटक आदि सभी शैलियों में रचनाएँ हुई। जैसे—

1. वेदान्त देशिक	यादवाभ्युदय
2. पद्म सुन्दर	रामाभ्युदय
3. रामचन्द्र	रसिकरंजन
4. जगन्नाथ	भामिनी विलास
5. कल्हण	राजतरंगिणी
6. रूप गोस्वामी	विदग्ध माधव
7. भट्टोजी दीक्षित	सिद्धान्त कौमुदी

1. सौशल, कलचरल एण्ड इकनामिक हिस्टरी—आफ इंडिया—वा.—2 पृष्ट 177 के आधार पर।

आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

2.7.1.2. प्रादेशिक भाषाएँ : आर्य परिवार की असमी, बंगाली, गुजराती, कश्मीरी, मराठी, उड़िया, पंजाबी आदि भाषाओं में भी रचनाएँ हुई। हिन्दी भाषा के लिए तो यह स्वर्ण युग ही रहा। आलोच्य युग के साहित्य में भक्ति की प्रधानता को देखकर ही आचार्य शुक्ल जी ने इसे "भक्तिकाल" की संज्ञा दी। आचार्य शुक्ल जी ने सम्पूर्ण भक्ति साहित्य को इस प्रकार से विभाजित किया—
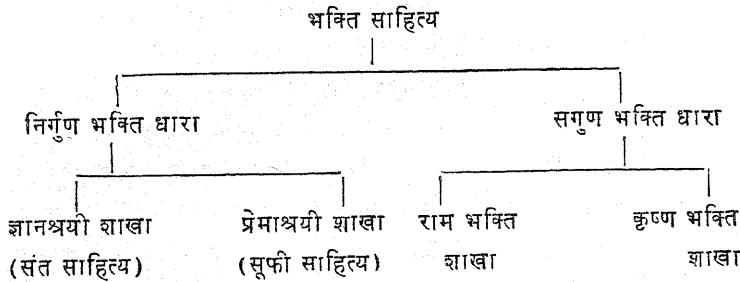
इसका अर्थ यह नहीं कि उस युग में हिन्दी तथा उसकी बोलियों में भी भक्ति साहित्य के अलावा कुछ नहीं लिखा गया था। तत्कालीन-साहित्य में धर्म के अलावा "मैथिली गीति परम्परा, ऐतिहासिक रास काव्य परम्परा, ऐतिहासिक चरित काव्य परम्परा, ऐतिहासिक मुक्तक परम्परा, शास्त्रीय मुक्तक परम्परा, रोमांटिक कथा काव्य परम्परा और स्वच्छन्द प्रेम काव्य परम्परा की बेगवती काव्य धाराएँ मध्यकालीन हिन्दी साहित्य को उर्वर बनाती हैं, जिन्हें किसी भी दशा में भक्ति की धारा से क्षीण नहीं कहा जा सकता हैं।"[1] पर फिर भी इस युग में भक्ति साहित्य, विशेष कर वैष्णव भक्ति साहित्य की ही प्रमुखता रही।

हिन्दी के वैष्णव भक्ति साहित्य में राम भक्ति शाखा का सम्बन्ध रामानन्द संप्रदाय से था। कृष्ण भक्ति शाखा का सम्बन्ध वल्लभ संप्रदाय, राधा वल्लभ संप्रदाय आदि से था। कृष्ण भक्ति शाखा के कवियों की भाषा ब्रज, राम भक्त कवियों की भाषा ब्रज व अवधी, सूफी कवियों की अवधी, विद्यापति की मैथिली और कबीर आदि संत कवियों की भाषा मिश्रित थी। कई कवियों ने वैष्णव धर्म के प्रचार व प्रसार के लिए भी काव्य रचना की। उत्तर भारत के वैष्णव कवि विरक्त थे। राजा या बादशाहों से या राज-

---

1. हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियां—डा. शिवकुमार—शर्मा पृष्ठ 108

दरबारों की ऐहिक सुख सम्पति से वे मुक्त थे। अत. अधिकतर काव्यों का सृजन भक्तिवश तथा "स्वांत: सुखाय" हुआ। विद्यापति एवं केशवदास इसके अपवाद हैं। संत कवियों ने समाज सुधार का भार ग्रहण किया। तुलसीदास जी के "स्वांत: सुखाय में पर जन हिताय" भी निहित रहने के कारण आज तक उन्हें लोक नायक के रूप में मानते हैं।

उत्तर भारत की काव्य परम्परा की विशेषता मुक्तक परम्परा है। केवल रामभक्ति साहित्य ही प्रबन्ध शैली में लिखा गया। उस युग के साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि गेय मुक्तक पद अधिक जनप्रिय थे।

2.7.1.3. उर्दू, अरबी और फारसी साहित्य :

सम्पूर्ण उत्तर भारत मुसलमानों के अधीन हो जाने के कारण संस्कृत और देशी भाषाओं के साथ-साथ अरबी, फारसी और उर्दू का भी साहित्य पर्याप्त मात्रा में मिलता है। अमीर खुसरो, हसन देहलवी बद्रउद्दीन, जौनपुर के काजी शिहाबुद्दीन दौलतावादी, मौलाना शैख इलाहाबादी आदि कई कवि और विद्वान लेखक हुए। मुसलमान विद्वानों ने "स्वतंत्र पुस्तकों के प्रणयन के अतिरिक्त संस्कृत ग्रन्थों के अरबी और फारसी भाषाओं में अनुवाद भी किया।"[1] अकबर के युग के फारसी साहित्यकारों में अबुल फ़ज़ल, मुल्ला अब्दुल क़ादर बदायूँनी, अब्दुर्रहीम खानखाना, निजामुद्दीन, बख्शी और मौलाना अहमद अत्यन्त प्रसिद्ध हैं।

2.7.2. दक्षिण भारत :

इस युग में दक्षिण भारत में एक से बढ़कर एक महान् ग्रन्थों की रचना हुई। दक्षिण में राजा एवं प्रजा दोनों का हिन्दू होना ही इसका कारण था। प्रतापरुद्रदेव, कुमार गिरि, विरुपाक्ष, सालुव नरसिंह, कृष्णदेवराय और तिप्प-भूपाल आदि कई राजाओं ने साहित्य को कई प्रकार से बढ़ावा दिया।

दक्षिण भारत में भी आलोच्य युग में संस्कृत में, प्रादेशिक भाषाओं में एवं उर्दू-फारसी में रचनायें हुई। बहु शास्त्रों के ज्ञाता स्वामी विद्यारण्य, वैदान्तदैशिक, वामन भट्टबाण आदि पण्डितों ने काव्य, नाटक, चम्पू, वैदान्त (दर्शन) आदि की रचनाएँ कीं। "प्रादेशिक सर्वेक्षण से यह निष्कर्ष निकलता है कि भक्ति से सम्बन्धित अधिकतर रचनाएँ इस युग में दक्षिण में हुई। उसके पश्चात् बंगाल, मिथिला और पश्चिम भारत में हुयीं। इस युग में कश्मीर

---

1. मध्य युगीन भारत पी. सरन्—पृष्ठ 359

बहुत कुछ पीछे पड़ गया।"[1] ऐतिहासिक, धार्मिक काव्य, नाटक, चम्पू, गद्य, व्याकरण आदि कई ग्रन्थों की रचना संस्कृत में हुई। विजयनगर के राजा साल्व नरसिंह ने स्वयं "रामाभ्युदय" की रचना की। स्वामी विद्यारण्य ने "शंकर विजय" में शंकराचार्य की जीवनी प्रस्तुत की।

2.7 2.2. संस्कृत : काकतीय, रेड्डी, नायक तथा विजयनगर युगों के कुछ प्रसिद्ध कवि और उनकी संस्कृति की रचनाएँ इस प्रकार हैं—

1. विरुपाक्षा — नारायण विलास, उन्मत्त राघव
2. हेमाद्री — चतुर्वर्ग चिन्तामणि
3. सायणाचार्य— (विद्यारण्य के भाई) — वेदों का भाष्य
4. काकतिरुद्र — नीतिसार
5. अगस्त्य — नल कीर्ति कौमुदी
बाल भारत महाकाव्य आदि 74 काव्य
6. विद्यानाथ — प्रताप रुद्र यशोभूषण
7. कोमटिवेमा — संगीत चिन्तामणि, साहित्य चिन्तामणि
सप्तशती सार टीका

विजयनगर युग में संस्कृत में वेदों के भाष्य, काव्य-नाटक, अद्वैत द्वैत, विशिष्टाद्वैत, अलंकार नाट्य और संगीत शास्त्रों पर रचनाओं की बाढ़ सी आयी। उदाहरण के लिए—

1. अप्पय दीक्षित— शैवार्क मणि दीपिका
2. वेदान्तदेशिक — यादवाभ्युदय, रामाभ्युदय
3. देवराय द्वितीय — महानाटक सुधा निधि

इनके अलावा कई कवयित्रियाँ भी हुईं।

जैसे—गंगांबा— मथुरा विजयम्

तिरुमलांबा— वरदांबिका परिणयम् आदि।

संस्कृति साहित्य के सम्बन्ध में इतना ही कहना उचित होगा कि मल्लिनाथ और काटयवेमा जैसे अद्भुत टीकाकार भी हुए।

2.7.2.2. प्रादेशिक भाषाएँ : दक्षिण की प्रमुख भाषाएँ तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम हैं। इन्हें द्राविड़ परिवार के अन्तर्गत रखा गया है। इन चारों भाषाओं में इस युग में रामायण, महाभारत और श्रीमद् भागवत

1. दिल्ली सल्तनत—भारतीय विद्याभवन पृष्ठ 465

के आधार पर रचनाएँ हुई। तमिल के आलवार भक्तों की प्राचीनतम रचना "प्रबन्धम्" वैष्णव भक्ति का मूल श्रोत माना जाता है। विल्लिपुत्तूर, शिवाचारियार वेदान्त देशिक, कालमेकम् आदि तमिल के प्रसिद्ध कवि थे। कन्नड़ में शैव, वैष्णव एवं जैन साहित्यों का जन्म होने लगा। भीमकवि, पुरन्दरदास, कनकदास, महलिंगदेवा, लक्कन्ना, जक्कन्नार्य, सिद्धलिंगा, नारप्पा आदि कई कवि हुए। मलयालम साहित्य का आरम्भ "रामचरितम्" से माना जाता है। तब तक यह केवल तमिल की ही एक शाखा थी।[1]

तेलुगु प्रदेश : आधुनिक भारत में जिसे हम आंध्र प्रदेश के नाम से जानते है, वहाँ की भाषा तेलुगु है। आंध्र प्रदेश दक्षिण का सबसे बड़ा प्रदेश है। पूरब में बंगाल की खाड़ी, पश्चिम में कर्नाटक तथा महाराष्ट्र, उत्तर में मध्यप्रदेश और उड़ीसा और दक्षिण में तमिलनाडु इसकी सीमायें हैं। यहाँ की कृष्णा, गोदावरी, तुंगभद्रा, पेन्ना, नागावली और वंशधारा आदि नदियाँ आंध्र प्रदेश को उपजाऊ बनाती हैं। यहाँ की पर्वत श्रेणियों पर तिरुपति, श्रीशैलम, अन्नवरम्, सिंहाचलम्, यादगिरिगुट्टा आदि पवित्र तीर्थ स्थान हैं। आंध्र प्रदेश का इतिहास अत्यन्त पुराना है। आंध्र शातवाहन, चालुक्य, चौल, काकतीय, रेड्डी, नायक, विजयनगर और कुतुबशाही वंशजों ने यहाँ ईसा से पहले 230–231 से लेकर सन् 1687 तक राज्य किया।[2] इनमें से अपने आलोच्य कवियों से सम्बधित विजयनगर तथा अन्य राजाओं के सम्बन्ध में पूर्ववर्ती पृष्ठों में परिचय दिया गया हैं। (देखिए 1.4)

यहाँ जैन, बौद्ध, हिन्दू, इस्लाम आदि धर्मों का बोलबाला था।

2.7.2.3. तेलुगु साहित्य का विकास और विभाजन :

तेलुगु भाषा और साहित्य का आरम्भ "चालुक्य" युग (सन् 1000 से) माना जाता है। तेलुगु भाषा के प्रथम कवि "नन्नया", राजराज नरेन्द्र के दरबारी कवि थे। उन्होंने महाभारत का तेलुगु में रूपांतरित करना आरम्भ किया। इस कार्य को उनके पश्चात् "तिक्कन्ना" (सन् 1210–20) और "एर्राप्रगड़ा" (सन् 1350 के पश्चात्) ने सम्पूर्ण किया। नन्नया द्वारा आरम्भ किया हुआ तेलुगु साहित्य विविध प्रक्रियाओं से प्रभावित और विकसित हुआ। सबसे महत्वपूर्ण कार्य समन्वय का हुआ। शैव, वैष्णव आदि वैदिक धर्मों की जीत हुई और जैन-बौद्ध आदि अवैदिक धर्मों का ह्रास हो गया।

---

1. द दिल्ली सलतनत–भारतीय विद्याभवन के आधार पर
2. विभिन्न इतिहास के ग्रंथों के आधार पर

आदि कवि नन्नया के व्यक्तित्व, कृतित्व तथा दार्शनिक मस्तिष्क से प्रभावित तेलुगु साहित्य में वैदिक धार्मिक भावना की प्रधानता रही। इसमें भक्ति रस प्रधान काव्य धारा प्रमुख है। अतः तेलुगु काव्य साहित्य को भक्ति तत्व की दृष्टि से निम्नलिखित धाराओं में विभाजित किया जा सकता है—

1. अवैदिक भक्ति धारा	ई. 1–1000
2. वैदिक भक्ति धारा	ई. 1000–1100
3. शैव भक्ति धारा	ई. 1100–1250
4. हरिहर भक्ति धारा	ई. 1250–1400
5. वैष्णव भक्ति धारा	ई. 1400–1600
6. निर्गुण भक्ति धारा तथा विविध	ई. 16000 से आज तक।[1]

तेलुगु साहित्य का विभाजन इस प्रकार से भी किया गया है जिसमें विभाजन के लिए तत्कालीन शासक को आधार के रूप में ग्रहण किया गया है।

1. आदिम चालुक्य युग	1–12 वीं सदी तक
2. काकतीय युग	1200–1337 तक
3. पद्म नायक युग	1337–1399 तक
4. रेड्डी राजाओं का युग	1400–1450 तक
5. रायुलु युग (प्रथम)	1450–1500 तक
6. रायलु युग (द्वितीय)	1500–1550 तक
7. नवाबों का युग	1550–1600 तक
8. नायक युग	1600–1670 तक
9. अंतिम राजाओं का युग	1670–1750 तक
10. कम्पनी युग	1750–1850 तक
11. जमींदारी युग	1850–1900 तक
12. आधुनिक युग	1900–से अब तक[2]

अपने इस शोध काव्य के अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से हमने भक्ति के आधार पर ही तेलुगु साहित्य का विकास नीचे प्रस्तुत किया है।

(क) अवैदिक भक्ति धारा : यह प्राङ् "नन्नया युग" अर्थात् नन्नया से पूर्व युग के नाम से जाना जाता हैं। शातवाहनों के इस काल में गुणाढ्य की

---

1. सूर और पोतना के काव्य में भक्ति तत्व—डा. सी. एच. रामुलु, पृष्ठ 58
2. समग्र आंध्र साहित्यमु—आरुद्रा।

बृहत् कथा, और हाल की "गाथा सप्तशती" में तेलुगु का आरंभिक रूप मिलता है। तेलुगु शायद जनभाषा थी। संस्कृत को राजादर प्राप्त था। शिला लेखों के अलावा तत्कालीन प्रचलित जैन या बौद्ध धर्म सम्बन्धी रचनाएँ अप्राप्य ही हैं। जैन-बौद्ध धर्मों के प्रभाव के कारण इसे अवैदिक काल कहा गया है।

(ख) वैदिक भक्ति धारा : शंकराचार्य तथा कुमारिल भट्ट के तीव्र प्रयत्नों के कारण अवैदिक स्वर तथा जैन एवं बौद्ध धर्म के स्वर कुछ मन्द पड़ गये। 11 वीं सदी तक आते-आते वैदिक धर्म के उद्धार के लिए परिस्थितियाँ अनुकूल सिद्ध हुईं। राजाराज नरेन्द्र के कठिन परिश्रम और वैदिक धर्म के उद्धार की तीव्र आकांक्षा के कारण नन्नया से आंध्र महाभारत का आरम्भ हुआ। इसी से प्रायः कृष्ण भक्ति साहित्य का आरम्भ तेलुगु में माना जाता है। इसमें कृष्ण के भक्त वत्सल, आश्रित पक्षपाती तथा योगेश्वर रूप में दर्शन होते हैं।···महाभारत के कृष्ण लौकिक एवं अलौकिक रस के अद्भुत समन्वय स्वरूप है जिसमें भक्ति के साथ कर्म और ज्ञान का उपदेशक रूप प्राप्त होता है,[1] इसके पश्चात् हुए कवि और उनके काव्य इस प्रकार से हैं—

दग्गुपल्लि दुग्गय्या— नाचिकेतोपाख्यान

नंदिमल्लया और घंटा सिंगना—वाराह पुराण, प्रबोध चन्द्रोदय

(ग) शैव भक्ति धारा : दक्षिण भारत की विशेषता है शैव धर्म का तीव्र प्रचार और प्रसार बारहवीं सदी में होना। कन्नड़ प्रान्त के बसवेश्वर ने झंझामारुत की तरह वीर शैव धर्म को एक आन्दोलन के रूप में चलाया। काकतीय राजाओं के साथ-साथ मल्लिकार्जुन पंडित आदि निष्टा-गरिष्ठ ब्राह्मणों से ले कर अन्त्यजों तक सभी लोगों ने वीर शैव धर्म को ग्रहण किया।[2] अवैदिक धर्म पीछे रह गये। 12 से 15 वीं शताब्दी तक राजादर एवं जनादर के कारण शैव धर्म और साहित्य अपनी चरम उन्नति पर पहुँच गये थे। इस धारा के प्रमुख कवि व उनकी रचनाएँ निम्नलिखित हैं—

नन्नेचोड़—(प्रथम शैव कवि)—कुमार संभव (12 वीं सदी)

मल्लिकार्जुन पंडिताराध्य— शिवतत्व सारमु, रुद्रमहिमा, लिंगोद्भव
(1120—1180) गद्य, अमरेश्वराष्टकमु

मंचेना : (14 वीं सदी) कैयूरबाहु चरित्रा

---

1. सूर और पोतना के काव्य में भक्ति तत्व—डा. सी. एच. रामुलु पृष्ठ 60-61
2. सारस्वत व्यासमुलु—निडदवोलु वेंकटराव—पृष्ठ 103—104

पाल्कुरिकि सोमनाथुडु : (13 वीं सदी के उत्तरार्ध)
बसव पुराणमु, पंडिताराध्य चरित्रा,

सोमनाथ स्तवमु, अनुभव सारमु, वृषाधिप शतकमु, बसवोदाहरण आदि । बसवेश्वर की जीवनी चित्रित होने के कारण "बसव पुराण" वीर शैवों के लिए वेदों के समान है । वीर शैव धर्म से आकर्षित होकर उसे सोमनाथ ने अपनाया ।[1]

महाकवि श्रीनाथ–(सन् 1370 के आस-पास) पंडिताराध्य चरित्रा, शृंगार नैषध, काशीखण्ड, भीमखण्ड, शिवरात्रि माहात्म्य, हरविलासमु, पलनाटि वीरचरित्रा हैं ।

महाकवि श्रीनाथ को तेलुगु साहित्य में "कविसार्वभौम" और उनके युग को श्रीनाथ युग के नाम से जाना जाता है । वे कोंडवीडु राजा के दरबारी कवि और विद्याधिकारी थे । इन्हें उच्च से उच्च सम्मान प्राप्त थे । कई अंशों में कवि श्रीनाथ की तुलना हिन्दी के केशवदास जी से कर सकने पर भी "हिन्दी साहित्य में केशव ओर बिहारी दोनों ने" जो काव्य लिखा है, उसे तेलुगु में अकेले श्रीनाथ ने लिखा है । इस कारण श्रीनाथ की तुलना मात्र केशव से नहीं हो सकती है...... ।[2]

निश्शंक कोम्मना–शिवलीला विलास
जक्कना– विक्रमार्क चरित्रा
गौरना– (15 वीं सदी) द्विपद छन्द में हरिश्चन्द्रोपाख्यान, और नवनाथ चरित्रा
कोलनि गणपति देवुडु–शिवयोगि सारमु

(घ) हरिहर भक्तिधारा : वीर शैव धर्म की त्रुटियों के कारण वह धीरे-धीरे कम जनप्रिय होने लगा । उसमें प्रचलित ब्राह्मणों की निन्दा तथा अद्वैत की निन्दा के कारण चारों ओर उसका विरोध होने लगा । अतः समय की माँग के अनुसार हरिहर ब्रह्म की उपासना का आरम्भ हुई । अब वैष्णव धर्म धीरे-धीरे पल्लवित होने लगा जो सभी प्रकार से अहिंसा का प्रचार कर रहा था । हरिहर ब्रह्म उपासना का प्रचार कर्नाटक में स्वामी विद्यारण्य ने तथा आंध्र प्रदेश में महाकवि तिक्कन्ना ने किया ।

---

1. समग्र आंध्र साहित्यमु–काकतीय युग–आरुद्रा के आधार पर
2. हिन्दी और तेलुगु के प्रतिनिधि का तुलनात्मक अध्ययन–
डा. को. शिवसत्यनारायण–पृष्ठ 87

तिक्कन्ना : इन्होंने अपनी समकालीन सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाते हुए महाभारत को तेलुगु में रूपांतरित करने का साहस किया। उन्हें 'उभय कवि मित्र' की उपाधि प्राप्त थी। उन्होंने समन्वय का अद्भुत कार्य किया। उनकी प्रथम रचना "निर्वचनोत्तर रामायण" है।

केतना : चम्पू शैली में "दशकुमार चरित्र" लिखा। इन्हें तुलुगु के प्रथम रीति ग्रंथकार माना जाता है।

मारना : मार्कण्डेय पुराण

यथावाक्कुल अन्नमय्या–सर्वेश्वर शतक

नाचन सोमनाथ–उत्तर हरिवंश

यह है तेलुगु साहित्य की पूर्व परम्परा। पूर्ववर्ती साहित्य सम्बन्धी इस संक्षिप्त परिचय के पश्चात् आलोच्य युग (अर्थात् सन् 1400 से 1600 तक) में वैष्णव भक्ति धारा के विकास पर एक दृष्टि डालना समीचीन होगा। ताल्लपाक के कवि वैष्णव धारा से सम्बन्धित हैं। अतः उसका विवेचन प्रस्तुत है।

(च) वैष्णव भक्ति धारा : राम और कृष्ण को ले कर तेलुगु भाषा में भी स्वतंत्र रूप से अनेक रचनाएँ हुईं।

(च) 1. रामभक्ति शाखा : शील, शक्ति और सौंदर्य से समन्वित राम के चरित्र में एक आदर्श चरित्र के दर्शन करता है, जो हर स्थिति में उसके मार्ग दर्शक प्रतीत होते हैं। लोक रक्षक राम पर लिखी गयी तेलुगु रचनाएँ हैं–

गोन बुद्धारेड्डी–रंगनाथ रामायण (इसे तेलुगु का प्रथम रामकाव्य माना जाता है।)

हुलक्कि भास्कर तथा अन्य–"भास्कर रामायण"

मडिकि सिंगना–वासिष्ठ रामायण

मौल्लमांबा–मौल्ल रामायण

रामभद्र कवि–रामाभ्युदयमु

पिंगलि सूरना–राघवपांडवीय।

[राघव पांडवीय : यह तेलुगु का प्रथम द्वयर्थी काव्य है। शब्दों के अर्थ में श्लेष के आधार पर दोनों रामायण और महाभारत की कथा घटित की जाती है। दशरथ–पांडुराजा, राम-लक्ष्मण, भरत-शत्रुघ्न-पंच पांडव, हनुमान-भीमसेन, सुग्रीव और कर्ण आदि चरित्रों का और अयोध्या-हस्तिनापुर, दण्डकारण्य–द्वैतवन, आदि प्रदेशों का समन्वय करते हुए कवि ने यह रचना की

है। तेलुगु एवं संस्कृत में श्लेष के साथ-साथ एक ही भाषा के दो शब्दों में श्लेष के कारण भी यह संभव हुआ है।

जैसे—विश्वामित्र—(रामायण के संदर्भ में)

विश्वआमित्र—(महाभारत के संदर्भ में)

एमन सुतोदार संग सुखमु (रामायण के संदर्म में)

ए मनसुतो दार संग सुखमु (महाभारत के संदर्भ में)

एलकूचि बाल सरस्वती—राघव यादव पांडवीय (त्रयर्थी काव्य)

इस प्रकार के द्वयर्थी काव्य तेलुगु साहित्य के ही विशेष प्रयोग हैं। संस्कृत में उनकी कुछ परम्परा मिलती है किन्तु संभवतः भारतीय भाषाओं में तेलुगु में ही एक ही काव्य में श्लेष के आधार पर दो महाकाव्योचित कथाओं का सफल निर्वाह किया गया।]

— कंदुकूरु रुद्रकवि—सुग्रीव विजयमु

भद्राचल रामदासु—दाशरथी शतक, रामदास के कीर्तन

त्यागराजु—कर्नाटक संगीत के पितामह त्यागराजु राम के अनन्य भक्त थे। संगीत में कीर्तनों के अलावा प्रह्लाद भक्त विजय, नौका विहार नामक दो यक्षगानों की भी रचना की।

अन्नमाचार्य—द्विपद रामायण (अप्राप्य) केवल राम के प्रति लिखे गये अनेक संकीर्तन प्राप्त हैं।

इनके अलावा अन्य अनेक राम सम्बन्धी गाथायें, काव्य लोकगीत तेलुगु भाषा में आज तक लिखें जा रहे हैं।

(च) 2. कृष्ण भक्ति शाखा : नटखट, माखन चोर, लीला बिहारी कृष्ण सभी के मन चुरा लेते हैं। अतः तेलुगु कवि भी कृष्ण के रंग में रंग गये और शत-सहस्र रचनाएँ आज तक भी कर ही रहे हैं। कृष्ण से सम्बन्धित प्रथम काव्य कवित्रय नन्नया, तिक्कना और एर्रन कृत "श्रीमद् आंध्र महाभारत" को ही मानना चाहिए।

एर्राप्रगडा—प्रबन्ध परमेश्वर उपाधि प्राप्त एर्रना (कवित्रय में से एक) ने महाभारत के अलावा हरिवंश, नरसिंह पुराण और रामायण की रचना की।

पोतना-अंगूर रस जैसे मीठे और सरस शैली में लिखी गयी "श्रीमदान्ध्र महाभागवत" पोतना की तेलुगु में सबसे प्रसिद्ध रचना है। संस्कृत के श्रीमद् भागवत का तेलुगु में भावानुवाद किया है। तेलुगु भाषा भाषियों के मुख पर इसके पद्यांश अनायास ही आ जाते हैं। कृष्ण भक्ति साहित्य के ये आधार स्तम्भ हैं। कृष्ण की बाल लीलाओं के विशद वर्णन के साथ-साथ रुक्मिणी

कल्याण, गजेन्द्र मोक्ष, सुदामा चरित्र, वामन, प्रह्लाद, अंबरीष और ध्रुव की कथाओं का भी विस्तृत वर्णन है। ये सभी आख्यान तेलुगु में अत्यन्त लोकप्रिय हैं।

चिन्तलपूड़ि एर्रनार्युडु—राधामाधवमु

पिल्ललमर्रि पिनवीरभद्रुडु—जैमिनी भारतमु, शृंगार शाकुंतलमु। इन्हें वाणी को अपनी रानी कहने का अद्भुत साहस था।

वैनेलकंटि सूरना—विष्णु पुराण

श्री कृष्ण देवराय—आमुक्त माल्यदा। इसमें गोदा देवी (आंडाल) की कथा वर्णित है। ये विजय नगर के अत्यंत प्रसिद्ध राजा थे जिनका युग स्वर्ण युग माना गया। इनके दरबार में "अष्टदिग्गज" के नाम विख्यात तेलुगु के आठ प्रसिद्ध कवि थे।

[वे आठ कवि और उनकी रचनाएँ हैं—

अल्लसानि पेद्दना—	मनु चरित्रा
नंदितिम्मना—	पारिजातापहरण
भट्टुमूर्ति—	वसु चरित्र
तेनालि रामकृष्ण—	पांडुरंग माहात्यमु, घटिकाचल माहात्म्यमु उद्भटाराध्य चरित
धूर्जटि—	कालहस्तीश्वर शतकमु, कालहस्तीश्वर माहात्म्य
पिंगलि—	राघवपांडवीय, कलापूर्णोदयमु
अय्यलराजु रामभद्रुडु—	रामाभ्युदयमु
मादयगारि मल्लना—	राजशेखर चरित्रा]
रेवणूरि वेंकटाचार्युडु—	रामचन्द्रोपाख्यान और पादरेणु माहात्म्य।
वेलगपूडि वेंगया—	कृष्ण कर्णामृत का अनुवाद
हरिभट्ट—	वाराह, नारसिंह, मत्स्य पुराण तथा भागवत आदि का अनुवाद
सारंगुतम्मया	विप्रनारायण कथा
रघुनाथ नायक—	तंजाऊर के राजा थे। इन्होंने पारिजातापहरण, गजेन्द्रमोक्ष आदि यक्षगानों के रूप में लिखा।
विजय राघव—	गोपीगीत, भ्रमरगीत आदि खण्ड काव्य
पसुपुलेटि रंगाजम्मा—	संग्रह भारत, भागवत और रामायण, उषा परिणय और मन्नारूदास विलास।

क्षेत्रय्या : "मुव्व गोपाल" छाप से लिखे गये पद। ये पद शृंगार रस से भर पूर्ण हैं। इनका अभिनय और गायन तेलुगु में अत्यन्त प्रचलित हैं।

हिन्दी में विद्यापति के पद और तेलुगु में क्षेत्रय्या के पद राधा-कृष्ण के शृंगार के सम्बन्ध में बिलकुल एक जैसे दिखते हैं।

(छ) **शैव साहित्य :** यों तो तेलुगु साहित्य में आलोच्य युग में वैष्णव भक्ति और साहित्य की ही प्रधानता रही। फिर भी, इस युग में भी शैव भक्ति की रचनाएँ प्राप्त होती हैं। उदाहरणार्थ—

तेनालि रामकृष्ण : उद्भटाराध्य चरित्र

धूर्जटि : श्रीकालहस्ती माहात्म्यमु, कालहस्तीश्वर शतकमु।

इन्होंने काव्य-साधना को एक दिव्य कला विशेष माना। इन्होंने "हरिहर" को अभेद सिद्ध किया।

मल्लारेड्डी : (16 वीं सदी का उत्तरार्ध) शिवधर्मोत्तरमु, षट्चक्रवर्ती चरित्र, पद्म पुराण।

आलोच्य युग तक आते-जाते शैव धर्म के स्थान पर वैष्णव धर्म का प्रचार और प्रसार बढ़ गया। कई राजाओं ने जैसे विजयनगर के राजाओं ने वैष्णव धर्म को अपनाया। प्रजा के भी कृष्ण और राम के प्रति आकृष्ट होने के कारण वैष्णव भक्ति से तेलुगु साहित्य भी भर गया।

(ज) **निर्गुण भक्ति धारा :** हिन्दी के ही समान तेलुगु में भी साहित्य के द्वारा निर्गुण कवियों ने समाज को सही रास्ते पर लाने का भरसक प्रयत्न किया। इस शाखा के प्रसिद्ध कवि हैं—

योगि वेमना : इनकी तुलना हम कबीर से कर सकते हैं। इन्होंने भी मूर्ति पूजा का, जात पांत का, बाह्याडंबरों का अंध-विश्वासों का खण्डन किया। कबीर के ही समान हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों के बाह्याडंबरों की कटु आलोचना की। गुरु की महानता स्वीकारते हुए अपने आपको पहचानने का उपदेश दिया। कबीर के दोहों के ही समान इनके "शतक" के पद्य भी तेलुगु भाषा भाषियों की जिह्वा पर नाचते रहते हैं। वेमना शतक कहलाने पर भी 3–4 हजार तक फुटकर पद आज प्राप्य हैं। समय की मांग के अनुसार समाज-सुधार के लिए वेमना का जन्म हुआ।

पोतुलुरि वीरब्रह्मम् : ये बचपन से ही विरागी और घुमक्कड़ थे। इन्हें सिद्ध पुरुष माना गया। "अचल बोध" के नाम से विख्यात इनका तत्व मार्ग योग के अनुकूल है। "काल ज्ञान तत्व" अनपढ़ भी गा लेते हैं। तुलसी-दास की भाँति इन्होंने भी कलियुग के बारे में भविष्यवाणी की है। कबीर के ही समान इन्होंने भी हिन्दू और मुसलमानों की समन्वय की चेष्टा की। इनके शिष्य हिन्दू, मुसलमान, नाई-चमार, रेड्डी, वेलमा शूद्र आदि सभी जातियों के

थे। इन्होंने भी बाह्याडम्बर और कर्मकाण्ड की निन्दा की है। शुद्ध अन्तःकरण और आत्म संस्कार को आवश्य माना हैं।

1.7.2.4. उर्दू और फारसी : उर्दू साहित्य को बहमनी सुलतानों ने तथा बीजापुर के आदिलशाही बादशाहों ने प्रोत्साहित किया। "वास्तव में तेरहवीं सदी के अन्त तक एक सामान्य भाषा उर्दू का जन्म तथा प्रचार दक्षिण में बहमनी सुलतानों के नेतृत्व में ही संभव हुआ।"[1] कुतुबशाही सुल्तानों में अनेक स्वयं कवि थे। पेर्शिया, मध्य-एशिया प्रदेशों से कई कवि तथा पंडित दक्षिण में आये थे। मालिक इब्राहीम शाह के समय में गोलकुण्डा साहित्य मंदिर बन गया था। मुल्लाखिया और फिरोज उनके दरबारी कवि थे। फारसी के कवि खुर्शा ने "तारीख-एल-जी-निजाम शाह" नामक ग्रंथ लिख कर सुलतान को ही समर्पित किये। इनके अलावा अन्य कवि व उनकी रचनाएँ इस प्रकार हैं—

मीर्जा मुहम्मद अमीन—लैला मजनू
मुमीन—गुलिस्ताने आवाज़
कुली कुतुबशाह—गज़लें, कविताएँ आदि।
गवासी—सैफुल मुल्क नाबुदियल जमाल, तूतीनामा

इसी युग में "खुर्हन इबन् खाटून" नामक फारसी शब्दकोश, तथा "तारीख-ई-मुहम्मद-कुतुबशाही" नामक ऐतिहासिक ग्रंथ भी लिखे गये।[2] दक्खिनी के केवल ये कुछ चुने हुए नाम हैं। तेलुगु साहित्य को भी इन्होंने बहुत प्रोत्साहित किया।

1.7.3. उत्तर एवं दक्षिण भारत के साहित्यक प्रतिस्थितियों की तुलना :

प्रायः हिन्दी और तेलुगु साहित्य का आरम्भ करीब-करीब 1000-1100 या 1200 के आसपास हुआ है। "हिन्दी और तेलुगु के प्रारंभिक काल (ई. 11 वीं और 12 वीं शताब्दियों में) में दोनों ही क्षेत्रों में वीर काव्य के प्रति रुचि थी। पर इस रुचि की साहित्यिक परिणति दो दिशाओं में उन्मुख हुई।

तेलुगु क्षेत्र में महाभारत और हिन्दी क्षेत्र में लौकिक पुरुषों के शौर्य का चित्रण हुआ। इसके पश्चात् ईसा की तेरहवीं शताब्दी में तेलुगु में भक्ति तत्वों से समन्वित वीर शैव धर्म और साहित्य विकसित हुआ जो औद्धत्य और सहिष्णुता

---

1. एन आवुट लाइन हिस्टरी आफ इंडियन प्युपिल—
एच. आर. घोषाल, पृष्ठ 61

2. आंध्रुल चरित्रा—डा. बी. एस. हनुमंतराव के आधार पर।

के कारण परवर्ती शताब्दियों में वैष्णव शक्तियों से पराजित हुआ और आगे अपने सुनिश्चित परम्परा नहीं बना सका। हिन्दी क्षेत्र में इसी समय शैव तत्वों से युक्त नाथ संप्रदाय चला। पर स्वभाव की भिन्नता के कारण आगे की शताब्दियों में यह निर्गुण धारा के रूप में परिणत हुआ। तेलुगु क्षेत्र में ईसा की चौदहवीं शताब्दी में जहाँ शुद्ध वैष्णव भक्ति के बीज का विकास होने लगा, वहाँ हिन्दी क्षेत्र में वैष्णव तत्वों से युक्त योग परक भक्ति का। कहने की आवश्यकता नहीं कि हिन्दी की निर्गुण धारा में भी योग की अपेक्षा वैष्णव भक्ति के तत्व ही प्रबलतर थे। आलोच्च युग में हिन्दी और तेलुगु दोनों ही क्षेत्रों में पूर्व परम्परा के विकसित रूप में अमूल्य वैष्णव साहित्य का प्रणयन हुआ।' [1]

अध्ययन से यह पता चलता है कि तेलुगु क्षेत्र में सगुण भक्ति के पश्चात् निर्गुण भक्ति का विकास हुआ है। "शैव सम्प्रदायों के उद्धत आन्दोलन के बाद दार्शनिक दृष्टि से सगुण से निर्गुण की ओर, सीमित से असीम की ओर, प्रत्यक्ष से अप्रत्यक्ष की दिशा में भक्ति का विकास हुआ है। यह ध्यान देने की बात है कि हिन्दी साहित्य के प्रारम्भ में निर्गुण संप्रदाय के दर्शन होते हैं और दक्षिण में इसके विपरीत परवर्ती काल में।"[2]

उत्तर एवं दक्षिण दोनों ही प्रदेशों में आरंभिक काल में धार्मिक परिस्थितियाँ हलचल पूर्ण थीं। विदेशी मुसलमानों ने निरन्तर आक्रमण कर भारत की प्रजा से अत्यन्त भयंकर व्यवहार किया। वे तलवार के बल पर अपने धर्म के प्रचार के लिए खून की नदियाँ बहाते रहे। अत: स्वदेशी और विदेशी धर्मों के बीच संघर्ष था। अत: इन दोनों के बीच समन्वय स्थापित करने के प्रयत्न आलोच्य युग में हुए। इन्हीं परिस्थितियों के अनुरूप सगुण व निर्गुण के भेद तथा उनके मध्य संघर्ष भी होने लगे। मध्य युग तक आते-आते तुलसीदास जैसे महान् समन्वयकारी कवि ने "अनुगनहिं सगुनहिं नहिं कछु भेदा" कहा। दक्षिण में भी प्रारम्भिक काल में वीर शैव धर्म का बोल-बाला था। इसने जैन-बौद्ध आदि अवैदिक धर्मों का उन्मूलन कर दिया। ब्राह्मणों से लेकर अन्त्जों तक इस ओर एक ही प्रकार से आकृष्ट हुए। किन्तु, समय की गति के साथ शैव धर्म पीछे रह गया और वैष्णव धर्म के प्रति जनता आकृष्ट होने लगी। अत: इन दोनों के मध्य तीव्र वैमनस्य

1. हिन्दी और तेलुगु वैष्णव भक्ति साहित्य—डा. के. रामयाथन्, पृष्ठ 36
2. सूर और पोतना के काव्य में भक्ति तत्व—डा. सी. एच. रामुलु पृष्ठ 92

चल रहे थे। अत: साहित्य के द्वारा महाकवि तिक्कन्ना, स्वामी विद्यारण्य जैसे लोक नायकों ने "हरिहर" की उपासना को बढ़ावा दिया। अर्थात् जहाँ उत्तर भारत में विपरीत धर्मों में संघर्ष हो रहा था तो दक्षिण में विभिन्न संप्रदायों में संघर्ष। अत: जहाँ उत्तर भारत के साहित्य में सगुण-निर्गुण पर वाद-विवाद मिलते हैं, वहाँ दक्षिण भारत के साहित्य में शैव-वैष्णव का संघर्ष। उत्तर भारत के सन्त कवियों ने समाज सुधार का जो भार ग्रहण किया, ठीक वही कार्य दक्षिण में शैव कवियो ने किया। हाँ, भेद एक स्थान पर है, जहाँ संत कवि स्त्री में दूर रहने की चेतावनी देते है, वहाँ शैव कवि स्त्री को भी मोक्ष के लिए योग्य माना।

दोनों ही क्षेत्रों में आलोच्य युग के साहित्य में राम और कृष्ण ही प्रमुख रहे। किन्तु जहाँ उत्तर में राम और कृष्ण की अलग-अलग शाखाएँ हैं, वहाँ आंध्र में पृथक भक्ति संप्रदाय नहीं है। श्री रामानुज के "श्री" संप्रदाय के कारण विष्णु तथा उनके अवतारों से सम्बन्धित स्वतंत्र साहित्य जैसे नरसिंह पुराण वामन पुराण आदि प्राप्त होते हैं। विष्णु, कृष्ण और राम में कोई भेद नहीं माना गया। जहाँ तक राम काव्य का सम्बन्ध है, 'मानस' हिन्दी का ही नहीं वरन् संसार का प्रमुख काव्य है। तेलुगु में "मोल्ल रामायण" को उतनी महानता नहीं प्राप्त होने पर भी, तेलुगु भाषा-भाषी अत्यन्त आदर के साथ पढ़ते हैं। जहाँ हिन्दी के कृष्ण साहित्य में ब्रज के कृष्ण को चित्रित किया गया वहाँ तेलुगु प्रदेश में मथुरा एवं द्वारका के कृष्ण को भी महत्व मिला। अर्थात्‌उत्तर भारत में श्रीमद् भागवत के बालकृष्ण तो दक्षिण (आंध्र) में भागवतके साथ-साथ महाभारत के कृष्ण भी पूजे गये। तेलुगु के पोतना और ताल्लपाक चिनतिरु वेंगलनाथ ने "कृष्ण की ब्रज लीलाओं को भी तन्मयता के साथ हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों के समान वर्णन करके तेलुगु साहित्य की श्रीवृद्धि की।"[1]

उत्तर भारत में शासक और प्रजा में धर्म के भेद के कारण वहाँ के कवियों ने राजाश्रय से मुक्त होकर स्वतंत्र रूप से भक्ति रचनाएँ कीं। इसमें स्वान्त: सुखाय तथा परजन हिताय की भावना रही थी। केवल केशवदास और विद्यापति इसके अपवाद हैं। शायद राजाश्रय के कारण ही इनके काव्यों में भक्ति के साथ श्रृंगार का पुट अधिक गोचर होता है। किन्तु तेलुगु में दो स्वतंत्र धाराएँ पल्लवित हुईं। एक राजाश्रय प्राप्त तथा दूसरी स्वतंत्र। यहाँ

---

1. हिन्दी और तेलुगु वैष्णव भक्ति साहित्य—के. रामनाथन्, पृष्ठ 33

के राजा, पंडित और प्रजा—सभी हिन्दू धर्मावलम्बी थे और उन्होंने वर्णाश्रम धर्म के पुनपुद्धार की दीक्षा ली थी। पोतना जैसे कवि ने जहाँ राजाश्रय को ठुकरा दिया था, वहाँ अन्नमाचार्य आदि ताल्लपाक के कवियों ने राजादर भी प्राप्त किया और विजयनगर साम्राज्य के निर्माण में भाग भी लिया। किन्तु उन्होंने भी खुलकर कहा—"यह सब (सपत्ति) देने वाले हरि हैं। ये राजा लोग कौन है ?" इतना ही नहीं उन्होंने मनुष्यों और राजाओं की प्रशंसा में काव्य लिखने से साफ इंकार कर दिया।

शायद इसी राजाश्रय के कारण जहाँ तेलुगु में प्रबन्ध काव्यों की रचना अधिकतर हुई, वहाँ हिन्दी के क्षेत्र में भक्त कवियों ने मुक्तकों को अधिक ग्रहण किया। कुछ रामकाव्य तथा सूफी प्रेम काव्य ही प्रबन्ध शैली में लिखे गये। हिन्दी और तेलुगु—दोनों भाषाओं के साहित्य का प्रभाव संगीत और नृत्य पर भी पड़ा। तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक तथा अन्य परिस्थितियों का विस्तृत विवरण भी इस साहित्य में हुआ। उदाहरण के लिए तुलसी, कबीर, तथा ताल्लपाक के कवियों को ले सकते हैं।

हिन्दी के क्षेत्र में गद्य का अभाव है, किन्तु तेलुगु में गद्य तथा चम्पू का भी सफलता पूर्वक प्रयोग किया गया। जहाँ हिन्दी में राधा-कृष्ण नायक नायिका हैं तो तेलुगु में कृष्ण के साथ वेंकटेश्वर, रुक्मिणी पद्मावती, सत्यभामा और जांबवती आदि चरित्रों का चित्रण हुआ।

उत्तर व दक्षिण—दोनों प्रदेशों में अकबर, शेरशाह, जहाँगीर तथा श्रीकृष्णदेव राय, रेड्डी राजा आदि प्रसिद्ध राजाओं ने साहित्य के साथ अन्य कलाओं को भी प्रोत्साहित किया। अकबर के दरबार में 'नवरत्न' थे तो कृष्णदेवराय के दरबार में 'अष्ट दिग्गज'।

दोनों ही प्रदेशों में, जैसे हिन्दी में मीरा, तेलुगु में मोल्ला, रंगाजम्मा ताल्लपाक तिम्मक्का आदि कई कवयित्रियाँ हुई।

दोनों प्रदेशों में इस्लाम धर्म के प्रभाव के कारण संस्कृत और प्रादेशिक भाषाओं के साथ-साथ उर्दू, अरबी और फारसी में भी साहित्य लिखा गया।

दोनों ही क्षेत्रों में भक्ति की निर्मल धारा कालान्तर में शृंगार धारा में परिणत हुई। हिन्दी में "रीतिकाल" और तेलुगु में "दक्षिणांध्र वाङ्मय" नाम से यह काल प्रसिद्ध है।

द्वितीय अध्याय

अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों की जीवनी और व्यक्तित्व

"नाहिन रह्यो मन में ठौर।"
(अकबर से) "जो आजु पाछें हमको कबहूँ
फेरि मत बुलाइयो और मोसों कबहूँ मिलियो मत।" (सूरदास)

× × ×

"भक्तन को कहा सीकरी सों काम।" (कुंम्भनदास)

× × ×

"मेरी जिह्वा जो केवल भगवान की लीलाओं का ही गान करती है, वह साधारण लौकिक शृंगार का गान कैसे कर सकती है ? यह मस्तक केवल भगवान के सामने ही झुक सकता है। मनुष्यों के सामने नहीं।" (अन्नमाचार्य)

* * *

अष्टछाप : जीवनी

2.1. प्रस्तावना :

"अष्टछाप वल्लभ संप्रदाय का ही साहित्यिक रूप है।" "अष्टछाप हिन्दी की अष्टधातु की मुद्रा है, जिसकी अमिट छाप हिन्दी भाषा और साहित्य पर बहुत गहरी है।" "यह अष्टछाप की ही विशेषता है कि मध्यकाल के विद्वेष, घृणा और पारस्परिक वैमनस्य के जलते वातावरण में उसने धर्म, दर्शन, भक्ति, काव्य और संगीत आदि कलाओं की ऐसी विमल, मधुर, स्रोतस्विनी बहाई, जिससे सहृदय आज तक रस सिक्त और आनन्द मग्न होते आये हैं। यह अष्टछाप ही है जिनकी प्रेरणा से समस्त भारतीय जीवन कृष्ण भक्ति के रंग में रंगा गया, चारों ओर मंदिरों में कृष्ण संकीर्तन की पवित्र, मधुर और संगीतमय ध्वनि गूँज उठी।"[1]

वल्लभ सम्प्रदाय को सम्पूर्ण व्यवस्था दे कर उसे व्यवस्थित करने के लिए गोसाई विट्ठलनाथ जी ने अष्टछाप की स्थापना की। वल्लभ जी द्वारा प्रवर्तित पुष्टिमार्ग में सूरदास, परमानन्ददास जैसे विशिष्ट भक्त और गवैयै दीक्षा ले कर उनके समय में भी संकीर्तन सेवा करते रहे। बाद में आचार्य विट्ठलनाथ जी ने अपने पिता जी के शिष्यों में से चार विशिष्ट कवि-गायकों को

1. अष्टछाप और परमानन्ददास : डा. कृष्णदेव झारी—पृष्ठ 37

और अपने चार प्रिय शिष्यों को ले कर "अष्टछाप" की स्थापना की। इस प्रकार से सूरदास, परमानन्ददास, कुम्भनदास और कृष्णदास—वल्लभाचार्य जी के शिष्य तथा गोविन्दस्वामी, छीतस्वामी, चतुर्भुजदास और नन्ददास—विठ्ठलनाथ जी के प्रिय शिष्य मिल कर "अष्टछाप" के अन्तर्गत समाहित हुए। "अष्टछाप के प्राय: सभी कवि अपनी अनन्यता और तन्मयता के लिए प्रसिद्ध हैं। ये अच्छे गायक थे और ब्रजभाषा पर पूर्ण अधिकार रखते थे। ये लोग हृदय की अनुभूति से प्रेरित हो अपने भावों को संगीतमयी भाषा में अभिव्यंजित करते थे। इनकी रचनायें स्वांत : सुखाय होती थीं।"[1]

2.1.1. स्थापना काल : इस विषय पर विद्वानों में मतभेद है, जिन्हें हम नीचे प्रस्तुत कर रहे हैं—

1. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय नामक अपने विशेष ग्रंथ में श्री दीनदयाल गुप्त जी ने विषय में कुछ विचार नहीं किया।

2. श्री कण्ठमणि शास्त्री अष्टछाप की स्थापना संवत् 1598 में मानते हैं।

3. श्री द्वारकाप्रसाद पारीख तथा प्रभुदयाल मीतल जी सं. 1602 मानते हैं।

4. श्रीकृष्ण देव झारी विभिन्न, विषयों को तर्क सहित प्रस्तुत करते हुए अष्टछाप का स्थापना काल सं. 1616 के आसपास ही संभव मानते हैं।[2]

पुष्टिमार्ग संप्रदाय में इन आठों कवियों को श्रीनाथ जी के अन्तरंग सखा माने जाते हैं। "यदि वल्लभ संप्रदाय के अष्टछापी कवियों ने वन लीलाओं के संपादन, आस्वादन और गायन के लिए अपने को "सखा" रूप में भावित किया तो नित्य निकुंज लीलाओं के संदर्भ में प्रवेश के लिए अपने व्यक्तित्व को सखी के व्यक्तित्व में परिणत भी करना पड़ा।"[3]

आष्टछाप के कवियों का सखा और सखी रूप निम्न प्रकार से वल्लभ संप्रदाय में मान्य हैं।[4]

---

1. हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास—बाबू गुलाबराय—पृष्ठ 67
2. विस्तार के लिए देखिए अष्टछाप और परमानन्ददास—
   कृष्णदेव झारी—पृष्ठ 38
3. कृष्णभक्ति साहित्य : वस्तु स्रोत और संरचना—
   डा. चन्द्रभान रावत—पृष्ठ 139
4. अष्टछाप की वार्ता—सं. कण्ठमणि शास्त्री तथा ब्रजस्थ बल्लभ संप्रदाय का इतिहास—प्रभुदयाल मीतल के आधार पर।

कवि	सखा व	सखी का रूप
1. सूरदास	कृष्ण सखा	चम्पक लता सखी
2. परमानन्ददास	तोक सखा	चन्द्रभागा सखी
3. कुम्भनदास	अर्जुन सखा	विशाखा सखी
4. कृष्णदास	ऋषभ सखा	ललिता सखी
5. चतुर्भुजदास	विशाल सखा	विमला सखी
6. नन्ददास	भोज सखा	चन्द्ररेखा सखी
7. छीत स्वामी	सुवल सखा	पद्मा सखी
8. गोविन्द स्वामी	सुदामा सखा	भामा सखी

अष्टछाप के कवियों में सबसे ज्येष्ठ कुम्भनदास जी थे तो सबसे कनिष्ठ नन्ददास। "काव्य सौष्ठव की दृष्टि से इनमें सर्वप्रथम स्थान सूरदास का है तथा द्वितीय स्थान नन्ददास का। पद रचना की दृष्टि से परमानन्ददास का है। गोविन्द स्वामी संगीत मर्मज्ञ थे। कृष्णदास अधिकारी का साहित्यिक दृष्टि से कोई महत्व नहीं है, पर ऐतिहासिक महत्व अवश्य है।······अष्टछाप के शेष कवियों की प्रतिभा साधारण कोटि की है।"[1]

इन आठों कवियों का जीवन परिचय दिया जा रहा है जो अष्टछाप की वार्ता के आधार पर प्रस्तुत किया गया है।

2.1.2. सूरदास :

"उक्ति, योग, अनुप्रास, वरन् अस्थिति अतिभारी
वचन, प्रीति-निर्वाह, अर्थ अद्भुत तुकधारी ।।
प्रतिबिम्बित दिवि दृष्टि हृदय हरि-लीला भासी।
जनम-करम, गुन-रूप सबै रसना जु प्रकासी ।।
विमल बुद्धि गुन और की जो वह गुन स्रवननि धरै।
सूर-कवि सुनि कौन कवि, जो नहिं सिर चालन करै ।।

—नाभादास जी

अष्टछाप के या वल्लभ संप्रदाय के अथवा सगुण भक्ति के ही नहीं, वरन् संपूर्ण हिन्दी साहित्याकाश में जगमगाने वाले सूर्य हैं महाकवि "सूरदास।" जब हम कृष्ण का नाम लेते हैं तो साथ ही सूर के विलक्षण पद भी स्मरण आ जाते हैं। लगभग चार सदियों के बाद आज भी उनके पद हमें आनन्द सागर में डुबा देते हैं। सूरदास जी का जन्म संवत् 1535 (अष्टछाप वार्ता के अनुसार) में हुआ था।

---

1. हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ—डा. शिवकुमार शर्मा—पृष्ठ 284

वे दिल्ली के निकट सीही ग्राम के निवासी थे और जन्म से ही अंधे थे। इन्हें घर में प्रेम नहीं मिला था और वे बचपन से ही घर छोड़ कर चले गये थे। वे गृह त्याग कर सीही से चार कोस पर स्थित एक गाँव में पेड़ के नीचे तालाब के किनारे रहने लगे। "एक पीपल के पेड़ के नीचे तालाब के किनारे। वैराग्य भावना की अस्फुट छाया उनके मुख पर। छोटी अवस्था। इन सबका एक आकर्षण। सूर को एक बाल योगी की सी स्थिति प्राप्त हुई।"[1] वहाँ पर रहते हुए सूरदास ने गायन कला में भी कुशलता प्राप्त कर ली। वे अपने सेवकों की मण्डली में विरह के पदों का गायन किया करते थे। इस प्रकार वे अठारह वर्ष की अवस्था तक यहीं रहे।[2]

वहाँ उनकी महिमाओं की चारों ओर प्रशंसा होने लगी। धन भी मिलने लगा। इस माया जाल से बचने के लिए सूरदास आगरा और मथुरा के मध्य यमुना किनारे गऊ घाट पर निवास बना कर सुन्दर पद गाते थे। कुछ दिनों पश्चात् महाप्रभु वल्लभाचार्य जी वहाँ पधारे। सूरदास जी उनसे मिलने गये। वल्लभ जी की आज्ञा पर सूरदास जी ने अत्यन्त दीनता से "ही हरि सब पतितन को नायक।" और

"प्रभु हों सब पतितन को टीको" पद सुनाये थे।

अष्टाक्षरी मंत्र से दीक्षा दे कर वल्लभ जी ने सूरदास को अपनी शरणागति में ले लिया है।[3] "पहले पहल आचार्य जी ने सूर को श्रीमद्भागवत की स्वयं लिखी सुबोधिनी टीका का बोध कराया। इसके अनन्तर सूरदास जी ने श्री वल्लभाचार्य जी से सम्प्रदाय का रहस्य समझा और उन्होंने वल्लभ संप्रदाय के सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुए भागवत के अनुसार हज़ारों पद बनाये।[4]"

वल्लभाचार्य जी की शरण में आने के पश्चात् वे उन्हीं के साथ गोवर्धन गये। आचार्य जी ने उनको मंदिर की संकीर्तन सेवा कार्य सौंपा। इससे "दिक्भ्रान्त व्यक्तित्व को सुनिश्चित भाव-दिशा मिली। काव्य को विषय मिला। अस्त-व्यस्त संगीत वीणा को अछूते अज्ञात स्वर मिले। सूर का समग्र व्यक्तित्व हीनता के भार से मुक्त हो कर आभार-नत हो

---

1. सूर साहित्य : नव मूल्यांकन—डा. चन्द्रभान रावत—पृष्ठ 40–41
2. सूरदास और वामन पंडित—डा. सुशीला व्यापारी—पृष्ठ 51
3. विस्तार के लिए अष्टछाप वार्ता—कंठमणि शास्त्री
4. हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास—पंचम भाग—पृष्ठ 56

गया ।"[1] वे पहले केवल विनय के पद गाते थे । बाद में लीला के पद गाने लगे ।

एक बार तानसेन के द्वारा सूरदास के पद सुन कर बादशाह अकबर ने सूर को बुला भेजा और उन्हें भी कुछ सुनाने को कहा तो सूर ने "मन रे माधव सौं कर प्रीति" (जो पूरा पद सूर पच्चीसी के नाम से विख्यात है) गा कर सुनाया । तब अकबर ने मन में सोचा कि इनकी परीक्षा लेनी चाहिए और कहा कि आप मेरे यश का गान कीजिए । और मैं आपको मुँह माँगा देने के लिए तैयार हूँ । सूर ने "नाहिन रह्यो मन में ठौर......' सूर" ऐसे दरशकों, ये मरत लोचन प्यास" गा कर सुनाये । अकबर समझ गये कि इनके अन्त: चक्षु प्रभु के पास हैं तो भौतिक वस्तुओं के लिए इन्हें क्या लालच ! यद्यपि शाहंशाह ने कुछ ग्राम और धन भेंट किया था फिर भी उन सबको ठुकरा कर सूर ने एक ही बात कही—"जो आज पाछै हमको कबहूं फैर मत बुलाइयो, और मोंसों मिलियो मत ।" [2] इसके बाद अकबर ने सूरदास जी के कई पद संकलित किये और उन्हें फारसी में भी लिखवाया ।[3] सूरदास जी गोकुल में संकीर्तन सेवा में अपने दिन बिताने लगे ।

"अष्टछाप कवियों में सूर सबसे अधिक सिद्ध भक्त थे । उनके सत्संग की कामना बहुत से सज्जन करते थे । वे केवल आत्मानुभूति में मग्न रहने वाले भक्त न थे, अपितु वे अपने निकटवर्ती लोगों के प्रबोधन में भी अपना समय व्यतीत करते थे । वे एक त्यागी, विरक्त और प्रेमी भक्त थे । ज्ञानोपदेश के जो भाव उन्होंने अपनी रचनाओं में प्रकट किये हैं, उनका उन्होंने अपने जीवन में अनुभव कर लिया था । वल्लभाचार्य के मार्ग के सिद्धान्तों के वे पूर्ण ज्ञाता थे ।"[4] उन्होंने सवा लाख पदों की रचना पूरी की थी ।

उनके अन्त समय में विठ्ठलनाथ जी, रामदास, कुंभनदास, गोविन्द स्वामी चतुर्भुजदास आदि वैष्णव उपस्थित थे । विठ्ठलनाथ जी ने कहा था—"पुष्टिमार्ग को जहाज जात है, कछु लेनी होइ सो लेउ ।"[5] अपने अंतिम समय में चतुर्भुज दास की मांग पर उन्होंने आचार्य जी के प्रति यह पद गाया था—

---

1. सूर साहित्य : नव मूल्याकन—डा. चन्द्रभान रावत, पृष्ठ 46
2. सूरदास की वार्ता—प्रभुदयाल मीतल—पृष्ठ 31
3. विस्तार के लिए सूरदास की वार्ता—पृष्ठ 33
4. हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास—पंचम भाग—पृष्ठ 57
5. अष्टछाप की वार्ता—कण्ठमणि शास्त्री—पृष्ठ 102

भरोसो दृढ़ इन चरनन कैरौ ।
श्री वल्लभ-नख-चंद-छटा बिनु, सब जग मांझ अंधेरौ ।[1]
सदा के लिए यह ब्रज कोयल मौन हो गया ।

"इसमें सूर की गुरु निष्ठा प्रकट होती है । सूर के लिए वल्लभाचार्य जी एक प्रकाश स्तम्भ थे जिससे "द्विविध आंधरौ" व्यक्तित्व, हीनता ग्रस्त चेतना 'सागर' बन सका ।"[2]

इनकी मृत्यु संवत् वि. 1640[3] माना गया है । इनकी दीर्घ आयु लगभग पूरे सौ साल या 105 । उनकी जीवनी का आधार अन्त: साक्ष्यों से अधिक बाह्य साक्ष्यों पर ही निर्भर है ।

पुष्टि मार्ग में भगवान की तीन विधि से सेवा बतायी गयी है । तनजा, वित्तजा और मनसा । इनमें मानसी सेवा सर्वश्रेष्ठ बतायी गयी है । सूरदास जी इसी मानसी सेवा के अधिकारी सिद्ध भक्त थे । हीनता, नम्रता की तो वे साक्षात् प्रतिमूर्ति ही थे ।[4]

2.1.3. परमानन्ददास :

"ब्रज-लीलामृत-रसिक, रूचिर पद-रचना-नेमी ।
गिरिधारन श्रीनाथ-सखा, बल्लभ-पद-प्रेमी ।।
ब्रज-रस मधुकर मत्त, भक्त, भावुकता-भूषन ।
कविता रस-संबलित, नाहिं जामें कछु दूषन ।
नित रहत प्रेम में रंगमगी, ब्रजबल्लभ के पास ।
सुचि अष्टछाप को भक्त कवि, श्री परमानन्ददास ।
—वियोगी हरि

सं. 1550 में इनका जन्म माना गया है । "अष्टछाप की वार्ता" के अनुसार परमानन्ददास, "सो ये कनौज में कनौजिया ब्राह्मण के यहाँ जनमें । जा दिन परमानन्ददास जी जन्मे, वा दिन उनके पिता को एक सेठ ने बोहोत द्रव्य दान दियो । तब वा ब्राह्मण ने बहुत प्रसन्न होके कह्यो जी—श्रीठाकुर जी ने मोको पुत्र दिये और धनहू बहुत दियो । तासों यह पुत्र बड़ो भाग्यवान है, जाके जन्मत ही मोको परम आनन्द भयो । सो मैं या पुत्र को नाम "परमानन्ददास"

1. अष्टछापी वार्ता और सूरदास की वार्ता के आधार पर
2. सूर साहित्य : नव मूल्यांकन—चन्द्रभान रावत पृष्ठ 54
3. वही—पृष्ठ 53
4. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास—पंचम भाग—पृष्ठ 57

ही धरूँगो ।"[1] वार्ता के अनुसार परमानन्ददास सांसारिक विषयों से और धन संचय से विमुख थे और अपने लालची माता-पिता को भी धन के प्रति मोह छोड़ देने का उपदेश दिया था ।[2] यद्यपि उनके पिता अच्छी आजीविका के लिए पूरब व दक्षिण गये थे, किन्तु परमानन्ददास जी कन्नौज में ही रह गये थे । वे अपने घर में ही कीर्तन-भजन करते थे और गान विद्या में निपुण थे । एक बार वे तीर्थ स्नान के लिए प्रयाग गये और कीर्तनिया के के रूप में उनकी प्रशंसा वल्लभजी (जो उस समय प्रयाग के पास "अडैल" में थे), तक पहुँची । वल्लभ जी से भेंट होने पर परमानन्दजी उनसे बहुत प्रभावित हुए । वल्लभ जी ने जब उन्हें गाने के लिए कहा तो उन्होंने कृष्ण विरह का गीत गा कर सुनाया—

"जिय की साध जिय ही रही री
बहुरि गुपाल देखन नाहिं पाये बिलपति कुंज अहीरी ।"

जब प्रभु ने बाललीला का पद गाने को कहा तो उन्होंने अपनी असमर्थता प्रकट की । उसी समय अडैल में ही उन्होंने संवत् 1576 में शरण और दीक्षा ली ।

केवल कुछ समय के लिए अडैल में "नवनीत प्रिया जी को नित नये पद करि के" सुनाते रहे । और बाद में आचार्य जी के साथ ब्रज मंडल चले गये । अपना शेष जीवन कृष्ण के कीर्तन–सेवा में ही बिता दिया । ब्रज के सुरभी कुण्ड पर एक दिन "युगल लीला में मन लगाय के परमानन्ददास देह छोड़िके श्री गोवर्धन नाथ जी की लीला में जाय प्राप्त भये ।"[3] उनके गोलोकवास का समय विद्वान् 1640—41 के आसपास मानते हैं ।[4]

"पदमानन्ददास कला प्रेमी और कलाकार दोनों थे । उनको गान और कविता से प्रेम था और इन विद्याओं में वे निपुण भी थे । इन शक्तियों का प्रयोग उन्होंने लौकिक विषयों में न कर भगवान के यशोगान में किया । उन्हें भक्त हृदय प्राप्त था । वे अपने को भगवान के दासों का भी दास समझते थे । उनके सखा भाव के पदों में कहीं भी गोविन्द स्वामी की सी विश्रृंखलता नहीं है । वे शिष्ट, भद्र स्वभाव के, विनम्र, उदार प्राणी थे । कुल मिला कर परमानन्ददास बाल भाव, कांताभाव और दास भाव के भक्त थे और इन्हीं

1. सं. कण्ठमणि शास्त्री, पृष्ठ 110
2. वही—पृष्ठ 112
3. अष्टछाप की वार्ता—सं. कण्ठमणि शास्त्री—पृष्ठ 197
4. विस्तार के लिए देखिए—अष्टछाप और परमानन्ददास—डा. कृष्णदेव झारी

भावों के अनुसार उन्होंने अधिक संख्या में पद बना कर गाये। कुछ सख्य और सखी भाव परक भक्ति के पदों का भी उन्होंने गान किया था।"[1]

2.1.4 कुंभनदास :

श्री गोवर्धन-धरन-सुहृद, प्रेमामृत सागर।
श्री वल्लभ-पद-मधुर पद-रचना आगर॥
लोक और परलोक-रीति तिनका ज्यों तोरी।
सम्राट हुँ दै पीठि, दीठि गोविंद सौं जोरी॥
श्री गिरिधर अष्टसखान" में, थप्यो नाम है जास।
मनु मूर्तिवंत रस-कुंभ सौ पूरन कुंभन दास॥" —वियोगी हरि

महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के प्रथम शिष्य कुम्भनदास जी ही बने थे। इनकी जीवनी के बारे में कहीं कुछ उल्लेख नहीं मिलता है। भाव प्रकाश, चौरासी वैष्णवन की वार्ता और अष्टछाप की वार्ताओं में केवल यह उल्लेख है कि वे गोवर्धन पर्वत के पास ही "जमुनावतो" नामक गाँव के वासी थे। इनके माता-पिता या अन्य परिवार के बारे में कुछ उल्लेख, न ही नाम आदि के विवरण मिलते हैं। वार्ताओं से केवल इतना मिलता है कि उन्हें छुटपन से ही गृहस्थी में रुचि नहीं थी। आप अपने बाप दादाओं के खेत में (परासौली चन्द सरोवर में) खेती करते थे। इनके चाचा के प्रभाव से ये भी भगवद् भक्ति में आये थे।

"कुंभनदास की रचनाओं से ज्ञात होता है कि ये अधिक विद्वान न थे। चौरासी वार्ता में लिखा है कि वल्लभ सम्प्रदाय में आने से पहले ये कीर्तन अच्छा गाते थे। इसीलिए वल्लभाचार्य जी ने इन्हें श्रीनाथ जी के मंदिर में कीर्तन की सेवा दी थी। संप्रदाय में आने के बाद उन्होंने वल्लभाचार्य जी के उपदेशों को बड़ी एकाग्रता के साथ ग्रहण किया। उन्होंने आचार्य जी के सिद्धान्तों की जानकारी प्राप्त कर केवल अपना पांडित्य ही नहीं बढ़ाया, वरन् उन सिद्धान्तों को कार्यरूप में ला कर अपने को भगवान का उच्चकोटि का भक्त और सेवक भी बनाया था।"[2] इन्होंने केवल फुटकर पद ही रचे जिनमें कुछ गुरु वल्लभजी की प्रशंसा से सम्बन्धित और कुछ विट्ठलनाथ जी की प्रशंसा में हैं। अपने बारे में या परिवार के बारे में कुछ नहीं लिखा है।

1. हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास-पंचम भाग—सं. डा. दीनदयाल, गुप्त पृष्ठ 79
2. वही—पृष्ठ

उनके पद देश भर में प्रसिद्ध हुए थे। यह बात बादशाह अकबर तक पहुँची थी और कुंभनदास जी को लाने के लिए सवारी भेजी गयी किन्तु वे नंगे पांव ही आये थे। दरबार में अकबर ने जब उच्च आसन दिखाया तो इन्होंने इंकार कर यह पद गाया था—"भक्तन को कहा सीकरी सौं काम।" जब बादशाह अकबर ने कुछ माँगने के लिए कहा तो भगवान के इस सच्चे भक्त ने कहा था कि आज के बाद दुबारा मुझे बुला कर कष्ट नहीं देना। अकबर समझ गये कि यह फकीर को धन आदि का लालच नहीं है और शर्मिन्दा होकर विदा कर दिया। कुम्भनदास जी को गोवर्धनधारी के ये दो दिन विरह में मानों दो युग जैसे लगे।[1] "इस घटना से कुम्भनदास की दृढ़ भक्ति, ईश्वर में पूर्ण विश्वास, लौकिक आश्रय के त्याग, हृदय की निर्भीकता तथा निस्पृहता का परिचय मिलता है।"[2]

राजा मानसिंह की भी उनसे भेंट हुई थी। कुम्भनदास जी ने उनके भेंटों को भी तिरस्कार कर दिया। राजा मानसिंह ने उनको प्रणाम करते हुए सराहना की।[3]

माना जाता है कि इन्हें दीर्घ आयु मिली थी और इनका निधन करीब करीब 1638 या 1939 वि. में हुआ। इन्होंने राधा-कृष्ण के युगल रूप का शृंगार वर्णन किया था।

2.1.5 कृष्णदास :

इनके बारे में भी अंत: साक्ष्यों से कुछ प्राप्त नहीं होता है। गुजरात के चिलतौरा गांव में इनका जन्म संवत् 1553 में माना गया है। छुटपन से इन्हें वैराग्य की प्रवृत्ति थी। किशोरावस्था में ही घर छोड़ कर भ्रमण करते हुए मथुरा आ पहुँचे। इन्होंने ब्रज में गोवर्धन पर्वत पर श्रीनाथ जी को देख कर अपने आपको धन्य मान लिया। इसी समय श्री वल्लभाचार्य जी ने उन्हें शिक्षा दी थी।[4]

दीक्षा के पश्चात् वल्लभाचार्य जी इन्हें श्रीनाथ जी के मंदिर का

---

1. अष्टछाप की वार्ता—कण्ठमणि शास्त्री—के आधार पर
2. हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास—पंचम भाग—पृष्ठ 76
3. विस्तार के लिए देखिए—अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय
—डा. दीनदयाल गुप्त
4. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय—दीनदयाल गुप्त तथा अष्टछाप की वार्ता—सं. कण्ठमणि शास्त्री के आधार पर

अधिकार सौंप दिया था। शायद वे उस समय गान विद्या और काव्य रचना में प्रवीण न थे इस कारण आचार्य जी ने उन्हें कीर्तन का कार्य नहीं सौंपा था। वे श्रीनाथ जी की तनजा सेवा अधिक करते थे। "श्रीनाथ जी के मंदिरों मंदिरों में ऐश्वर्य वैभव की वृद्धि का कृष्णदास ने विशेष प्रयास किया। इन्होंने वल्लभाचार्य के साथ अनेक स्थानों का भ्रमण किया। धनिकों से श्रीनाथ जी के लिए भेंट एकत्र करने का काम इन्हीं के सुपुर्द था। वल्लभाचार्य जी की मृत्यु के पश्चात् ये ही विशेष अधिकारी बन गये थे।"[1] इन्होंने भगवान को राजसी ठाट प्रदान किया था। कृष्ण भक्तों में साम्प्रदायिकता, लीलाओं में आध्यात्मिकता के स्थान पर एहलौकिकता, श्रीनाथ के मंदिर में विलास प्रधान ऐश्वर्य, कृष्ण भक्ति साहित्य में नख शिख तथा नायिका भेद के वर्णन का बहुत कुछ दायित्व इन्हीं पर है।[2]

श्रीनाथ जी के मंदिर के हिसाब-किताब में गुजराती भाषा में रखते थे। इस कारण यह माना जा सकता है कि इनकी आरंभिक शिक्षा गुजरात में ही हुई होगी। लौकिक शिक्षा भी इन्होंने साधु संगति के कारण प्राप्त की होगी। वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षा के पश्चात् इन्होंने बड़ी योग्यता पा ली थी। "ब्रजभाषा के ये इतने बड़े पंडित हो गये कि भक्त नाभादास ने इनकी ब्रजभाषा कविता को निर्दोष और पंडितों द्वारा आदृत लिखा है।"...कृष्ण की कुंजलीला के इनके पद भाव और भाषा दोनों दृष्टियों से उत्कृष्ट हैं। कृष्णदास के काव्य की सराहना गोस्वामी श्री विट्ठलनाथ जी स्वयं अपने मुख से किया करते थे।[3] यद्यपि इनकी कई रचनाओं का उल्लेख विद्वानों द्वारा किया गया है, परन्तु इनकी प्रामाणिक रचना केवल कीर्तन रूप में पाये जाने वाले पद संग्रह ही माने जाते हैं। इनके अनेक पदों में संयोग श्रृंगार के संभोग पक्ष का वर्णन मिलता है क्योंकि उनमें ही उनकी अधिक रुचि थी। इनका गोलोकवास लगभग सं. 1635 में हुआ।

2.1.6 चतुर्भुजदास :

श्री कुंभनदास जी के पुत्र चतुर्भुजदास जी कुंभनदास जी के पांच पुत्रों में से एक थे। इनका जन्म जमुनावतों में हुआ। इनके अन्य भाई लौकिक व्यवहार में व्यस्त रहते थे, किन्तु इन्हें कुछ लौकिक आसक्ति नहीं थी। ये हमेशा

---

1. अष्टछाप और परमानन्ददास—कृष्णदेव झारी, पृष्ठ 46
2. हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ—डा. शिवकुमार शर्मा, पृष्ठ 284
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास—पंचम भाग, पृष्ठ 87

कीर्तन सेवा में लगे रहते थे। इनसे गुसाईं जी और स्वयं पिता कुम्भनदास जी, दोनों बहुत प्रसन्न रहते थे क्योंकि, "मोको जैसो मनोरथ हु तो तैसे ई वैष्णव भयो।"[1] अन्य भाई इनसे तथा पिता कुम्भनदास से अलग रहते थे।

अष्टछाप की वार्ता से यह ज्ञात होता है कि चतुर्भुजदास पर श्रीनाथ जी की अपार कृपा थी। जिस दिन से उनका नामकरण हुआ था, उसी दिन से श्री नाथ जी के दर्शन के बिना चतुर्भुजदास जी दूध पान न करते। इस प्रकार पाँच बरस बीत गये और "एक दिन श्री नाथजी ने चतुर्भुजदास को आज्ञा दीनी जो (चतुर्भुजदास) तू मेरे संग गाई चराबन को चलियो।"[2] एक घटना यह भी वर्णित है कि एक दिन श्रीनाथजी चतुर्भुजदास को लेकर एक ब्रजवासी के घर दूध, दही, मक्खन आदि की चोरी के लिए गये थे। अपने सखाओं के साथ इन सभी को श्री नाथजी ने दही माखन खिलाया था, किन्तु और सखा किसी को दिखाई दिये थे वहाँ बैठे चतुर्भुजदास को देखकर ब्रजवासियों ने इन्हें खूब पीटे। बाद में मंदिर में आकर इन्होंने श्री नाथजी से पूछा—"महाराज दूध दही माखन तो साखन सहित आप आरोगे, और मार मोको खवाई ?" तब श्री गोवर्द्धन नाथजी ने चत्रभुजदास सो कह्यो-तैंने हू दूध दही माखन क्यों न खायो ? और जहाँ मैं भाज्यो और सब सखा भाजे तहाँ तु हु क्यों न भाज्यो ? तू क्यों मार खाइ रह्यो ? तब चतुर्भुजदास सुनिके चुप होइ रहे। सो वे चत्रभुजदास श्रीनाथजी के और श्री गुसांईजी के ऐसे कृपा पात्र भगवनीय हैं।[3] इस प्रकार कई घटनाओं का वर्णन है। गृहस्थी में रहकर भी उससे कुछ मोह नहीं था।

"चतुर्भुजदास को शिक्षा उनके पिता कुम्भनदास तथा गोस्वामी विट्ठलनाथ जी की देखरेख में हुई। गान विद्या इन्होंने अपने पिता से सीखी थी। काव्य रचना भी इनकी पिता की ही देन थी। कुम्भनदास जी इनके बाल्यकाल में ही इनको कृष्ण लीलाओं का रहस्य समझाया करते थे।[4] श्रीनाथ जी के मन्दिर में ये कीर्तन गाते थे। कृष्ण की बाल लीला, विरह और विनय से इनके पद भरे हैं। ये विट्ठलनाथ जी के निधन की बात सुनकर अत्यन्त दुःखी होने लगे और जब मन में उनका दर्शन हुआ तो विनती की—"अब

---

1. अष्टछाप की वार्ता—प्रो. कण्ठमणि शास्त्री, पृष्ठ 467
2. वही—पृष्ठ 469
3. अष्टछाप की वार्ता—प्रो. कण्ठमणि शास्त्री—पृष्ठ 474
4. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास : पंचभाग पृष्ठ 100

मोको इहाँ मति राखो और आप तो अंतरजामी हो, आप बिना इहाँ कौन को देखें।"[1] 'श्री विट्ठलेश प्रभु भर न होइ हैं' पद गाकर उन्होंने भी अपनी देह छोड़ दी। विद्वान यह समय संवत् 1682 मानते हैं।

2.1.7 नंददास :

> "लीला-पद-रस-रति-ग्रन्थ-रचना में नागर।
> सरस उक्ति-युत-युक्ति, भक्त-रह गान-उजागर।।
> प्रचुरथ पथ लौं सुजसु राम पुर ग्राम-निवासी।
> सकल सुकल-सम्बलित भक्त-पद-रेनु-उपासी।।
> चंद्रहास-अग्रज-सुहृद, परम प्रेम-पथ में पगे।
> नंददास आनंदनिधि, रसिक सुप्रभु-हित-संग मगे।।"
>
> —नाभादासजी

नंददास की जीवनी के सम्बन्ध में कई शोध किये गये हैं। इनके जीवन के सम्बन्ध में उपलब्ध सामग्री की सत्यता पर और इनकी जीवनी पर भी विद्वान एकमत नहीं हैं। किन्तु इतना तो अवश्य स्वीकार कर लेते हैं कि अष्टछाप के कवियों में सूरदास के पश्चात् नंददास ही श्रेष्ठ कवि थे। नंददास की रचनाओं में कहीं भी उनके जन्म स्थान का उल्लेख नहीं है। अष्टछाप की वार्ता में उनका निवास स्थान रामपुर बताया गया है और जन्म काल अनुमानतः सं. 1590 या 1572–73 के आसपास माना गया है। माना जाता है कि शरणा-गति के समय तक उनकी प्रवृत्ति लौकिक विषयों की ओर थी और एक रूपवती क्षत्राणी से गहरे सम्बन्ध थे। नंददास को गोस्वामी तुलसी दास जी के सगे या चचेरे भाई भी माना जाता है। उनके विवाह, वर्ण, गोत्र आदि पर भी संदेह हैं। माना जाता है कि अकबर और बीरबल उनसे मिलने एक बार ब्रज आये थे। विट्ठलनाथ जी ने नंददास को सूर की संगति में कुछ समय तक इसलिए रखा था कि उनका मन (जो लौकिक वासनाओं से भरा है) एकाग्र हो सके। साथ ही उनके विद्वत्ता के अभिमान को पूर्णता प्राप्त हो।[2] शरणागति में आने पर भी गृहस्थी की ओर लगाव के कारण वे फिर अपनी पत्नी के पास गये थे। कुछ सालों के बाद वापस आये और इस बार जीवन पर्यन्त गोवर्धन में रहते रहे। उनके दीक्षा गुरु गोस्वामी विट्ठलनाथजी थे।[3]

---

1. अष्टछाप की वार्ता—प्रो. कण्ठमणि शास्त्री, पृष्ठ 516
2. हिन्दी साहित्य के बृहत् इतिहास के आधार पर
3. नंददास जीवन और काव्य : डा. सावित्री अवस्थी पृष्ठ 48

नंददास सौंदर्य प्रिय प्राणी थे। आरम्भिक जीवन की रसिकता बाद में कृष्ण के रंग में रंग गयी थी।[1] वे हठी भी थे। इसीलिए सभी ओर से निन्दित होकर भी इन्होंने रूपवती क्षत्राणी का पीछा नहीं छोड़ा था। ये संस्कृत और ब्रज भाषाओं के प्रकांड पंडित थे और मौलिकता, प्रतिभा एवं विद्वता इनके विशेष गुण थे। अष्टछाप वार्ता से यह मालूम होता है कि इन्होंने तुलसीदास जी को, (चूँकि वे राम के बिना और किसी के सामने दंडवत् नहीं करते) गोवर्धन पर श्री कृष्ण की मूर्ति में राम के दर्शन करवाये।[2]

उनकी मृत्यु के बारे में यह वर्णित है कि, एक दिन बादशाह अकबर और बीरबल मानसी गंगा (मथुरा के निकट) आये थे। तानसेन ने नंददास का यह पद "देखोरी देखो नागर नट निरतत कालिंदी तट" गया था और अकबर ने इसका अर्थ जानने के लिए नंददास को बुलाया। नंददास ने उत्तर दिया कि इसका अर्थ रूप मंजरी बता सकेगी। बादशाह के मुँह से ये शब्द सुनते ही रूप मंजरी ने प्राण त्याग दिये और उधर नंददास भी गोलोक वासी हो गये। यह समाचार सुनकर विठ्ठलनाथ जी ने कहा, "वैष्णव को धर्म ऐसो ही है। जो-एसे गोप्य राखनी, और के आगे कहानी नाहीं" और उन दोनों की सराहना भी की।[3] यह समय सं. 1640 या 41 के आसपास ठहरती है।

2.1.8 छीत स्वामी :

इनके बारे में भी कुछ अंतः साक्ष्य प्राप्त नहीं हैं। "अटछाप वार्ता" से यह माल्म होता है कि छीत स्वामी मथुरा के निवासी थे और सभी उन्हें "छीतू चौबे" कहते थे। पहले ये मसखरी, कपट आदि करते थे। एक बार इन्होंने कुछ औरों के साथ सोचकर कि, "गोकुल के सुराई टोना-टमना बोहोत करते हैं, जो-जातें उनके बस होत हैं। तातें चलो देखें कैसे टोना करत हैं,"[4] विठ्ठल नाथजी के पास गये थे एक खोटा रुपया और खराब नारियल लेकर। जब खुसाई जी को देखा तो इनके मन में एक दम से पश्चाताप होने लगा और सोचे, "इनतें मसखरी करन आयो ? (सौ) ए तो साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम ईश्वर हैं। मौ को धिक्कार हैं, मैं ईश्वर सौं कुटिलता करने आयो।"[5] इसी

---

1. देखिये-नंददास : विचारक, रसिक, कलाकार-रूप नारायण
2. विस्तार के लिए अष्टछाप की वार्ता—प्रो. कण्ठमणि शास्त्री। किन्तु तुलसी जैसे महान् समन्वयकारी कवि के प्रति यह आरोप लगाना आश्चर्य की बात है।
3. अष्टछाप की वार्ता—प्रो. कंठमणि शास्त्री पृष्ठ 591
4. अष्टछाप की वार्ता—प्रो. कण्ठमणि शास्त्री, पृष्ठ 593 5. वही—पृष्ठ

समय विट्ठलनाथ जी ने उन पर दया की। छीत स्वामी ने यह पद गाया था, "भई अब गिरिधर सौं पहचान कपट रूप धरि छलि वे आयो, पुरुषोत्तम नहिं जान।" इसके बाद वे शरणागति में आये।

ये बीरबल के पुरोहित थे। जब बीरबल के मुख से गुसाई के प्रति अश्रद्धा के वचन सुने तो इन्हें चोट पहुंची और इन्होंने पुरोहिती त्याग दी। "विट्ठल नाथजी की शरणागति के बाद उन पर गोस्वामी जी की शिक्षा का प्रभाव पड़ा। इनका चरित्र भी सुधर गया और ये उच्च कोटि के कवि और भक्त बन गये। इनके गुणों की प्रशंसा इनके समकालीन भक्त नाभा दासजी तथा ध्रुव दास जी ने भी की है।"[1] ये गुरु के प्रति श्रद्धा और ब्रज से प्रेम सम्बन्धी गीत रचकर गाते थें। माना गया है कि ये भी विट्ठलनाथ जी के साथ-साथ स्वर्गवासी हो गये थे।

2.1.9. गोविन्द स्वामी :

गोविन्द स्वामी महावन के निवासी थे। इनकी रचनाओं में भी कुछ आत्म चरित्रात्मक उल्लेख नहीं हैं। इनकी शिक्षा या माता-पिता या जन्म स्थान का उल्लेख कहीं नहीं मिलता है। अष्टछाप की वार्ता में कुछ प्रसंगों से उनकी बहिन और बेटी से सम्बन्धित कुछ उल्लेख प्राप्त होते हैं। अष्टछाप वार्ता से यह मालूम होता है कि वे बड़े भगवद् भक्त थे, कवि थे और पद रचना करते थे। एक वैष्णव की सहायता से ये गोकुल गये थे और विट्ठल नाथजी की शरण में आये थे, जिससे पहले ही इनके कीर्तन विट्ठलनाथ जी के पास पहुँच गये थे और उन्हें सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुए थे। इन्होंने प्रथम मिलन में गोस्वामी जी को संध्या, तप, कीर्तन आदि करते देखकर सोचा था कि ये कोई पंडित हैं जी कर्म कांड कर रहे हैं, इन्हें ठाकुरजी क्यों मिलते होंगे? जब अपना यह प्रश्न उनके सामने रखा कि आप कपट रूप दिखा रहें हैं। जबकि आपके भीतर साक्षात प्रभु विराजमान् हैं तो आप यह बाहरी दिखावा क्यों कर रहे हैं? तब भी श्री विट्ठल नाथजी ने उत्तर दिया था कि यह सब भक्ति मार्ग है, जो फूल रूपी है और कर्म मार्ग कांटा रूपी है। "सो तो फूलन की रक्षा कांटे बिना न होइ। ताते वे दैक्त कर्म है, सो भक्ति मार्ग रूपी फूल को कांटे की बाडि है। ताते कर्म-मार्ग की बाडि बिना भक्ति मार्ग रूपी फूल को जतन न होइ, तब जतन बिना फूल रहे नाहीं।"[2]

1. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास—पंचम भाग, पृष्ठ 105
2. अष्टछाप की वार्ता—प्रो. कण्ठमणि शास्त्री, पृष्ठ 629

इसके बाद वे शरण में आये। कुछ समय के बाद भगवान की सेवा के लिए गोवर्धन आकर वहीं जीवन पर्यन्त रहे और कीर्तन सेवा में ही लगे रहे। "वे गोविंद दास बोहोत आछो गावें और श्री नाथजी उनके साथ गावत। तातें श्री वल्लभ सुनिवें को आवते।"[1]

वे सबसे निशंक बोलते थे।[2] हंसोड़ और निर्भीक भी थे। मोह नहीं था।

नाभादास की रचनाओं से यह जानकारी होती है कि वे उदार प्रकृति के व्यक्ति थे। "वार्ता से पता चलता है कि भक्ति पक्ष में गोविन्द स्वामी में दैन्य भाव न था। वे श्री नाथजी की सखाभाव से भक्ति करते थे। भक्त और उच्च कोटि के कवि होने के साथ-साथ एक सिद्ध संगीतकार भी थे। गान विद्या में इतने निपुण थे कि वल्लभ संप्रदाय में आने से पहले ही इनके अनेक शिष्य हो गये थे।"[3] एक बार भैरवी राग का आलाप सुनकर किसी म्लेच्छ ने उसकी सराहना की थी। इसे अछूत मानकर उन्होंने इसके बाद कभी भी भैरवी राग में पद नहीं लिखे।[4]

कहा जाता है कि श्री विट्ठल नाथजी कि मृत्यु की वार्ता सुनते ही इन्होंने भी अपना शरीर त्याग दिया था। यह समय 1642 वि निश्चित किया गया है। इनकी भी कुछ स्फुट पद ही प्राप्त हैं।

2.2. ताल्लपाक के कवि–जीवनी :

2.2.1. प्रस्तावना : तेलुगु भाषा के साहित्याकाश में कई कवि रूपी तारे चमकते हैं। उनमें अत्यन्त प्रकाश के साथ चमकने वाले तारे हैं—ताल्लपाक के कवि अन्नाभाचार्य, उनकी पत्नी, उनके पुत्र, पौत्र तथा प्रपौत्र। इन कवियों की हम अरुन्धी नक्षत्र सहित सप्तर्षि मंडल से तुलना कर सकते हैं। वैष्णव भक्ति साहित्य में ही नहीं वरन् सम्पूर्ण तेलुगु साहित्य में इन कवियों का मूर्धन्य स्थान है। इनकी इस महानता का कारण यह है कि प्राय: एक ही परिवार के व्यक्ति स्त्री तथा पुरुष ने मिलकर भाषा, साहित्य तथा संगीत का ही नहीं वरन् विशिष्टाद्वैत भक्ति तथा तिरुपति क्षेत्र की जो सेवा की थी, वह अन्यत्र देखने में दुर्लभ है। तिरुपति क्षेत्र में स्थित श्री वेंकटेश्वर (बालाजी) स्वामी के नाम से संसार के कोने-कोने के लोग परिचित हैं। "कल्यो वेकट नायक !" के

1. अष्टछाप की वार्ता, पृष्ठ 653   2. वही—पृष्ठ 655
3. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास-पंचम भाग पृष्ठ 104
4. अष्टछाप कीं वार्ता प्रो. कण्ठमणि शास्त्री पृष्ठ 663

अनुसार भगवान बालाजी को कलियुग में भक्तों की पीड़ाओं को दूर करने के लिए तिरुपति क्षेत्र में स्थित भगवान विष्णु का ही अवतार माना जाता है। सामान्य व्यक्ति के भी समझने योग्य, अत्यन्त मधुर तथा सरल भाषा का माध्यम लेकर देशी रीतियों में संगीत तथा साहित्य को अपना साधन बनाकर ताल्लपाक के कवियों ने स्वामी बालाजी पर विभिन्न रचनायें की। "एक ओर तिरुपति क्षेत्र के भगवान् बालाजी के अनुग्रह के कारण ताल्लपाक के कवियों ने नाम तथा यश कमाया था तो दूसरी ओर ताल्लपाक के कवियों की रचनाओं के कारण श्री वेंकटेश्वर स्वामी की प्रशंसा कोने-कोने में फैल गयी। अतः दोनों का यश अन्योन्याश्रित है।"[1] सामान्य जन मानस तक वैष्णव धर्म पहुँचाने का श्रेय इन्हीं कवियों को है।

2.2.2. वंशवृक्ष :

"भारद्वाज ग्रोत्र" के ताल्लपाक के कवियों का वंशवृक्ष इस प्रकार है। अन्नमाचार्य के पौत्र चिन्नन्ना की रचनाएँ—अष्टमहिषी कल्याण" तथा 'अन्नमाचार्य चरित्रा' में इनका उल्लेख है।[2]
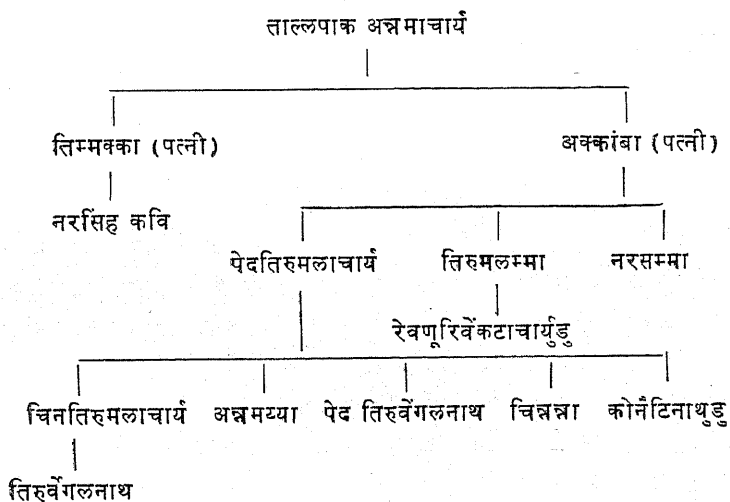
(नरसिंह कवि के बारे में मत भेद है कि ये अन्नमाचार्य के पुत्र थे या नहीं)

1. ताल्लपाक कवुल कृतुलु—विविध साहिती पक्रियलु—वें आनंदमूर्ति, पृष्ठ 54
2. आधार—वे. आनंदमूर्ति तथा एम. संगमेशम्।

2.2.3. अन्नमाचार्य :

अन्नमाचार्य के वंशज आंध्र प्रदेश के "कड़पा" जिले में स्थित 'ताल्लपाका" ग्राम के निवासी थे। ये विष्णु के भक्त थे। "अन्नमाचार्य के पिता नारायण वेदाध्ययन सम्पन्न थे। माता लक्कमांबा अपने जन्म स्थान माड़ूपूरु के माधव स्वामी की भक्तिन थीं। इन्हीं पुण्य दम्पतियों के गर्भ में तिरुमल तिरुपति के भगवान (बालाजी) श्री वेंकटेश्वर की कृपा से, उन्हीं के खड्ग 'नंदक' के अंश से अन्नमाचार्य का जन्म हुआ।"[1] इनकी जीवनी जानने के लिए आधार सामग्री है—अंतः साक्ष्य तथा बहिसाक्ष्य। वे हैं—

1. अन्नमाचार्य चरित्रमु, 2. अन्नमाचार्य वंशजों के दान लेख 3. अन्नमाचार्य पदों के ताम्र पत्र 4. सामयिक तथा अर्वाचीन कवियों की रचनाओं में इनका उल्लेख 5. तेलुगु भाषा के आधुनिक कवि-वृत्त संग्रह तथा साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में संग्रहीत इनकी जीवनी तथा व्यक्तित्व। 6. अन्नमाचार्य तथा उनके पुत्र-पौत्रों के संकीर्तनों में प्राप्त अंतः साक्ष्य।[2]

अन्नमाचार्य जी का जन्म श्री वेटूरि प्रभाकर शास्त्री जी ने सन् 1424 (शकवर्ष 1346) निश्चित किया है। श्री अन्नमाचार्य जी के अध्यात्म तथा श्रृंगार संकीर्तनों के ताम्र पत्रों की अवतारिका के अनुसार अन्नमाचार्य जी का जन्म सन् 1424 (सं.–1481) (शकवर्ष 1346) क्रोधि संवत्सर वैशाख शुद्ध पूर्णिमा के दिन विशाखा नक्षत्र में तथा स्वर्गवास सन् 1503 (संवत्–1560) (शक वर्ष–1425) दुंदुभि वर्ष फागुन कृष्ण द्वादशी को माना जाना चाहिए।

पाँचवें वर्ष में ही अन्नमाचार्य जी का यज्ञोपवीत संस्कार हुआ तथा वेदाध्ययन शुरू हो गया। बचपन से ही इन्हें श्री बालाजी के प्रति भक्ति थी। "माँ की लोरियों में भी वेंकटेश्वर का नाम न लेने से वे अपना रोना बन्द नहीं करते थे।[3] भगवान की कृपा से अपनी छोटी सी आयु में ही उन्होंने सभी विद्याओं को ग्रहण कर लिया था। "उनका प्रत्येक वचन अमृत काव्य तथा गान अमर गान लगने लगे थे।"

"आडिन माटेल्ल अमृत काव्यमुग, पाडिन पाटेल्ल परम गानमुग···"
वे बचपन से ही बालाजी के नाम से संकीर्तन गाया करते थे। इस प्रकार के विशिष्ट व्यक्तित्व के अन्नमाचार्य का घर-गृहस्थी सम्बन्धी कार्यों में मन न

---

1. अन्नमाचार्य और सूरदास—मुट्नूरि संगमेशम्, पृष्ठ 4
2. वही—
3. अन्नमाचार्य चरित्रा-चिन्नना पृष्ठ 11

श्री ताल्लपाक अन्नमाचार्यजी

अन्नमाचार्यजी का जन्म स्थान—ताल्लपाक गाँव

लगना कोई आश्चर्य की बात नहीं। एक दिन परिवार के सदस्यों की आज्ञा के अनुसार वे गौओं के लिए घास छीलने गये थे। वहाँ उनकी उँगली कटकर खून बहने लगा तो उनके मन में उसी क्षण ही विरक्ति आ गई। उसी मार्ग पर तिरुपति जाने वाले यात्रियों के साथ तिरुपति जा पहुँचे। अपने एक अध्यात्म संकीर्तन में घर के व्यक्तियों के बारे में वे लिखते हैं—"अरे मेरा मन तो इनके प्रति मोह में है। भाई-बंधु, माता-पिता, ये सभी माया जाल में फँसाने वाले हैं। इनकी अपेक्षा श्रीवेंकटेश्वर के प्रति प्रीति जगाना श्रेयस्कर हैं।[1]

इस प्रकार अन्नमाचार्य अपनी आठ वर्ष की बाल्यवस्था में ही संसार से विरक्त होकर बिना किसी से कुछ कहे तिरुपति चले गये थे। पहाड़ पर चढ़ते समय वह नन्हा सा बालक बेहोश होकर गिर गया। उसी अवस्था में उसे "अलमेल मंगा"[2] का दिव्य दर्शन ही नहीं वरन् उनके हाथ का प्रसाद भी प्राप्त हुआ। होश आते ही बालक अन्नमाचार्य ने आशु रूप से देवी के नाम पर शतक (सौ पद्य) का गायन किया। तत्पश्चात् तिरुपति क्षेत्र के पुण्य तीर्थों में स्नान कर भगवान बालाजी का दर्शन करते समय स्वामी के नाम पर एक शतक कहा। यह देखकर वहाँ के वैष्णवाचार्यों को भी बड़ा आश्चर्य हुआ। भगवान् ने स्वप्न में दर्शन देकर "घनविष्णु" नामक वैष्णव आचार्य को आज्ञा दी कि बालक अन्नमय्या को वैष्णव धर्म की दीक्षा दो। उसी प्रेरणा से प्रेरित हो घनविष्णु ने अन्नमय्या की भुजाओं पर शंख-चक्र के चिह्न बनाकर उन्हें वैष्णव बनाया तथा विशिष्टता द्वैत सम्प्रदाय के अन्तर्गत शरणगत धर्म का उपदेश दिया। अन्नमय्या प्रति दिन एक नया पद स्वामी के सम्मुख गाया करते थे। अन्नमाचार्य को सोलह वर्ष की अवस्था में स्वामी का साक्षात्कार हुआ।

कुछ दिनों के पश्चात् अन्नमाचार्य के परिवार के व्यक्ति उन्हें ढूँढते हुए तिरुपति आ पहुँचे। गुरु की आज्ञा मानकर उनके साथ अन्नमय्या घर वापस गये तथा "अक्कलम्मा" और "तिरुमलम्मा" से उनका विवाह सम्पन्न हुआ।[3]

विवाह के पश्चात् अन्नमय्या ने अहोबिलमठ के संस्थापक श्री "आदिवन् शठगोपयति" से वेदांत और द्राविड़ वेद का नियम पूर्वक अध्ययन किया। अपने सोलहवें वर्ष में भगवान् बालाजी का साक्षात्कार पाने के पश्चात् वे वेदों की

1. अन्नमाचार्य चरित्रा पीठिका से—वे प्रभाकर शास्त्री
2. श्री वेंकटेश्वर स्वामी की पत्नी पद्मावती।
3. अन्नमाचार्य चरित्रा-चिन्नन्ना, पृष्ठ 29

रचना कर गाया करते थे। इस प्रकार के, कहा जाता है, उनके 32 हजार पद थे जिनमें 14000 उपलब्ध हैं। ये कभी तिरुपति में, कभी अपने गाँव में रहते थे। किन्तु हर वर्ष तिरुपति के ब्रह्मोत्सव में भाग लेते थे। माना जाता है कि उन्होंने उन्हीं दिनों में वाल्मीकि रामायण के आधार पर अनेक संकीर्तन रचे थे। उनकी ख्याति चारों ओर फैल चुकी थी। इन्हें साक्षात् तुम्बुर या नारद या गंधर्व मानते थे।[1]

ताल्लपाका के निकट "टंगुटूरु" नामक नगर में "सालुव नरसिंहराय" नामक दंडनायक थे। उन्होंने अन्नमाचार्य को अपने गुरु मानकर, उनकी सलाह के अनुसार राज्य करने की इच्छा व्यक्त की। अन्नमाचार्य के शुभ आशीश के ही कारण कुछ ही दिनों में वह दण्डनायक बिजयनगर साम्राज्य के अधिपति बन गए। नरसिंहराय ने अन्नमाचार्य का कई प्रकार से राजसत्कार किया था।

इन्हीं नरसिंहराय राजा ने एक बार अन्नमय्या के शृंगार पद सुन मुग्ध होकर अपने बारे में भी उसी प्रकार की रचनाएँ करने का आग्रह किया। यह कथा इस प्रकार कही जाती है।[2]

"यनुपंबेन द्रोणाचार्यु महिम गनियु
द्रौपदितंड्रि गर्विचि नटुल–
नन्नमाचार्यु महत्व मंतयुनु
गन्नारगनियुनि गर्वांधुडगुचु"......

द्रोण की महिमा जानते हुए भी राजा द्रुपद ने जिस प्रकार गर्व किया था, उसी प्रकार अन्नमाचार्य की महिमा को जानते हुए भी अपनी प्रशंसा में पद गाने का आग्रह नरसिंहराय ने किया। तब अन्नमाचार्य ने यह उत्तर दिया—"मेरी जिह्वा जो केवल भगवान् की लीलाओं का ही गान करती हैं, वह साधारण लौकिक शृंगार का गान कैसे कर सकती है ?"[3]

("हरि मुकुंदुनि गोनियाडु नाजिह्व
निन्नु गोनियांडग नेरदेंतेन")

किन्तु दुराग्रही तथा गर्वांध राजा ने अन्नमय्या को शृंखलाबद्ध कर दिया। तब अन्नमय्या ने अपनी इस दीन स्थिति का प्रभु से निवेदन किया—

1. अन्नमाचार्य चरित्रा-चिन्नन्ना पृष्ठ 30
2. अन्नमाचार्य चरित्रा-चिन्नन्ना पृष्ठ 36
3. वही—

"संकेल लिडुवैल जंपेडुवैल—
संकिलि ऋण दात लागेडुवेल
वलदक वेंकटेश्वरुनि नाममे
विदिलिप गति गानि वेरौंडुलैदु ।"[1]

अर्थात् आपत्तियों में भगवान् वनमाली के सिवा मेरी रक्षा करने वाले कौन हैं ? किसी भी स्थिति में मैं वेंकटेश्वर का नाम कभीं नहीं छोड़ूँगा। अपने भक्त के इस करुण क्रंदन को सुन करुणासागर भगवान् ने उन्हें शृंखलाओं से मुक्त कर दिया। राजा स्वयं यह दृश्य देखकर आत्मग्लानि अनुभव करने लगा। इस पश्चाताप में उसने अन्नमय्या से क्षमा की प्रार्थना की। पाप परिहार के लिए राजा ने उस महान् कवि को पालकी में बिठाकर स्वयं कंधा दिया। अन्नमय्या ने उन्हें समझाया कि किसी भक्त का अपमान करना (चाहे राजा ही क्यों न हो), किसी भी व्यक्ति के लिए उचित नहीं है। तुम्हें इस प्रकार का दुर्व्यवहार छोड़ना चाहिए। तब से राजा अन्नमाचार्य को साक्षात प्रभु का ही अवतार मानकर पूजा करने लगा।

राजा से आज्ञा लेकर अन्नमाचर्य तिरुपति गये। वहाँ "शृंगार मंजरी" की रचना कर भगवान् को समर्पित की। ऐसा माना जाता है कि बालाजी भी उनके शृंगार संकीर्तन सुनकर पुनः यौवन प्राप्त कर उल्लास पाते थे। इस प्रकार अन्नमाचार्य ने अपना सारा जीवन संकीर्तन सेवा में ही बिताया। अन्त में बालाजी में ही समा गए।

अन्नमाचार्य की कीर्ति चारों ओर फैल चुकी थी। उनकी महिमाओं के भी उल्लेख मिलते हैं। दूर दूर से आकर लोग उनसे मिलते थे। कर्नाटक के प्रसिद्ध संगीतकार पुरंदरदास आकर इनसे मिले थे। पुरंदर को अन्नमय्या ने "विट्ठल" माना और उन्होंने अन्नमय्या को साक्षात् विष्णु।[2]

अन्नमाचार्य की रचनाएँ संस्कृत तथा तेलुगु दोनों भाषाओं में उपलब्ध हैं। उनकी तेलुगु रचनाएँ हैं—आध्यात्म तथा शृंगार संकीर्तन, शृंगार मंजरी, द्विपद रामायण, वेंकटेश्वर शतक, और वेंकटाचल माहात्म्य। उनकी संस्कृत रचनाएँ हैं—शृंगार तथा आध्यात्म संकीर्तन और संकीर्तन लक्षण। उन्हें संगीत तथा साहित्य में समान प्रतिभा थी। ये "हरि संकीर्तनाचार्य", "पद—कविता पितामह", "पंचमागम सार्वभौम" की उपाधियों से विख्यात थे।

---

1. अन्नमाचार्य चरित्रा—चिन्नन्ना—पृष्ठ 36
2. अन्नमाचार्य चरित्रा—चिन्नन्ना पृष्ठ 45

2.2.4. ताल्लपाक तिम्मक्का :

ये अन्नमय्या की प्रथम पत्नी थीं। दुर्भाग्यवश इनकी जीवनी के सम्बन्ध में कुछ सामग्री उपलब्ध नहीं है। अधिकांश विद्वान तिम्मक्का को ही तेलुगु भाषा की प्रथम कवयित्री मानते हैं। स्वर्गीय वेंटूरि प्रभाकर शास्त्रीजी ने इनकी लघुकृति "सुभद्रा कल्याणमु" का परिष्कार किया था। इसी कृति के आधार पर हम कह सकते हैं कि वे संगीत तथा साहित्य दोनों में चतुर थीं।

2.2.5. पेद तिरुमलाचार्य :

अन्नमय्या की द्वितीय पत्नी अक्कम्मा के सुपुत्र पेदतिरुमलाचार्य का जन्म सन् 1458 में माना जाता है। पेदतिरुमलाचार्य भी अपने पिता की भांति महान् पंडित तथा कवि थे। भगवान् का अनुग्रह उनपर पूर्ण रूप से था और वे अपने नब्बे वर्षों के दीर्घ जीवन में पिता के ही समान् संकीर्तन सेवा करते रहे थे। इनकी रचनाओं में स्थान-स्थान पर अपने समय की राजनैतिक, सामाजिक तथा अन्य घटनाओं का वर्णन प्राप्त होता है। राजनैतिक क्षेत्र में विजय नगर राजाओं के "सालुव" तथा "तुलुव" वंशजों के बीच राज्याधिकार के लिए वैर चल रहा था। इसमें पेदतिरुलाचार्य तथा उनके परिवार के सदस्यों ने सालुव नरसिंह राय—(अन्नमय्या के मित्र-जिनका उल्लेख पीछे किया जा चुका है) के पुत्रों का पक्ष लिया। इन राजनैतिक उथल पुथलों का प्रभाव उनके साधारण जीवन पर भी पड़ा। अन्नमाचार्य की मृत्यु के पश्चात् पेदतिरुमलाचार्य को अपना गाँव छोड़कर तिरुपति क्षेत्र जाना अनिवार्य हो गया था। उनके अग्रज भी श्रीरंगम् चले गये गये थे।[1] विजय नगर के किसी दुराग्रही राजा ने पेद तिरुमलाचार्य पर तलवार फेंककर मारने का प्रयत्न भी किया था। इसका उल्लेख उनके निम्न संकीर्तन में प्राप्त है—"

> "नाटिकि नाडु कोत्त नेटिकि नेडु कोत्त
> नाटकपु दैवमवु नमो नमो।
> ... ...
> वनजाक्ष नी कृपनु परशत्रुलेत्तिनट्टि
> धन खड्गधार नाकु कस्तूरि बाटाय।[2]

1. ताल्लपाक कवुलु—विविध साहिती प्रक्रियलु—वे. आनंदमूर्ती के आधार पर।
2. अन्नमाचार्य अध्यात्म संकीर्तनलु पृष्ठ 57

(अर्थात् हे भगवान् तुम्हारी कृपा के ही कारण मुझ पर फेंका गया तलवार कमल की माला बन गयी।)

प्राय: इसी राजनीतिक वैषम्य के कारण विजयनगर के प्रसिद्ध राजा श्री कृष्ण देवराय (जो स्वयं कवि तथा पंडित थे और उनके दरबार में 'अष्टदिग्गज' के नाम से विख्यात आठ तेलुगु के प्रसिद्ध कवि थे)—ताल्लपाक के कवियों के प्रति उदास ही रहे। यह अत्यन्त दुर्भाग्य है कि राजनैतिक परिस्थितियों के कारण यह अलगाव बना ही रहा। अगर दोनों का मिलन होता तो, सोने में सुगन्ध आ जाता था। कृष्णदेवराय के पश्चात् राजा अच्युत देवराय ताल्लपाक से कवियों को बहुत चाहते थे, अत: उनका उनके प्रति व्यवहार उदार था।[1] अच्युत देवराय की इच्छा के अनुसार पेद तिरुमलाचार्य श्री बालाजी के प्रति संकीर्तन लिखने का उल्लेख शिला लेखों में है। राजा तथा कवि के कारण तिरुपति क्षेत्र तथा बालाजी दोनों को अखण्ड वैभव प्राप्त हुआ।

पेद तिरुमलाचार्य की महिमाओं के सम्बन्ध में भी कुछ उल्लेख हाल ही में प्राप्त हुए हैं। उनके अनुसार एक बार तिरुमल के मूर्तियों को कुछ चोर चुरा कर ले गए। कुछ दूर जाने के पश्चात् उन्हें कुछ दिखाई नहीं देने लगा। उन्हें भगवान बालाजी ने आज्ञा दी कि इन मूर्तियों को अगर पेद तिरुमलाचार्य को पहुँचा दोगे तो तुम्हारी आँखें ठीक हो जायेंगी? चोरों ने तिरुमलाचार्य का पता लगाकर मूर्ती उन्हें सौंपी और क्षमा मांगकर स्वस्थ होकर चले गए। पेद तिरुमलाचार्य जी ने इसे तिरुमला वापस भेजना चाहा। किन्तु भगवान ने प्रधान पुजारी के स्वप्न में आकर यह कहा कि मैं पेद तिरुमलाचार्य जी के पास ही रहना चाहता हूँ। अत: मुझे तिरुमला लाने की आवश्यकता नहीं। यह जानकर प्रभु की सेवा के लिए अच्युत देवराय ने कई गांव, जागीर आदि दान में दिये। विजय नगर साम्राज्य के अन्त तक कई गाँव ताल्लपाक के कवियों के आधीन ही थे। पेद तिरुमलाचार्य के महान् दानी होने के भी उल्लेख शिला-लेखों में हैं। कम से कम उन्होंने दान में मिले 27 गाँव भगवान को सर्पपित कर दिए थे। कभी-कभी गाँवों को खरीदकर भी उन्होंने स्वामी को समर्पित किए। अपना धन व्यय कर तिरुपति, विजय नगर, कांची आदि प्रदेशों में कई घर मरम्मत कार्य, नए-नए मण्डप आदि का निर्माण करवाने के भी उल्लेख हैं।[2]

---

1. श्री मद् भगवद् गीता—पेद तिरुमल्लाचार्य प्रस्तावना, पृष्ठ 9
2. वही—प्रस्तावना के आधार पर

ताम्र पत्रों में ऐसा उल्लेख है कि अन्नमाचार्य ने अपने पुत्र पेद तिरुमलाचार्य का अपने निर्वाण के पश्चात् प्रतिदिन एक संकीर्तन लिखकर भवगान को अर्पित करने का आदेश दिया था।

शृंगार तथा अध्यात्म संकीर्तनों के अलावा इनकी अन्य रचनाएँ हैं जो इस प्रकार हैं—

1. सुप्रभात स्तवमु, 2. वैराग्य वचन मालिका गीतमुलु, 3. शृंगार-दंडकमु, 4 चक्रवाल मंजरी 5. शृंगार वृत्त पद्याल शतकमु, 6. वेंकटेश्वर उदाहरणमु, 7. नीतिशतकमु 8. सुदर्शन रगडा, 9. रेफरकार निर्णयमु, 10. भगवद्गीता वचनमु, 11. द्विपद हरिवंशमु।

उन्हें तेलुगु साहित्य की सभी शैलियों में रचना करने की अद्भुत क्षमता थी। इनका साहित्यिक क्षेत्र अत्यन्त व्यापक था। ये तमिल भाषा में भी कविता लिख सकते थे। इसके उल्लेख तिरुपति क्षेत्र के शिलालेखों में प्राप्त होते हैं। ये "पद कविता" लिखने में प्रसिद्ध थे। अतः उन्हें "श्रीमद् वेद मार्ग प्रतिष्ठापनाचार्य, श्री रामानुज सिद्धान्त स्थापनाचार्य, वेदान्ताचार्य, कवितार्किक केसरि, शरणागत वज्रपंजर" आदि उपाधियों से विभूषित किया गया था। एक साथ कवि, गायक, पंडित, बहुभाषा विज्ञ होना कोई सामान्य बात नहीं।" वैष्णव धर्म के प्रचार के लिए साहित्य को एक साधन बना कर विभिन्न प्रकार की नूतन प्रक्रियाओं की खोज करते हुए पेद तिरुमलाचार्य तत्कालीन साहित्य के साम्राज्य के सम्राट बने थे।"[1]

इन सब के अलावा इनकी और एक महान विशेषता यह है कि उन्होंने अपने कई मित्रों तथा शिष्यों की मंडली के साथ "संकीर्तन भंडार" की स्थापना की। इसमें अपने पिता अन्नमाचार्य के तथा अपनी रचनाओं को ताम्रपत्रों पर लिखवा कर तत्कालीन साहित्य को शाश्वत कर आगामी पीढ़ियों तक पहुँचाने का कार्य किया। कैफियतों में यह लिखा गया है कि पेद तिरुमलाचार्य जी ने इस स्थान पर दीप, धूप, नैवेद्य आदि की व्यवस्था की। इन कीर्तनों को गान करने के लिए वेतन देकर कुछ व्यक्तियों, की नियुक्ति की। वहाँ उपस्थित श्रोताओं को भी गुलाबजल, चन्दन, पान आदि दिया जाता था। ग्रीष्म ऋतु में तो यहाँ संकीर्तन अरलुप्पाडु होती थी। जिसका अर्थ है दया की याचना करते हुए गानों का गायन करने का उत्सव।[2] भगवान को नयी-नयी कई सेवाओं का भी आयोजन इन्होंने किया।

---

1. ताल्लपाक कवुलु—विविध साहिती प्रक्रियलु—वे. आनन्द मूर्ति पृष्ठ 119
2. श्रीमद् भगवद् गीता—पेद तिरुमलाचार्य के आधार पर, पृष्ठ 113

ललाट पर श्री वैष्णवों के अनुसार तिलक, गले में तुलसी माला, दोनों भुजाओं पर शख, चक्र के चिह्न, जिह्वा पर सदा कृष्ण गान—ऐसी मनोहर मूर्ति थी उनकी। आज भी तिरुपति क्षेत्र में संकीर्तन भंडार के दोनों ओर अन्नमाचार्य तथा पेदतिरुमलाचार्य की मूर्तियाँ हम देख सकते हैं। प्रतिभा शाली पिता के प्रतिभावान पुत्र थे। सन् 1554 तक ये जीवित थे। नब्बे वर्ष के सुदीर्घ जीवन में इन्होंने ऐश्वर्य का सदुपयोग किया। राजा के आदर के पात्र होते हुए भी कभी भी मानवों का यशगान नहीं किया। चतुर्विध पुरुषार्थों के समान रूप से भोगा। भगवान का अनुग्रह, राजा का आदर और लोक सम्मान—इन तीनों को समान रूप से इन्होंने प्राप्त किया था। अतः इन्हें हम पूर्ण पुरुष कह सकते है। महाकवि और पंडित तो थे ही।[1]

2.2.6. **चिनतिरुमलाचार्य :** ये अन्नमाचार्य के पौत्र तथा पेदतिरुमलाचार्य के प्रथम पुत्र थे। इनका जीवन काल सन् 1488 से सन् 1562 तक माना जाता है। पिता तथा पितामह के ही अनुसार इन्होंने भी शृंगार तथा अध्यात्म संकीर्तनों की रचना की थी। ये सस्कृत तथा तेलुगु भाषा के महान् कवि तथा पंडित थे। "अष्ट भाषा चक्रवर्ती" की उपाधि इनकी विद्वत्ता की परिचायक है। माना जाता है कि इन्हें ब्रह्मोपदेश स्वयं पितामह अन्नमय्या से प्राप्त हुआ था। अतः इन्होंने अपने आपको धन्य मानते हुए गुरु (अन्नमाचार्य) के प्रति भक्ति तथा श्रद्धा पूर्वक उनकी प्रशंसा में कई संकीर्तन लिखे हैं। जैसे :

"ताल्लपाकान्नमाचार्य दैवमवु नीवु माकु
वेलमै श्रीहरि गने वैरवानतिच्चितिवि।"[2]

ये मानते हैं कि अपने पितामह के ही कारण अपने वंशजों को शैष्णव बन कर मुक्ति मार्ग पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इन्होंने भी लौकिक सम्पत्ति का मोह तथा मनुष्यों की (राजाओं) सेवा करने वालों की निन्दा की है तथा उन्हें नीच माना। इनकी रचनाए इस प्रकार हैं—

1. शृंगार संकीर्तन, 2. अध्यात्म संकीर्तन, 3. अष्टभामा दंडकमु, 4. संकीर्तन लक्षण।

इन्होंने भगवान बालाजी की तथा तिरुपति क्षेत्र के अन्य मंदिरों का भी पुनरुद्धार किया तथा नियमित सेवा की योजना आरंभ की। मंगापुरम में आलवार, भाष्यकार तथा देशिकों के साथ अपने पितामह की भी मूर्ति की

1. श्रीमद् भगवद् गीता—पेद तिरुमलाचार्य के आधार पर, पृष्ठ 115
2. अध्यात्म संकीर्तन (वा. 16) पद 39

प्रतिष्ठा इन्होंने की थी। आज भी इनके चिह्न हमें मिलते हैं। "शिलालेख तथा इनके संकीर्तनों से यह ज्ञात होता है कि चिनतिरुमलाचार्य ने वैष्णव धर्म तथा संकीर्तनों के प्रचार तथा प्रसार के लिए चित्तूर, अनंतपुर, कड़पा, कर्नूल, नेल्लूर, गुंटूर आदि प्रदेशों का भ्रमण किया था।[1]

2.2.7. **चिन तिरुवेंगलनाथुडु** : पेद तिरुमलाचार्य के चतुर्थ पुत्र चिन तिरुवेंगलनाथ तेलुगु साहित्य में "चिन्नन्ना" के नाम से विख्यात हैं। "चिन्नन्ना द्विपद कैरुगुनु" अर्थात् द्विपद साहित्य के लिए चिन्नन्ना का नाम लिया जाता है। इनका जन्म सन् 1500 तथा गोलोकवास सन् 1558 माना जाता है।[2] तत्कालीन विजयनगर साम्राज्य के राजा सदाशिव राय ने चिन्नन्ना को कई प्रकार से सम्मानित किया था। राजा द्वारा दी गयी सभी भेंटें कवि ने प्रभु बालाजी को ही समर्पित कर दी थी। चिन्नन्ना को एक दिन में प्राय: एक हजार द्विपद छन्दों में रचना कर सकने की अपूर्व क्षमता थी।[3] इन्होंने अपनी सारी रचनाओं को द्विपद छन्द में ही प्रस्तुत किया। ये रचनायें हैं—1. अन्नमाचार्य चरित्रमु 2. अष्ट महिषी कल्याणमु 3. उषा कल्याणमु 4. परमयोगी विलासमु इस प्रकार इन्होंने द्विपद छन्द (जिसे पंडित लोग अनादर की दृष्टि से देखते थे) को अपनी शिष्ट रचनाओं के माध्यम से एक उन्नत स्थान दिया। इनकी कविता, कस्तूरी कपूर तथा सुगन्ध पुष्पों की भांति सुगंध फैलाती है।[4]

इनकी रचना "अन्नमाचार्य चरित्र" का ऐतिहासिक महत्व है। इस के आधार पर मूल पुरुष अन्नमाचार्य जी की जीवनी आज हमें प्राप्त होती है।

काव्य तथा कविता क्षेत्र के साथ-साथ धर्म प्रचार में भी इन्होंने बहुत परिश्रम किया था। संगीत का भी इन्हें विशेष ज्ञान था। आज के ताल्लपाक के वंशज अपने को इस चिन्नन्ना के वंश के ही मानते हैं।[5] इस प्रकार चिन्नन्ना विभिन्न दृष्टियों से प्रसिद्ध व्यक्ति हैं।

2.2.8. **तिरुवेंगलप्पा** : चिनतिरुमलाचार्य के पुत्र, पेदतिरुमलाचार्य के पौत्र तथा अन्नमाचार्य के प्रपौत्र तिरुवेंगलप्पा का समय सन् 1515 से सन् 1565 तक माना जाता है। ये उच्चकोटि के पंडित थे। रसवत् कविता लिखना इनकी

---

1. ताल्पाक कवुल कृतुलु—विविध साहिती प्रक्रियलु—वे. आनन्दमूर्ति पृष्ठ 121
2. वही, पृष्ठ 69
3. वही, पृष्ठ 123
4. वही, पृष्ठ
5. श्री वे. आनन्द मूर्ति के आधार पर, पृष्ठ 125

विशेषता मानी जाती है। इन्होंने संस्कृत तथा तेलुगु दोनों भाषाओं में कवित्व तथा लक्षण ग्रंथों की रचना की।

इनकी रचनायें : 1. अमरूक काव्य (अनुवाद) 2. बाल प्रबौधिका-अमरूक को तेलुगु व्याख्या 3. सुधानिधि—काव्य प्रकाश (मम्मट) की व्याख्या 4. रामचन्द्रोपाख्यान काव्य।

ये भी तिरुपति क्षेत्र क गोविन्दराज स्वामी तथा कांची क्षेत्र के भगवान को ज़मीन आदि दे कर विशेष उत्सवों का संचालन करते थे।

अंत में हम कह सकते हैं कि ताल्लपाक के कवियों का तेलुगु साहित्य में अपना विलक्षण स्थान है। इनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। अन्नमाचार्य से ले कर पाँच पीढ़ियों तक करीब करीब डेढ़ सौ वर्ष तक ये अपने अनगिनत साहित्यिक पुष्पों से भगवान बाला जी की सेवा करते ही रहे। राजाश्रय से दूर रहने पर भी इनकी प्रतिभा के कारण स्वयं राजाओं ने इनका आदर-सत्कार किया। राजाओं से प्राप्त अपार धन सम्पत्ति को अपने स्वार्थ के लिए उपयोग न कर स्वामी को ही समर्पित करते रहे। पूरे वंश ने स्वामी की सेवा में ही जीवन बिता कर अपने आपको धन्य कर लिया।

2.3. प्रेरणा, प्रभाव और महत्व :

2.3.1. अष्टछाप :

(क) प्रेरणा : अष्टछाप कवियों ने वल्लभाचार्य जी और उनके सुपुत्र विट्ठलनाथ जी से शुद्धाद्वैत में दीक्षा ली। उन्हीं के उपदेश के कारण भागवत की सारी लीलाओं का स्फुरण हुआ और भगवान कृष्ण की लीलाओं का गान किया। भगवान के यशो वर्णन व गुणानुकीर्तन को अष्टछापी कवियों ने भागवत की ही भांति अपना मुख्य उद्देश्य बनाया। पुष्टिमार्ग में बाल कृष्ण और किशोर कृष्ण की ही उपासना की प्रमुखता के कारण भागवत के दशम स्कंध को ही अष्टछापी कवियों ने अपनाया। हाँ, इन्होंने भागवतेतर तत्वों का भी ग्रहण किया। जैसे राधा का चरित्र, युगल लीला उपासना आदि।

"विषय और भक्ति भाव की दृष्टि से अष्टछाप के काव्य का मूलाधार श्रीमद् भागवत, ब्रह्म वैवर्त पुराण और वल्लभाचार्य जी के प्रवचन हैं। काव्य की दृष्टि से अपने से पूर्व स्थित राजस्थानी, अवधी और मैथिली काव्य से उन्होंने केवल प्रेरणा मात्र ही ली, आदर्श रूप मानने योग्य उनके सामने कोई कवि नहीं था। पद-शैली का आदर्श उनके समक्ष जयदेव, विद्यापति, नामदेव और कबीर के पदों ने रखा। भाषा की दृष्टि से सूर और परमानन्द-दास के पहले ब्रजभाषा में रचना करने वाले, किसी भी कवि का परिचय

इतिहास नहीं देता। नामदेव की ब्रजभाषा भी परिवर्तित रूप में हमारे सामने आती है। ······मौखिक रूप में प्रचलित तथा तत्कालीन हिन्दी साहित्य में जहाँ तहाँ असंस्कृत रूप से बिखरी हुई ब्रजभाषा की शक्तियों को इन्हीं कवियों ने समेटा और उन्हें अपने प्रतिभा के बल से एक काव्य गुण-सम्पन्ना भाषा का रूप दिया।"[1]

किन्तु डा. कृष्णदेव झारी ने अष्टछापी कवियों से पूर्व कृष्ण काव्य की परम्परा का अध्ययन प्रस्तुत करते हुए कहा है—"14 वीं शताब्दी से पुरानी हिन्दी, ब्रज, मैथिली तथा अवधी में कृष्ण काव्य का प्रणयन होने लगा था।"[2] उनके अनुसार मुक्तक कृष्ण गीत काव्य की परम्परा विद्यापति से आरम्भ हुई। पुरानी ब्रजभाषा (पिंगल) में भी कृष्णपरक फुटकर पद रचने का प्रमाण "प्राकृत पैंगलम्" में मिलता है। इसी प्रकार से कृष्ण से सम्बन्धित प्रबन्ध काव्यों की परम्परा भी प्रद्युम्न चरित (सधार अग्रवाल) और रुक्मिणी मंगल आदि से मानी जाती है। असामी के शंकरदेव से रचे गये फुटकर पदों का भी उल्लेख किया है। अन्त में, संगीतज्ञ कवियों और गायकों को कृष्ण-काव्य में जो अपूर्ण रस माधुरी और संगीत लहरी प्राप्त हुई, उससे कृष्ण काव्य उनका कंठहार बन गया। "जयदेव, विद्यापति की सरस पदावली की परम्परा में जो सरस कृष्ण काव्य रचा गया, वह न केवल संगीतज्ञ कवियों और गायकों का कंठहार बना, अपितु गोपाल नायक, बैजूबावरा आदि प्रसिद्ध गायकों ने स्वयं भी अपनी कवि प्रतिभा से कृष्ण प्रेम की स्वर लहरी बहाई।"[3] इसी संदर्भ में आचार्य शुक्ल जी का विचार भी स्मरणीय है—"सूरसागर किसी चली आती गीति-काव्य—परम्परा का चाहे वह मौखिक ही रही हो पूर्ण विकास-सा प्रतीत होता है।"[4] कृष्ण काव्य के सुदीर्घ परम्परा के सम्बन्ध में डा. ब्रजेश्वर वर्मा का विचार है "इस प्रकार आधुनिक भाषाओं में कृष्ण-भक्ति-साहित्य की रचना होने से पहले प्राकृत और संस्कृत साहित्य की एक लम्बी परम्परा थी। इस साहित्य का लोक-गीतों तथा लोक गाथाओं से घनिष्ट सम्बन्ध था तथा

---

1. विस्तार के लिए देखिए—अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय—
डा. दीनदयाल गुप्त—पृष्ठभूमि।
2.3. विस्तार के लिए देखिए—अष्टछाप और परमानन्ददास—पृष्ठ 16,17,18
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ,
इस संदर्भ में देखिए—सूर पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य—
डा. शिवप्रसाद सिंह

वह अधिकतर गीति तथा मुक्तक रूप में था।···संभवत: संस्कृत साहित्य में उन्हें अधिक गौरव का स्थान नहीं मिल सका। परन्तु आगे चलकर परिस्थितियाँ बदल गयीं जिसके फलस्वरूप काव्य की प्रेरणा, भावना, रूप और भाषा में आमूल परिवर्तन हो गया। इस परिवर्तन के क्रममें हिन्दी कृष्ण काव्य को जन्म मिला, जिसकी प्रकृति मूलत: धार्मिक है।"[1]

(ख) अष्टछाप का महत्व और प्रभाव :

अष्टछापी कवियों का धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक, संगीतात्मक और कलात्मक प्रभाव विशेष उल्लेखनीय है। लगता है कि भक्ति रस में अपनी लेखिनी को डुबाकर इन्होंने अपनी रचनायें कीं। अत: इनके पद आज तक भक्तों को भगवत् प्रेम से रस-सिक्त करते आ रहे हैं। कर्म और ज्ञान के कठिन मार्ग से हटकर, निर्गुण का विरोध कर इन्होंने सरस सगुण भक्ति की प्रतिष्ठा की। शायद वैष्णव धर्म का प्रचार उत्तरी भारत में इन्हीं कवियों के कारण संभव हो सका। अष्टछापी कवियों ने उस युग में हिन्दुओं को कृष्ण भक्ति के रंग में रंग दिया और कृष्ण भक्ति रूपी सूत्र में पिरोया। यह इनका सामाजिक महत्व कह सकते हैं। अष्टछाप का धार्मिक महत्व भी कम नहीं है। वल्लभाचार्य जी ने हिन्दू धर्म को उस संकट काल में बचाने के लिए कठिन प्रयास किया था। अनायास ही अष्टछापी कवि उस कार्य में साधन बन गये। संकीर्तन सेवा के लिए ही इन आठों कवियों को ब्रज में श्रीनाथ जी के मंदिर में स्थापित किया गया था। अत: विभिन्न राग-रागनियों में इन कवियों ने अनेको पदों की रचना की, क्योंकि ये एक से बढ़कर एक संगीत कला के मर्मज्ञ और गवैये थे। "कीर्तनों की इस योजना में संगीत कला का विशेषत: संगीत की ध्रुपद आदि शैलियों का बहुत विकास हुआ। तानसेन जैसे विश्व-प्रसिद्ध गवैये भी सूरदास आदि अष्टछापी कवियों की कला से प्रभावित हुए। अष्टछाप की यह संगीत माधुरी संगीताचार्यों एवं गायनाचार्यों को इतनी भाई कि बड़े-बड़े उस्तादों ने हिन्दू हों चाहे मुसलमान—उसको अपनाया।"[2] नृत्य में भी इनके गीतों का अभिनय किया गया। अष्टछापी कवियों का साहित्यिक महत्व के बारे में जितना भी कहें अधूरा लगता है। ब्रजभाषा, काव्य और विशेष कर कृष्ण भक्ति साहित्य को उनकी देन अनुपम है। उन्हीं का ऋणी बनकर

---

1. हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ—डा. शिवकुमार शर्मा से उद्धृत पृष्ठ 264

2. अष्टछाप और परमानन्ददास—डा. कृष्णदेव झारी—पृष्ठ 39

रीतिकाल से लेकर आधुनिक काल तक ब्रजभाषा चलती आयी है। गद्य का यद्यपि इतना सुव्यवस्थित रूप नहीं था, फिर भी सूत्रपात इसी युग में हुआ। भ्रमरगीत, पद आदि कई परम्पराओं को परवर्ती कवियों ने इन्हीं से ग्रहण किया। माधुर्य भक्ति, वात्सल्य भक्ति, सख्य और शान्त भक्ति के साथ-साथ विनय भक्ति के क्षेत्र में ये इतने आगे बढ़ गये थे कि पीछे के कवि या भक्त केवल इनके अनुकरण मात्र लगते हैं। इस प्रकार से समस्त हिन्दी क्षेत्र और साहित्य पर अष्टछाप का गहरा प्रभाव है। अन्त में डा. कृष्णदेव झारी के इन शब्दों को मैं यहाँ प्रस्तुत करना चाहती हूँ जो अष्टछापी काव्य की सभी विशेषताओं को समेट लेते हैं—"कृष्ण चरित को लेकर इतने प्रेम-वात्सल्य, श्रद्धा और भक्ति से यह काव्य रचा गया है कि इसकी तुलना विश्व के श्रेष्ठतम काव्य से की जा सकती है। इन कवियों की प्रेरणा से कृष्ण-काव्य समस्त भारतीय भाषाओं में सर्वत्र प्रचुरता से रचा जाने लगा। कृष्ण चरित से सम्बन्धित जितना विपुल काव्य रचा गया उतना किसी अन्य अवतार या विषय पर नहीं रचा गया।"[1]

(ग) समकालीन कवि : अष्टछाप के समकालीन प्रमुख कवि तुलसीदास जी, जायसी, रहीम, गंग और हितहरिवंश जी थे।

2.3.2. ताल्लपाक के कवि :

(क) प्रेरणा : ताल्लपाक के कवि विशिष्टाद्वैत संप्रदाय में दीक्षित थे। आलवारों की रचनाएँ "प्रबन्धम्" को अपना आदर्श मान कर वैष्णव भक्ति के प्रचार के लिए ताल्लपाक के कवियों ने अपनी रचनाएँ की थी। आलवारों का साहित्य तमिल भाषा में था। इसका इन कवियों ने अनुसरण किया। प्रबन्धम्, "द्रविड़ वेदान्त" के नाम से भी प्रसिद्ध है। इसके आधार पर तेलुगु में रचनाएँ करने के कारण ताल्लपाक के कवियों को आंध्र वेदान्त कर्ता और पंचमागम सार्वभौम, की उपाधियाँ दी गयीं। वास्तव में आलवारों में प्रसिद्ध नम्मालवार (उपनाम शठगोपयति) और अन्नमाचार्य की जीवनी में कई साम्य देखकर आश्चर्य होता है। द्रविड़ वेदान्त की रचना के लिए नम्मालवार का अवतार हुआ तो आन्ध्र वेदान्त के लिए अन्नमाचार्य ने जन्म लिया। दोनों को सोलहवें वर्ष में भगवान का अनुग्रह हुआ और उन्होंने भक्ति रचानयें आरम्भ की। नम्मालवार की ही भांति अन्नमाचार्य ने भी प्रधान रूप से वेंकटेश्वर पर रचनाएँ कीं। साथ ही अन्य स्थलों के विष्णु तथा उनके अवतारों का भी गान

---

1. अष्टछाप और परमानन्ददास—डा. कृष्णदेव झारी, पृष्ठ 43

किया। नम्मालवार को भगवान विष्णु का कौस्तुभ अंश और अन्नमाचार्य को नंद कांशज माना गया हैं।"[1] आलवारों की ही भाँति ताल्लपाक के कवियों ने भी कृष्णावतार तथा दिव्य श्रृंगार का वर्णन किया।[2]

ताल्लपाक के कवियों ने साहित्य के क्षेत्र में अपनी पूर्ववर्ती सभी शैलियों को अपनाते हुए उन्हें एक शास्त्रीय रूप प्रदान किया। तेलुगु साहित्य का जन्म ही "पद" से माना जाता हैं, जो "लोक" में प्रचलित था। ताल्लपाक के कवियों ने इसी पद रचना को अपनाया। कालान्तर में इन पदों को नवकविता की संज्ञा दी गयी और पंडितों के द्वारा सराहना मिली। इन्हें वीर शैव कवियों से प्रधान रूप से धर्म के प्रचार में प्रेरणा, उत्साह एवं जोश प्राप्त हुआ। इन्होंने तरुबोज, द्विपद, सीस, रगड़ आदि छन्दों का प्रयोग किया। कवित्रय, नन्नेचोड़, पालकुरिकि सोमनाथ आदि कवियों ने देशी संगीत तथा साहित्य का उपयोग किया। ताल्लपाक के कवियों ने इन सभी से प्रेरणा ग्रहण करते हुए एक परिष्कृत एवं परिमार्जित रूप में अपने साहित्य को तेलुगु भाषा-भाषियों के समक्ष रखा। इन्होंने शैलियों की व्याख्या करते हुए लक्ष्मण ग्रंथ भी लिखे। इनसे पूर्व संगीत में भी मार्ग और देशी रीतियों से सम्मिश्रित एक परम्परा होने की संभावना है जिसे इन्होंने और भी समृद्ध बनाया। "वचन-संकीर्तनों" की प्रेरणा इन्हें "कृष्णमाचार्य" से मिली। संस्कृत में लिखे गये जयदेव के गीत गोविन्द का प्रभाव ताल्लपाक के कवियों के श्रृंगार संकीर्तनों पर स्पष्ट है। कन्नड़ के बसवेश्वर आदि वीरशैवों की रचनाओं से भी प्रेरित हुए। "जानु तेनुगु" अर्थात् बोलचाल की भाषा तो मानों इनके हाथों में मोम के समान मन चाही आकृति पा सकती थी।

(ख) प्रभाव : ताल्लपाक के कवियों का परवर्ती संगीत, साहित्य, नृत्य आदि पर गहरा प्रभाव पड़ा। इनके श्रृंगार संकीर्तनों का प्रभाव "क्षेत्रय्या" पर, आध्यात्म संकीर्तनों का प्रभाव तेलुगु आध्यात्म संकीर्तन, "रामदासु" और त्यागराजु आदि महान् परवर्ती संगीतकारों पर पड़ा। इन्होंने यक्षगान को साहित्य की श्रेणी में बिठा दिया। परवर्ती काल में लिखे गये श्रृंगारिक प्रबन्धों पर भी इनकी छाप स्पष्ट है। इन्हीं से प्रेरणा पा कर "रामामात्य", "गोविन्द दीक्षित", "वेंकटमखि" आदि ने प्रमुख लक्षण ग्रंथ लिखे। कन्नड़ के

1. अन्नमाचार्य चरित्रा की पीठिका—वेटूरि प्रभाकर शास्त्री, पृष्ठ 121, 122
2. विस्तार के लिए अन्नमाचार्य साहिती कौमुदी—एम. संगमेशम देखिए।

प्रसिद्ध संगीतकार "पुरन्दरदास" पर अन्नमाचार्य के कई संकीर्तनों का स्पष्ट प्रभाव (उनके कई संकीर्तनों पर) दिखाई देता है। ताल्लपाक के कवियों के संकीर्तन अभिनय की दृष्टि से भी श्रेष्ठ हैं।

परिमार्जित गद्य का प्रयोग स्वयं ताल्लपाक के कवियों ने किया था।

(ग) महत्व : वैष्णव भक्ति के प्रचार के लिए ही मानो इन्होंने इस पृथ्वी पर जन्म लिया। साहित्य के द्वारा भक्ति क्षेत्र में इन्होंने वैष्णव सगुण भक्ति का प्रचार किया। ये सभी सिद्ध कोटि के महात्मा, पंडित गायक और कवि थे। एकाध स्थानों पर इन्होंने विधर्मियों की कटु आलोचना भी की है। विनय, माधुर्य, सख्य, वात्सल्य आदि आसक्तियों के माध्यम से भगवान कृष्ण के प्रति समर्पण भाव व्यक्त किया। वैष्णव भक्ति के प्रचार में ही इन कवियों ने अपना तन, मन, धन सर्वस्व समर्पित कर लिया। अतः उनका धार्मिक महत्व भूला नहीं जाता। ताल्लपाक के कवियों का सामाजिक महत्व भी कुछ कम नहीं है। यद्यपि दक्षिण में हिन्दू राजाओं का ही युग था, फिर भी मुसलमानी आक्रमण हो रहे थे। ताल्लपाक के कवियों ने अपने समकालीन मुसलमानी आक्रमणों पर खेद प्रकट किया है। वर्णाश्रम धर्म के उस युग में इन्होंने उसका खुल कर विरोध किया। मुक्ति पाने के लिए ब्राह्मण और अंत्यज—सभी का समान अधिकार इन्होंने घोषित किया। कवि जैसे स्वच्छन्द जीव को मुठ्ठी में रखने का प्रयत्न करने वाले राजाओं के साथ साथ अन्यों को भी इन्होंने चेतावनी दी। उड़ीसा के गजपति राजाओं के आक्रमणों के कारण इन्हें उडिया भी सीखनी पड़ी। उन आक्रमणों के सामाजिक कुपरिणाम इन्होंने चित्रित किये। कलियुग के संदर्भ में तुलसीदास जी की ही भांति इन्होंने भी तत्कालीन परिस्थितियों का ही वर्णन किया। अपने साहित्य का अनुकरण करने वाले छोटे-मोटे कवियों का भी इन्होंने खण्डन किया।

(घ) समकालीन कवि :

पोतना, श्रीनाथ, पेद्दना तेनालिरामकृष्ण, कृष्णदेव राय, पुरंदर दास आदि महान् कवि इनके समकालीन थे।

अष्टछाप एवं ताल्लपाक के कवि सगुणोपासक थे। "दोनों की भक्ति साधना का प्रधान अंग लीला वर्णन द्वारा अपने इष्टदेव के सानिध्य व साहचर्य में अपने को तल्लीन रखकर अविच्छिन्न भगवदानुभूति का आनन्द लेना ही था। भक्त हृदय की तात्विक एकता और साधनगत लक्ष्य की समानता के कारण यद्यपि उनके प्रेरणा-स्रोत, दार्शनिक सांप्रदाय और स्वीकृत साधना मार्ग

अलग-अलग थे तो भी इनकी रचनाओं में अत्यन्त निकट सम्बन्ध और साम्य दीखता है।"[1]

ताल्लपाक के कवि विशिष्टाद्वैतवादी थे और उन पर प्रबन्धम् का प्रभाव था। अष्टछाप के कवि शुद्धाद्वैत तथा भागवत से प्रभावित थे। विज्ञ आलोचकों ने प्रबन्धम् का प्रभाव भागवत पर भी कुछ सीमा तक माना है। अत: एक बिन्दु में दोनों कवियों की भगवद् भक्ति, लीलागान आदि में साम्य मिलना स्वाभाविक है। जैसे—
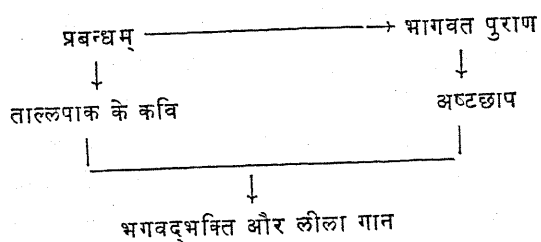
जो कुछ भेद है: वह उनके प्रेरणा स्रोत और उनकी संप्रदायगत निष्ठा के कारण हैं।

24. अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों की जीवनी और व्यक्तित्व की तुलना :

उत्तर भारत के अष्टछाप के कवि एवं दक्षिण भारत के ताल्लपाक के कवियों को अपने-अपने क्षेत्र के साहित्य के प्रतिनिधि कवि माना जा सकता है। परिस्थितियों के कारण इनमें साम्य तथा वैषम्य दोनों मिलते हैं।

"सूर एवं अन्नमाचार्य का जीवन परिस्थितियों एवं उनके संस्कारों में बहुत साम्य मिलता है। दोनों ही दरिद्र ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुए थे। दोनों को ही अपने-अपने गृहों में तिरस्कार एवं उपेक्षा का कठोर अनुभव हुआ था। सूर को दारिद्र्य के साथ अन्धत्व भी प्राप्त हुआ था। दोनों ने ही बाल्यावस्था में गृहत्याग करके अनिश्चित भविष्य की ओर प्रस्थान किया। दोनों ही गुरु कृपा से भगवान की संकीर्तन सेवा में निरत हुए। इसी प्रकार भगवद् भक्ति के माध्यय के रूप में दोनों ही ने काव्य-संगीत के माध्यम को अपनाया।"[2]

वल्लभ सम्प्रदाय में बलपूर्वक सांसारिक विषयों को छोड़ने पर आग्रह नहीं किया गया है। भक्ति वर्धिनी में श्रीवल्लभाचार्य जी ने स्पष्ट किया है

1. अन्नमाचार्य और सूरदास—एम. संगमेशम्—पृष्ठ 84
2. हिन्दी और तेलुगु वैष्णव भक्ति साहित्य—डा. के. रामनाथन्, पृष्ठ 75

"घर में रहकर भक्ति का अधिकारी साधक वर्ण और आश्रम धर्म का पालन करें, परन्तु वह अपने तन, मन, धन से प्रभु की सेवा अवश्यक करता रहे। इस रीति के अभ्यास से लौकिक विषयों से मन की आसक्ति हट जाएगी और ईश्वर में उसका प्रेम लग जाएगा। प्रभु में लगकर वे विषय अपने आप लुप्त हो जायँगे जब साधक की निर्लिप्त अवस्था हो जाए तब भले ही वह गृह त्याग कर संन्यास ले लें।[1]

अष्टछाप के कवियों ने बिना अपना वेश बदले ही वैराग्य और संन्यास का मार्ग अपना लिया था। कुछ कवियों ने गृहस्थाश्रम में रह कर भी भक्ति का साधन किया था। अध्ययन से पता चलता है कि इनमें से सूरदास जी ने बाल्यकाल से ही वैराग्य की जीवनी बिताई थी। अन्य सात कवियों में से नंददास, छीतस्वामी और गोविंद स्वामी वल्लभ संप्रदाय में आने से पहले पूर्ण गृहस्थ थे। परमानन्ददास और कृष्णदास अविवाहित रह कर माता-पिता के साथ गृहस्थी में रहते थे। बाद में इन पांचों भक्तों ने वैराग्य ले लिया था। ···कुम्भनदास और चतुर्भुजदास गृहस्थ भक्त थे और मरण पर्यन्त गृहस्थी में रह कर ही उन्होंने श्रीनाथ जी की सेवा की थी।[2]

इसी प्रकार से अन्नमाचार्य भी पहले विरक्त थे। फिर गुरु एवं माता-पिता की आज्ञा से बद्ध हो कर उन्होंने विवाह किया। परिवार में पत्नी, पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र तथा दौहित्र—सभी के साथ ग्रहस्थ-जीवन बिताते हुए भी वैराग्य को अपनाया और भगवान बालाजी की संकीर्त्तन सेवा में अपने आपको व्यस्त कर लिया। जिस प्रकार कमल का पत्ता पानी में रह कर भी पानी से नहीं भीगता है ठीक उसी प्रकार गृहस्थी में रह कर भी ये उससे तटस्थ ही रहे, जीविका चलाने के लिए खेती को अपनाया और पुरोहित बने।

सूरदास एवं अन्नमाचार्य के जीवन के सम्बन्ध में कई चमत्कार पूर्वक घटनाओं का उल्लेख मिलता है। सूरदास प्रज्ञा चक्षु थे। अन्नमाचार्य की भी महिमा अपरंपार थी। उनके चुराये गये भगवान की मूर्तियां मिल गयीं, खट्टे आम के पेड़ भगवान के लिए मीठे फल देने लगे, किसी का रोग दूर हुआ आदि आदि।[3]

दोनों ही कवियों ने ऐहिक सुख सम्पत्ति से मुँह मोड़ लिया था। सूरदास

---

1. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय—दीनदयाल गुप्त, पृष्ठ 690-91
2. वही—पृष्ठ 692
3. अन्नमाचार्य चरित्र—चिन्नन्ना—पृष्ठ 37, 43, 44

एवं कुम्भदास दोनों ने अकबर और राजा मानसिंह के द्वारा दी गयी सम्पत्ति को ठुकरा दिया था। सूरदास ने कहा—'आज पाछै हमको कबहूँ फेरि मत बुलाइयो।"[1] कुम्भनदास जी भी "भक्तन को कहा सीकरी सो काम" कह कर भविष्य में अपने को कभी नहीं बुलाने की प्रार्थना की।[2] इन्होंने बादशाह के आग्रह करने पर भी उनके यश-गान नहीं किया। ठीक इसी प्रकार ताल्लपाक के कवि भी यद्यपि राजा के आदर के पात्र थे, किन्तु इसका कभी भी उन्होंने ऐहिक भोग के लिए लाभ नहीं उठाया। उन्होंने भी साफ कह दिया था, "नरहरि का स्मरण करने वाली यह जिह्वा, प्राकृत जनों का गुण गान नहीं कर सकती। यह मस्तक केवल भगवान के सामने ही झुक सकता है। अन्यों के सामने नहीं।"[3] इस पर अन्नमाचार्य को शृंखलाबद्ध कर दिया गया तो उनकी प्रार्थना से जंजीर अपने आप टूट गयी। इसी प्रकार पेदतिरुमलाचार्य पर भी किसी राजा ने तलवार फेंकी थी तो भगवान की कृपा से वह कमल की माला बन गयी। उनकी वाणी केवल अपने आराध्य के लिए ही थी। वास्तव में भक्त कवियों ने कभी भी ऐहिक सुख सम्पत्ति और लौकिक पुरुषों का यशोगान पसन्द नहीं किया। इसके उदाहरण स्वयंभू, पुष्पदंत आदि से ले कर नम्मालवार, पोतना, अन्नमाचार्य, सूर, तुलसी[4] दादू और कुंभनदास आदि अनगिनत कवियों का दे सकते हैं। ताल्लपाक के कवियों ने राजाओं से प्राप्त सारी सम्पत्ति, जमीन आदि को तिरुपति, अहोबिलम्, श्रीरंगम आदि वैष्णव क्षेत्रों को सहर्ष समर्पित कर दिया। अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों ने कीर्तन सेवा में ही अपना जीवन बिताया।

तत्कालीन साहित्य को भक्तों व शासकों की मंडली में दोनों ही क्षेत्रों के कवि अत्यन्त आदर पाते रहे थे। अष्टछाप के कवियों की भेंट, तुलसी,

---

1. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय—(1) पृष्ठ 208
2. वही—पृष्ठ 236
3. अध्यात्म संकीर्तन—अन्नमाचार्य
4. तुलसी और अकबर के सम्बन्ध में एक कहानी प्रचलित है कि अकबर ने तुलसी से कुछ चमत्कार दिखाने के लिए कहा किन्तु तुलसी ने कुछ नहीं दिखाया तो अकबर ने उन्हें कारावास में डाल दिया। राजमहल के चारों ओर बंदरों की भीड़ जम गयी और उपद्रव मचाने लगे। लोगों ने कहा कि यह हनुमान जी का ही काम है और तुलसी का चमत्कार। तब अकबर शर्मिन्दा हो कर उन्हें छोड़ दिया।

अकबर आदि से हुई। ताल्लपाक के कवियों का अनुग्रह विजयनगर राजाओं पर था। पुरंदरदास जैसे प्रसिद्ध संगीतज्ञ से भी इनकी भेंट हुई।

बचपन से ही अष्टछाप एवं ताल्लपाक के कवियों से भगवान के प्रति भक्ति के बीज मिलते हैं। जैसे नामकरण के दिन से ही श्रीनाथ जी के दर्शन के बिना चतुर्भुजदास जी दूध भी नहीं पीते थे। वैसे ही लोरियों में भी बालाजी का नाम न लेने से अन्नमाचार्य रोदन नहीं छोड़ते थे।

अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों ने क्रमशः अपना जीवन ब्रज के श्रीनाथ जी के तथा तिरुपति के बालाजी के मंदिरों में ही बिताया। ये नित नये नये उत्सव, शृंगार त्योहार और सेवाओं का आयोजन किया करते थे। चतुर्भुजदास जी को और अन्नमाचार्य—दोनों को कृष्ण तथा बालाजी के दर्शन हुए थे।

इन साम्यों के साथ-साथ संप्रदायगत तथा प्रादेशिक भेद भी इनमें स्पष्ट दिखाई देते हैं। यद्यपि दोनों ही कवि वैष्णव भक्त ही थे किन्तु जहाँ अष्टछाप के कवियों की दीक्षा शुद्धाद्वैत में हुई तो ताल्लपाक के कवियों की विशिष्टाद्वैत में।

अष्टछाप के कवि बहुत कुछ अन्तर्मुखी थे। उन्होंने तत्कालीन समाज या परिस्थितियों के प्रति मुँह मोड़ लिया था। उनके लिए केवल—श्रीनाथ जी का मंदिर ही वैकुण्ठ था। न वे कहीं बहुत दूर-दूर तक जाते थे, न धर्म के प्रचार में वाद-विवादों में पड़ते थे। किन्तु ताल्लपाक के कवियों ने दूर तक वैष्णव भक्ति को फैलाने का महान् उद्देश्य से कार्य किया था। उनकी रचनाओं में तत्कालीन राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक व अन्य परिस्थितियों का विस्तृत वर्णन स्थान-स्थान पर मिलता है। उन्होंने विजयनगर की राजनैतिक परिस्थितियों में भाग लिया। इसके कुपरिणामों के कारण उन्हें अपना ग्राम छोड़ना भी पड़ा। अद्वैत वादियों से उन्होंने शास्त्रार्थ भी किया था।

न चाहने पर भी अष्टछाप एवं ताल्लपाक के कवियों को राजा एवं बादशाहों ने भेंट और धन सम्पत्ति दी। जहाँ अष्टछाप के कवियों ने उसे ग्रहण करने से भी इनकार कर दिया, तहाँ ताल्लपाक के कवियों ने उस धन को परमेश्वर को ही समर्पित कर दिया।

अष्टछाप के आठों कवि भिन्न-भिन्न परिवार से थे पर समकालीन थे। केवल कुम्भन दासजी और चतुर्भुज दासजी पिता और पुत्र थे। किन्तु ताल्लपाक के कवि एक ही परिवार के सदस्य थे जिन्होंने एक के बाद एक करीब-करीब 150 वर्ष तक संकीर्तन सेवा में अपना जीवन बिताया था।

चाहे जीवनी एवं व्यक्तित्व में थोड़े बहुत साम्य या वैषम्य हों किन्तु वे अनन्य भक्ति, भगवान की संकीर्तन सेवा, वैष्णव धर्म की स्थापना और श्रेष्ठ कृष्ण भक्ति साहित्य की सृष्टि में दोनों ही क्षेत्रों में अग्रगण्य हैं। अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों की जीवनी एवं व्यक्तित्व के इन साम्य तथा वैषम्यों को एक तालिका के रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है।

अष्टछाप के कवि	ताल्लपाक के कवि
साम्य :	
1. 15 तथा 16 वीं सदियों में हुए (सन् 1468 से 1585 तक)	1. 15,16 वीं सदियों में हुए (सन् 1424 से 1565 तक)
2. आठों भिन्न-भिन्न परिवार के कवि थे। केवल कुंभनदास और चतुर्भुजदास पिता-पुत्र थे। सभी समकालीन कवि थे।	2. सभी कवि एक ही परिवार के व्यक्ति थे। एक के बाद एक पीढ़ी। उनमें स्त्रियाँ भी थीं।
3. कुछ विरागी और कुछ गृहस्थ थे।	3. सभी गृहस्थ थे।
4. कुछ कवियों ने जीविका चलाने के लिए खेती बारी का व्यवसाय अपनाया।	4. खेती बारी का ही व्यावयास अपनाया।
5. केवल परमात्मा का ही गान। लौकिक पुरुषों की प्रशंसा से विमुख थे।	5. इन्होंने भी केवल परमात्मा का लीला गान किया। लौकिक पुरुषों की प्रशंसा से विमुख थे।
6. इनमें से श्रेष्ठ "सूरदास" थे।	6. इनमें श्रेष्ठ अन्नमाचार्य थे।
7. भक्ति की प्रधानता	7. भक्ति की ही प्रधानता।
8. दूर-दूर तक इनके साहित्य और भक्ति की व्याप्ति।	8. दूर-दूर तक इनके भी साहित्य और भक्ति की ख्याति फैल गयी थी।
9. श्रीनाथ जी की नयी सेवा विधियों का उत्सव, मेले त्योहार और शृंगार का आयोजन।	9. भगवान बालाजी के नित्योत्सव पक्षोत्सव, मासोत्सव, संवत्सरोत्सव और विवाह आदि का आयोजन के साथ-साथ नयी सेवा विधियों का सूत्रपात।

10. भगवान कृष्ण और नवनीत प्रिया जी का साक्षात्कार हुआ।	10. भगवान बालाजी और देवी अलमेलमंगा के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ।
11. कवि और गायक थे। नन्ददास को पंडित भी माना गया है।	11. सभी कवि, गायक और उच्चकोटि के पण्डित थे।
12. परवर्ती काल में संगीत, साहित्य तथा नृत्य कलाओं पर प्रभाव पड़ा।	12. परवर्ती काल में संगीत, साहित्य तथा नृत्य कलाओं पर प्रभाव पड़ा।

वैषम्य :

1. इष्टदेव श्रीनाथ जी।	1. इष्टदेव भगवान वेंकटेश्वर (किन्तु कृष्ण से अभिन्न)।
2. शुद्धाद्वैत में दीक्षा ली	2. विशिष्टाद्वैत में दीक्षित थे।
3. भागवत पुराण से प्रभावित।	3. प्रबन्धम् से प्रभावित।
4. ब्रज, आगरा और मथुरा तक ही सीमित क्षेत्र।	4. वैष्णव धर्म के प्रचार और प्रसार के लिए दूर-दूर तक विस्तृत पर्यटन किया।
5. राजा महाराजाओं से बिलकुल मुँह मोड़ लिया।	5. ऐहिक विषयों से मुँह मोड़ते हुए भी आवश्यकता पड़ने पर राजनैतिक परिस्थितियों में भाग लिया।
6. राजा महाराजाओं से संपत्ति का तिरस्कार किया।	6. राजा महाराजाओं से सम्पत्ति स्वीकार कर उसे मंदिरों के निर्माण तथा अन्य दैवी कार्यों के लिए ही सदुपयोग किया।

अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों का व्यक्तित्व महान् है। मध्यकालीन साहित्य और संस्कृति के विकास में इन कवियों का योगदान भी महान् है।

तृतीय अध्याय

अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों की रचनाएँ

"इन कवियों के ग्रंथों में केवल काव्य सौन्दर्य ही नहीं है, केवल संगीत का ज्ञान ही नहीं है, वरन् कृष्ण भक्ति के विविध रूप भी मिलते हैं। साहित्य प्रेमी इनके काव्य का रसास्वादन करते हैं, संगीतज्ञ स्वर-साधना करते हैं। संगीत मर्मज्ञ इनको सुन कर प्रफुल्लित होते हैं और भक्त पढ़-सुन कर परम आनन्द प्राप्त करते हैं।" (डा. कृष्णदेव झारी—अष्टछाप और परमानन्ददास)

* * *

अष्टछाप की रचनाएँ :

3.1. प्रस्तावना :

वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित अष्टछाप कवियों की रचनाओं का विस्तार पूर्वक अध्ययन हिन्दी में हो चुका है। अतः पुनरावृत्ति दोष से बचने के लिए यहाँ केवल उल्लेख मात्र ही किया जा रहा है। आठों विभिन्न कवि होने पर भी इनका वर्ण्य-विषय, दृष्टिकोण और सम्प्रदायगत साधना एक ही थी। "वास्तव में विषय और उसके प्रतिपादन की शैली आठों कवियों की बहुत अंश में एक सी है। आठों कवियों की रचनायें भक्ति-भावना की अनुभूति का प्रतिफल हैं और गेय पदों में लिखी गई है।"[1] श्रीमद् भागवत के बाल कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का भावात्मक चित्रण इनका मुख्य विषय रहा। यद्यपि भागवत से कथा के सूत्र इन्होंने लिये, फिर भी इनमें प्रबन्धात्मकता या सूत्र बद्धता नहीं है। 'उन्होंने कृष्ण चरित्र के केवल उन भावात्मक स्थालों को ही चुना है जिनमें उनकी अन्तरात्मा की अनुभूति गहर उतर सकी है।" ......"इन आठों कवियों ने बाह्य विषयात्मक (Objective) शैली का अनुकरण न करके आत्म विषयात्मक (Subjective) शैली का प्रयोग किया है। इसीलिए अष्टछाप काव्य में हृदय की स्पर्श करने वाली द्रावक शक्ति है।"[2]

3.1.1. अष्टछाप की रचनाओं का वर्गीकरण :

डा. दीनदयाल गुप्त ने इन कवियों की श्रेणी काव्य के परिमाण की दृष्टि से और काव्य कला की दृष्टि से निम्न प्रकार से की है—

1. परिमाण की श्रेणी से वर्गीकरण :

1. सूरदास	2. नंददास	3. परमानंददास
4. कृष्णदास	5. कुम्भनदास	6. गोविंदस्वामी
7. चतुर्भुज दास	8. छीत स्वामी	

---

1. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय—दीन दयालगुप्त—(2) पृष्ठ 693
2. वही—पृष्ठ 694

2. काव्य कला और भावानुभूति की दृष्टि से वर्गीकरण :

1. सूरदास	2. परमानंददास	3. नंददास
4. कुम्भदास	5. चतुर्भुजदास	6. कृष्णदास
7. छीतस्वामी	8. गोविंदस्वामी	

श्री प्रभुदयाल मीतल जी के अनुसार—"अष्टछाप में सूरदास और परमानंददास के उपरान्त नंददास की रचनाएँ भी महत्वपूर्ण हैं। काव्य परिमाण में नंददास की रचनाएँ परमानंददास के उपलब्ध पद साहित्य से कुछ अधिक हैं। उनकी कुछ रचनाओं में परमोच्य श्रेणी का कवित्व है और कुछ में साधारण कोटि का। इसीलिए सब मिलाकर उनका काव्य महत्व परमानंददास से कुछ कम है। अष्टछाप के शेष पाँच कवियों में क्रमशः कुम्भनदास, कृष्ण-दास, चतुर्भुज दास की रचनाएँ मध्यम श्रेणी की ओर गोविन्द स्वामी एवं छीत स्वामी की साधारण श्रेणी की हैं। इन पाँचों कवियों की रचनाएँ पूर्वोक्त तीनों कवियों की रचनाओं के समान नहीं है, किन्तु अन्य भक्त कवियों की तुलना में इनका काव्य भी महत्वपूर्ण है।"[1] अष्टछापी कवियों में सभी प्रकार से सूरदास, नंददास और परमानंद दास को बृहत त्रई मान सकते हैं।

3.1.2. अष्टछाप की प्रमाणिक रचनाएँ : [2]

(अ) सूरदास : 1. सूरसागर 2. सूरसारावली 3. साहित्य लहरी। इनके अलावा सूरसागर तथा साहित्य लहरी के प्रसंग तथा लम्बे पद रूप में भी प्रामाणिक रचनायें मिलती हैं। जैसे भ्रमरगीत, सूर रामायण, दशम स्कंध भाषा, सूरसागर सार आदि।

(आ) परमानन्ददास : 1. परमानंदास जी के पद, 2. वल्लभ संप्रदायी कीर्तन संग्रहों में पद 3. परमानंद सागर तथा परमानंददास जी के पद—कीर्तन संग्रह।

(इ) नंददास : रस मंजरी, अनेकार्थ मंजरी, मानमंजरी, विरह मंजरी, रूप मंजरी, दशम स्कंध, श्याम सगाई, गोवर्धन लीला, सुदामा चरित, रुक्मिणी मंगल, रास पंचाध्यायी, भंवर गीत, सिद्धान्त पंचाध्यायी, नंददास पदावली।

(ई) कुम्भनदास : वल्लभ संप्रदायी, विद्या केन्द्रों में सुरक्षित फुटकर पद इनकी प्रामाणिक रचनायें हैं। "दानलीला" इनका लम्बा पद है।

---

1. अष्टछाप और नन्ददास—डा. कृष्णदेवझारी, पृष्ठ 43 से उद्धृत
2. विस्तार के लिए देखिए—हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास—पंचम भाग तथा अटछाप और वल्लभ संप्रदाय—दीनयाल गुप्त—

(उ) चतुर्भजदास : कांकरोली तथा नाथद्वारा में प्राप्त होने वाले पद-संग्रह तथा वल्लभ संप्रदायी छपे-कीर्तन संग्रहों में प्राप्त पद तथा दानलीला इनकी रचनायें हैं।

(ऊ) कृष्णदास : वल्लभ संप्रदायी केन्द्रों में प्राप्त पद-संग्रह।

(ऋ) छीत स्वामी : वल्लभ सप्रदायी केन्द्रों में प्राप्त कीर्तन संग्रह।

(ए) गोविन्द स्वामी : वल्लभ संप्रदायी कोर्तन संग्रहों में प्राप्त पद।

"अष्टछाप काव्य का क्षेत्र सीमित है। केवल कृष्ण की विविध लीलाओं का चित्रण ही इनका विषय रहा। परन्तु इस सीमित क्षेत्र में भी भाषा, भाव, रस और शैली आदि सभी दृष्टियों से इन कवियों ने हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया। अष्टछाप काव्य की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि इसमें भाव-प्रवणता खूब पायी जाती है। अष्टछाप काव्य का भावपक्ष बहुत सबल है। जीवन के नाना पक्षों की ओर इन कवियों का ध्यान नहीं गया क्योंकि उनका उद्देश्य केवल प्रभुलीला गान ही था। इसी कारण विभिन्न प्रकार का मानवीय भावों का वैसा समावेश उसमें नहीं हो पाया जैसे तुलसीदास के काव्य में पाया जाता है। पर अपने सीमित क्षेत्र में भावों की गहराई इनमें अपूर्व है।"[1]

अष्टछाप की रचनायें प्राय: समान होते हुए भी डा. दीनदयाल गुप्त जी के शब्दों में—"इन महानुभावों की अनुभूतियों में तथा उन अनुभूतियों के भाव चित्रों में इनका अपना व्यक्तित्व विद्यामान है। प्रत्येक कवि के उपलब्ध काव्य का परिमाण भी भिन्न है। एक ने एक विषय के सम्पूर्ण अंगों पर लिखा है तो उनमें से किसी दूसरे ने उस विषय के चुने हुए अंग ही लिए है।"[2]

3.2. ताल्लपाक के कवियों की रचनाएँ :

प्रस्तावना :

पिछले अध्ययन से पता चलता है कि तेलुगु साहित्य का आरम्भ कवित्रय (नन्नया, तिक्कना, और एर्रा प्रगड़ा) का धार्मिक ग्रंथ "आंध्र महा-भारत" से हुआ था। पिछले अध्ययन से यह भी स्पष्ट है कि तेलुगु साहित्य के आरम्भिक काल में आंध्र प्रदेश पर शैव तथा वैष्णव धर्मों का प्रभाव अधिक मात्रा में था। अत: दोनों धर्मावलम्बी अपने धर्म के प्रचार के लिए "जानुतेनुगु" (अर्थात् बोलचाल की भाषा) को अपना कर उसमें नये-नये प्रयोग करते रहे।

---

1. अष्टछाप और परमानंददास—डा. कृष्णदेव झारी—पृष्ठ 41
2. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय—(2) पृष्ठ 693–94

फलस्वरूप आरम्भिक काल से ही तेलुगु भाषा में उत्तम ग्रंथों का निर्माण हुआ। अपने धर्म के प्रचार तथा प्रसार के लिए दोनों धर्मावलम्बियों ने साहित्य के साथ-साथ संगीत का भी सहारा लिया।

ताल्लपाक के कवियों ने भी वैष्णव धर्म के प्रचार के लिए तेलुगु साहित्य को वैष्णव भक्ति से भर दिया। भगवान वेंकटेश्वर के महान् भक्त कवियों का यह परिवार उस धर्म की दिव्य अनुभूति को सारे विश्व में फैलाने का व्रत ले कर साहित्य का सृजन किया। उनका साहित्य व्यापक होने के साथ साथ अत्यन्त गहरा भी है। इसका कारण यह है कि उन्होंने तेलुगु साहित्य के किसी भी शैली अथवा छन्द को छोड़ा नहीं। चूँकि उन्होंने तेलुगु के सभी काव्य रूपों में रचनाएँ कीं, उनके साहित्य के विशेष अध्ययन के आधार के लिए तेलुगु के विभिन्न काव्य रूपों को ही लेना तर्क संगत होगा। उनकी अधिकांश रचनाएँ मुक्तक तथा गेय पद शैलियों में ही लिखी गयी हैं। "मुक्तक" काव्यों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है—

तेलुगु भाषा के छन्द परक काव्यों का भी विभाजन निम्न प्रकार से किया जा सकता है—
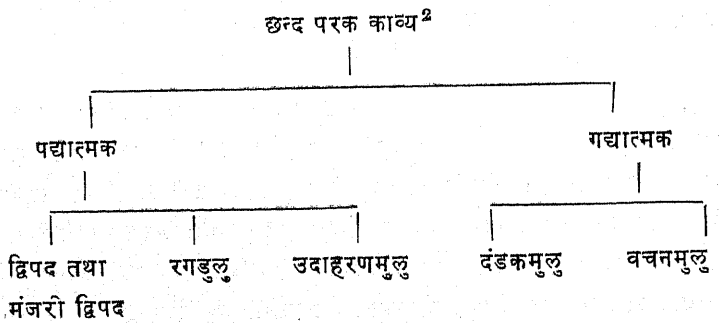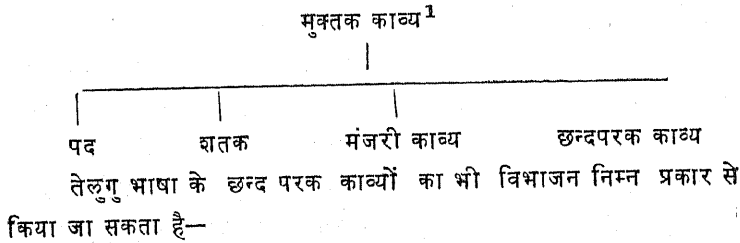
1. हिन्दी और तेलुगु वैष्णव भक्ति साहित्य—डा. के. रामानाथन्—पृष्ठ 191
2. वही—पृष्ठ 252

3.2.1. ताल्लपाक के कवियों की रचनाओं का वर्गीकरण :

ताल्लपाक के कवियों की रचनाएँ भी इसी आधार पर वर्गीकृत किये जा सकते हैं। यथा–

(अ) संकीर्तन (आ) द्विपद (इ) शतक (ई) दंडक (उ) रगड़ (ऊ) उदाहरण तथा (ए) वचन संकीर्तन। उन्होंने लक्षण ग्रंथ, स्थल माहात्मय तथा व्याख्यायें भी लिखीं।

प्रस्तुत अध्याय में इन काव्य रूपों तथा शैलियों के परिचय के परिप्रेक्ष्य में ताल्लपाक के कवियों की रचनाओं का विशेष विवरण दिया जा रहा है।

3.2.2. संकीर्तन-वर्गीकरण :

प्रस्तावना : इस गीत शैली का उद्‌भव कब हुआ यह निर्णय करना अत्यन्त दुष्कर है।...."वास्तव में यह कोई नयी शैली नहीं थी, अपितु भारतीय साहित्य में युग-युगान्तर से चली आती हुई एक परम्परा थी जिसमें विशेष विभूतियों द्वारा समय-समय पर परिवर्तन, परिवर्द्धन और संशोधन होते रहे हैं।"[1]

स्वयं अन्नमाचार्य जी के शब्दों में सत्युग में ध्यान, त्रेतायुग में यज्ञ, द्वापर में पूजा करने से जो फल अथवा मुक्ति मनुष्य प्राप्त कर सकता था वह इस कलियुग में भगवान के संकीर्तन मात्र से ही मिल जाती है। इसीलिए वैष्णव धर्म में संकीर्तन सेवा का विशेष स्थान है। संकीर्तन शब्द की व्युत्पत्ति 'सम्यक कीर्तनम्' से हुई है। कीर्तन का अर्थ है—किसी की विशेषताओं का गुणगान करना अथवा वर्णन करना। "अगोचर दिव्य शक्ति, अर्थात् भगवान के गुणों का गान करना कीर्तन कहलाता है जिसमें भक्त हृदय को भगवान के पाद-पद्मों तक ले जाने की अपूर्व क्षमता होती है।"[2] कीर्तन का सम्बन्ध अपने इष्ट के नाम गुण, रूप और लीला से है। जो गाया जाता है, उसे गेय या पद या गीत कहते हैं। अमरकोष के अनुसार पदों में भक्त के हृदय को भगवान के पास ले जाने की अपूर्व शक्ति है। प्राचीन काल में पद तथा संकीर्तन पर्यायवाची शब्द थे।

संकीर्तनों की यह परम्परा संस्कृत से आते हुए सभी भारतीय भाषाओं में अत्यन्त लोकप्रिय बन गयी। जयदेव तथा लीला शुक के कृष्ण कर्णामृत के पद आज भी बड़े चाव से गाये जाते हैं। उनका अभिनय भी किया जाता है। यद्यपि तेलुगु में पाल्कुरिकि सोमनाथ जैसे वीरशैव कवियों के द्वारा संकीर्तन

---

1. सूर और उनका साहित्य : डा. हरवंशलाल शर्मा, पृष्ठ 286
2. अन्नमय्या–त्यागय्या– डा. के. सर्वोत्तमन्, पृष्ठ 55

रचना करने का उल्लेख मिलता है, किन्तु उनकी रचनाएँ आज उपलब्ध नहीं है।[1] सोमनाथ के तुम्मेद पद, प्रभात पद, आनन्द पद, शंकर और निवालिपद तथा वेन्नलपद आदि लोक साहित्य में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। नरसिंह के भक्त कवि कृष्णमाचार्य तेलुगु के प्रथम वचन गीतकार थे। मधुर भक्ति के क्षेत्र में ये आलवारों से प्रभावित थे। इनकी प्रशंसा स्वयं ताल्लपाक के कवियों ने की है। इनसे ही प्रभावित होकर अन्नमाचार्य ने लोक शैलियों को अपनाया।

प्राचीनकाल में पद का अर्थ संगीत तथा साहित्य के सम्मेलन से उत्पन्न रचनाओं से था। "लक्षणकारों ने इसके 'वाक्' को साहित्य तथा 'गेय' को संगीत की संज्ञा दी है। इस प्रकार के संगीत तथा साहित्य अर्थात् वाक्य और गेय–दोनों को मिला कर रचना करने की क्षमता जिनमें होती थी, उन्हें "वाग्गेयकार कहते थे।"[2] आलोच्य कवियों में अन्नमाचार्य, पेदतिरुमलाचार्य तथा चिनतिरुमलाचार्य–ये तीनों महान् वाग्गेयकार थे। इन तीनों ने हजारों की संख्या में संकीर्तन लिखे। ताल्लपाक के कवियों को ही तेलुगु के सर्वप्रथम वाग्गेयकार होने का श्रेय प्राप्त है। "इसका कारण है वीर शैव कवियों के पदों की अनुपलब्धि तथा कृष्णमाचारी के संकीर्तनों में, "टेक का अभाव, गद्यात्मकता, संगीत सरणियों और लय के परिष्कृत रूप का अभाव"[3] आदि का होना है। ताल्लपाक के कवियों ने संकीर्तनों की रचना से ही संतुष्ट न हो कर उनके लक्षण भी स्पष्ट किये। उनकी इस अपूर्ण क्षमता के ही कारण इस वंश के मूल पुरुष अन्नमाचार्य को "पदाकविता पितामह" की उपाधि प्राप्त हुई।

संकीर्तन को हम आत्माश्रयी (Subjective) साहित्य के अंतर्गत रख सकते हैं। संस्कृत लक्षण ग्रंथों में इन वाग्गेयकारों के लक्षण दिये हैं।[4] यथा–
1. सुशब्द तथा अपशब्द का ज्ञान 2. व्याकरण का परिज्ञान तथा प्रामाणिक शब्दों के प्रयोग का विशेष ज्ञान 3. मार्ग तथा देशी छन्दों का ज्ञान 4. रस तथा भाव का ज्ञान 5. देशकाल वातावरण का ज्ञान 6. संस्कृत, प्राकृत तथा विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं का ज्ञान 7. कला तथा शास्त्रों में कुशलता 8. नृत्य गीत तथा वाद्यों में प्रवीणता 9. गात्र माधुर्य 10. लय तथा ताल का ज्ञान 11. गाने की विभिन्न पद्धतियों की जानकारी 12. प्रतिभा 13. लालित्य पूर्ण

---

1. ताल्लपाक कवुल साहित्य सेवा–डा. ए. विद्यावती, पृष्ठ 77
2. संकीर्तन वांङ्मयमु–पद कवितलु–वेटूरि आनंदमूर्ति, पृष्ठ 2
3. हिन्दी तथा तेलुगु वैष्णव भक्ति साहित्य : डा. के. रामनाथन्–पृष्ठ 235
4. वाग्गेयकार चरित्रमु–बालान्त्रपुरजनीकान्त राव पृष्ठ 47 से 55 के आधार पर

संगीत रचना करने की क्षमता के साथ-साथ 14. देशी रागों का विशेष ज्ञान होना आवश्यक माना गया है। इनके अलावा क्रोध तथा द्वेष का त्याग, सुहृदयता की भावना रखना इत्यादि भी वाग्गेयकारों के लिए आवश्यक लक्षण माने गये हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि ताल्लपाक के कवियों में ये सभी लक्षण विद्यामान थे। अन्नमाचार्य, पेदतिरुमलाचार्य तथा चिननिरुमलाचार्य— इन तीनों कवियों के संकीर्तन जो आज उपलब्ध हैं उनकी संख्या 15540 तक है। दुर्भाग्य से कई संकीर्तन आज अप्राप्य हैं। चिन्नन्ना ने अपने अन्नमाचार्य चरित्र में लिखा है कि उन्होंने भगवान के प्रति बत्तीस हजार कीर्तन लिखे हैं। किन्तु आज केवल 14358 ही प्राप्य हैं। पेदतिरुमलाचार्य के 1062 तथा चिन-तिरुमलाचार्य के केवल 120 संकीर्तन ही प्राप्त हैं।

अन्नमाचार्य ने संकीर्तनों की रचना अपने सोलहवें वर्ष से ही आरम्भ की थी। यह संकीर्तन सेवा मृत्यु पर्यन्त करते ही रहे। कलियुग में भव-सागर पार करने के लिए इस उपाय का सहारा लेने के ही कारण माना जाता है कि अन्नमाचार्य को तीन पीढ़ियों तक देव साक्षात्कार और सात पीढ़ियों तक मोक्षाधिकार का वरदान स्वयं श्री बालाजी से प्राप्त हुआ था। अन्नमाचार्य के पश्चात् उनके पुत्र पेदतिमलाचार्य तथा पौत्र चिन तिरुमलाचार्य ने भी इसी सेवा में अपने आपको धन्य किया।

संकीर्तन भंडार : उनकी संकीर्तन सेवा के संदर्भ में ही विशेष उल्लेख-नीय विषय यह है कि उन्होंने अपनी समस्त रचनाओं को संकीर्तन भंडार में सुरक्षित रखा। प्राय: अन्नमाचार्य स्वयं अपनी रचनाओं को ताल पत्रों पर लिखा करते थे और उन्हें सुरक्षित रखते थे।

उनका एक संकीर्तन इस प्रकार है कि—हे भगवान तुम्हारे पाद पद्मों की ये संकीर्तन रूपी पुष्पों से पूजा कर रहा हूँ। केवल एक ही संकीर्तन हमारा उद्धार करने के लिए अधिक है। बाकी उसी संकीर्तन भंडार में ही पड़े रहने दो।[1]

बाद में उनके पुत्र पेद तिरुमलाचार्य ने इन संकीर्तनों को ताम्र पत्रों पर लिखवाया था। कभी-कभी वैष्णव धर्म के प्रचार के लिए दूर-दूर श्रीरंगम्, अहोबिलम् आदि वैष्णव क्षेत्रों तक भेजने के लिए किसी किसी संकीर्तन् की दो-दो, तीन-तीन प्रतियाँ भी लिखवायी गयी थी। आज भी तिरुपति क्षेत्र के मंदिर की चहार दीवारी में ताल्लपाक कवियों की एक अलमारी है। उसके

1. आध्यात्म संकीर्तन—सं. 338

दोनों ओर अन्नमय्या तथा पेद तिरुमलाचार्य की मूर्तियाँ हैं। उस अलमारी में ताल्लपाक कवियों की सभी रचनाओं के ताम्रपात्र रखे हुए हैं। साथ-साथ मंदिर के दीवारों पर स्वर सहित लिखवाया था।

ताल्लपाक कवि प्रकांड पंडित थे। वे संस्कृत व देशी तेलुगु दोनों में संकीर्तन लिखने में कुशल थे। ताल्लपाक के कवियों के संकीर्तन अध्यात्म और शृंगार नामक दो प्रकार के हैं। अन्नमाचार्य के पौत्र चिन्नन्ना के अनुसार अन्नमाचार्य ने पहले शृंगार एवं पश्चात् अध्यात्म संकीर्तनों की रचना की थी। शिला लेखों से यह जानकारी होती है कि पेद तिरुमलाचार्य एव चिन तिरुमलाचार्य ने पहले अध्यात्म संकीर्तनों की रचना की थी। इन संकीर्तनों को विषय-वस्तु के अनुसार, गाने की विधि के अनुसार एवं भाषा के अनुसार निम्न प्रकार से वर्गीकरण कर सकते हैं।[1]

1. ताल्लपाक कवुल पदकवितलु—भाषा प्रयोग विशेषालु
—वे. आनंदमूर्ति, पृष्ठ 544, 545

अन्नमाचार्यजी के संकीर्तनों का ताम्रपत्र

संकीर्तन भंडार (तिरुपति)

विषय-वस्तु के आधार पर वर्गीकरण :
संकीर्तन पद रचनाएँ
शिष्ट रचनाएँ (भाव के आधार पर)
लोक (व्यवहार में जो हैं)
श्रृंगार संकीर्तन
अध्यात्म संकीर्तन
विप्रलंभ
संयोग
तात्विक
लौकिक
स्थायी भाव-रति
मुख्य भक्ति
गौण भक्ति
राजनैतिक
सामाजिक
विभाव-अनुभाव आदि संचारी सामग्री स्वकीया नायिका : दिव्या आदि भेद, प्रकारान्तर भेद मानवती भेद अष्टविधि नायिकायें, चतुर्विध अंगनाएँ, श्रृंगार-आभास, विप्रलंभ की अवस्थाएँ, श्रृंगार सहकारिणियाँ-सखी-दूती, अभिनय के योग्य पद
स्थायीभाव भक्ति
एकादश भक्ति भेद शरणागति, प्रपत्ति, नाम संकीर्तन, स्वामी के अनंतगुण, अवतार अंश, आलयों के उत्सव, सेवाएँ, त्योहार, विविध देवी-देवताओं का गान
समकालीन परिस्थितियाँ
निजी (व्यक्तिगत) धार्मिक विश्वास रीति-रिवाज नीति-नियम
एललु, जाज़र, वेन्नेल, चंदमामा, लालि, उय्याल, डोला, बोल, जो जो, जे जे, जय जय, सुव्वि, विजयभव शोभन, मंगल, वैभोग मेलुकोलुपु, पवलिपु, कूगुगु, नलुगु, दंपुल्लु, कोट्नालु, गुज्जेनगूल्ल, चंदमामा, गुटगलु, निवालुलु, आरतुलु, मंगलारतुलु जयमंगलालु, अल्लोनेरेल्लु, चागु भला, सास मुखा, अवधानमुलु, तंदान, चित्तमा, मनसा, बुद्धि आदि संबोधन ।

ताल्लपाक के कवियों के प्रत्येक पद में पल्लवि (टेक) और अनुपल्लवि दोनों प्राप्त होते हैं।[1] उनके संकीर्तनों में जैसा कि ऊपर के वर्गीकरण में दिया गया है, लोकगीतों की सभी शैलियाँ मिलती है।

3.2.2.1. आध्यात्म संकीर्तन :

(अ) अन्नमाचार्य के अध्यात्म संकीर्तन :—

भक्ति साधना में नाम और लीला दोनों प्रकार के संकीर्तनों का महत्वपूर्ण स्थान है। ताल्लपाक के कवियों के संकीर्तन वैष्णव भक्ति के उत्कृष्ट उदाहरण है। अपनी मुंजल वाणी को उन्होंने सरस रूप में बहाकर "हरि-संकीर्तन" में ही सारा जीवन बिता दिया था। अन्नमाचार्च जी के शब्दों में संकीर्तन की की महानता इस प्रकार है—

"अन्नि मंत्रमुलु निंदे आवहिंचेनु
वेन्नतो नाकु गलिके वेंकटेशु मंत्रमु"[2]

अर्थात् सभी मंत्रों का सार विष्णु (वेंकटेश्वर) संकीर्तन है। नारद, प्रह्लाद, ध्रुव तथा विभीषण आदि भक्तिगण ने इसी मंत्र का सहारा लिया था। वही मंत्र आज हमारे लिये भी भवसागर पार करने के लिए एक मात्र उपाय है। इस प्रकार उन्होंने जिस मंत्र को अपनाया था उसे सारे संसार को ढिढोरा पीटकर उपदेश देते हैं। पुराण तथा इतिहास भी इसके साक्षी हैं कि पहाड़ जैसे घोर पाप को भी "हरि" नाम स्मरण खंड-खंड कर देने में समर्थ है।

"अंतरंगमुन हरि दलचिन चालुनु
अंतटि मदि पनुलातडे मेरुगु"[3]

अर्थात् अंतरंग में हरि का स्मरण मात्र कर अपने सभी कार्यों को उन्हीं पर छोड़ दें तो वही भगवान् हम सबकी रक्षा करेगा। जिस प्रकार "मार्जाल किशोर न्याय" में बच्चे का सम्पूर्ण भार माँ ही ग्रहण करती है, उसी प्रकार भक्त भी अपना सारा भार भगवान को सौंपकर निश्चित रूप से हरि स्मरण में लग जाता है।

अन्नमाचार्य हरि भक्ति में जात, कुल या शील को महत्वपूर्ण नहीं मानते। वे अजामिल आदि का उदाहरण देते हैं। "जिस की जिह्वा पर हरि

---

1. आंध्र वाग्गेयकार चरित्रमु—बालांत्रपु रजनीकान्तराव के आधार पर।
2. अध्यात्म संकीर्तन-अन्नमाचार्य
3. अध्यात्म संकीर्तनलु—अन्नमय्या, पृष्ठ 1 (स्वर सहित)

नाम है, वह जीव चाहे किसी भी जात का क्यों न हो, ह न नहीं है। इसी प्रकार अन्य संकीर्तन में कहते हैं—

"ब्रह्म मोक्कटे पर ब्रह्म मोक्कटे
कंदुवगु हीनाधिकमु लिंदुलेवु
अंदरिकि श्री हरे अंतरात्मा"[1]

अर्थात् परब्रह्म एक ही है। इस संसार में समस्त जीव एक ही हैं। सभी के लिए श्रीहरि ही अंतरात्मा हैं। जात-पांत को वे केवल शरीर के लिए ही मानते हैं, किन्तु आत्मा के लिए नहीं।

अन्नमाचार्य के संकीर्तनों में वेंकटेश्वर के अलावा अन्य विष्णु अवतारों की कथायें तथा प्रसंगों की छटा भी प्राप्त होती है। जैसे दशावतार, राम, कृष्ण, नारसिंह, विट्ठल, कांचि के वरदराज, चेन्नकेशव स्वामी, मदनगोपाल, श्रीरंगनाथ आदि कई देवताओं के सुन्दर वर्णन प्राप्त होते हैं।

रामायण सम्बन्धी तो कई संकीर्तन देख कर लगता है कि शायद इन्होंने पूरी रामायण की ही रचना की होगी। एक कीर्तन में भगवान राम से प्रार्थना करते हैं—"हे राम। जिस प्रकार तुमने रावण के सिर खण्डन किया था उसी प्रकार आज मेरे पापों का भी खण्डन करो। कुम्भकर्ण आदि पर जिस प्रकार तुमने विजय पायी थी, उसी प्रकार मेरी इन्द्रियों पर भी विजय पाना। शिव धनुष की भांति मेरे दुर्गुणों को भी भग करना। विभीषण की भांति मुझे भी शरण दो।"[2]

एक ही कीर्तन में संपूर्ण रामकथा के कहने के भी उदाहरण हैं। जैसे—

"शरणु शरणु विशेष वरदा.........
मारीच सुबाहु मद मर्दन ताटका हर.........
वालि विग्रह सुग्रीव राज्य स्थापक
लालित वानर बल लंका प्रहार
पालित सवनाहल्य पाप विमोचक
पौलस्त्य हरण राम बहु दिव्य नाम। ...."[3]

एक अन्य संकीर्तन में वे कहते हैं—"लोकाभिराम को अपना रक्षक जान कर पूजा करो। चराचर जगत् के कर्ता ये राम ही हैं। मांगने से ही हमारी

---

1. अध्यात्म संकीर्तनलु—अन्नमय्या, दूसरा भाग—संकीर्तन 384
2. अध्यात्म संकीर्तनलु—अन्नमाचार्य—भाग दो—सं. 437
3. वही—220

इच्छाओं की पूर्ति कर देते हैं। इसमें दशरथ के घर राम का जन्म, शिव धनुर्भंग, अहल्या का उद्धार, जटायु का मोक्ष, रावण वध, सेतु बंधन विभीषण का राज्याभिषेक आदि का वर्णन है।[1]

इन्होंने संस्कृत संकीर्तनों की रचना में भी अपनी प्रतिभा दिखाई है। इनके संस्कृत संकीर्तनों को भी अध्यात्म तथा शृंगार संकीर्तनों की श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं। प्रथम श्रेणी में अवतारों का वर्णन, दार्शनिक, स्तुतिपरक कीर्तन हैं तो द्वितीय श्रेणी में प्रधान रूप से मधुराभक्ति का वर्णन है।[2] वामन के सुन्दर रूप का वर्णन है—

पृथुल हेम कौपीन धर:
प्रथित वटुर्मेबलम् पातु।...
तरुण: छत्री दण्ड कमंडलु
धर: पवित्री दया पर:
सुराणां संस्तुति मनोहर: स्थिरस्सुधीर्मे धृति पातु"[3]

विष्णु के अवतार व वैष्णव देवी तथा अन्य देवताओं के लीलागान के साथ-साथ कुछ संकीर्तनों में विष्णु भक्तों की महिमा का भी गान है। जैसे प्रह्लाद, ध्रुव, नारद, हनुमान,[4] विभीषण आदि के उदाहरण पुराण तथा इतिहासों से लिये गये हैं। वैष्णव धर्म में हरि की ही नहीं, हरि भक्तों की भी सेवा उत्तम मानी गयी है जिसे "दास दासोहम्" कहा जाता है। एक ही कीर्तन में इन सभी भक्तों का सुन्दर उदाहरण हैं—

"अति सुलभं विदे श्री पति शरणमु
अंदुकु नारादुलु साक्षि..."[5]

भगवान विष्णु की शरण ही सबसे सुलभ उपाय है, इसके उदाहरण नारद आदि हैं। इस ब्रह्मानन्द के अच्छे उदाहरण वेदों में प्राप्त होते हैं। हे जीव! तुम्हें भगवान के लिए बहुत शोध कर थक जाने की आवश्यकता नहीं। हरि तुम्हारे लिए सहारा है, जिसका साक्षी प्रह्लाद है। ध्रुव का उदाहरण

---

1. अध्यात्म, शृंगार संकीर्तन—अन्नमाचार्य (स्वर सहित)—दूसरा भाग 339
2. अन्नमय्या—त्यागय्या—डा. के. सर्वोत्तमन्—पृष्ठ 40 के आधार पर
3. अध्यात्मक, शृंगार संकीर्तन—अन्नमाचार्य (स्वर सहित)
—दूसरा भाग पृष्ठ 290
4. अन्नमाचार्य हनुमत्संकीर्तनलु—डा. के. सर्वोत्मन् के आधार पर
5. अध्यात्म संकीर्तनलु—अन्नमाचार्य—भाग दो—संकीर्तन, 41

है। सुख दुखों में थककर सम्पूर्ण रूप से हरि की करूणा ही मानने वाले अर्जुन को हम जानते हैं। इसी प्रकार व्यास, सनक सनंदन, बलि आदि के सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं।

जो हरि भजन नहीं करता उसका जीवन व्यर्थ है। जैसे—

"हरिगोलुवनि कोलुवुलु मरि यडवि गासिन वेन्नेल्लु......
मरुगुनिकि गानी पूवुल पूजलु मगडुलेनि सिंगारमुलु"[1]

अर्थात् वह जीवन वन में पड़ने वाली चाँदनी या विधवा के शृंगार के समान व्यर्थ है।

महाप्रलय के समय तीनों लोक जलमय हो गये थे। उस समय वट पत्र सोते हुए उस परमात्मा की लीलाओं का वर्णन किया है। यह संकीर्तन संगीत मर्मज्ञ भी अति चाव से गाते हैं—

"दिब्बलु वेट्टुचु देलिन दिदिवो
उब्बु नीटिपइ नोक हंसा...[2]

तिरुपति में स्थित यही परमात्मा संपूर्ण जीवराशि में प्रकाशित होते हैं और अपने शरण में आये जीवों की रक्षा करने वाले ये राजहंस हैं।

अपने शरीर को एक मंदिर से तुलना करते हुए अन्नमाचार्य नित्य पूजा (मानसिक) करने का सुन्दर रूपक प्रस्तुत करते हैं। यथा—"अन्तर्यामी जी मुझमें बसा है" उसके लिए मेरा शरीर ही मंदिर है, सिर ही शिखर है। हृदय ही आसन है, दृष्टि ही दीपक है, वचन ही मंत्र है, जिह्वा ही घंटी है और विभिन्न प्रकार के स्वाद ही नैवेद्य हैं।

यहाँ उनके सभी संकीर्तनों का उदाहरण देना असम्भव ही है। अतः अन्त में उनके संकीर्तनों के सम्बन्ध में तेलुगु के मान्यवर विद्वानों के मंतव्य प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

"अन्नमय्या से पूर्व दक्षिण भारत में संस्कृत संकीर्तन किसी ने रचा नहीं था। केवल संगीत से सम्बन्धित लक्षणों का निर्देशन जायप सेनानी, शारंगदेव विद्यारण्य आदि ने किया था। स्तुति परक, पांडित्य परक, संगीतात्मक, लोक साहित्य पर आधारित संकीर्तनों की रचनाएँ अनगिनत संख्या में नये-नये रागों में बाँधना, संगीत तथा साहित्य को दो अश्वों की भांति चला सकना, पदों को शिष्ट साहित्य की श्रेणी में बिठाना आदि इनकी विशेषताएँ

---

1. वेटूरी आनन्द मूर्ति से उद्धृत, पृष्ठ 208
2. अध्यात्म, शृंगार संकीर्तन (स्वर सहित) द्वितीय भाग, पृष्ठ 201

हैं।"[1] इतना ही नहीं, "उन्हें संस्कृत साहित्य का अपार ज्ञान था। साथ ही अदिवन् शठगोपयति से वेद-वेदान्तों का अध्ययन किया। इसलिए उनके संकीर्तनों में वेद, पुराण और इतिहासों के संस्कृत वाक्यों के उद्धरण प्राप्त होते हैं। अन्य वाग्गेयकारों में इस परिमाण में नहीं प्राप्त होते।"[2]

"उनकी कविता शक्कर की गुड़िया है। अत: सर्वत्र मिठास ही मिठास। उनका संगीत अर्थ और भाव प्रधान है। ऐसा लगता है कि इस पृथ्वी पर कभी-कभी गंधर्वों का जन्म हो जाता है। अन्नमाचार्य भी वैसे ही एक गंधर्व थे, जिन्होने उसी जन्म में मुक्ति पायी।"[3]

(आ) पेदतिरुमलाचार्य के अध्यात्म संकीर्तन :

श्री अन्नमाचार्य ने अपने स्वर्गवास के अवसर पर अपने पुत्र पेदतिरुमलय्या से अनुरोध किया था, "मेरे पश्चात् तुम भी प्रति दिन एक संकीर्तन भगवान को समर्पित करना।" उसी प्रकार पेद तिरुमलय्या अपने जीवन भर संकीर्तन सेवा करते रहे। उन्होंने अपने पिता के सकीर्तनों के ताम्रपत्र पर अ. चा. की संज्ञा तथा अपने सकीर्तनों के ताम्रपत्र पर ति. चा. की संज्ञा दी थी। इतना ही नहीं, पत्तों की लम्बाई तथा चौड़ाई में भी भेद रखा था, ताकि दोनों के मिल न जायें। इनके भी संकीर्तन अध्यात्म तथा शृंगार संकीर्तनों के रूप में विभाजित कर सकते हैं।

इन्होंने भी अपने संकीर्तनों में भगवान वेंकटेश्वर, विष्णु, आलवार, राम, कृष्ण, दशावतार,[4] नरसिंह वामन विट्ठल[5] आदि कई देवताओं का स्मरण किया है। विशिष्टाद्वैत सम्बन्धी कई संकीर्तन, वैष्णव धर्म, रामानुज की दार्शनिक भक्ति आदि कई तत्वों के संकीर्तन हैं। यद्यपि सभी का विवरण देना सम्भव नहीं है, फिर भी कुछ मुख्य अंशों के उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

इन्होंने स्थान-स्थान पर व्यक्त किया है कि "हे भगवान्! मैं तो पापी हूँ। यह जानते हुए भी तुम्हारे शरण में इसलिए आया हूँ क्योंकि मुझे मालूम है कि तुम अपने शरणागतों को पार करा देते हो।" वे पूर्ण रूप से विश्वास करते हैं कि विष्णु के दासों का कभी बाल भी बांका नहीं हो सकता।

---

1. अन्नमय्या—त्यागय्या—के. सर्वोत्तमन्, पृष्ठ 37
2. वही—पृष्ठ 38
3. तेलुगुलो पद कवितलु—पु. नारायणचार्युलु, पृष्ठ 12
4. अध्यात्म संकीर्तन—पे. तिरुमलाचार्य—कीर्तन 168
5. संकीर्तन—432

एक संकीर्तन में अत्यन्त भावुकता से कहते हैं—

"अल्लनाडु बालुडवै आवुल गोचेवेल
चिल्लर दूड़ नैते चेरि कातुवुगा"[1]

अर्थात् जब तुम ब्रज में नन्हें बालक बन कर गायों को चराते थे उस समय मुझे भी उनमें से एक बछड़ा बन जाना था, या एक गोपी बनना था ताकि मुझे भी तुम अपना सकते। उसी प्रकार रामावतार में एक पत्थर या एक वानर भी बनता तो भी तुम्हारी कृपा का पात्र बन जाता था। इस पद को पढ़ने पर रसखान की पंक्तियाँ अवश्य स्मरण आती हैं—

"मानुष हों तो वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बसु मेरो चरौं
नित नन्द की धेनु मंझारन।"[2]

दूसरे स्थान पर वे कहते हैं—हे भगवान अब तुमसे और कुछ नहीं चाहता, जो कुछ देना था तुमने मुझे पहले ही दिया है। अब केवल शरणागति की ही चाह है। उनका कहना है कि मुझे तुम्हारा सामीप्य, सारुप्य, सायुज्य, या सालोक्य की आवश्यकता नहीं। केवल तुम्हारे दासों की सेवा करने का सौभाग्य मिले ऐसा मुझे वर दो। क्योंकि वैष्णव धर्म में विष्णु से भी श्रेष्ठ विष्णु भक्तों को माना जाता है। अत: ये स्थान-स्थान पर विष्णु भक्तों की सेवा तथा भक्ति की उत्तमता स्वीकारते हुए, नारद, अंबरीष, प्रह्लाद, ध्रुव, वसिष्ठ, सनक, सनंदन, अक्रूर, हनुमान आदि भक्तों की गाथाओं का महिमा गान करते हैं।

एक अन्य स्थान पर भगवान को चुनौती देते हैं कि "क्या तुम अपनी थोड़ी सी कृपा का मुझ पर प्रसारण करोगे? इससे तुम्हारी महिमा में घाटा थोड़े ही पड़ जाएगा? सारे संसार पर अपनी किरणों का प्रसार करते हुए भी भगवान सूर्य के किरणों में कमी कभी नहीं आती।"[3]

सभी से अनुरोध करते हैं—"रामनाम का जप करो जिसके कारण कलि दोषों का शमन होगा। रामनाम तो शान्तिकारक है, सुख देने वाला है।[4] एक अन्य कीर्तन में रामायण की घटनायें—शिवधनुष का भंग, अहल्या का उद्धार, राक्षस संहार, जटायु की मुक्ति, विभीषण का राज्याभिषेक, भार्गव राम का गर्व भंग आदि का उल्लेख करते हैं।[5]

---

1. संकीर्तन—6 (भाग—21) 2. रसखान ग्रंथावली सटीक—1
3. संकीर्तन संख्या—22 4. वही—43 5. वही—23

कहीं-कहीं उन्होंने यह संशय प्रकट किया है कि हे भगवान ! मैं तो सिर्फ तुम्हारी ही शरण में आया हूँ। मालूम नहीं तुम मेरा उद्धार किस प्रकार करोगे। तुम्हें प्रसन्न रखने के लिए मेरे पास कुछ भी उपाय नहीं है। समुद्र लांघने के लिए मैं हनुमान नहीं हूँ, मीठे फल चखाने के लिए न ही मैं शबरी हूँ, सीता जैसी कन्या देने के लिए न ही मैं राजा जनक हूँ। तुम्हें अपनी पीठ पर बिठाने के लिए गरुड़ भी नहीं हूँ। तुम्हें सुख देने के लिए न ही मैं एक गोपिका हूँ। अपने गान से सम्मोहित करने के लिए न ही मैं नारद हूँ। या जटायु के समान तुम्हारे कार्य में अपनी बलि भी नहीं दी है। फिर भी मैं तुम्हारी शरण में आया हू। मेरा उद्धार करो।"[1] इस संकीर्तन का प्रभाव परवर्ती वाग्गेयकार श्री पट्नम सुब्रह्मण्यम अय्यर की रचना "परिदान मिच्चिते पालितु वेमो" में स्पष्ट दिखाता है जिसमें भी इसी प्रकार के भाव व्यक्त किये गये हैं।

ये भी वर्णाश्रम धर्मों को व्यर्थ बताते हुए गुह, गजेन्द्र, घंटाकर्ण, वाल्मीकि आदि का उदाहरण देते हैं जिन्होंने भगवान के शरण से ही मोक्ष पाया था।[2]

जब तक हरि के प्रति भक्ति तथा श्रद्धा मन में नहीं आती तब तक जप तप आदि बाह्याडम्बर व्यर्थ मानते हुए एक सुन्दर उदाहरण दे रहे हैं–

"मिक्किलि नीट मुनिगे मीनुकदि स्नानमा
कोक्केर ध्यानमु सेसुकोरे अदि योगमा
निक्कि मेक आकुमेयु निड्ु अदेतपमा······"[3]

अर्थात् गहरे जल में डुबकी लगाने पर मीन के उस डुबकी को स्नान नहीं कह सकते हैं। बक का एक पैर पर रहना "योग" भी नहीं है। बकरे का सदा पत्ते खाना "तप" नहीं। सदा लटके रहने वाले चमगादड़ "सिद्ध" नहीं। शेर आदि क्रूर पशु गुफाओं में रहने पर भी ऋषि उसी प्रकार नहीं बनते जिस प्रकार पक्षी आकाश में विहार करने पर भी देवता नहीं तथा वन में रहकर भी वानर "वनवासी" नहीं कहे जाते। वृक्षों के न बोलने को मौन व्रत नहीं कह सकते। कपड़े न पहनने पर बालक "दिगम्बर" नहीं बनते।

आशा, मोह, काम, भ्रांति, क्रोध आदि विकारों में पड़कर जीव अपने मार्ग से भटक जाता है। गुरुपदेश पाकर भगवान की कृपा का पात्र बन सकने के उदाहरण[4] तथा गुरु के प्रति श्रद्धा, गुरु की महिमा का वर्णन आदि के भी कीर्तन प्राप्त होते हैं।

---

1. संकीर्तन संख्या–26 2. वही–31 3. वही–56 4. वही–58

ये कहते हैं कि ज्ञानियों को मुक्ति हरिनाम में ही प्राप्त होती है। मोक्ष आकाश, पाताल या पृथ्वी कहीं नहीं है। वह तो है "श्रीकांत का स्मरण करने वाले भक्त के मन में।" अमृत न ही सुरों के पास है, न ही जलधि में। वह है तो, "हरिदासों की पूजा करने वाले भक्त के हाथों में।" इसी प्रकार सुख "शंख चक्र की मुद्रा धारण करने वाले ज्ञानी के देह में है।"[1] हरि की शरणागति ही को वे औषधि मानते हैं।[2]

अन्यों की सेवा कर जीने को वे उचित नहीं मानते हैं। उससे श्रेष्ठ अरण्य के पशु पक्षी या वृक्ष बन कर जीना मानते हैं।[3] धन के लोभ में राजाओं या नरों की सेवा करना भी इन्हें पसंद नहीं था।[4] अद्वैत का खंडन भी ये अत्यन्त तार्किक रूप से करते हैं।[5] केशव, अच्युत, जनार्दन आदि विष्णु के नाम लेकर श्रृंगार के रूप में संकीर्तन लिखा है तो कहीं-कहीं एक कीर्तन में सभी के नाम। जैसे—संकीर्तन "मच्चकूर्म वराह मानुश्य सिंह वामना, इच्च राम राम राम हितबुद्धि कालिकी"[6] तथा "शंकम नीवु साक्षि चक्रम नीवु साक्षि वंकलाड़ भुजमुल ब्रासुकों टिमिमुन्नु"[7] संकीर्तन—238 से 254 तक केशव के नामों के संकीर्तन श्रृंखला के रूप में लिखे गये हैं। भगवान विष्णु की व्यापकता के विषय में कहते हैं—"सप्तऋषि इसी देव का ध्यान करते हैं, शेष नाग इन्हीं की शय्या बनता है, ब्रह्मा के पिता है, वेद इसी को ढूँढते हैं, नारद शुक आदि मुनि भी इसी देव का भजन करते हैं।"[8]

कृष्ण जनन का सुन्दर संकीर्तन एक है जिसमें कवि ने अत्यन्त भक्ति और भावुकता से कृष्ण लीलाओं का वर्णन किया है—"श्रावण बहुला अष्टमी के चंद्रोद्रय के समय कृष्ण का जन्म हुआ। वह कालिया नाग का बैरी ही कंस के लिए तो अशनिपात ही है। तृणावर्त के लिए यह तो काल यम तथा "साल" वृक्षों के लिए कुल्हाड़ी है। शकटासुर लिए कृपाण, बकासुर के प्रति आरा, धेनुकासुर के लिए बलवान् रस्सी तथा कुक्कुटासुर के प्रति मानो भूत ही हैं। किन्तु गोपिकाओं के लिए कल्प वृक्ष हैं तो अक्रूर के लिए मानो मीठे फलों का रस ही हैं।[9]

अर्थात् प्रभु क्रूरों तथा दुष्टों के लिए मारणायुध हैं तो भक्तों के लिए अत्यन्त उदार। भक्तों को सदा चिन्मयानंद प्रदान करते हैं। हाँ,

---

1. संकीर्तन संख्या—60
2. वही—61
3. वही—86
4. वही—87
5. वही—112
6. वही—168
7. वही—169
8. वही—190
9. वही—191

अन्त में कवि कृष्ण को अपने इष्टदेव वेंकटेश्वर से एकाकार करना नहीं भूलते ।

विष्णु के गुण तथा नाम महिमा का भी वर्णन है । जैसे "स्मरण मात्र से तुम्हारा दैव मिल जाता है । सुलभ रूप से मिलने वाले हरि के लिए शोध करो । उस नाम को लगातार जपने से वैकुण्ठ धाम की प्राप्ति हो जाती है—यही श्री वेंकटेश्वर हैं । ब्रह्मादि देवताओं के लिए भी यही मार्ग है ।"[1] तुम भी अतः इस मार्ग से हटना नहीं । आपके गुरु रामानुज के प्रति उन्होंने अत्यन्त भक्ति के साथ लिखा है—"ये सभी से उन्नत हैं क्योंकि सर्वलोकों के शास्त्रों को पृथ्वी पर लाये हैं । भगवान विष्णु के भक्ति के अपर अवतार रामानुज हैं तथा सुज्ञान का ये वास स्थान है ।"[2]

कुछ संकीर्तनों में भगवद्गीता, वेद-शास्त्र, लोक आदि की भावनायें ही नहीं वरन् उनके वाक्यों को भी यथा रूप से ग्रहण किया है—जैसे "तद्विष्णो : परमपदं, मामेकं शरणं वजः, योग क्षेमं व हाम्यहम्" आदि आदि ।

देखिए एक स्थान पर भगवान की अपार कृपा को सुन्दर उदाहरणों से प्रस्तुत कर रहे हैं—"हे भगवान ! तुम्हारे जैसे दाता तो कोई मुझे दिखाई नहीं देता है । नन्हें से ध्रुव की तपस्या पर संतुष्ट होकर तुमने उसे "ध्रुव लोक" का अधिपति ही बना दिया । केवल यज्ञ का बुलावा देने वाले अक्रूर को तुमने अपना निज रूप दिखाने कृपा की । अंबरीष के केवल उपवास पर अपने उसकी चक्र से रक्षा की । छुटपन की गोपिकाओं को तुमने इह तथा पर दोनों लोकों के सुख दे दिये हैं । केवल गुह की नाव में चढ़कर उसे तुमने भवसागर से पार करा दिया । हे वेंकटेश्वर ! तुम अपने भक्तों पर अत्यन्त उदारता से वरदान तथा कृपा का प्रसारण कर देते हो ।"[3] कितना सुन्दर संकीर्तन है यह ।

कुछ संकीर्तन पूरे संस्कृत शब्दों से दंडक जैसे लगते हैं ।[4]

अपने पिता के ही समान इनका भी विश्वास है कि हरिदासों की जात-पाँत से कुछ सम्बन्ध नहीं, उनका तप ही उनकी महानता है ।

"छोटे से कौए के कारण महान् अश्वत्थ वृक्ष का जन्म होता है । सीप से मोती निकलते हैं, तो मामूली पत्थरों के बीच ही हीरे होते हैं । मक्खियों के कारण मधु बनता है तो कीचड़ में ही कमल उपजता है तथा कीड़ों से ही मूल्यवान रेशम निकलता है ।"[5] अतः ज्ञानी, हरिदास, पुण्य पुरुष आदि का

---

1. संकीर्तन—206 2. वही—220 3. वही—271
4. वही—235 5. वही—285, 235 आदि

जन्म कहाँ हुआ है, इसकी क्या चिन्ता ? वे तो भगवान के भक्त हैं, बस इसी से अपना नाता है। कबीरदास भी कहते हैं–

"जात न पूछो साधु की, पूछ लीजिये ज्ञान।"

'हे भगवान इस सृष्टि के तुम ही कर्ता तथा भर्ता हो'–कहते हुए कवि कुछ तर्क पूर्ण प्रश्न पूछते हैं–"तुमने जीवों को स्वतंत्रता क्यों दी ? असुरों को पाप, अमरों को पुण्य तुमने ही दिया था। क्या तुम सभी को पुण्यात्मा ही नहीं बना सकते थे ? तुमने पाण्डवों को जय तथा कौरवों को पराजय दी थी। इस प्रकार से भूभार कम करने से अच्छा था उसी प्रकार से पैदा करते ताकि उनके मध्य वैर ही न होता। कुछ व्यक्तियों को अज्ञान कुछ को सुज्ञान, कुछ को पापी, कुछ को पुण्यात्मा पैदा करने से अच्छा सभी को अच्छे ही पैदा करते थे तो कितना अच्छा होता।"[1] वे सभी का मूल श्री हरि को ही मानते हैं। हरि स्मरण बिना शास्त्र ज्ञान वृथा है।

एक स्थान पर षड़रिपु की तुलना करते हुए कहते हैं–"काम" अछूत जैसा है। 'क्रोध' मासिक धर्म जैसा है, 'लोभ' जूठन है। मद्य जैसा 'मोह' तथा मांस जैसा 'मद' और भ्रम जैसा 'मत्सर'। प्राणियों को ये सभी गुण सताते रहते हैं। इन गुणों से महान से महान् व्यक्ति भी छुटकारा नहीं पा सकता। इन सबसे मुक्ति पाने का केवल एक ही उपाय है–तुम्हारी शरणागति–।[2]

ये मानते हैं कि "जीव परतंत्र है तथा भगवान स्वतंत्र हैं–यह मान्यता विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के अनुकूल है। मानते हैं- तुम्हारी कृपा ही मूल धन है। हे परमेश्वर तुम तो अनन्त हो, मैं केवल अणु मात्र हूँ अतः तेरी सेवा करने की शक्ति मुझे तुम्हें ही देना होगी। इतना ही नहीं और भी आगे वे कहते हैं "मेरे जैसे अधम की रक्षा करने के कारण तुम्हें बहुत पुण्य मिल जाएगा।"[3] इस कथा में भगवान के साथ आत्मीय निकटता प्रकट होती है।

परमेश्वर ही सकल चराचर सृष्टि का आधार है। "हे देव देव ! तुम्हारी महिमा को हम कैसे जान सकते हैं ? एक तुम ही अनेक रूपों में रहते हो। तुम सभी जीवों के लिए आत्मा स्वरूप, पंचभूतों का आधार हो। मूर्खों के मन की माया भी तुम ही हो। वृक्षों का चैतन्य तुम्हारा ही है। सुरों में ईश्वर बन कर तथा असुरों में अगोचर बन कर तुम्हीं वास करते हो। जीवन्मुक्तों का आनन्द भी तुम्हीं हो। सम्पूर्ण जगत् के साक्षी बन कर वेदों के अर्थ हो।"[4]

---

1. संकीर्तन–289
2. वही–445
3. संकीर्तन–315
4. वही–345

अत: परमेश्वर सर्वव्यापी है। उस परमेश्वर की स्तुति सम्पूर्ण रूप करने में कोई भी समर्थ नहीं । तैंतीस करोड़ देवता, दो हजार जिह्वाओं से शेष नाग, वेदों के अनन्त शब्द, अष्टादश पुराणों के वाक्य, सनकादि मुनियों की उक्तियां, व्यास वाल्मीकि आदि कवियों की रचनायें, सप्त करोड़ मंत्रों के अर्थ, छप्पन अक्षर (तेलुगु भाषा की वर्ण माला)—इनमें से कोई भी श्री वेंकटेश्वर की गुण तथा गाथाओं को गाने में समर्थ नहीं है तो मेरे जैसे अल्प प्राणी का क्या कहना ?"[1]

कवि मानते हैं कि मोक्ष प्राप्ति हरिदासों के लिए ही अत्यन्त सुलभ है।[2] वे मानते हैं कि जीव अज्ञान के कारण अपने कार्यों पर व्यर्थ गर्व करता है किन्तु उनके साथ जुड़े पापों को नहीं जानता । सभी कार्यों के कर्ता मानने वाला जीव हरि की प्रेरणा को भूल जाता है । हे हरि ! तुम ही उसकी रक्षा करो । क्योंकि ये सब तुम्हारी माया के ही कारण है।[3] "साथ ही उन्हें आश्चर्य है कि क्या हरि सदा अपने भक्तों की रक्षा करने के लिए ही प्रतीक्षा करते हैं ? नहीं तो स्मरण मात्र से कैसे उनका उद्धार कर देते हैं।"[4]

कुछ संकीर्तनों में अपने जीवन सम्बन्धी घटनाओं में तत्कालीन परिस्थितिाँ, वृद्धावस्था आदि की झलकियाँ दिखायी गयी हैं।[5]

अन्त में उनकी एक सुन्दर रचना है जिसमें वे अपनी देह तथा मन को भगवान को समर्पित करते हुए कहते हैं—हे भगवान ! मेरा देह ही तुम्हारे लिए तिरुपति क्षेत्र है। मेरे हृदय कमल को ही सोने का महल मान लो। मेरे विज्ञान तथा पांडित्य तुम्हारे सेवक हैं। परमात्मा ! मेरा मन ही रत्नों से जड़ा हुआ पलंग है तथा मेरी आत्मा ही तुम्हारे लिये कोमल शय्या है। मेरी सांस ही नारद आदि का मधुर गायन है। हे प्रभु मेरे कर्मों की गिनती न करते हुए मेरा उद्धार करो।[6]

"सम्पूर्ण विश्व तुम्हारी ही महिमा है। केवल तुम्हीं हो अन्य कोई नहीं। माता बन कर सृष्टि की रक्षा करते हो तथा पिता बन कर पोषण। पत्नी के रूप में मोह देते हो। गुरु के रूप में उपदेश देते हो तथा पुत्र के रूप में पालन भी। राजा बन कर आज्ञा देने वाले भी तुम ही हो तथा सेवक बन कर आज्ञा पालन भी तुम ही करते हो। भगवान बन कर पूजा को ग्रहण करते

---

1. संकीर्त 349
2. वही—350
3. वही—358
4. वही—359
5. वही—384 (बुद्धाप्य) संख्यायें 435, 437, 459
6. वही—406

हो तथा सभी प्राणियों का आधार भी बनते हो। तुम ही भक्त के मन में भक्ति भी पैदा कर वैकुण्ठ भी प्राप्त करने में सहायक बनते हो।"[1]

कवि सहज योगी के लिए आवश्यक गुणों को इस प्रकार बताते हैं— "संसार से विरक्त हो कर विष्णु भक्ति से एक क्रमिक जीवन बिताना है। मन का शोध कर हरि की चिन्ता करते हुए सभी प्रकार की वासनाओं से छुटकारा पा कर आनन्द से रहना है। विवेक का सहारा ले कर वैमनस्य छोड़ मौन रहना भी आवश्यक है। करुणा की भांति परिपूर्ण हो कर श्री वेंकटेश्वर की सेवा में ही मन लगा कर ध्यान मग्न रहना।"[2]

ऐसे एक से एक सुन्दर भावनाओं को ले कर पेद तिरुमलाचार्य अपने जीवन के आखिरी क्षणों तक आत्मश्रयी रूप में संकीर्तन करते हुए धन्य हो गये।

(इ) ताल्लपाक चिनतिरुमलाचार्य के अध्यात्म संकीर्तन :

अपने पितामह तथा पिता की ही भांति चिनतिरुमलाचार्य भी वाग्गेयकार थे। चिनतिरुमल्लाचार्य ने अपने पंद्रहवें वर्ष के पश्चात् षोड़श वर्ष की अवस्था प्राप्त करने के बाद ही संकीर्तन रचना आरम्भ की होगी।[3] इस उद्धरण का आधार—चिनतिरुमलय्या का प्रथम सकीर्तन है। इन्होंने अपने संकीर्तनों में स्थान-स्थान पर अपने पितामह अन्नमय्या को विशेष भक्ति के साथ स्मरण किया है, जिनसे उन्हें गुरुपदेश प्राप्त हुआ था। "अप्पनिवरप्रसदि अन्नमय्या"[4] इस संकीर्तन में वे कहते हैं अन्नमय्या वेंकटेश्वर की कृपा के विशेष पात्र थे। सनकसनंदन आदि के समक्ष इन्हें भी बिठा सकते हैं। उन्हें सभी वेदों का सार का ज्ञान था, रामानुज धर्म के प्रचारक थे तथा विशेष कर हमें उन्होंने भगवान बालाजी का भक्ति मार्ग दिखाया है। एक अन्य स्थान पर कहते हैं— "अन्नमय्या ही हमारे गुरु, पिता, माता सभी कुछ हैं, जिन्होंने मुझे सही मार्ग पर चलना सिखाया है।"[5] ..."अन्नमय्या ने ही मुझे श्री वेंकटेश्वर मंत्र का उपदेश दिया था।"[6] इतना ही नहीं अन्नमय्या से ही इनके वंशजों ने वैष्णव धर्म को प्राप्त किया था।[7] अतः ये अपने पितामह के प्रति कृतज्ञता प्रकट

---

1. संकीर्तन—142 2. वही—332
3. श्री ए. वी. श्रीनिवासाचार्युलु—चिनतिरुमलाचार्य के संकीर्तनों की पीठिका।
4. संकीर्तत संख्या—23 (चि. ति. चा) 5. वही—39
6. वही—46 7. वही—52

करते हैं जिन्होंने पापकर्मो से मुक्ति पाने के लिए संकीर्तन सेवा का उपदेश दिया है तथा उन्हें ज्ञानी बनाया है ।

"पत्नी, पुत्र, बंधु-बांधव, सम्पत्ति, काम, क्रोध आदि के कारण मोह उत्पन्न होता है । किन्तु इन सभी बन्धनों से मुक्ति पाने का सुन्दर मार्ग मुझे आचार्य ने दिखाया है अत: मेरा उद्धार हो सकता है ।"[1]

इन्होंने भी अपने पिता तथा पितामह के ही अनुसार कई देवताओं की स्तुति की है–श्री नारसिंह, चेन्नकेशव, गोपाल, राम आदि । अपने प्रथम अध्यात्म कीर्तन में उन्होंने रामकथा का वर्णन किया है ।

अन्नमय्या की भांति ये भी ढिंढोरा पीटते हुए कहते हैं कि कलियुग में श्री वेंकटेश्वर ही दैव हैं । ये कहते हैं कि बिना किसी कष्ट के श्री वेंकटेश्वर रूपी संजीवनी के सहारे भवसागर को पार कर सकते हैं । वे मानवों से कहते हैं, तुम्हें किसी विशेष कड़वी औषध के सेवन की आवश्यकता नहीं, पास ही संजीवनी जैसा यह मंत्र है । इसे पाने के लिए न पृथ्वी में न नदी-नालों में खोजना है न मूल्य दे कर खरीदना ही है । द्वीप तथा समुद्रों में या गुफाओं में ढूँढने की आवश्यकता नहीं । समीप में ही श्री वेंकटेश्वर (रूपी) से जीवनी है ।"[2]

जात-पांत, वंश, गुण, पाप आदि भगवत्कृपा के समुपार्जन में बाधा नहीं बनते हैं । इन विचारों को भी इन्होंने व्यक्त किया है । निम्नलिखित संकीर्तन में कहते हैं–"भगवान की कृपा पाने में कुछ भी बाधा नहीं है । ध्रुव, अजामिल, घंटाकर्ण, प्रह्लाद आदि भक्तों को मुक्ति कैसे मिली थी ? वाल्मीकि या अहल्या का उद्धार भी भगवान ने गुण या जात के आधार पर नहीं किया था ।"[3] केवल भगवान की प्रति अपार श्रद्धा की आवश्यकता है ।

हरिस्मरण के उपदेश के साथ-साथ ये गुरु की महानता का भी उल्लेख करते हैं–"हे जीव ! तुम अपने गुरुचरणों को कभी न छोड़ना ।"[4]

कवि भगवान से प्रश्न कर रहें हैं कि "हरि ! मेरा मोह कब टूटेगा ? कपट से मैं मुक्ति कब पाऊँगा । मैं चंचलता को छोड़ निपुण कब बनूँगा ? मात्सर्य को खोकर हे भगवान ! मुझे निश्चलता कब प्राप्त होगी ? ये अपने अवगुणों को नष्टकर भगवान के प्रति श्रद्धा पाना भी उन्हीं की कृपा के कारण मानते हैं । वे कहते हैं–"हरि से प्रार्थना करने पर सभी कार्य ठीक हो जाते हैं । ···इस गहरे संसार रूपी समुद्र को यह जीव किसके सहारे तैर सकेगा ? हाँ,

1. संकीर्तन–28 2. वही–54 3. वही–43 4. वही–3

हरि की शरण में जाकर हँसते हुए अत्यन्त सुलभता से इस सागर को पार किया जा सकता है।"[1]

स्थान-स्थान पर ये 'जीव'! 'चित्तमा'! आदि सम्बोधन करते हुए मन के विकारों को छोड़ हरि भक्ति पर मन लगाने की शिक्षा तथा उपदेश देते हैं। सारा समय व्यर्थ सांसारिक लंपटों में ही गुजर जाता है। जैसे "निद्रा में, नाना दोषों में, वृद्धावस्था में जो दिन खो गये थे, क्या वे चाहने पर भी वापस आयेंगे? इसी तरह पुत्रों के लिए, पत्नी के लिये, सांसारिक भोगों के लिए दिन बिता दिये थे, किन्तु उनमें कुछ सुख है? धन-धान्य के पीछे पड़कर भी दिन व्यर्थ में चले गये थे। किन्तु जीने का अर्थ है भगवान को मन प्रतिष्ठा कर, सेवाकर जीना है।"[2] अतः वे संदेश देते हैं—हे मानस! तुम माया में फँसकर देह सम्बन्धी बन्धु मित्रों के लिए, भ्रमवश धन–सम्पत्ति के लिये तथा ऐंहिक सुखों के लिए राजा-महाराजाओं की कृपा के लिए अपना समय व्यर्थ कर देते हो। किन्तु तुम्हें इतना भी ज्ञान नहीं है कि विष्णु इन सभी से उन्नत हैं। विष्णु भक्ति में जीवन बिताने से इन सभी से अच्छे फल ही प्राप्त होते हैं।[3]

अन्य स्थान पर ये कहते हैं कि पंचेन्द्रियाँ भगवान ने इसलिए दी हैं ताकि उनका सदुपयोग हो। "यह शरीर भगवान् को भजने के लिए है, माया में पड़ने के लिए नहीं। भगवान को चाहने के लिए यह मन दिया गया है किन्तु ऐहिक भोगों को चाहने के लिए। जिह्वा भगवान के यश गाने के लिए है। न कि व्यर्थ वार्तालापों में फँसने के लिए। भगवान के दिव्य सुन्दर रूप के दर्शन के लिए नेत्र हैं, किन्तु मोह में पड़कर सभी को देखने के लिए नहीं।"[4]

संसार के व्यक्ति आपत्तियों को दूर करने लिए नक्षत्र, ग्रह आदि की शांति करवाते हैं। चिनतिरुमलाचार्य कहते हैं कि श्रीहरि कीर्तनों का संकीर्तन करना श्रेष्ठतम शांति पूजा है।[5]

संस्कृत शब्दों से भरे संकीर्तन इन्होंने भी कई लिखे हैं।

संख्या में यद्यपि कम लगते हैं किन्तु गुणों में इनके संकीर्तन भी अन्नमय्या तथा पेद तिरुमलय्या के समक्ष रखे जा सकते हैं। इन्होंने भी अन्नमय्या की भांति अद्वैत वादियों तथा हठ योगियों की कटु निन्दा की है।[6] इन्होंने भी प्रभाती गीतों की रचना की है जैसे—"गोविन्द। जागो तुम्हारे द्वार पर देवता

---

1. संकीर्तन–6
2. वही—59
3. वही–42
4. वही–50
5. वही–20
6. वही–58

मुनि आदि प्रमुख प्रतीक्षा कर रहे हैं।"[1] ताल्लपाक के कवियों के प्रभाती गीत आज भी तिरुपति में गाये जाते हैं।

3.2.2.2. शृंगार संकीर्तन :

(अ) अन्नमाचार्य के शृंगार संकीर्तन :

अन्नमाचार्य के प्राप्त संकीर्तनों में अधिकांश शृंगार संकीर्तन ही हैं। (लगभग पन्द्रह हजार प्राप्त हुए जिनमें से तेरह हजार शृंगार संकीर्तन है।) इन संकीर्तनों में शृंगार के सभी अंगों का सूक्ष्म से सूक्ष्म वर्णन जैसे—संयोग और वियोग, नायक, नायिका उनके हाव-भाव आदि का हुआ है।

इनके शृंगार संकीर्तनों के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए श्री गौरि पेद्दि राम सुब्ब शर्माजी कहते हैं—"गुरुओं से सीखे दार्शनिक विचार, आल्वारों की कथायें, नारद और शांडिल्य आदि भक्ति सूत्रों में चर्चित गोपिकाओं की भक्ति अन्नमाचार्य के सामने आदर्श थे। इनके साथ-साथ भागवत और विष्णु पुराण के आधार पर कहीं-कहीं कवि ने अनपढों का भी शृंगार वर्णन किया है, जो भाव आल्वारों में नहीं गोचर होते हैं।"[2] वेंकटेश्वर दक्षिण नायक हैं। वे तो शृंगार के नव-सावयव-साकार रूप हैं। उनके दक्षिण नायकत्व का वर्णन कवि नायिका से इस प्रकार कहलवा रहे हैं—"मैं तो तुम्हारे गुणों को अच्छी तरह जानती हूँ। थोड़ी सी छूट दे दी तो तुम कलंबिका साग के समान फैल जाते हो। गोपिकाओं से विवाह किया, अन्य कई कामिनियों से मिलन होकर अब मुझसे विवाह किया है।"[3] नायक के विरह का भी वर्णन स्थान-स्थान पर हुआ है। नायक सखियों से कहता है कि मुझे तुम्हारे उपचारों की आवश्यकता नहीं, मेरी प्रियतमा से मिलन चाहिए। अतः तुम उससे मुझे मिलाओ।[4] कवि स्वयं नायिका या सखी या दूती बन जाता है। आदि दम्पति अलमेल मंगा और वेंकटेश्वर का शृंगार संसार के आदर्श ही नहीं, वरन् जगत् कल्याण कारी भी है। इनका विरह जीवात्मा और परमात्मा का विरह है। यद्यपि सम्पूर्ण पद में विरह वर्णन होने पर भी अन्नमाचार्य अन्त में वेंकटेश्वर की मुद्रा के साथ नायिका—नायक का मिलन करवाना उनकी अपनी विशेषता है।

---

1. संकीर्तन—57
2. अन्नमाचार्य शृंगार संकीर्तन–26 वाल्यूम—पीठिका
3. अध्यात्म, शृंगार संकीनर्तन (स्वर सहित) द्वितीय भाग-सम्पादक-मंचाल जगन्नाथ राव—पृष्ठ 383
4. वही—पृष्ठ 313

इन संकीर्तनो में विभिन्न प्रकार की नायिकायें—स्वकीया, दिव्या, मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा, धीरा, आदि के साथ-साथ वासक सज्जा, अभिसारिका, कलहांतरिता, खंडिता आदि अष्टविधि नाविकाओं का विस्तृत चित्रण है। इतना ही नहीं पद्मिनी, शंखिणी, हस्तिनी और चित्रिणी जाति की नायिकाओं का भी वर्णन इन्होंने किया है। जैसे एक ही पद में चारों का वर्णन—

"अन्नि जातुलु दाने युन्नदि
कन्नुल कलिकिकि मायगर चे नो य नग"[1]

(सभी जातियों की नायिका वही लग रही है।)

अन्नमाचार्य के श्रृंगार संकीर्तनों के नायक श्री वेंकटेश्वर होने पर भी उन्होंने श्री कृष्ण से अभिन्न ही माना गया है। अतः स्थान-स्थान पर श्री कृष्ण के चरित्र का वर्णन गोपिकाओं के साथ-साथ कई प्रकार की नायिकाओं का, दूतियों का वर्णन तन्मयता से कवि ने किया है। अन्नमाचार्य की नायिका सहज सुन्दरी औ र सुकुमारी है। वह अपने अंग प्रत्यंग रूपी फूलों से ही अपने पति वेंकटेश्वर की पूजा करती है—

"कलिकि नी कनुचूपु कलुव रेकुल पूज
ललन नी नगवु मोल्लल पूज।"[2]

अर्थात् नायिका के वीक्षण मात्र से कमल दलों से पूजा हो जाती है। मंद मुसकान से ही कुंद कुसुमों की अर्चा होती है। उंसास छोड़ने से चम्पा पुष्पों से पूजा।

इस दिव्य सौन्दर्य की मूर्ति नायिका को सौन्दर्य प्रसाधनों की आवश्यकता ही नहीं है, क्योंकि उसका मुख ही दर्पण है जिसमें वेंकटेश्वर अपने आपको देख सकते हैं। वह स्वयं लक्ष्मी है इस कारण आभरणों की भी आवश्यकता नहीं है। मुस्कुराने से मोती और रूठ जाने पर माणिक्य बिखरते हैं। इस नायिका को पाकर वेंकटेश्वर स्वयं "लखपति" बन गये हैं।[3] एक अन्य स्थान पर कवि सखियों के द्वारा लक्ष्मी के सौन्दर्य का वर्णन इस प्रकार से करवा रहे हैं—"

"चूडरम्मा चेलुलार सुदति चक्कदनालु"[4]

अर्थात् नायिका का जन्म क्षीरसागर में होने के कारण उसका मुख

---

1. श्रृंगार संकीर्तन पृष्ठ—123 2. वही—पृष्ठ 95
3. श्रृंगार संकीर्तन—अन्नमाचार्य—206
4. अध्यात्म, श्रृंगार संकीर्तन (2) मंचाल जगन्नाथ राव, पृष्ठ 327

चन्द्रमा के समान होने में कोई आश्चर्य की बात नहीं है। क्योंकि चन्द्रमा स्वयं उसका भाई है। मन्दहास अमृत जैसा है क्योंकि अमृत उसके मायके का धन है। इसके गुण क्षीर सागर के ही समान हैं। इसके पांव कल्पतरु के किसिलय के समान होना भी कोई विशेष बात नहीं क्योंकि वह कल्पतरु भी उसके आंगन का ही है।

कुछ संकीर्तनों में नायक और नायिका के "काम यज्ञ" का वैदिक होम प्रक्रिया के अनुसार विस्तार पूर्वक वर्णन है—जैसे

"काम यागमु जैसे कलिकि तन प्रेम
देवता प्रीतिगानु।"[1]

इस संकीर्तन में नायिका यज्ञ कर रही है—अपने प्यार को देवताओं की प्रीति के लिए अर्पित कर रही है। पान खाने से जो रस निकलता है वही सोमपान है। सुन्दर कंठ ध्वनि ही वेद मंत्र हैं। विरहाग्नि ही होमाग्नि है। पसीना ही व्रत के समय करने वाला स्नान है। श्री वेंकटेश्वर के साथ मिलन ही दिव्य भोग है। इसी प्रकार का वर्णन नायक के प्रति भी है।[2] कई संकीर्तन नायक और नायिका के दिव्य सौन्दर्य से भरे प्राप्त होते हैं।

"अतिव जव्वनमु रायलकु बेट्टिनकोट
पति मदन सुख राज्य भारंबु निलुपु।"........

इस पद में कवि कहते हैं कि—नायिका का सौन्दर्य सहज दुर्ग है, उसमें नायक वेंकटेश्वर अपने मदन-साम्राज्य का भार सुख से संभालते हैं। नायिका की दृष्टि मेघ-मध्यगत तड़ित रेखा सी है, जो नायक के दिल का अंधेरा दूर करती है। उसका मुख चन्द्रमा ही है और इसीलिए नायक के नैन-कुमुद नित्य प्रफुल्लित रहते हैं। नायक को एकान्त स्थान ढूंढ़ने का कष्ट है ही नहीं, क्योंकि नायिका का केश कलाप खुद अंधेरा फैलाता है। नायिका की बाहु लताएँ प्रभु वेंकट पति की प्रणयलता से लिपट कर विहार कुंज का स्वयं संपादन करती हैं।"[3]

अन्नमाचार्य अपने श्रृंगार संकीर्तनों में वेंकटेश्वर को नायक तथा स्वयं को नायिका मान कर रचना करते हैं। इन्हें पढ़ कर आश्चर्य होता है कि एक पुरुष, जिनका इतना बड़ा परिवार था कैसे इनकी सृष्टि की ? मानों

---

1. अन्नमाचार्य श्रृंगार संकीन—वाल्यूम—12—पद 223
2. देखिए वाल्यूम—12—पद 288
3. अन्नमाचार्य और सूरदास—एम. संगमेशम् के आधार पर, पृष्ठ 261

अपने में पुरुषत्व ही नहीं है। कभी-कभी लगता है कि स्त्रियाँ भी इनकी तरह अपने मन के भावों को व्यक्त करने में असमर्थ ही हैं। इन वर्णनों में भी ऐसे तन्मय हो जाते हैं जो बड़े से बड़े योगियों को भी संभव नहीं।"[1]

अन्नमाचार्य के कोमल भावों का सुन्दर उदाहरण देखिए—

"कुलुकुचु नडवरोयम्मलाला"[2] इस संकीर्तन में कवि ने नववधु अलमेल मंगा की पालकी को (कहार) पुरुषों के नहीं कोमलियों के हाथ दिया है। हँसी मजाक में जब वे तेजी से चलने लगीं तो वधु कांपने लगी। उसके फूल बिखरने लगे। यह कवि से देखा न गया। अतः उन बहारों से अनुरोध करते हैं कि अरे! धीरे धीरे चलो। देखो उसके मांग का चन्दन सारे शरीर पर बिखर गया है, कंकणों के हिलने के कारण उसके कोमल हाथ लाल हो गये हैं। एक स्थान पर कवि रूठी हुई नायिका से प्रेम आरोगने के लिए मिन्नतें कर रहे हैं क्योंकि नायिका के चित्त को भूख लगी है—"वलपारगिंचवम्म वनिता···"[3]

अन्त में श्री राल्लपल्लि अनंतकृष्ण शर्मा जी से हम भी सहमत हैं "अन्नमाचार्य के संकीर्तन सारस्वत क्षीर सागर है। भक्ति और शृंगार में स्वतंत्र सन्निवेश, भाव ही नहीं स्वच्छ देशी और ग्रंथिक भाषाओं के सम्मिश्रण से रसिक और सहृदयों को आनन्द पहुँचाते हैं।"[4]

(आ) पेदतिरुमलाचार्य के शृंगार संकीर्तन :

अन्नमाचार्य जी के आदेश पाकर उनके पुत्र पेदतिरुमलाचार्य जी ने भी शृंगार संकीर्तनों की रचना की। पिता और पुत्र के संकीर्तनों में इतना साम्य है कि बहुत से संकीर्तन दोनों के मिल गये और अन्नमाचार्य के नाम से ही प्रचलित हो गये हैं। इन्होंने भी अपने संकीर्तनों में श्रीवेंकटेश्वर और अलमेल मंगा के दिव्य शृंगार का वर्णन किया है। नायक-नायिका, दूती, सखी आदि कई पात्रों से कवि का साधारणीकरण हो जाता है।

> एट्वंटि मोहमो इंति नीपै नतनिकि
> तटुकुन उरमुन धरिइंचे निन्नु···"[5]

इस संकीर्तन में कवि का कहना है—हे नायिका (लक्ष्मी) तुम्हारे

---

1. गौरिपेदि राम सुब्बा शर्मा के आधार पर।
2. ताल्लपाक अन्नमय्या पाटलु-स्वर सहित कामिशेट्टी श्रीनिवासुलु, पृष्ठ 142
3. अन्नमाचार्युलु संकीर्तनमु—43
4. ताल्लपाक अन्नमय्या पाटलु—भूमिका
5. पेदतिरुमलाचार्य के शृंगार संकीर्तन—पृष्ठ 1

पति को तुम से प्रगाढ़ प्रेम है, इसीलिए उन्होंने तुम्हें अपने वक्षस्थल पर बसा लिया है। इतना ही नहीं, तुम्हारी चाल हाथी जैसी होने के कारण ही उन्होंने गजेन्द्र की रक्षा की। तुम्हारा निवास कमल होने के कारण वे भी कमलनाभ बन गये। तुम्हारी गर्दन शंख की तरह है, अत: उन्होंने पांच जन्य को धारण किया। शायद तुम्हारे केशों की कालिमा को देख कर स्वयं नीलवर्ण बन गये।

नायक और नायिका के मिलन के समय सभी ऋतु एक साथ आ गये। जैसे मिलन में नायिका के कपोल लाल हो गये, जिसे देख कर लगता है कि वसंत का आगमन हो गया है। नायिका की आँखों से आनन्द की बूंदें टपकने से वर्षा ऋतु का आभास होने लगा है। अगर नायिका विरह में जलती है तो ग्रीष्म ऋतु लगती है। उसके मुख पर प्रसन्नता छा जाती है तो वह शरत्काल जैसी ही मन मोहक हो जाती है। नायक वेंकटेश्वर को देखकर लज्जा से सिकुड़ जाती है तो हेमंत ऋतु प्रतीत होती है।"[1]

नायक को नायिका कोस रही है—"मैंने तुझे चंपा के फूलों से सजाया था तो अब ये मोगरे कहाँ से आ गये?"[2] इसी प्रकार से अन्य चिह्नों को भी दिखा कर वह रूठ जाती है।[3] पति की कई मिन्नतों पर भी द्वार नहीं खोलती।[4] इन सभी वर्णनों में कवि ने अद्भुत कौशल दिखाया है। सखियों के रूप में स्वयं कवि ही नायिका को सीख सिखता है। "पुरुष की पत्नी कितनी भी सुन्दर हो फिर भी वह अन्य स्त्रियों की ओर आकर्षित होता है। वह तो उद्यान के तोते की भांति है। तुम हृदय पर विराजमान हो फिर भी वह भूदेवी से मिलता है। अत: इन बातों पर तुम ध्यान देते हुए उसके बुलाने पर तुम पास आ जाना।"[5] शायद इसे हम उनके युग की नीति मान सकते हैं जब कि बहु पत्नी व्रत प्रचलित था। चाहे कितना भी रूठें या कुंठित हों किन्तु नायिका अपनी सखियों से प्रार्थना करती है कि उसे बुलाओ। उसके बिना मैं रह नहीं सकती। इन्होंने भी विरह के वर्णन के पदों में भी अन्त में नायक और नायिका का मिलन ही चित्रित किया है।

नायक और नायिका में कई साम्य हैं जैसे नायिका का मुख पूर्ण चन्द्र है तो नायक की आँख कमल। नायिका के केश भ्रमर हैं तो नायक के अधर मधु बरसाते हैं।[6]

---

1. पेद तिरुमलाचार्य के शृंगार संकीर्तन—सं. 522, 525 2. वही—475
3. वही—6 4. वही—51 5. वही—156 6. वही—सं. 240

(इ) चिन तिरुमलय्या के शृंगार संकीर्तन :

आज केवल 119 ही संकीर्तन इनके प्राप्य हैं। अधिकतर संकीर्तनों में नायिका की अनुभूतियों का ही वर्णन किया गया है। काव्य शास्त्र के अनुसार विभिन्न नायिकायें इसमें प्रत्यक्ष होती हैं।

इनके भी नायक तथा नायिका साक्षात् वेंकटेश्वर तथा अलमेलमंगा हैं। देखिए—नायिका का सौंदर्य वर्णन कितना अद्भुत है—इस इन्ती (नारी) के सौंदर्य की प्रशंसा किस प्रकार से कर सकते हैं ? प्रियतम के हंसमुख वदन को प्रिय ने साक्षात चन्द्रमा ही मान लिया था। उसकी भृकुटि काम देव के धनुष जैसी थी तथा प्रिया की दृष्टि मानों कामदेव के बाण सी। उसके वचन कोयल की कूक के पर्यायवाची थे। आलिंगन में पाये प्रिया को श्री वेंकटेश्वर साक्षात् शंपालता ही समझे थे तथा दोनों का मिलन अद्भुत था।[1]

नायक वेंकटेश्वर की एक ही नहीं, कई नायिकायें हैं। अर्थात् वह दक्षिण नायक है। अतः एक नायिका दूसरी से कह रही है कि तुम अपने हाव-भावों के कारण मेरे पति को अपने आंगन से हिलने नहीं दे रही हो।[2]

एक अन्य स्थान पर नायिका कह रही है कि तुम चाहे कैसा भी प्रेम व्यवहार अन्यों से करो किन्तु मैं तुम्हें एक कटु शब्द न कहूँगी।[3]

देखिए इस संकीर्तन में नायिका का विरह वर्णन है। वह अपनी सखी से प्रार्थना कर रही है कि जा कर मेरे प्रिय से मेरी इस दशा का परिचय दो। अनजान में अगर मैंने कुछ कटु शब्द कह दिये हों तो मुझे क्षमा करने की प्रार्थना करना। उसने मुझे कई वचन दिये थे जिनका स्मरण कर मैं आज विरह की अग्नि में जल रही हूँ।[4] उसे डर है कि कहीं नायक की उसके प्रति प्रीति कम न हो गयी हो ? अतः बार-बार सखी से निवेदन करती है कि जा कर प्रिय से मेरी इस अवस्था का परिचय देना।

सखी नायक से नायिका की विरहावस्था का परिचय एक अन्य स्थान पर दे रही है कि वह तो केवल तुम्हारे आस से ही जीवित है। तन पर कस्तूरी नहीं लगाती हैं। ताप के कारण हाथों में कमल रूपी बाण ले कर भी ताप का अनुभव कर रही है। हाँ अब तुम्हारा उससे मिलन हुआ है अतः वह प्रसन्न है।[5]

एक अन्य स्थान पर नायक नायिका से कहता हैं कि देखो। हम दोनों की जोड़ी अच्छी बनी है।

---

1. शृंगार संकीर्तन—चिन तिरुमलाचार्य—संकीर्तन 8 2. वही—9
3. वही—10 4. वही—2 5. वही—16

चिन तिरुमलाचार्य ने अपने शृंगार संकीर्तनों में नायक को विभिन्न देवताओं के नाम से सबोधित करते हुए रचना की है जिनकी संख्या करीब-करीब 12 तक आती है। वे हैं–नरसिंह वेंकटेश्वर, चेन्नकेशव, चोक्कनाथ, चेन्नराय, विट्ठल, राम, बालकृष्ण, चेल्लपिल्लयराय आदि। ये सभी देवता आंध्र प्रदेश के विभिन्न प्रदेशों के ही देवता हैं क्योंकि उन्होंने देवता के नाम के साथ-साथ स्थान का भी उल्लेख किया है जैसे "ओगुनूतुल नरसिंहुडा।" यह ओगुनुतल कडपा जिले में स्थित नरसिंह के प्रति है।"[1]

प्रणय कलहांतरिता, स्वकीया, मध्या (धीरा) ज्येष्ठा (धीरा), परकीया, स्वाधीन पतिका आदि नायिकायें तथा दक्षिण, शठ आदि नायकों का चित्रण इन संकीर्तनों में है।

3.2.3. द्विपद :

प्रस्तावना :

"द्विपद" नाम से विख्यात दो चरणों का गीत तेलुगु छन्दों की जननी मानी जाती है। अर्थात् यह तेलुगु भाषा का अन्यन्त प्राचीन छन्द है। इस छन्द को तेलुगु साहित्य में वही स्थान और महत्व प्राप्त है जो हिन्दी क्षेत्र में "दोहा" छन्द को। दोहा छन्द की दीर्घ परम्परा अपभ्रंश से हिन्दी तक स्पष्ट है। पर द्विपद की परम्परा प्राचीन काल में इतनी स्पष्ट नहीं मिलती, पर अनुमानतः उसका प्रचलन रहा होगा।··· जिस प्रकार दोहे के क्रम–विपर्यय से सोरठा का जन्म होता है, उसी प्रकार "प्रास" के हटा देने से मंजरी द्विपदा की सृष्टि हो जाती है। यदि इसके दो चरणों को सम्मिलित कर दिया जाए तो तरुवोजा छन्द के चार चरणों में से एक चरण की सृष्टि हो जाती है। तरुवोज छन्द से ही सीस, मध्याक्कर आदि लोक छन्दों की भी सृष्टि हुई। द्विपद में अन्त्यप्रास की योजना की जाए तो रगड़ा छन्द की सृष्टि होती है।[2]

तेलुगु के सम्पूर्ण साहित्य का वर्गीकरण मार्ग तथा देशी संप्रदायों साहित्य के अन्तर्गत है। मार्ग से तात्पर्य संस्कृत भाषा से प्रभावित साहित्य है तो देशी का सम्बन्ध प्रादेशिक साहित्य से है, जिसपर संस्कृत का प्रभाव न हो तथा जो अति स्वतंत्र तथा स्वच्छन्द रूप से विकसित हुआ हो। "प्राचीन काल में यह द्विपद छन्द पंडितों का आदर न पासकने के कारण राजाश्रय भी नहीं पा सका था। अतः इस छन्द में ग्रंथों की रचना भी नहीं हुई थी। इसका विस्तृत

1. चिनतिरुमलाचार्य के संकीर्तन–पीठिका, पृष्ठ 29
2. हिन्दी और तेलुगु वैष्णव भक्ति साहित्य–डा. के. रामनाथन्, पृष्ठ 252-53

उपयोग लोक गीतों में ही हुआ था जिनके माध्यम से ही उनका प्रचार तथा प्रसार हुआ था। अतः यह तेलुगु भाषा तथा तेलुगु छन्दों की जननी मानी जाती है।"[1] तरुवोज, मंजरी द्विपद, गीत, सीस पद्य आदि कई छन्दों का जन्म इसी द्विपद से ही तेलुगु भाषा के विद्वान मानते हैं।

"यह द्विपद छन्द केवल दो चरणों तक ही सीमित न होकर कई चरणों के काव्य भी होते हैं। इस छन्द की विशेषता यह है कि यह गाने, पढ़ने तथा कंठस्थ करने के लिए अत्यन्त सुलभ है।"[2] इसी सौलभ्य के कारण तेलुगु के अत्यधिक लोकगीत प्रायः इसी छन्द में बाँधे गये थे। कन्नड़ तथा तमिल के कुछ छन्दों से भी यह द्विपद छन्द थोड़ा बहुत मिलता जुलता है। इसमें 15 से 18 तक मात्रायें हो सकती हैं। यह एक मात्रिक छन्द है।

इस छन्द में काव्य रचने का श्रेय भी सर्व प्रथम वीर शैव कवियों को ही प्राप्त होता है। इसे उन्होंने अपने धर्म के प्रचार तथा प्रसार के लिए अपनाया था। वीर शैव के प्रमुख तथा आदि कवि श्री "पाल्कुरिकि सोमनाथ" की रचनायें "बसव पुराण", "पंडिताराध्य चरित्र" आदि इसी छन्द में हैं। वीर शैव कवियों ने वर्ण व्यवस्था को मिटाने के लिए कठिन परिश्रम किया था। अतः जन मानस तक इस आन्दोलन को ले जाने के लिए द्विपद छन्द को ही उन्होंने प्रभावशाली माना। उनके पश्चात् अन्य कवि भी इस छन्द में काव्यों की रचना करने लगे।

वास्तव में द्विपद साहित्य का प्रसार तथा विकास ताल्लपाक के कवियों द्वारा ही सम्पूर्ण रूप से हुआ था। इन्हों भी वैष्णव धर्म के प्रचार के लिए ही प्रमुख रूप से इस छन्द में रचनायें की थी। अतः यह निष्कर्ष पर हम पहुँच सकते हैं—"इस छन्द का उपयोग प्रमुख रूप से धर्म के प्रचार तथा प्रसार के लिए ही हुआ था। इसका कारण साहित्य पर धर्म का गहरा प्रभाव मान सकते हैं। इसी साहित्यिक प्रक्रिया में ही द्रविड़ तथा कन्नड़ भाषाओं में भी धार्मिक साहित्य का प्रचार हुआ था। प्रायः तेलुगु भाषा भाषी ने भी उसे ही अपनाया था।"[3] श्री वेटूरि अनान्द मूर्ति जी ने द्विपद साहित्य के विकास को तीन उत्थानों में माना है।

---

1. आंध्र द्विपद साहित्य चरित्रा—टी. सुशीला, पृष्ठ 12
2. ताल्लपाक वारि साहित्यमु-परिशीलनमु—वे. आनन्दमूर्ति, पृष्ठ 137
3. ताल्लपाकवारि साहित्यमु—परिशीलनमु—वे. आनन्दमूर्ति पृष्ठ 139

ताल्लपाक के कवियों का द्विपद साहित्य :

ताल्लपाक के कवियों में कई प्रसिद्ध द्विपद कवि थे। इस वंश के मूल कवि स्वयं अन्नमाचार्य, उनके पुत्र पेद तिरुमलाचार्य तथा पौत्र चिन्नन्ना को उच्च स्थान दिया जाता है। इन्होंने द्विपद छन्द में विभिन्न काव्य वस्तुओं को लेकर सुन्दर भाव पक्ष तथा कला पक्ष के उदाहरण प्रस्तुत किए। ताल्लपाक के कवियों ने द्विपद के लक्षणों का भी स्पष्ट निर्देशन किया था। तब तक द्विपद के लक्षणों पर कुछ ग्रन्थ लिखे नहीं गये थे। इन्होंने अपनी रचनाओं में पौराणिक, ऐतिहासिक तथा सामाजिक आधार लेकर अपने काव्यों को अत्यन्त सरस तथा आकर्षक बनाया था। अपने पूर्वजों का अनुसरण करते भी इनकी रचनाएँ स्वतंत्र तथा विशिष्ट मानी जाती हैं।

(अ) अन्नमाचार्य :

द्विपद रामायण :

चिन्नन्ना ने अपने अन्नमाचार्य चरित्र में लिखा हैं—कि अन्नमाचार्य ने "आकर्षक तथा नव्य रूप" से रामायण की द्विपद छन्द में रचा था।[1] दुर्भाग्य से आज उनका द्विपद रामायण अप्राप्य है।

(आ) पेदतिरुमलाचार्य :

इनकी द्विपद रचनायें हैं—1. हरिवंश 2. श्रीवेंकटेश्वर प्रभात स्तवमु।

हरिवंश : वैष्णव धर्म के मूल ग्रंथ रामायण तथा हरिवंश हैं। अन्नमाचार्य ने रामायण की रचना की तो उनके पुत्र पेदतिरुमलाचार्य नें हरिवंश की रचना की। इनका उल्लेख भी चिन्नन्ना कृत "अष्ट महिषो कल्याण" में है।[2] किन्तु यह भी आज अप्राप्य है।

श्री वेंकटेश्वर प्रभात स्तवमु :पेद तिरुमलाचार्य की इस कृति में श्रीकृष्ण चरित्र का वर्णन श्री बालाजी के प्रति प्रभाती गीतों के रूप में है। यह एक लघु रचना है। इसमें कुल 63 द्विपद हैं। भगवान विष्णु जब योग निद्रा में थे तो ब्रह्मा आदि अन्य देवता आकर ये प्रभाती गीतों को गाते थे।

"वसुदेव देवकी वरगर्भजात-किसलयाधार मेल्कोनुमु।
तपमु पेंपुन यशोदा नंदुल्कुनु-गृपतोड़ शिशुवैन कृष्ण मेल्कोनमु।"[3]

इसमें कृष्ण जन्म लीलायें वर्णित हैं। कवि के अनुसार कृष्ण ही

---

1. अन्नमाचार्य चरित्रा—चिन्नन्ना, पृष्ठ 3
2. अष्ट महिषी कल्याणमु—चिन्नन्ना, पृष्ठ 4
3. श्री वेंकटेश्वर प्रभात स्तवमु-पेदतिरुमलाचार्य, पृष्ठ 1

मानवों की कामनाओं को पूरा करने के हेतु श्री लक्ष्मी सहित अब तिरुपति क्षेत्र में हैं।

इन प्रभाती गीतों की परम्परा संस्कृत तथा द्रविड़ भाषाओं से चली आ रही है। अत: तेलुगु भाषा के विद्वान इस रचना पर उन परम्पराओं का प्रभाव मानते हैं। शायद इन गीतों को मंदिर में प्रातः काल गाया जाता था।

(इ) चिन तिरुवेंगलनाथ :

अन्नमाचार्य के पौत्र चिन तिरुवेंगलनाथ उपनाम "चिन्नन्ना" द्विपद काव्य लिखने में अत्यन्त प्रसिद्ध थे। कहा जाता है– 'चिन्नन्न द्विपद केरगुनु" अर्थात् चिन्नन्ना को "द्विपद" का पर्यायवाची मान सकते हैं। पाल्कुरिकि सोमनाथ के पश्चात् चिन्नन्ना जैसे द्विपद छन्द के विशेष प्रेमी अन्य कोई नहीं मिलते हैं। अन्य शैलियों को न छूकर अपने सभी काव्यों को केवल द्विपद छन्द में ही लिखकर उसके प्रति अपना प्रगाढ़ प्रेम व्यक्त किया है।[1] इनकी चारों कृतियाँ उच्च कोटि की हैं। ये सभी द्विपद छन्द में ही लिखी गयी हैं। वे हैं—1. अष्ट महिषी कल्याणमु 2. उषा कल्याणमु 3. परमयोगि विलासमु और 4. अन्नमाचार्य चरित्रा। ये चारों ही कृतियाँ तेलुगु साहित्य में अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। अत: उनका विस्तृत परिचय देना उचित होगा।

अष्ट महिषी कल्याणमु : श्री वेटूरि आनन्दमूर्ति जी इसे चिन्नन्ना की प्रथम रचना मानते हैं। इसमें पांच परिच्छेद हैं। करीब-करीब 3683 द्विपद अर्थात् 7366 पंक्तियाँ हैं। इसे हम महाकाव्यों की कोटि में रख सकते हैं क्योंकि इसमें सम्पूर्ण कृष्ण चरित्र है, जिसका आधार भागवत पुराण है। "इसके प्रथम चार परिच्छेदों में दशम स्कंध के अनुसार ही श्रीकृष्ण–जन्म, बाल लीलाएँ, दुष्ट संहार, तथा अन्य लीलाओं का विस्तृत वर्णन है। शेष एक ही परिच्छेद में श्रीकृष्ण का अष्ट महिषियों से विवाहों का वर्णन शीघ्र गति से कर दिया है। उसमें भी केवल रुक्मिणी तथा सत्यभामा और जांबवती के विवाहों का ही विस्तृत वर्णन है। इस ग्रंथ को कवि ने श्री वेंकटेश्वर की हृदय रानी अलमेल मंगा को समर्पित किया।"[2] तनिक इस कृति के बारे में देखे—

असुरों की बढ़ती हुई यातनाओं के कारण वसुधा भगवान विष्णु से प्रार्थना करती है। अत. भगवान विष्णु शेष नाग के साथ वसुदेव तथा देवकी

1. द्विपद वाङ्मय—डा. जी. नागय्या—पृष्ठ 88
2. ताल्लपाक वारि साहित्यमु—परिशीलनमु -वे. आनन्दमूर्ति—पृष्ठ 173

के गर्भ से जन्म लेते हैं। किन्तु कंस के भय के कारण उन्हें ब्रज में नन्द तथा यशोदा के पास वसुदेव छोड़ आते हैं। आकाशवाणी के वचनों से डर कर कंस उन दोनों बालकों का संहार करने के लिए, एक के बाद एक असुरों को भेजता है। किन्तु बलराम और कृष्ण ही उन असुरों का संहार कर देते हैं। पूतना, शकटासुर, तृणावर्त, यमलार्जुन, बकासुर, धेनुकासुर, केशी, चाणूर, कालिय तथा अन्त में कंस आदि कई राक्षसों का संहार कर लोक कल्याण की स्थापना कृष्ण करते हैं। इसमें जरासंध से युद्ध, द्वारका पुरी का निर्माण का भी वर्णन है।

गोप गोपियों के साथ केलि, रासलीला आदि तथा बलराम का रेवती के साथ और कृष्ण की आठ कन्याओं के साथ विवाह सम्पन्न होना इसकी कहानी है। कवि की प्रतिभा इस विषय के वर्णन में अत्यन्त मुखर हो उठी है।

बच्चों के धीरे-धीरे बड़े होने का वर्णन कवि ने बालकों (राम तथा कृष्ण) की क्रीड़ाओं के साथ-साथ आगामी कार्यों की सूचना के साथ अत्यन्त चमत्कार पूर्ण रूप से दिया है।[1]

सभी राक्षसों के वध का वर्णन कवि ने विस्तार से किया है।

बाल क्रीड़ाओं के वर्णन में कवि ने सर्वत्र देशीयता को उचित रूप से निभाया है। ब्रज प्रदेश का, वहाँ की प्रजा का, उनके रीति-रिवाजों का रहन-सहन का जो वर्णन है वह तत्कालीन तेलुगु लोक जीवन का ही सजीव चित्रण माना जा सकता है।

इस काव्य में रुक्मिणी, सत्यभामा और जाम्बवती से विवाह वर्णन विस्तृत रूप में मिलते हैं।[2] रुक्मिणी का संदेश पाकर उसे ले जाना, श्यमंतक मणी की कथा, जाम्बवान से युद्ध आदि से कहानी सम्बन्धित है। इन सभी विवाह संस्कारों का वेदोक्त होने का वर्णन कवि ने किया है। आज भी तेलुगु प्रदेश में ये संस्कार वैसे ही पाये जाते हैं। जैसे—सेहरा बाँधना, वर-वधू को मधुपर्क (सफेद वस्त्र) पहनाना, जीरा और गुड़ का मिश्रण एक दूसरे के माथे पर रखना (शुभ मुहुर्त) तथा मंगलसूत्र बाँधना आदि-आदि। विवाह वर्णनों के साथ-साथ उस अवसर पर उपस्थित समाज के विभिन्न वर्गों के व्यक्तियों का, उनकी वेष-भूषा, अलंकार, उनकी उपस्थिति से विवाह के अवसर पर उत्पन्न शोर गुल आदि का सजीव चित्रण पढ़कर पाठक का मन रम जाता है।

---

1. अष्टमहिषी कल्याणमु—चिन्नन्ना—पृष्ठ 22
2. वही—पृष्ठ 173 से 243 तक

पश्चात् कालिंदी, मित्रविंदा, लक्षणा, भद्रा, और सत्यकीर्ती के साथ विवाहों का वर्णन संक्षिप्त है किन्तु तेलुगु प्रदेश के रीतिरिवाजों के अनुसार ही है।[1] मित्रविंदा को स्वयंवर में श्रीकृष्ण पाते हैं, तो सत्यकीर्ती को सात बैलों को एक साथ बाँध कर अपने शौर्य को प्रदर्शित कर विवाह कर लेते हैं। लक्षणा को मत्स्य यंत्र का भेद कर पाणिग्रहण कर लेते हैं तथा भद्रा उनकी फुफेरी बहन ही है, अतः विवाह सम्पन्न हो जाता है।[2]

इन सभी संस्कारों के पश्चात् श्रीकृष्ण अपनी पत्नियों के साथ द्वारका पुरी में आनंद से दिन बिताते हैं। ग्रंथ के अंत में कवि इसकी फलश्रुति इस प्रकार कहते हैं—

"ई कृष्ण चरितंबु नेव्वरू विन्न
वाक्रुच्चि तलचिन वारिकेल्लपुडु
चिरतरायुवुलु चिंतितार्थमुलु"[3]

अर्थात् जो व्यक्ति यह "श्री कृष्ण चरित" (यद्यपि ग्रन्थ का नामकरण अष्ट महिषी कल्याण हैं) पढ़ते हैं, सुनते हैं या केवल स्मरण मात्र करते हैं, उन्हें पूर्ण रूप से आयु, सम्पत्ति आदि की विशेष वृद्धि होती है।

इस काव्य रचना का मूल स्रोत चिन्नन्ना की वैष्णव धर्म के प्रति अथाह भक्ति है। सर्वत्र उन्हें विष्णु के ही दर्शन होते हैं। वैष्णव धर्मावलम्बियों के वंश में जन्म लेकर, स्वयं परम वैष्णव धर्मावलम्बी होने के कारण काव्य भी वैष्णव भक्ति की धारा में ओत-प्रोत है। पाठक इसे पढ़ विष्णु भक्ति की नदी में गोते लगाते हैं। उनके काव्य में उपमाएँ भी वैष्णव धर्म के ही अनुकूल दी गई हैं। यथा कृति के आरम्भ में अपनी वंशावली देते हुए पेदतिरुमलाचार्य के पाँचों पुत्रों के पाँच कल्प तरुओं से उपमा दी है। उनके अनुसार रुक्मिणी को ले जाते समय कृष्ण ऐसे प्रतीत होते थे मानों अमृत कलश ले जाते हुए गरुड़। क्षीर सागर में स्थित विष्णु स्फटिक की पेटी में स्थित नीलमणि जैसे भा रहे थे।[4] कृष्ण का सौंदर्य वर्णन करते हुए कवि भी गोपिकाओं की ही भांति मनोनेत्र से

---

1. अष्ट महिषी कल्याणमु—चिन्नन्ना, पृष्ठ 246 से 281 तक
2. विशेष सूची :—दक्षिण भारत में ममेरे तथा फुफेरे भाई-बहनों का विवाह किया जाता है। इस प्रकार के विवाह में उत्तर भारत के समान कोई आपत्ति नहीं है।
3. अष्ट महिषी कल्याणमु—चिन्नन्ना, पृष्ठ 283
4. वही—पृष्ठ 12

उनके दिव्य सौंदर्य के दर्शन कर रम जाते हैं और अपनी सुधि खो जाते हैं। स्वामी के सौंदर्य के वर्णन में उन्हें थकान नहीं होती है। प्रकृति के कण-कण में स्वामी को पाना कितना महान् है। कृष्ण के दिव्य सौंदर्य के वर्णन में कवि कई बार डूब जाते हैं।[1]

कभी-कभी कृष्ण के वर्णन में समकालीन राजा महाराजाओं की छटा भी आ जाती है। श्री वेटूरि आनन्द मूर्ति जी कृष्ण के क्षत्रिय रूपी वर्णनों में तत्कालीन विजयनगर के महाराजा साक्षात् कृष्णदेवराय की मूर्ति का प्रभाव मानते हैं। यह स्वाभाविक भी है। काव्य की विशेषताओं में से प्रथम उल्लेखनीय यह है कि काव्य के आरम्भ में कवि की वंशावली का वर्णन होने के कारण काव्य का ऐतिहासिक महत्व अत्यधिक है। अन्नमाचार्य की जीवनी और रचनायें तथा उस वंश के अन्यों की रचनाओं का आधार इसकी आरम्भिक पंक्तियां ही हैं।[2]

काव्य की दूसरी विशेषता द्विपद छन्द के लक्षणों का वर्णन है। तब तक द्विपद छन्दों की रचना तो हुई थी तो किन्तु उनके लक्षणों का स्पष्ट निर्देशन कहीं नहीं हुआ था। चिन्नन्ना ने इस काव्य के माध्यम से वह कमी पूरी कर दी।[3] आज तक द्विपद छन्द के लक्षणों को जानने के लिए शोधार्थी इसे ही अपना आधार मानते हैं। अतः लक्षण ग्रंथों की भी विशेषतायें इसमें समाविष्ट हैं।

माना जाता है कि चिन्नन्ना के इस काव्य पर तेलुगु के अन्य प्रसिद्ध कवि पोतना (आंध्र भागवत) एर्रना, (हरिवंश) (नन्नेचोड़ कुमार) सम्भव तिक्कना (निर्वचनोत्तर रामायण तथा महाभारत) पाल्कुरिकि सोमनाथ, नाचन सोमना, पेद्दना, आदि पूर्ववर्ती कवियों का प्रभाव है जिसने कवि की प्रतिभा में चार चांद लगा दिये हैं। चिन्नन्ना का यह काव्य अत्यन्त मनोहर रूप से सुसज्जित है।

उषा कल्याणमु : करीब 990 द्विपदों की यह एक लघु कृति है जिसका उपनाम "उषा परिणयमु" है जिसे कवि ने अलमेलमंगा को समर्पित किया है। कवि ने इसकी रचना हरिवंश के आधार पर करने का उल्लेख किया है। रचना का आरम्भ अलमेलमंगा, शारदा, गौरी-शंकर की प्रार्थना से होता है।[4]

---

1. अष्टमहिषी कल्याणमु—चिन्नन्ना पृष्ठ 156
2. वही—पृष्ठ 3, 4, 5 और 9
3. द्रष्टव्य है—पृष्ठ 6, 7
4. वही—पृष्ठ 1, 2

शोणितपुर का राजा बलि का पुत्र बाणासुर था। एक दिन उसने अपने द्वारपाल बने परमशिव से युद्ध करने की इच्छा व्यक्त की। शंकर ने कहा, "जिस दिन तुम्हारा ध्वज टूट कर अपने आप पृथ्वी पर गिर जायेगा, उस दिन यह समस्त भूमंडल को जीतने वाले महान् योद्धा से तुम्हारी लड़ाई होगी। वह तुम्हें ही नहीं हमें भी जीत लेगा।"[1] यह वर पा कर बाणासुर संतुष्ट हो जाता है किन्तु उसका मंत्री संदेह प्रकट करता है कि तुम्हारे पिता को (बलि) एक ही कदम में पाताल में गिरा दिया था, क्या उस हरि से तुम युद्ध कर सकते हो ? ठीक इसी समय ध्वज अपने आप गिर जाता है। दुःशकुन भी होने लगे जिसे देख मंत्री चिंतित होने लगा। किन्तु बाणासुर सुरापन में मग्न हो गया था।[2]

बाणासुर की पुत्री उषा अत्यन्त सुन्दरी थी। उसने जगन्माता पार्वती से वरदान पाया था, "कामदेव से भी सुन्दर युवक जिसे तुम अपने स्वप्न में वैशाख मास के द्वादशी के रात को देखोगी, उसे ही अपने पति के रूप में पाओगी।"[3] एक रात वीणा वादन सुनते हुए नींद में डूबी उषा पार्वती के वचनों के अनुसार ही एक मन मोहक मन्मथाकार युवक से स्वप्न में मिलती है। उसके प्रति मोह जग जाता है और उस युवक से विवाह करना चाहती है। उसकी सखी चित्रकला, उसे धीरज देती है कि यह कार्य चाहे कितना भी कठिन क्यों न हो, किन्तु मैं साकार करूँगी। अपने नाम की सार्थकता करती हुई चित्रकला, सुर, नर, किन्नर आदि पुरुषों के रेखा चित्र खींचती है। उन चित्रों से उषा श्री कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध को देख उसे ही अपना प्रेमी पहचानती है। अब चित्रकला नारद मुनि की सहायता से तापसी विद्या के द्वारा अनिरुद्ध को उसके शयनागार से शय्या सहित लाकर उषा के सामने प्रस्तुत करती है। जागने पर अनिरुद्ध अपने को इस अपरिचित वातावरण में पाकर विस्मय के साथ-साथ उल्लास में डूब जाता है। बाणासुर यह सब जानकर उषा सहित अनिरुद्ध को कारागार में डाल देता है।

इधर अनिरुद्ध को द्वारका में परिवार के सदस्य ढूँढने लगते हैं। समय पर नारद विषय की जानकारी देते हैं। अब कृष्ण अपनी सेना के साथ शौणपुर पर आक्रमण कर बाणासुर तथा शिव की सेनाओं से भीषण युद्ध करते हैं। अंत में बाणासुर के शरण में आने पर कृष्ण उसे क्षमा कर देते हैं। उषा तथा

---

1. उषा कल्याणमु–चिन्नन्ना—पृष्ठ 8
2. वही—पृष्ठ 10
3. वही—पृष्ठ 24

अनिरुद्ध का विवाह वैभव से सम्पन्न हो जाता है। स्थूल रूप से इस ग्रन्थ का कथानक यही है।

चिन्नन्ना के इस कथा के कथन में औचित्य का पूर्ण रूप से पालन हुआ है। जैसे चित्रलेखा का वेश बदल कर द्वारका पहुँचना, वहाँ नारद से भेंट होना, फिर तापसी विद्या के द्वारा अनिरुद्ध को लाना—ये सभी घटनायें एक शृंखला में बंधे हुए परिणाम क्रम के आधार पर होती हैं जो अत्यन्त सहज है। उसी प्रकार नायक तथा नायिका चित्रण में भी उन्होंने किसी प्रकार से अनौचित्य (कथोपकथन या वातावरण) नहीं आने दिया है।

कवि की कुशलता का उदाहरण देखिए—"चित्रलेखा द्वारा चित्रित यादव वीरों के चित्रों को उषा देखती है। पहले बलराम को देख कर मन में शंका उत्पन्न होती है। कृष्ण को देख और अधिक होती है, फिर प्रद्युम्न को देख वह वही है (जिसे स्वप्न में देखा था) या नहीं, इस संदेह में डोलायमान स्थिति में रहती है। अन्त में अनिरुद्ध का चित्र पा कर हर्षोल्लास पाती है कि यह वही युवक है जिसका मुझे स्वप्न में साक्षात्कार हुआ था। प्रेम में विवश हो जाती है। "इस प्रकार के वर्णन से कवि उषा की उत्सुकता के साथ-साथ पाठकों की भी उत्सुकता को अन्त तक निभाने में सम्पूर्ण रूप से सफल हुए हैं।"[1]

चिन्नन्ना ने मूल हरिवंश का आधार लेते हुए भी उसे स्वतंत्र रूप से घटा बढ़ा कर घटनाओं को, वर्णनों को, अत्यन्त रोचक बनाया है।

इस रचना में भी भगवान विष्णु के प्रति अपनी भक्ति का प्रदर्शन कवि ने किया है। इसमें शिव के सैनिक तथा स्वयं भगवान शंकर विष्णु की प्रार्थना तरह तरह से करते हैं। भगवान शंकर निम्नलिखित स्तोत्र में कृष्ण के विभिन्न अवतारों का गान इस प्रकार करते हैं—

"मलसि ब्रह्मनु गाव मत्स्यंबु वैतिवलनाडु
कृष्णुडवैतिवि नेडु
जलधि गट्टग रामचंद्रुड वैतिवानाडु
कृष्णुड वैतिविनेडु।[2]

अर्थात् ब्रह्मा की रक्षा करने के लिए पहले तुम मत्स्य बने थे, आज कृष्ण हो। उसी प्रकार वारिधि के निर्माण के लिए राम तथा हैहय वंशजों के

1. ताल्लपाकवारि साहित्यमु–परिशीलनमु–वे. आनन्दमूर्ति, पृष्ठ 201
2. उषा कल्याणमु–चिन्नन्ना, पृष्ठ 66

नाश के लिए भार्गव राम बने थे। इस प्रकार से स्तुति में विभिन्न अवतारों का वर्णन है।

अन्य स्तोत्रों में भगवान के विभिन्न कल्याणकारी गुणों का वर्णन है। जैसे लक्ष्मी सहित हे विष्णु ! तुम सर्वत्र व्याप्त सगुण एवं निर्गुण भी हो।[1] इसी प्रकार कृष्ण तथा अन्यों के चित्रों का वर्णन करते हुए भी कवि अपनी तन्मयता तथा प्रपत्ति को दिखाते हैं। प्रत्येक स्थान पर कवि का वैष्णव धर्म के प्रति पक्षपात स्पष्ट है। विष्णु ही नहीं उनके सुदर्शन चक्र, गदा, गरुड़ आदि के वीरता के वर्णन के साथ कवि स्वयं भी तन्मय हो जाते हैं। उषा तथा अनिरुद्ध का विवाह तेलुगु भाषाभाषियों की शैली का विवाह वर्णन है। साथ ही इसमें चित्रलेखन, नाट्य, संगीत आदि में कवि के विस्तृत ज्ञान का परिचय है।

परमयोगि विलासमु : चिन्नन्ना की यह श्रेष्ठ रचना है। यह एक विशाल काव्य है जिसमें कवि की वैष्णव भक्ति के साथ अन्य कई विशेषतायें भी उमड़ आयी हैं। "6377 द्विपद छन्द अर्थात् 12754 पंक्तियों में इसमें कवि ने बारह आलवार तथा आचार्यों का पुण्य कथन किया है। वैष्णव धर्म के अनुसार भागवत पुरुषों की कहानियाँ लिखना, पढ़ना या सुनना पवित्र माना जाता है। अतः उस पुण्य के साथ वैष्णव धर्म के प्रचार का पुरुषार्थ भी इस परमयोगि-विलास की रचना से कवि चिन्नन्ना ने प्राप्त किया है।"[2]

इस ग्रंथ को कवि ने भगवान वेंकटेश्वर तथा अलमेल मंगा को समर्पित किया है। माना जाता है कि स्वयं वेंकटेश्वर वैष्णव रूप धारण कर चिन्नन्ना के स्वप्न में प्रकट हुए। भगवान ने वैष्णव गुरु परम्परा के महान आचार्यों की कहानियों को ग्रंथस्थ करने का चिन्नन्ना से अनुरोध किया। वैष्णव गुरु परम्परा की महानता को चित्रित करनेवाले द्रविड़ ग्रंथ का आधार लेकर कवि ने अपनी कुशलता से शुद्ध तेलुगु में इस कृति की रचना की है। इस काव्य की विशेषता संक्षिप्त रूप से इस प्रकार कह सकते हैं—"प्रस्तुत काव्य आलवार तथा आचार्यों की जीवनी, उनकी रचनायें, उनके संदेश कहीं-कहीं उनकी रचनाओं के अनुवाद आदि मिलाकर मानों वैष्णव धर्म की एक निधि है। यह वैष्णव धर्म का श्रेष्ठ ग्रंथ है। साथ ही देशी तेलुगु के स्वच्छ द्विपद छन्द में गेय जनप्रिय

---

1. उषा कल्याणमु-चिन्नन्ना, पृष्ठ 82
2. ताल्लपाक वारि साहित्यमु-परिशीलनमु—वे. आनन्द मूर्ति, पृष्ठ 213

कृति है। इन सभी गुणों के कारण मानों यह ग्रंथ वैष्णव धर्म का कोष ही ही बन गया है।"[1]

प्रथम परिच्छेद : काव्य के आरम्भ में कवि ने परम्परा के अनुसार भगवान बालाजी, लक्ष्मी, भूदेवी, शंख, चक्र, खड्ग आदि का भक्तिपूर्वक वर्णन किया है। साथ ही कवि ने विस्तार रूप से विष्णु भक्त गरुड़ तथा विश्वक्सेन, अपने पिता, पितामह, आचार्य तथा अन्य वैष्णव आचार्य—रामानुज आदि का भी भक्ति के साथ स्मरण किया है।[2] प्रथम आलवार का जन्म काँची क्षेत्र के वरदराज स्वामी के मंदिर के तालाब के सोने के रंग के कमल से भगवान विष्णु के पांचजन्य अंश से हुआ था।[3] देवता गण ने फूल बरसाये। "हरि का जन्म देवकी के गर्भ से जब हुआ था, उसी प्रकार की चारों ओर प्रसन्नता छा गयी थी।"[4] इन के पालन पोषण का भार स्वयं लक्ष्मी नारायण ने उठाया था तथा आज्ञा दी कि हे बालक ! तुम इस संसार के जीवों को वैदिक मार्ग पर चलाना। हम तुम्हारी सहायता करेंगे।[5] योगी भगवान की इस आज्ञा का पालन करने देश की यात्रा करने चले गये थे।

इनके जन्म के दूसरे तथा तीसरे दिन क्रमश: भूतत्तात्वार तथा महदाह्वाय मुनि का जन्म कोमोदकी (गदा) तथा नंदक (तलवार) अंशों से हुआ था। इन्हें भी विष्णु तथा लक्ष्मी ने ही पालन-पोषण के साथ आत्म विद्या का ज्ञान भी दिया था। वे तीनों एक दूसरे के खोज में सारे देश का भ्रमण करते हैं तथा एक भारी वर्षा की रात अंधकार में उनका मिलन संयोग से हो जाता है। भगवान विष्णु के दर्शन पा कर आशु रूप से प्रत्येक आलवार ने सौ-सौ पद्यों के 'अंत्यादि'[6] से स्तुति की। ये स्तुतियाँ आज भी दक्षिण में बड़ी भक्ति से मंदिरों में गायी जाती हैं।

"इन तीनों आलवारों ने क्रमश: पांचजन्य, कौमौदकी तथा नंदक अंशों से जन्म लिया था। इनमें शंख सात्विक, गदा तामस तथा तलवार राजस गुणों के प्रतीक हैं। इसी प्रकार उनका पीत वर्ण के कमल, नीलोत्पल तथा रक्तोत्पल से जन्म लेना भी क्रमश: त्रिगुण के ही प्रतीकत्व का परिचायक है।

---

1. ताल्लपाकवारि साहित्यमु परिशीलनमु—वे. आनन्द मूर्ति, पृष्ठ 218
2. परमयोगि विलासमु—चिन्नन्ना, पृष्ठ 1 से 6 तक
3. वही—पृष्ठ 31
4. वही—पृष्ठ 32
5. वही—पृष्ठ 33
6. प्रथम तीन आलवारों की रचनाओं को "अत्यादि" संज्ञा दी गयी है।

भगवान का साक्षात्कार करने के लिए प्रथम योगी ने भक्ति, द्वितीय ने ज्ञान तथा तृतीय ने आत्मसमर्पण का मार्ग लिया है। प्रथम दोनों से अधिक तन्मयता तीसरे योगी को प्राप्त हुई थी जिसे "प्रपत्ति" मार्ग कह सकते हैं, जिसके द्वारा ही जीव परमात्मा को पा सकता है।"[1]

द्वितीय परिच्छेद : भार्गव मुनि की घोर तपस्या के कारण स्वर्गलोक तक अग्नि ज्वालायें फैल जाती हैं। अतः भयभीत हुए इन्द्र अप्सरा को भेजते हैं। वह मुनि को आकर्षित कर उनके द्वारा एक पुत्र को सुदर्शन चक्र के अंश में जन्म देती है, पश्चात् अप्सरा स्वर्गलोक तथा मुनि यात्रा करने चले जाते हैं। अतः बालक एक हरिदास नामक व्यक्ति के पास बढ़ने लगता है तथा कई महिमायें भी दिखाने लगता है। यही बच्चा कालान्तर में 'भक्तिसार योगि' के नाम से प्रसिद्ध होता है। भक्तिसार योगि की महिमा के कारण एक वृद्ध दम्पति को पुत्रोदय होता है। पश्चात् "कणिकृष्ण" के नाम से भक्तिसार योगी बालक का ही शिष्य बन जाता है। इन गुरु शिष्य की महिमाओं के सम्बन्ध में कई कथायें इसमें मिलती हैं। इन्होंने वैष्णव धर्म से सम्बन्धित कई रचनायें भी की। उनके गायन के साथ वैष्णव धर्म का प्रचार करते हुए दोनों गुरु-शिष्य सारे देश का भ्रमण करते हैं। सुदर्शन चक्र की ही भांति ये आलवार भी देश का भ्रमण करते हुए संसार के दोषों को मिटा कर, अपनी महिमा से सभी लोगों को अपने वश में ला कर उन व्यक्तियों को स्वामी का साक्षात्कार करवाते हैं। इनकी जीवनी से हम इस तथ्य पर पहुँच सकते हैं कि—जाति से अधिक भगवद् भक्ति तथा भागवतोत्तमों की भक्ति ही श्रेष्ठ हैं। भक्तिसार योगी की रचनायें शठ गद्य हैं। उनकी भक्तिपूर्ण स्तुति के कारण भगवान विष्णु इन्हें दर्शन देते हैं। विष्णु के दिव्य सौंदर्य का उन्होंने विस्तृत वर्णन किया है।[2]

तृतीय परिच्छेद : इसमें नम्मालवार, कुल शेखर आल्वार, मधुर कवि आल्वार और तिरुप्पाणाल्वारों की कथायें हैं। आल्वारों में नम्मालवार अत्यन्त महिमान्वित माने जाते हैं। विश्वक्सेन के अंश से इनका जन्म हुआ था जिन्हें "शठगोपयति" भी कहा जाता है। सूतिका गृह में स्वयं हरि से ज्ञानोपदेश पाने का सौभाग्य उन्हें मिला था। उन्हें एक तिन्त्रिणी वृक्ष के नीचे रख दिया गया था जहाँ वे योगावस्था में ही षोड़श वर्ष तक रहे। इन्होंने भी भगवान

---

1. ताल्लपाकवारि साहित्यमु—परिशीलनमु—वे. आ. मूर्ति पृष्ठ 224
2. देखिए—परमयोगि विलासमु—विन्नन्ना, पृष्ठ 111-112

विष्णु पर कई रचनाएँ की। इनकी प्रमुख रचनाएँ "द्रविड़ वेद" माने जाते हैं। दक्षिण देश के वैष्णवों ने इनकी ही रचनाओं को अधिक संख्या में ग्रहण किया है जो गुण में ही नहीं वरन् संख्या में भी अधिक मात्रा में हैं। "साधारण भक्तों को ये रचनायें भाव प्रेरक तथा ज्ञानियों को वेद, गीता और भागवत का सार प्रतीत होती हैं।"[1] जन्म लेते ही विष्णु पर मधुर कविता का गान करने के कारण "मधुर कवि आलवार" नाम से प्रसिद्ध हुए एक और आलवार नम्मात्वार के शिष्य थे। "मधुर कवि अल्वार की कविता गुलाबजल की तरह शीतल, कपूर की भांति सुगंधित तथा अमृत जैसी मधुर थी।"[2] इन्होंने वेदार्थों का अनुवाद तथा अपने गुरु की प्रशंसा में भी रचनाएँ की।[3] गुरु-शिष्य ने अपना शेष जीवन हरि ध्यान तथा संकीर्तन में ही बिता दिया। इनकी जीवनी भी कुल गोत्र का नहीं किन्तु भक्ति की महानता की ही घोषणा करती हैं। भगवद्-भक्ति का श्रेष्ठ उदाहरण नम्मात्वार में है तो गुरुभक्ति का श्रेष्ठ उदाहरण मधुर कवि आल्वार में हैं। इनकी और कथायें, रचनायें भगवद् भक्ति से भी गुरु भक्ति की महानता की घोषणा करती हैं। भगवान को इस कलियुग में संकीर्तन सेवा ही प्रिय है तथा उसी सेवा से भक्त भवसागर पार कर सकते हैं।···वैष्णव भक्ति साहित्य के प्रचार रूपी यज्ञ में ये प्रजापति थे।"[4]

कुलशेखर आल्वार केरल के राजा थे। भगवद् भक्ति में अनुरक्त इस राजा ने ऐहिक बंधनों के साथ राज्य को भी त्याग दिया था। इनका जन्म वैष्णव भक्त राजा के यहाँ उसी प्रकार हुआ था जिस प्रकार दशरथ के घर राम हुए थे।[5] ये कौस्तुभ अंशज थे। ये "सियाराम" के भक्त थे तथा इन्होंने उनका साक्षात्कार भी पाया।[6] श्रीराम तथा वेंकटेश्वर की जो स्तुतियाँ इन्होंने की वे "द्रविड़ काव्य" के नाम से विख्यात हैं। इन्होंने राम साक्षात्कार पर सम्पूर्ण रामकथा का गान किया।[7] कुलशेखर आलवार की भक्ति पर विशेष प्रसन्न होकर भगवान विष्णु स्वयं उन्हें वैकुण्ठ लेने आये थे। इनकी भी भगवद् भक्ति के साथ भागवतों की भक्ति की श्रेष्ठता की घोषणा जीवनी

1. आंध्र द्विपद साहित्य चरित्रा—टी. सुशीला, पृष्ठ 249
2. देखिए—परमयोगि विलासमु—चिन्नन्ना, पृष्ठ 141
3. वही—पृष्ठ 147
4. ताल्लपाक वारि साहित्यमु—परिशीलनमु—वे. आ. मूर्ति, पृष्ठ 238
5. परम योगि विलासमु—चिन्नन्ना, पृष्ठ 153
6. वही—पृष्ठ 180 7. वही—पृष्ठ 181

करती है। अपने जीवन को अंत तक इन्होंने हरि भक्तों की पूजा में ही बिता दिया था।[1]

तिरुप्पाणाल्वार श्रीवत्सांशज थे। ये वीणा वादन के साथ विष्णु के संकीर्तन करते थे। इन्होंने शास्त्रीय ढंग से श्रीरंगनाथ के चरण, चक्र, अधर, नयन, कमल, देह सौन्दर्य आदि का गान तन्मयता से किया था जिसे द्राविड़ प्रबन्ध माना गया है।[2] इनकी रचनाओं की असंख्य व्याख्यायें की गई हैं। "वेदान्त देशिक ने इस काव्य की प्रत्येक शब्द की व्याख्या करते हुए भी संतृप्त न होकर प्रत्येक कविता के लिए एक एक श्लोक की रचना की। उनकी इस रचना को भगवात् ध्यान सोपान संज्ञा दी गयी है।[3] इनकी जीवनी भी यही विवरण देती है कि भगवान का ध्यान ही मोक्ष प्रदायक है जिसमें भगवान के चरण ही प्रथम सोपान हैं ! भगवान को गान तथा संकीर्तन सेवायें ही विशेष प्रिय हैं। इस प्रकार भक्ति में तन्मय जीवन व्यतीत कर ये धन्य हुए।

चतुर्थ परिच्छेद : इसमें "विप्रनारायण" नाम से विख्यात "तोंडरप्पोडियाल्वार" की जीवनी है। नारायण के अनुग्रह से विप्र के घर वनमालिका अंश से इनका जन्म हुआ। ये माता के गर्भ में ही सकल शास्त्रों के प्रवीण हो गये थे। कावेरी नदी के किनारे सुन्दर उपवन के फल-फूलों से स्वामी रंगनाथ की सेवा में मग्न रहते थे। भगवान की लीला के कारण एक वेश्या के मोह में पड़ कर भी अन्त में पश्चाताप के कारण मुक्ति पाते हैं। "वनमालिका" तथा "प्राबोधकी" रचनायें हैं। इनकी जीवनी मानव के क्षणिक दोषों का भगवान से क्षमा किये जाने का उदाहरण है। "मालाकैंकर्य"[4] भगवान को अत्यन्त प्रिय है जिसका श्रेष्ठ उदाहरण विप्रनारायण की जीवनी है। भगवान के साक्षात्कार पर इन्होंने अपने आपको हरि भक्तों की चरण धूलि बनने की प्रार्थना की थी अतः ये "भक्तांघ्रिरेणु" के नाम से भी विख्यात हुए।[5]

पंचम परिच्छेद : विष्णुचित्त तथा गोदा देवी की कथायें क्रमशः इस परिच्छेद में हैं। ऐसी मान्यता है कि श्री विलितपुत्तूर तीर्थ के वटपत्र शायी

---

1. कवि ने इसके कई उदाहरण दिये हैं, पृष्ठ 160 से 179
2. परम योगि विलासमु—चिन्नन्ना, पृष्ठ 213-214
3. ताल्लपाक वारि साहित्यमु—अनुशीलनमु—वे. आ. मूर्ति, पृष्ठ 244
4. प्रति दिन भगवान को माल्यार्पण करना "माला कैंकर्य" कहलाता है।
5. परमयोगि विलासमु—चिन्नन्ना, पृष्ठ 286

कृष्ण के परम भक्त पेरियाल्वार ने गरुड़ अंश से जन्म लिया था जिनका उपनाम विष्णुचित्त था। यज्ञों से भी अधिक प्रभावशाली माला कैंकर्य मान कर इन्होंने भगवान को विभिन्न प्रकार के पुष्पों की मालायें गूँथ कर समर्पित करने में अपना जीवन बिताया। भगवान के अनुग्रह के कारण पांड्य राजा के राजदबार में (शास्त्रज्ञान न होते हुए) विष्णु की महानता को तर्क संगत इन्होंने स्थापित किया था। इस प्रकार इन्होंने ज्ञान से भक्ति की महानता को घोषित किया था। इनकी रचनायें हैं—"मंगलाशासन" तथा "पेरियाल्वार।" ये 'तिरुमोजि' के नाम से जाने जाते हैं।

आंडाल : आंडाल के नाम से विख्यात गोदा देवी पृथ्वी का ही अवतार मानी जाती हैं। गोदा अपने पिता विष्णु चित्त को तुलसी के वन में प्राप्त हुई थीं। आकाशवाणी से इनके जन्म का कारण बताया गया था कि विष्णु को माला कैंकर्य सेवा करने के लिए भूदेवी ने ही इस प्रकार से जन्म लिया था।[1] विष्णुचित्त अत्यन्त प्यार से इस कन्या को घर ले जाते हैं तथा पालन पोषण करते हैं। कन्या को भी बचपन से ही कृष्ण के प्रति इतनी भक्ति थी कि उन्हें सुलाने के लिए "लोरियाँ" भी कृष्ण को सम्बोधित करके गानी पड़ती थी। वे कृष्ण के गीत सुन खिलखिला कर हंस पड़ती थीं।"[2] गोदा देवी की आयु के साथ साथ उनके हृदय में कृष्ण की प्रीति भी बढ़ती गयी। भगवान के समर्पण हेतु बनायी मालाओं को स्वयं पहन कर विशेष आनन्द पाती थीं। अनजान में विष्णुचित्त इन्हीं मालाओं को भगवान को समर्पित करते थे। एक दिन पिता गोदा के गले में हार देख चिंतित हुए। दूसरी बना कर भगवान को पहनाते हैं तथा अपने इस अपराध की क्षमा याचना करते हैं। किन्तु भगवान को यह दूसरी माला पसन्द नहीं आती है अतः वे कहते हैं कि "जो माला तुम्हारी पुत्री नहीं पहनती है वह मुझे पसन्द नहीं आती"[3] और गोदा से विवाह करने का वादा करते हैं। कृष्ण चरित्र सुन-सुन गोदा देवी ने "तिरुप्पावे" तथा—"नाच्चियार तिरुमोशि" की रचनायें की थीं जिनमें भगवद् विरह का वर्णन है। तिरुप्पावे अत्यन्त मधुर रचना है। इसे साहित्य और संगीत प्रेमी चाव से पढ़ते और गाते हैं। दक्षिण के मंदिरों में तिरुप्पावे का गान विशेष रूप से धनुर्मास[4] में गाया जाता है। गोदा देवी विष्णु से विवाह कर श्रीरंगम चली जाती हैं। [विजयनगर के प्रसिद्ध राजा श्रीकृष्णदेव राय से भी श्री

1. परमयोगि विलासमु—चिन्नन्ना, पृष्ठ 309—311

2. वही—पृष्ठ 314 3. वही—पृष्ठ 319 4. मार्गशीर्ष का महीना

रंगेश तथा गोदा देवी की कथा ले कर "आमुक्त माल्यदा" या "विष्णुचित्तीय" नामक सुन्दर काव्य की रचना की है। इसका तेलुगु साहित्य के प्रबन्ध काव्यों में विशेष स्थान है।]

आंडाल की कहानी मधुर भक्ति की श्रेष्ठता घोषित करती है। "परमात्मा से मिलने के लिए जीव को स्वयं नायिका बन, स्वामी को प्रेम से, भक्ति भाव से दिव्य शृंगार की स्थिति में पहुँच कर संयोग से तादात्म्य की अनुभूति पानी चाहिए। विशिष्टाद्वैत सिद्धान्तों को समझने के लिए गोदादेवी की कथा भी वैसी ही है जैसे वेदों को समझने के लिए पुराण तथा इतिहास।"[1]

षष्ठ तथा सप्तम् परिच्छेद : इनमें "तिरुमंगैयाल्वार" की कथा है। विष्णु के धनुष के अंश में इनका जन्म हुआ था। "चतुर्विध कतित्व स्वामी।"[2] की उपाधि इन्हें प्राप्त थी। सामान्य शूद्र वंश में जन्म ले कर इन्होंने भगवान की सेवा में अपना जीवन बिताया। यों वे तत्कालीन चोल राजा के मंत्री थे। एक बार भगवान की सेवा के लिए धनागार से धन व्यय करने पर राजा ने कुपित हो कर इन्हें राज्य से निर्वासित कर दिया। अतः इन्होंने हरि सेवा के ही हेतु चोर वृत्ति आरम्भ की। इसी समय भगवान ने दर्शन दे कर अष्टाक्षरी का उपदेश दिया। भगवान के दिव्य स्वरूप का साक्षात्कार पा कर इन्होंने एक सहस्र से भी अधिक भक्ति स्तोत्रों की रचना की। इनकी अन्य रचनाओं में भगवान को नायक तथा जीव को नायिका बना कर विरही नायिका का चित्रण किया गया हैं। सभी आलवारों में इनकी ही रचनायें सबसे अधिक मात्रा में हैं। केवल नम्मालवार को ही इनके समक्ष बिठाया जा सकता है। वैष्णव सम्प्रदायी नम्मालवार की रचनाओं को चार वेद मानते हैं तो तिरुमंगैयाल्वार की रचनाओं को वेदांग। इनकी जीवनी मन की स्वच्छता की घोषणा करती है।

अष्टम परिच्छेद : चिन्नन्ना ने इस विशाल काव्य में बारह आल्वारों की कथाओं के साथ-साथ आचार्य पुरुषों की जीवनी श्रीमन्नाथमुनि, यामुनाचार्य तथा श्री रामानुजाचार्य की जीवनी दी है, जिन्होंने वैष्णव धर्म को सुस्थिर बनाया था।

श्रीमन्नाथमुनि, प्रथम वैष्णवाचार्य के द्राविड़ प्रबन्ध (पाशुर) के काव्य सौंदर्य पर मुग्ध हुए और उसका प्रचार किया। ये स्वयं महान् गायक थे।

---

1. ताल्लपाकवरि साहित्यमु—अनुशीलनमु—वे. आ. मूर्ति, पृष्ठ 256
2. परमयोगि विलासमु—चिन्नन्ना पृष्ठ 375

उनका विश्वास था कि कठिन ज्ञान मार्ग की अपेक्षा इस प्रबन्ध के गीतों के द्वारा भगवान को सुलभ रूप से पाया जा सकता है। इन्होंने द्राविड़ प्रबन्ध को अपने गाँव में पढ़ने का प्रबन्ध किया था और अपने शिष्यों को सिखा कर विस्तार रूप से प्रचार उसका किया था।[1] मान सकते हैं कि इनके ही कारण श्रीवैष्णव सम्प्रदाय को एक नई चेतना, नई स्फूर्ति तथा प्रचार मिला था। साथ ही एक नया युग भी आरम्भ हुआ था। श्रीमन्नाथमुनि की एक रचना—"योगरहस्य" आज अप्राप्य है। दूसरी रचना "न्यायतत्व" अपने युग में विशिष्टाद्वैत सिद्धान्तों का प्रथम ग्रन्थ मानी गई है।

श्रीमन्नाथमुनि के पौत्र "यामुनाचार्य" ने स्वल्प आयु में ही गुरु से वेद-विद्याओं को प्राप्त कर लिया था। इन्होंने चोल राजा के राजगुरु को शास्त्र चर्चा में हरा दिया था। "सिद्धित्रय" "श्री हरिस्तोत्र", "गीतार्थ संग्रह" तथा "महापुरुष निर्णय"—इनकी कृतियाँ हैं। विष्णु के शरण पाकर प्रपत्ति द्वारा उनकी सेवा करने का वर्णन स्तोत्र रत्न का विषय है। वैष्णव धर्म के प्रचार के लिये इन्होंने महापूर्ण, श्री पूर्ण, गोष्ठी पूर्ण तथा काँची पूर्ण नामक चार शिष्यों को देश के चारों ओर भेजा। इनकी जीवनी वैष्णव धर्म सिद्धान्तों के प्रतिपादन के साथ-साथ गुरुदेव की महानता, ज्ञान समुपार्जन के साथ-साथ योगाभ्यास की आवश्यकता का भी निरूपण करती है।[2]

यामानुचार्य के ही वंशज तथा महापूर्ण के शिष्य "श्री रामानुजाचार्य" वैष्णव धर्म के आधार स्तम्भ माने जाते हैं। इन्होंने अल्प आयु में ही देश के कोने-कोने में जाकर विद्वानों को तर्क-वितर्क में हराया था। तत्कालीन चोल-राजा ने हरिद्वैषी होने के कारण इन्हें कई कष्ट दिये थे। अतः इन्होंने श्रीरंगम को छोड़ ब्रज प्रदेश में कदम रखा जहाँ उन्होंने भगवान् की प्रतिष्ठा कर वैष्णव धर्म को सम्पूर्ण भारत में फैलाने का प्रयत्न किया। सम्पूर्ण देश में इनके कई शिष्य थे। विशिष्टाद्वैत संप्रदाय के प्रवर्तक रामानुज की रचनायें—"वेदान्त दीप", वेदान्तसार, गद्यत्रय तथा "गीता विवरण" हैं, जिनसे वे कश्मीर के शारदापीठ में स्वयं शारदा देवी को प्रसन्न कर सके थे।

आल्वारों के भक्ति मार्ग के पश्चात् इन आचार्यों ने ज्ञान मार्ग का उपदेश प्रारम्भ किया था। "आल्वार तथा आचार्यों के उपदेशों में कुछ अन्तर

1. परमयोगि विलासमु—चिन्नन्ना, पृष्ठ 479–80
2. ताल्लपाक वारि साहित्यमु—परिशीलनमु, पृष्ठ 369 वे. आनंद मूर्ति

था। आचार्य अपने उपदेशों का मूल केवल द्राविड़ ग्रन्थ ही नहीं, वरन् संस्कृत के धार्मिक ग्रन्थों से भी लेने लगे। इन्होंने भक्ति के साथ-साथ ज्ञान तथा कर्म मार्गों को भी भगवान् की प्राप्ति के उपाय माना। वेद, उपनिषद् तथा द्रविड़ ग्रन्थों की एक प्रकार से समन्वय करने की चेष्टा करने के कारण इन्हें "उभय दार्शनिक" के नाम से जाना जाने लगा। इन्होंने आल्वारों को अपना मार्ग दर्शक माना। आल्वारों के "दिव्य प्रबन्धम्" को वेदतुल्य मानकर मंदिर तथा गृहों में पठनीय ग्रन्थ के रूप गौरव मिला। आज वैष्णव धर्मावलम्बियों के सभी व्यावहारिक तथा लौकिक नियम जैसे पूजा-पाठ, त्यौहार, दान-धर्म उपवास आदि इन्हीं से निर्धारित हुए। अतः वैष्णव सम्दाय के लिये ये आचार्य अत्यन्त पूजनीय हैं।"[1]

प्रधान रूप से वैष्णव धर्म के प्रचार की दृष्टि से चिन्नन्ना ने इस विशाल काव्य ग्रन्थ "परम योगि विलास" की रचना की। अन्त में कवि कहते हैं—"इन योगीश्वरों का इतिहास केवल एक बार पढ़ने, सुनने, लिखने या स्मरण मात्र से ही कई प्रकार के सुख-सम्पत्ति प्राप्त होंगे।"[2] सम्पूर्ण ग्रन्थ भक्तिरस पूर्ण है। इसके स्वामी सम्बन्धी वर्णन, स्तुति, भगवत् तथा भागवद् भक्ति सम्बन्धी रचनायें वैष्णव धर्म के प्रति जिज्ञासा को उद्दीप्त करती हैं। इसमें ग्रन्थस्थ उत्तम कोटि के विचार, वर्णन कौशल तथा विविधतापूर्ण वर्णन इस काव्य के गौरव को बढ़ाते हुए कवि की द्विपद रचना सामर्थ्य को भी प्रभावित करते हैं।

अन्नमाचार्य चरित्रा : पद कविता पितामह अन्नमाचार्य की सम्पूर्ण जीवनी का मुख्य आधार यही द्विपद काव्य है। स्वयं अन्नमय्या के पौत्र से रचित होने के कारण इस ग्रंथ का ऐतिहासिक महत्व बहुत अधिक है। चिन्नन्ना अपने पूर्ववर्ती काव्यों के अनुरूप इसका भी आरम्भ इष्टदेवता वेंकटेश्वर, अलमेलमंगा, शंख, चक्र आदि के स्तुति से करते हैं।

अन्नमय्या की जीवनी पिछले अध्याय में इसी के आधार पर दी गयी है। अतः यहाँ उस काव्य के सौन्दर्य की कुछ झलकें प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है।

अन्नमय्या का जन्म "ताल्लपाक" गाँव में हुआ था जिसका सुन्दर चित्र कवि हमारी आँखों के सामने प्रस्तुत करते हैं। वहाँ चारों ओर लाल कमल से

---

1. आन्ध्र द्विपद साहित्य चारित्रा—टी. सुशीला पृष्ठ 255
2. परमयोगि विलासमु—चिन्नन्ना पृ. 543

भरे तालाब, केवड़े की फूलों की झाड़ियाँ, रसदायी ईख तथा चारों ओर हरे-भरे खेत हैं। वहाँ के ब्राह्मण वेद-वेदांगों के पंडित हैं। वे गोविन्द की मूर्ति को देखते हैं। नारायण की कथा सुनते हैं, पूजा करते हैं, हरि चरणों का ही स्मरण करते हैं तथा केवल विष्णु प्रसाद ही उन्हें ग्राह्य है।[1]

प्रस्तुत ग्रंथ में अन्नमय्या की जीवनी, वंश, सन्तान, बाल्य, विद्याभ्यास, तिरुपति यात्रा, वहाँ के पुण्य स्थल, अलमेलमंगा तथा स्वामी का दर्शन, संकीर्तन रचना, राजानुग्रह तथा राजधिक्कार, कई महिमायें तथा पुरन्दरदास से भेंट आदि अनेक घटनायें वर्णित हैं। इस ग्रंथ की कलात्मकता के साथ-साथ ऐतिहासिकता का भी विशेष महत्व है। आज उनकी जीवनी के लिए यही आधार ग्रंथ है। "इस रचना का आधार चिन्नन्ना ने अपने पिता पेद तिरुमलाचार्य के मुख से सुने वचन तथा संकीर्तन क्रमों को माना होगा। चिन्नन्ना के प्रायः बचपन में ही पितामह का स्वर्गवास हुआ होगा।"[2]

द्विपद रचना में इतनी बहुमुखी प्रतिभा के ही कारण तेलुगु भाषा-भाषी चिन्नन्ना तथा द्विपद को अभेद मानते हैं।

3.2.4. मंजरी द्विपद :

प्रस्तावना : "मंजरी द्विपद" की प्रत्येक पंक्ति अपने नाम को सार्थक करते हुए पुष्प गुच्छ की भांति भाव सौन्दर्य बिखेरती है। द्विपद छन्द के ही स्वल्प भेद से मंजरी द्विपद की रचना की गयी है जिसमें यति नियम है किन्तु द्विपद की भांति प्रास का नियम नहीं। ताल्लपाक के कवियों ने इस मंजरी द्विपद में भी रचनायें की हैं। प्रायः तेलुगु भाषा में स्त्री, बाल तथा वृद्धों के लोकगीत इसी छन्द में रचे गये हैं, क्योंकि इनमें गाने की सरलता है। अतः ताल्लपाक के कवियों ने भी प्रचार के माध्यम के रूप में इस मंजरी द्विपद छन्द को अपनाया।

ताल्लपाक के कवियों की रचनाएँ :

आज हमें इस छन्द में ताल्लपाक के कवियों की तीन कृतियाँ प्राप्त होती हैं। वे हैं—

1. श्रृंगार मंजरी 2. चक्रवाल मंजरी तथा 3. सुभद्रा कल्याणमु।

(क) श्रृंगार मंजरी : कर्ता ताल्लपाक अन्नमाचार्य। यह कृति मंजरी द्विपद में रचित होने के कारण तथा कृति का विषक दिव्य श्रृंगार वर्णन होने के कारण इसका नामकरण श्रृंगार मंजरी किया गया है। यह उनकी लभ्य

---

1. अन्नमाचार्य चरित्रा, चिन्नन्ना, पृष्ठ 2. वे. आ. मूर्ति, पृष्ठ 295

लघु कृतियों में से एक है, जिसे भी अन्नमय्या ने वेंकटेश्वर को समर्पित किया है।

इसके नायक स्वयं वेंकटेश्वर तथा नायिका लक्ष्मी हैं। ग्रंथ का आरम्भ विस्तार से स्वामी के दिव्य सौन्दर्य वर्णन से हुआ है। सकल चराचर के आत्मा बनकर जो स्वामी मेरुपर्वत की भांति शोभायमान वेंकटाचल पर है—उसकी शृंगार तथा सौन्दर्य की ख्याति सुन एक बाला (लक्ष्मी) विरह का अनुभव करने लगती हैं।[1] अतः उसे उपशमन करने सखियाँ उद्यान ले जाती हैं। किन्तु हाय ! वसंत का आगमन हो गया है तथा सारा उद्यान मानों काम तथा रती के क्रीड़ा स्थल बन गये, अतः सम्पूर्ण वातावरण उस बाला के लिए उद्दीपन बन जाता है।[2] सखियाँ नाना प्रकार के उपचारों से भी उसका शमन न कर सकने के कारण[3] जाकर यह बात स्वयं वेंकटेश्वर से निवेदन कर उन्हें वन केलि के लिए आह्वान देती हैं। यह सुनते ही नारियों को सम्मोहित करने वाले शृंगार के अधिपति वेंकटेश्वर[4] उस बाला पर अनुग्रह करने "गुलाब जल में नहाकर, पीताम्बर धारण कर, कस्तूरी तथा शिरीष पुष्पों से अलंकृत होकर" गरूड़ वाहन पर चले आते हैं[5] तथा उस बाला को उसकी विरहावस्था से मुक्त करते हैं।

कथा का अंश केवल इतना ही है। किन्तु शृंगार मंजरी में उसके नामकरण के अनुरूप कई शृंगार चित्र प्रस्तुत किये गये हैं। संक्षिप्त में इस लघु रचना की विशेषता इस प्रकार से कह सकते हैं—"इसकी नायिका स्वकीया मुग्धा है। श्रवण के कारण विरह का अनुभव करती है। पश्चात् वन में वसंत ऋतु के प्रभाव से, शुक तथा पिक के आलाप, मंद-मंद समीर, ज्योत्स्ना आदि के कारण उद्दीप्त हो जाती है। अतः मन में रतिभाव का उदय होता है। ···स्वामी से मिलन के पश्चात् रसानन्द की अनुभूति प्राप्त करती है।[6]"

(ख) चक्रवाल मंजरी : कर्ता ताल्लपाक पेद तिरुमलाचार्य ने इसे साधारण मंजरी द्विपद के स्थान पर विशेष चक्रवाल मंजरी में लिखा है। इसकी रचना पद्धति में कई नियम होने के कारण कवि ने शृंगार मंजरी के विषय को ग्रहण करते हुए अत्यन्त आलंकारिक, रसमय तथा चमत्कार पूर्ण सुन्दर सरस रूप

---

1. ताल्लपाक कवुल लघु कृतुलु—पृष्ठ 1, 2 2. वही—पृष्ठ 4
3. वही—पृष्ठ 5 4. वही—7 5. वही—13
6. ताल्लपाक वारि साहित्यमु—परिशीलनमु—वे. आ. मूर्ति, पृष्ठ 308—9

में इसका सृजन किया है। इस प्रकार की रचना केवल समर्थ कवि ही कर सकता है "विभाव, अनुभव आदि का पोषण करते हुए स्थायी भाव रति की प्राप्ति का चित्रण क्रमिक रूप से हुआ है।"[1]

इसका प्रथम नियम यह है कि जिस शब्द से एक पंक्ति का अन्त होता है उसी शब्द से दूसरी पंक्ति का आरम्भ होना चाहिए। पेदतिरुमलाचार्य ने अपनी सम्पूर्ण रचना इसी नियम को आधार पर की है। जैसे

"येलमावि मोत्तंबुलिनिचे बुन्नाग—
नागरंगा शोक नाग केसरक—
केसरकर वीर किंश कांकोल।—[2]

साथ ही मंगल आदि, मंगल अन्त के अनुसार तथा चक्रवाल छन्द के अनुसार काव्य का आरम्भ "श्री ललना भारुजिन्मयाकारुकारुण्यवर्ति वेंकटगिरि मूर्ति······"[3] तथा काव्य का अन्त "गतियेन विष्णु मंगल महा श्री"[4] से किया है। कवि स्वयं कहते हैं कि यह काव्य की रचना मैंने "नवचतुरता" दिखा कर की है। शायद यह रचना उत्सवों पर गाने के लिए कवि ने की होगी। "इसकी रचना का प्रधान उद्देश्य श्री वेंकटेश्वर की प्रशंसा करना है। सम्पूर्ण काव्य मुक्त पद ग्रस्त अलंकारों से युक्त हैं। शृंगार, विरह, सरःकेलि, वनकेलि आदि का वर्णन है। इस काव्य में कुछ चक्रवाल के लक्षण, कुछ मंजरी द्विपद के लक्षण होने के कारण इसका नामकरण चक्रवाल मंजरी, किया गया है।"[5]

(ग) सुभद्रा कल्याणमु : इस काव्य के विषय में बहुत अधिक मतभेद होने पर भी अधिकतर प्रमुख विद्वान इसकी कवयित्री ताल्लपाक अन्नमाचार्य की प्रथम पत्नी तिम्मक्का को ही मानते हैं। साथ ही उन्हें ही तेलुगु की प्रथम कवयित्री होने का श्रेय भी दिया है। ग्रंथ के अन्त में कवयित्री स्वयं कहती हैं— "अवनिलो ताल्लपाकान्नय्यगारि तरुणि तिम्मक्क चेप्पे" अर्थात् ताल्लपाक अन्नमय्या की पत्नी तिम्मक्का ने सुभद्रा कल्याण की रचना शुद्ध तेलुगु में की है।

यह कृति भी गाने योग्य लघु काव्य है। इसमें सुभद्रा तथा अर्जुन के विवाह की कथा वर्णित है। ग्रंथ का आरम्भ ही कथारंभ से हैं। नियम का

---

1. ताल्लपाक वारि साहित्यमु—परिशीलनमु—वे. आ. मूर्ति पृष्ठ 313
2. ताल्लपाक कवुल लघु कृतुलु, पृष्ठ 16
3. चक्रवाल मंजरी, पृष्ठ 15 4. वही—पृष्ठ 20
5. ताल्लपाक कवुल साहिती सेवा—ए. विद्यावती, पृष्ठ 47

अतिक्रमण करने के कारण अर्जुन का तीर्थयात्रा पर जाना,[1] चित्रांगदा[2] तथा उलूपि से विवाह,[3] कपट योगी के वेष में द्वारकापुरी में जा कर सुभद्रा से विवाह करना। इस प्रकार महाभारत की कथा को ही ग्रहण किया गया है किन्तु चमत्कार के समावेश के साथ। इसकी नायिका सुभद्रा मुग्धा नायिका है।

तिम्मक्का ने कई स्थानों पर स्वतंत्र रूप से मनोहर वर्णन किये हैं। कपट यति के प्रति सुभद्रा के मन में, कृष्ण मोह उत्पन्न करने में सफल होते हैं। वाच्य रूप से उसके पराक्रम का वर्णन कर उसे अर्जन ही सूचित करते हैं। सुभद्रा का तोता ही उन दोनों युवती-युवक के बीच संदेशवाहक बनता है।[4] जब सुभद्रा अर्जुन के सम्बन्ध में उत्सुकता दिखाती है तो कपट मुनि प्रकट करता है "हे रमणी! मेरे और अर्जुन के बीच किसी प्रकार का रहस्य नहीं। दिन रात तुम्हारी रूपरेखाओं के स्मरण के कारण उसके पलकों पर नींद ही नहीं आती।"[5]

इस प्रकार के गूढ़ वार्तालापों के पश्चात् जब सुभद्रा अपने मन की बात कहती है, तब ही कपट मुनि अपने आपको अर्जुन के रूप में प्रकट करता है। इस प्रकार से कथा के प्रवाह में उत्साह के साथ-साथ औचित्य का भी पोषण है।

कई स्थानों पर कवयित्री ने स्त्रियों के मनोविज्ञान के अनुकूल रचना की है। जैसे स्त्रियों को सजावट के प्रति तथा आभूषणों के प्रति विशेष रुचि आदि के उदाहरण उनके विस्तृत वर्णनों में ले सकते हैं।[6] एक अन्य स्थान पर द्रौपदी सुभद्रा को अर्जुन के पास भेजती हुई मन में व्यथा अनुभव करती है—संसार की सारी संपत्ति को चाहे अन्यों पर न्योछावर कर सकते हैं किन्तु पति को नहीं।[7] यह प्रायः कवयित्री की मनोभावना ही मान सकते हैं क्योंकि उन्हें भी अक्कम्मा नाम की पत्नी थी।

इस काव्य की विशेषता यह है कि अर्वाचीन काल में तेलुगु के कई प्रसिद्ध कवियों ने इनकी वर्णन पद्धति तथा भावों को ज्यों का त्यों अपना लिया है। कोमलता इस काव्य की एक और विशेषता है।

1, 2. सुभद्रा कल्याणमु—तिम्मक्का पृष्ठ, 3, 8

3. वही—पृष्ठ 5

4. वही—पृष्ठ 32

5. वही—पृष्ठ 33

6. वही—पृष्ठ 26, 27

7. वही—पृष्ठ 54

3.2.5. **शतक :**

प्रस्तावना : सौ कविताओं का मुक्तक काव्य तेलुगु में "शतक" कहलाता है। तेलुगु भाषा में शतक साहित्य को एक विशेष स्थान है तथा अत्यन्त समृद्ध भी है। संस्कृत तथा प्राकृत की शतकों की परम्परा में ही तेलुगु के शतक भी आते हैं। सौ या सौ से अधिक मुक्तक कविताएँ जो प्रशंसा परक, नीति, शृंगार, वैराग्य आदि विषयों को लेकर एक टेक (मकुट) के साथ लिखे जाते हैं—उन्हें शतक कहते हैं। शतक का नामकरण मकुट के ही आधार पर किया जाता है।[1] साथ ही शतक का छन्द भी प्राय: इसी टेक पर निर्भर करता है। हिन्दी में इस प्रकार के टेक का अभाव है।

शतकों का आरम्भ तेलुगु में प्राय: 12 वीं तथा 13 वीं शताब्दियों में शैव कवियों से हुआ।

तेलुगु के सर्वप्रथम शतक होने का गौरव पाल्लकुरिकि सोमनाथ कृत वृषपाधि शतक को प्राप्त होता है। अन्य कुछ पूर्ववर्ती शतक इस प्रकार हैं— बसवलिंग शतक, (सोमनाथ) नीतिसार मुक्तावली (बद्देना) सर्वेश्वर शतक (यथावाक्कुल अन्नमय्या) अंबिका शतक (राविपाटित्रिपुरांतकुडु) आदि।

"तेलुगु में अन्य शतकों की अपेक्षा भक्ति शतकों की संख्या ही अधिक है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि तेलुगु में प्रमुखत: भक्त या संत कवियों ने अपने हृदयस्थ भक्ति, वैराग्य आदि की अभिव्यक्ति के लिए अथवा अपने मत प्रचार के लिए शतक काव्य रूप को अपनाया।"[2] अपने अपने धर्म प्रचार तथा प्रसार के लिए शैव तथा वैष्णव कवियों ने इसे अपनाया। समय की गति के साथ-साथ इसमें भी कई परिवर्तन होते गये। नीति, हास्य, या भक्ति-किसी भी विषय पर शतक लिखी जा सकती है। वेमना के नीति परक शतक तेलुगु साहित्य में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं।

ताल्लपाक के कवियों का शतक साहित्य :

इसके सौंदर्य तथा उपयोग पर मुग्ध हो कर स्वयं अन्नमाचार्य के द्वारा ही 12 शतकों की रचना करने का उल्लेख मिलता है। "शतकमुलु पदिरेंडु— सकल भाषलनु।"[3] किन्तु आज केवल एक ही वेंकटेश्वर शतक प्राप्य है।

---

1. उदाहरण—कृष्क शतक, सुमतीशतक, वैमना शतक, दाशरथी शतक आदि।
2. हिन्दी और तेलुगु वैष्णव भक्ति साहित्य—के. रामनाथन्, पृष्ठ 240
3. अन्नमाचार्य चरित्रा—चिन्नन्ना, पृष्ठ 46

यद्यपि अन्नमाचार्य चरित्रा में अलमेलमंगा शतक का भी उल्लेख है वह भी अप्राप्य है।

(क) वेंकटेश्वर शतक : अन्नमय्या की यह एक भक्ति प्रधान रचना है। इसमें "विष्णु तथा लक्ष्मी का दिव्य श्रृंगार वर्णन के साथ-साथ जीवात्मा-परमात्मा के संयोग को प्रत्येक कविता में विशिष्टाद्वैत सिद्धान्तों के अनुसार प्रतिपादन किया गया है।"[1] इस शतक की महान् विशेषता है कि "इस शतक के कहने पर मंदिर के द्वार अपने आप खुल गये, जिसे देख पुजारी भी आश्चर्य चकित रह गये। शतक को मंदिर में पुनः पठन करने से स्वयं स्वामी के गले का मुक्ताहार आ ......गिरा। सभी दर्शक गण ने अन्नमय्या की महिमा को स्वीकारा। साथ ही, उन्होंने शतक को "नव्य काव्य" की उपाधि भी दी।"[2] कवि की प्रतिभा यह है कि एक ही छन्द में वेंकटेश्वर तथा अलमेल मंगा दोनों के नामों के आधार पर कई स्थानों पर रहस्यात्मक अनुभूतियों को व्यक्त किया गया है।

"आतडे नीवु नीवेग नातडे नी पलुके तलपंगा
नातानि पल्कु नीहृदय मातडे पो अलमेलमंग नी
चेतिदे सर्व जंतुवुल जीवन मंतयु नंचु सन्मुनि
व्रातमु सन्नुतिंचु ननिवारण नीसति वेंकटेश्वरा।"[3]

अर्थात् वेंकटेश्वर तथा अलमेलमंगा अभिन्न हैं। उनकी वाणी तुम्हारी है तो तुम्हारा हृदय उनका है। दोनों पृथक नहीं हैं। इस शतक की विशेषता के बारे में इस प्रकार से कह सकते हैं—"इस शतक का प्रत्येक पद नायक नायिका दोनों के दिव्य श्रृंगार का प्रतीक हैं। नायक नायिका में कभी अलगाव नहीं होता। तिरुमल क्षेत्र के श्रीनिवास का श्रृंगार रूप यही है कि लक्ष्मी (अलमेल मंगा) सदा उनके वक्षःस्थल पर ही निवास करती हैं। इसी कारण से पहाड़ पर (तिरुमल) लक्ष्मी का अलग मंदिर भी नहीं है।"[4] श्रीनिवास का अर्थ ही श्री का निवास स्थान है। उनकी दिव्य श्रृंगार लीला ही प्रकृति का चैतन्य है जिनका मिलन तथा वियोग जीव तथा परमात्मा का संयोग तथा वियोग है। स्वामी तथा देवी दोनों एक दूसरे के कारण यश प्राप्त करते हैं। यहाँ हमें अवश्य कालीदास का यह श्लोक स्मरण आता है—

1. ताल्लपाकवारि साहित्यमु—परिशीलनमु—वे. आ. मूर्ति, पृष्ठ 329
2. अन्नमाचार्य चरित्रा—चिन्नन्ना
3. ताल्लपाकवारि साहित्यमु—परिशीलनमु—वे. आनन्द मूर्ति, पृष्ठ 330
4. वही—पृष्ठ 330

"वागर्था विव संप्रुक्तो, वागर्थः प्रति पत्तये
जगतः पितरो वंदे पार्वती परमेश्वरो ।[1]

सम्पूर्ण शतक में एक से एक सुन्दर भाव देखकर पाठकों का मन आनंद से विभोर हो उठता है। सम्पूर्ण जगत् के माता पिता होने के कारण कवि कहते हैं कि हे स्वामी ! तुम दोनों के लिए कमल ही "भवांड भांड" है। ऊपर के लोक तुम्हारी अट्टालिकायें हैं, सूर्य दीप तथा चाँद खिलौना और सारे देवगण किंकर।[2]

एक अन्य स्थान पर कवि की कल्पना है कि देवी स्वामी को अपने दृगूप्रसून "अर्थात् दृष्टि रूपी पुष्पों से ही पूजा" कर रही है। कितनी कोमल भावना है। सच तो यह है कि कवि अपने वाक् प्रसूनों से भगवान की पूजा कर रहा है।

एक से एक सुन्दर कोमल भावनाओं के साथ भगवान की स्तुति, भक्ति, श्रृंगार और वन-विहार के वर्णनों से संपूर्ण काव्य भरा हुआ है। मानों नाना प्रकार के पुष्पों के सुगन्ध से चारों ओर का वातावरण खिल उठा हो।

(ख) नीति सीस शतकमु : यह लोकनीति, राजनीति के विवरण के साथ "सीस" छन्द में लिखित वेंकटेश्वर शतकमु संज्ञा से विख्यात ताल्लपाक पेदतिरुमलाचार्य की रचना है। यह अपने प्रकार का प्रथम शतक है। संक्षिप्त रूप से इसमें चर्चित विषय तथा उनकी विशेषता इस प्रकार है—राजनीति से सम्बन्धित पद्यों में—राजा का अर्थ, राजा बनने योग्य व्यक्ति कौन है ? मंत्री कौन है ? राजनीति क्या है ? आदि का विवरण है। सामाजिक नीति सम्बन्धी कविताओं में शान्ति पूर्वक जीवन बिताने की विधि क्या है ? जीवन में अच्छाई क्या है ? बुराई क्या है ? उनके प्रभाव आदि की चर्चा है। भक्ति, अध्यात्मिक और ज्ञान सम्बन्धी विचारों के साथ-साथ गुरु-शिष्य, योगी, सती जैसे व्यक्तियों के बारे में भी इसमें चर्चा है। शतक का आरम्भ कवि अत्यन्त भक्ति से भगवान विष्णु की स्तुति से करते हैं—"वक्षःस्थल पर श्रीदेवी, गले में तुलसी की मालायें, पीठ पर पृथ्वी, चरणों में गंगा, नाभि से ब्रह्मा, मन में कामदेव, दोनों ओर सूर्य तथा चन्द्र, ध्वज पर गरुड़,...पेट में सारा जग,...इन सभी से विराजमान हे स्वामी ! तुम्हारे प्रति मैं यह शतक प्रस्तुत कर रहा हूँ।"[3] प्रत्येक कविता का अन्त "विमल रविकोटि संकाश-वेंकटेश" के मकुट से हुआ है।

---

1. रघुवंश 2. वेटूरि आनन्द मूर्ति के आधार पर
3. नीति शतकमु—पेदतिरुमलाचार्य, पृष्ठ 21

मनुष्य चाहे कितना भी महान् क्यों न हो छोटा सा व्यसन इसे एकदम पतित बना सकता है । अत: भक्त को सप्त व्यवसनों से विरत रहने की परम आवश्यकता है । इस उक्ति का उदाहरणों से प्रस्तुत करते हुए कवि कहते हैं—"पर नारी मोहवश सिंहबल और रावण, राज्य लोभ से कौरव. कटु वचनों के कारण शिशुपाल, द्यूत के काण युधिष्ठिर, इसी प्रकार मृग्या की आसक्ति से पांडु राजा, आदि महान् व्यक्तियों का मात्र छोटे व्यसन के कारण पतन हो गया है ।"[1] अत: उत्तम जीवन चाहने वाले व्यक्ति ऐहिक भोगों के प्रति वासना पर नियंत्रण कर, अरिषड् वर्गों से मुक्त रहना आवश्यक है ।

कवि ने मांधाता, दुर्योधन, जीमूतवाहन, नहुष, सूर्यवंश चक्रवर्ती आदि के दृष्टान्तों द्वारा यह संदेश दिया है कि मरण के पश्चात् एक तिनका भी हाथ न आयेगा । इसलिए इन क्षणिक ऐहिक भोगों के प्रति हमें विमुख रहना चाहिए ।

संसार में देखा जाता है कि धन एक व्यक्ति संचित करता है तो उसका उपयोग दूसरे करते हैं । आखिर ब्रह्मा का भी यह शरीर अशाश्वत ही है तथा यौवन ही वर्षाकालीन धारा प्रवाह की भांति केवल कुछ ही दिनों का मेहमान है । ये सभी सांसारिक लंपट केवल भ्रम है । जो व्यक्ति भगवान का स्मरण करता है उसे ही शाश्वत सत्ता मिल जाती है ।[2]

व्यक्ति के लिए प्राणों से आत्म सम्मान महान् है, और यश धन से महान् है । पृथ्वी पर सम्पत्ति से महान् गुण उदारता है······ अत: इन गुणों से युक्त वीर केवल हजार में से एक ही होते हैं ।[3]

युवतियों के मध्य मन का विचलित होना, "कनक" को देखते ही आशा का उत्पन्न होना, छुरी हाथ में आते ही शूरता आना, नीच व्यक्ति से स्नेह के कारण निंदा का सहना, राजाओं के साथ परिहास से प्राणों का संकट में पड़ना, युवती के साथ वार्तालाप से धोखा खाना आदि–आदि सहज परिणाम हैं अत: इनसे सावधान रहना अत्यन्त आवश्यक है ।[4]

राजा को जीवन का प्रत्येक दिन एक पद्धति से बिताना अत्यन्त आवश्यक है जैसे स्नान, जप, दैवपूजा, ब्राह्मणों की सेवा, पुराण गोष्ठी, दान, स्वजन, गज तथा अश्वों की रक्षा, मंत्री तथा पुरोहितों से उचित परामर्श, कोशागार की जांच, भोजन, संगीत तथा साहित्य का आनंद, गुप्तचरों से वार्तालाप, थोड़ी सी निद्रा ।[5] राजनीति के बारे में लिखते हुए कवि कहते हैं—

---

1. नीति शतकमु–पेदतिरुमलाचार्य, पृष्ठ 17 2. वही—कविता, पृष्ठ 48
3. वही–पृष्ठ 50 4. वही–पृष्ठ 52 5. वही–पृष्ठ 10

कि राजा को बाहरी तथा अंदर के शत्रुओं का ज्ञान होना चाहिए। अपने हितैषियों की सलाह लेना, दुष्टों को दूर रखना, अपने शौर्य तथा पराक्रम के आधार पर राज्य करना चाहिए। इनके लिए समर्थ राजा ही नहीं समर्थ मंत्री की भी आवश्यकता होती हैं। अतः उत्तम मंत्री के भी लक्षण कवि ने इस प्रकार बताए हैं—"राजा को बार-बार सही सलाह देने में मंत्री को कभी भी झिझकना नहीं चाहिए। राजा कुपित होने पर भी या अन्य किसी प्रकार से असंतुष्ट होने पर भी मंत्री को राजा का हित सदैव ध्यान में रखना चाहिए।[1]

सामाजिक नीति सम्बन्ध में कवि का कहना है—कि "सत् गुण सम्पन्न व्यक्ति अपने लिए, अपने परिवार के लिए तथा अपने देश के लिए उपयोगी सिद्ध हो सके इसके लिए कुछ विशेष गुणों की आवश्यकता होती है। इन सभी की विस्तृत चर्चा की गयी है। इनके साथ-साथ शरणागति, भगवद् भक्ति, गुरु-शिष्य, धर्म आदि की चर्चा है। "कवि ने अपने अन्तिम पद्य में भगवान को विभिन्न नामों से सम्बोधित करते हुए अपने शतक को भक्ति पूर्वक भगवान् को समर्पित कर देने की बात का उल्लेख किया है।"[2]

(ग) श्रृंगार वृत्त पद्य शतक :

103 छन्दों की यह श्रृंगारिक रचना पेद तिरुमलाचार्य की है। छन्द के अनुरूप "वेंकटेश्वर" मकुट (टेक) के साथ रचना चलती है। नायक दक्षिण है। "चूंकि वेंकटेश्वर जगत् के नायक हैं अतः वे अपने से प्रेम करने वाले सभी जीवों को संयोग की अनुभूति का अनुग्रह करते हैं। किन्तु उससे धन्य प्रत्येक नायिका गर्व के कारण अन्यों से अधिक अपने लिए ही नायक का प्रेम पाना चाहती है। वे "स्वाधीन पतिकाओं" की भांति अपने नायक को बाँध लेना चाहती हैं। नायक "दक्षिण" है इस कारण वे सत्यभामा जैसी "खंडिता" बन जाती हैं। उस अवस्था की "प्रौढ़" तथा "धीर" नायिकायें नायक से व्यंग्योक्तियाँ कर अपना मल हलका कर लेती हैं। इस प्रकार उन्हें रुठाना फिर मनाना, सब उस नायक की लीलायें हैं जिनसे उन्हें आनन्द की प्राप्ति होती है।"[3] संक्षेप में यही इसका वर्ण्य विषय है।

इसकी नायिका स्वयं कवि ही है। अतः नायक के दक्षिण गुणों के कारण कबि अत्यन्त वेदना का अनुभव करता है। भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में

---

1. नीति शतकमु, पृष्ठ 95
2. हिन्दी और तेलुगु वैष्णव भक्ति साहित्य रामनाथन् पृष्ठ 247
3. वे. आनन्द मूर्ति पृष्ठ 338-339

नायिका के विभिन्न मनोभावों का सुन्दर वर्णन है। प्रेमिका का रूठना, प्रिय का मनाना तथा अन्त में मिलन यही वर्ण्य विषय है। देखिए—नायिका कितनी चतुराई से कह रही है—"इस प्रकार तुम मुझे जब तरह-तरह से मना रहे हो तो मैं क्यों हठ करूँ ? या न कहूँ ? चलो अब बहस क्यों ? तुम्हारे चरण दे दो, मैं वंदना करती हूँ चलो वही शय्या है।"[1] इस शतक में उत्पल-माला, शार्दूल, चंपक माला, मत्तेभ आदि छन्दों का प्रयोग हुआ है। यह माधुर्य भक्ति शतक है। शब्दालंकारों का प्रयोग सुन्दर बन पड़ा है।

(घ) श्रीकृष्ण शतक : "कृष्णा" मकुट (टेक) से अन्त होने वाले इस शतक की भी रचना पेदतिरुमलाचार्य ने की है। तेलुगु भाषा में दो प्रकार से "र" अक्षर का प्रयोग होता है। एक साधु "र" तथा दूसरा कठिन "र"। अतः कवि ने इस ग्रंथ की भाषा में इसी "र" के प्रयोग की विधियों का निर्देश किया है। इस शतक का उपनाम भी "रेफ रकार निर्णय" है। कृति के आरम्भ में कवि ने कहा है—"कवित्रय आदि प्राचीन कवियों के ग्रंथों के आधार पर "रेफरकार" का निर्णय कर लक्षण ग्रंथ के रूप में प्रस्तुत पद्य..."[2] आरम्भ में ही इसे श्रीवेंकटेश्वर को समर्पित किया गया है। 55 वें पद्य तक साधु "र" के प्रयोग के सम्बन्ध में लक्षणों का विवरण है। पुनः एक नम्बर से शुरू कर कठिन "र" प्रयोग से सम्बन्धित लक्षणों का विवरण 53 पद्यों में किया गया है।[3] अतः इस ग्रंथ को हम शतक के माध्यम से लिखा गया एक लक्षण ग्रंथ मान सकते हैं।

इस ग्रंथ की रचना प्राचीन कवियों के प्रयोगों के अनुसार स्वर तथा व्यंजन के क्रम में की गयी है।[4] अतः इस प्रकार की यह प्रथम तथा आज तक प्रामाणिक रचना मानी जाती है।

(च) श्रृंगार अमरु शतक : संस्कृत से अनूदित यह रचना ताल्लपाक तिरुवेंगलप्पा की है। ये अन्नमाचार्य के प्रपौत्र थे। इसका उल्लेख स्वयं कवि ने ही किया है। यह काव्य श्रीवेंकटेश्वर को ही समर्पित है। इस काव्य की विशेषता यह है कि कवि संस्कृत श्लोकों का अनुवाद मात्र प्रस्तुत कर ही संतुष्ट नहीं हुआ है। लघु विवरण भी दिया है। मूल की अपेक्षा इसे बहुत कुछ व्यवस्थित रूप से भी सजाया गया है। जैसा कि नामकरण से ही व्यक्त

---

1. श्रृंगार वृत्त पद्यालु—संख्या—77
2. रेफरकारमुलु—पेदतिरुमलाचार्य, पृष्ठ 69
3. वही—पृष्ठ 78
4. वही—कविता—2

होता है, इसमें मुख्य शृंगार रस है। विशेष कर नायिका के भिन्न प्रकारों (अष्ट विध) का वर्णन है। स्वकीया नायिका की ही प्रधानता है। साथ ही शठ, दक्षिण, अनुकूल नायकों का तथा सखी, दूती आदि का भी निरूपण है। संयोग तथा विप्रलम्भ–शृंगार रस के दोनों प्रधान अंगों का विवरण है।[1]

आलोच्य युग में शतकों की रचना वैष्णव भक्तों ने बहुत अधिक मात्रा में की। इनमें भी ताल्लपाक के कवि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

3.2.6. दंडकमुलु :

प्रस्तावना : "पारिभषिक रूप से दंडक गद्य और पद्य के बीच का ही काव्य रूप है। गद्य के ढाँचे में लय का समावेश करके गद्य को गेय बना दिया जाता है। वाक्यों का निधान लय की गतिविधि पर आश्रित रहता है। विशेषणों के बाहुल्य से इनमें गति उत्पन्न की जाती है। ···स्तुतिपरक साहित्य की समस्त विशेषताओं से युक्त दंडक काव्य रूप भक्तों के लिए एक सशक्त वाहक बन गया।"[2]

इस काव्य रूप के बीज हमें संस्कृत साहित्य के कविकुल गुरु कालिदास कृत "श्यामला दंडक" आदि में मिलते हैं। दंडकों में भक्ति की प्रधानता तथा देवता की स्तुति होती है। एक ही अक्षर पुनः पुनः प्रयुक्त होने के कारण एक प्रकार का सौंदर्य आ जाता है तथा ये श्रवणानंद देते हैं।

प्रायः इन्हीं के आधार पर तेलुगु में भी सहस्रों दंडकों की रचना हुई है। यह आत्माश्रयी कविता के अन्तर्गत आती है। ये दंडक स्वतंत्र रचनायें भी हो सकती हैं या काव्य का एक भाग भी हो सकती हैं। तेलुगु के श्रीमद् भागवत में पोतना के दंडक बहुत प्रसिद्ध हैं। "दंडकों में "त" गण का प्रयोग कवि इसलिए अधिक करते हैं कि श्रवण के लिए वह सुखदायी है। यह समुद्र की गंभीरता के साथ साथ तानपुरे की मंद ध्वनि की तरह भाव कोलय बद्ध बनाती है। यह मन को एकोन्मुखी बनाने में समर्थ है।"[3]

यद्यपि तेलुगु भाषा के कवियों ने संस्कृत से इस शैली को अपनाया है फिर भी इसे एक स्वतंत्र रूप दिया है। उन्होंने इसे संस्कृत के स्तुतिपरक दंडकों तक ही सीमित न रख कर इतिवृत्तात्मक दंडकों की भी रचना आरम्भ की है। ताल्लपाक के कवियों ने इस शैली को भी अपनाया है।

---

1. वेटूरि आनन्द मूर्ति तथा डा. ए. विद्यावती के ग्रंथों के आधार पर।
2. ताल्लपाकवारि साहित्यमु–अनुशीलनमु–वे. आ. मूर्ति, पृष्ठ 381
3. हिन्दी और तेलुगु वैष्णव भक्ति साहित्य–के. रामनाथन, पृष्ठ 260

ताल्लपाक के कवियों का दंडक साहित्य :

(क) श्रृंगार दंडक : अन्नमाचार्य के पुत्र पेद तिरुमलाचार्य जी की यह लघुकृति है। इसमें पद्मावती तथा श्रीनिवास के श्रृंगार का वर्णन हैं। अन्य काव्यों की भांति इसे भी कवि ने श्री वेंकटेश्वर को ही समर्पित किया है, जिसका उल्लेख कवि ने अन्तिम कविता में किया है।[1]

इसकी कथा श्रृंगार मंजरी (अन्नमाचार्य) तथा चक्रमाल मंजरी (पे. ति.-चा.) से मिलती हुई है। कवि ने नायक तथा नायिका द्वारा संदेश पतंगों के माध्यम से भिजवाकर एक नई कल्पना की है। एक दूसरे के प्रथम दर्शन के पश्चात् दोनों एक प्रकार की तन्मयावस्था में डूब जाते हैं। तब नायिका "अपनी विनती पतंग के द्वारा सुन्दर रूप से कस्तूरी के परिमल के सूत्र से बाँधकर कृष्ण के महल में भेजती है। नायक उसे पाकर उत्तर में स्वयं भी संदेश भेजता है।"[2] यद्यपि इसकी कथा प्राचीन कृतियों से मिलती है। फिर भी ऊपर कथित वर्णनों के कारण यह रचना अत्यन्त नवीन ही लगती है, जो कवि की अपनी विशेषता है।

(ख) अष्ट भाषा दंडक : इसके कवि चिन तिरुमलाचार्य हैं। प्रस्तुत दंडक में जिन आठ भाषाओं का प्रयोग हुआ, वे इस प्रकार हैं—1. संस्कृत 2. प्राकृत 3. शौरसेनी 4. मागधी 5. पैशाची 6. प्राची 7. अवंती तथा 8. सार्वदेशी (नागरी) संस्कृत तथा तेलुगु भाषाओं के भी प्रकांड पण्डित होने के कारण कवि को "अष्ट भाषा चक्रवर्ती", की उपाधि प्राप्त हुई। इन्हीं कारणों से ताल्लपाक के कवि अपने सामयिक पंडित समाज में विशेष आदरणीय थे।

हो सकता है कि कवि का उद्देश्य विभिन्न भाषाओं के माध्यम से उन भाषा-भाषियों तक श्रीवेंकटेश्वर की महानता को पहुँचाना रहा हो, क्योंकि यह भी श्रीवेंकटेश्वर की स्तुति परक दंडक है।

संस्कृत : श्रीवेंकटाधीश जी भूत नीलांजन ग्राव बृंद प्रभाभासमानांग श्रृंगार रूपोल्लासत्कोटि कंदर्प लावण्य वाराम्निधे···[3]

प्राकृत : देव्वभो इंदिराणाह कंदुट्ट नीलग्ग वारंगपासिव्वारा वुहामेड संतान सप्पुप्प संतान सग्गध संसेव्व···[4]

शौरसेनी : सूरग्गतुं सूरसेण सेणेन पक्खी

1. श्रृंगार दंडकमु—पेद तिरुमलाचार्य, पृष्ठ 90
2. वही—पृष्ठ 98
3. अष्ट भाषा दंडकमु—चि. ति. चा.—पृष्ठ 152
4. वही—पृष्ठ 153

ससेनादि दासावली से व्वमाणो···[1]

मागधी : नालायणे मागधाला वंश शोषण

ग्गीश मग्गोलु कं शाशि शंशाल

मेहाणि तुम्म हा शेश शेम्मि···[2]

पैशाची (अपभ्रंश) : अच्छीनि जे सो पिसा सेससंसेव्व

गोलीसभूसाय माणंधि जाता पगा नीरसालप्प हा···[3]

प्राची : देनाह सच्चूलि काकिन्न तानप्प वाहोलु

मातंक वालोद्दुता उप्पला सेस सीलोह···[4]

अवंती : वे हलू सिरी गंतु नाना अबम्भंसरा हित्त

वाणी स सव्वाणि संधूय माणुप्पहा जुत्तु···[5]

सार्व देशी : हे भट्टियों सव्वेद सेतकं हलेकुडुंगेतु

मंतत्तिये जुत्त गोवीजणंणि···[6]

दंडक के अंत में कवि ने एक श्लोक की रचना की है जिसमें अपने साथ अपने पितामाह और पिता का उल्लेख किया है तथा श्रीवेंकटेश्वर को समर्पित करने के उल्लेख भी किया है। सभी प्रकार से यह लक्षण बद्ध रचना ताल्लपाक के कवियों की साहित्यिक माला में शोभायमान हीरा है।

3.2.7. रगड़ :

प्रस्तावना : "रगड़" छन्द तेलुगु तथा कन्नड़ में जन प्रिय रहा है। तेलुगु में इसका प्रयोग विशेष रूप से "विचित्र काव्य" के लिए किया गया है। प्राचीन काल से इसे स्तुति काव्य के लिए प्रयुक्त किया जाता रहा है। अनेक लोक गीतों में इसका प्रयोग हुआ है। "प्राय: इसके गीत माधुर्य से प्रभावित होकर शिष्ट कवि भी इसे अपनाने लगे, यद्यपि यह देशी छन्द में प्राप्त होते हैं। इसी के आधार पर नये छन्दों का आविर्भाव भी हुआ है—जैसे "क्रौंच पद"। इसके विशेष प्रचारक शैव तथा वैष्णव कवि थे।"[7] इसमें कई चरण होते हैं और इसे भगवान की स्तुति के लिए उपयोग किया जाता है। द्विपद तथा इसमें बहुत ज्यादा अन्तर नहीं है।

---

1. वही—पृष्ठ 153
2. वही—पृष्ठ 154
3. वही—पृष्ठ 154
4. वही—पृष्ठ 155
5. अष्ट भाषा दंडकमु—चि. ति. चा., पृष्ठ 155
6. वही—पृष्ठ 156
7. ताल्लपाक वारि साहित्यमु—अनुशीलनमु—वे. आ. मूर्ति, पृष्ठ 390-91

ताल्लपाक के कवियों का रगड़ साहित्य:

सुदर्शन रगड़ा :

कवि पेद तिरुमलाचार्य ने इसमें सुदर्शन चक्र की महानता तथा विशेषता को गाया है। प्रत्येक चरण का अंत "चक्रमु" मकुट (टेक) से होता है। यह रचना इस प्रकार है—

"ओंकाराक्षर युक्तमु चक्रमु
सांक मध्य वलयांतर चक्रमु
सर्वफल प्रद सहजमु चक्रमु......"[1]

इसमें कुल 108 पंक्तियाँ हैं जिनमें सुदर्शन चक्र की महानता, विशेषता, भक्त—रक्षा, दुष्ट संहार—आदि गुणों का भक्ति पूर्वक वर्णन है। सुदर्शन चक्र के वर्णन ताल्लपाक के कवियों के संकीर्तनों में भी प्राप्त होते हैं।

3.2.8. उदाहरण :

प्रस्तावना : मार्ग तथा देशी रचनाओं का सम्मिश्रित रूप "उदाहरण" शैली है। साहित्य के क्षेत्र में यह एक नवीनतक शैली थी। मार्ग के साथ-साथ देशी कविता को भी पहली बार प्रधातना दी गयी। इसकी विशेषताओं के बारे में इस प्रकार से कह सकते हैं कि यह वर्ण वृत्तों और मात्रिक छन्दों का एक मिश्रित काव्य रूप है। पद्य+गेय=पद्यगेय (उदाहरण) है। तेलुगु भाषा की आठों विभक्तियों को एक क्रम में उदाहरण देते हुय आगे बढ़ती है। प्रथमा विभक्ति से आरम्भ और सम्बोधन से अन्त होता है। इसमें अधिक से अधिक 26 छन्द रहते हैं। 'सृष्टि में जीवात्मा तथा परमात्मा के मिलन की ही भांति भाषा में भी प्रकृति तथा प्रत्ययों का मेल अनिवार्य है। यह "उदाहरण" शैली संगीत तथा साहित्य के सम्मिश्रण का भी सुन्दर उदाहरण हैं।"[2] डा. यस. वी. जोगाराव का मंतव्य यह है कि भगवान् के माहात्म्य के उदाहरण देने वाली रचनायें होने के कारण इन्हें "उदाहरण" वाङ्मय कहा गया है। विषय की दृष्टि से यह स्तुति परक काव्य के अन्तर्गत आता है। लगता है कि यह "उदाहरण" शैली केवल तेलुगु भाषा की अपनी एक स्वतंत्र शैली है जो दक्षिण की अन्य भाषाओं में भी अप्राप्य है। उदाहरण शैली के भी प्रथम प्रचारक शैव ही थे।

---

1. सुदर्शन रगड़—पे. ति. चा., पृष्ठ 64
2. ताल्लपाक वारि साहित्यमु—परिशीलनमु—वे. आ. मूर्ती, पृष्ठ 401

ताल्लपाक के कवियों का "उदाहरण" साहित्य :

श्री वेंकटेश्वरोदाहरणमु :

श्री वेंकटेश्वर को समर्पित सात विभक्तियों पर आधारित यह रचना पेद तिरुमलाचार्य की है। सम्पूर्ण रचना में अध्यात्मिक भावों का कवि ने प्रबोधन किया है। साथ ही, इस शैली को एक व्यवस्थित रूप भी प्रदान किया है।

तेलुगु भाषा की विभक्तियाँ निम्न प्रकार हैं[1]—

कारक (हिन्दी)	विभक्ति प्रत्यय (तेलुगु)
1. कर्ता	ने—डु, मु, वु, लु—प्रथमा विभक्ति
2. कर्म	को—निन्, नुन्, लन गूर्चि, गुरिंचि } द्वितीय विभक्ति
3. करण	से—चेतन्, चेन्, तोडन, तोन्—तृतीय विभक्ति
4. संप्रदान	को, केलिए, के, वास्ते } कोरकुन्, कै—चतुर्थी विभक्ति
5. अपादान	से—वलन, कंटे, पट्टि, नुंडि—पंचमी विभक्ति
6. संबन्ध	का, के, की—किन्, कुन्, योक्क—षष्टी विभक्ति
7. अधिकरण	में, पर—लो, लोन् लोपल—सप्तमी विभक्ति
8. संबोधन	हे, अरे, अजी, अहो } ओरी, ओसी—संबोधन प्रथमा विभक्ति

कवि पेद तिरुमलाचार्य ने तेलुगु की इन विभक्तियों का प्रयोग करते हुए आध्यात्मिक भावों के साथ साथ कहीं-कहीं श्री कृष्ण की लीलाओं का वर्णन भी किया है। उन्होंने सभी विभक्तियों का प्रयोग किया है। पंचमी विभक्ति का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

"तेवगु लौरुगनि बंडि
विरिगि यौरुगग जेंडि
युद्दि मद्दुल ब्रात्चि
गृद्दि ये्द्दुल गूल्चि
घात वूतन दीर्चि
चेत नेतुलु गूर्चि

1. दो घंटे में तेलुगु सीखें (लेख) आर. रामकृष्णाराव, पृष्ठ 1

युन्न वेन्ननिवलन
नुन्नतोन्नतुवलन्"[1]

इन पंक्तियों में कृष्ण के द्वारा शकटासुर और पूतना का वध, यमलार्जुन उद्धार आदि का वर्णन है। अंतिश छन्द में कवि ने अपनी कृति–समर्पण वेंकटेश्वर को ही किया है।[2]

329. स्थल महात्म्य :

प्रस्तावना : भारत में जितने भी पुण्य क्षेत्र हैं, सभी के साथ कुछ न कुछ पौराणिक और ऐतिहासिक कथायें तथा महिमायें जुड़ी हुई पायी जाती हैं। उसी प्रकार तिरुपति क्षेत्र से सम्बन्धित कथायें अनेक हैं जिनके बीच वराह, वामन, ब्रह्मांड, पद्म, गरुड़, मार्कण्डेय पुराणों में मिलते हैं।

ताल्लपाक के कवियों के स्थल माहात्म्य :

श्री वेंकटचल माहात्म्य : चिन्नन्ना ने अपने अन्नमाचार्य चरित्रा में उल्लेख किया है कि अन्नमय्या ने "द्विपद छन्द में रामायण" तथा देवभाषा (संस्कृत) में वेंकटाचल क्षेत्र महिमा की रचना की है।[3] आज वह ग्रंथ उसी रूप में अप्राप्य है किन्तु विभिन्न नाम तथा रूपों से भिन्न-भिन्न कथाओं से कई ग्रंथ (तिरुपति क्षेत्र के स्थल पुराण सम्बन्धी) तेलुगु तथा संस्कृत में भी प्राप्त हैं। इस ओर विशेष शोध करना होगा कि अन्नमाचार्य की कृति कौन सी है? हाँ अन्नमाचार्य के कई संकीर्तन तिरुपति क्षेत्र की महिमा, पुष्करिणी, स्वामी की की महिमा, मंदिर, सीढ़ियाँ, कुरुवनंबि (वैष्णव धर्म के भक्त) आदि के सम्बन्ध में प्राप्त हैं।

2.3.10. वचन संकीर्तन :

प्रस्तावना : आत्माश्रयी रूप में संकीर्तन तथा वचन दोनों के सम्मिश्रित रूप में चलने वाली इन रचनाओं को वचन संकीर्तन कहा जाता है। इनमें कवि कपट भाव छोड़ कर अत्यन्त दीनता से अपने मन के विभिन्न विकारों को प्रस्तुत करता है तथा परमपुरुष के प्रति अपनी अथाह श्रद्धा का परिचय देता है। इस प्रकार के वचन संकीर्तनों के पितामह "कृष्णमाचार्य को माना जाता है जो तेरहवीं शताब्दी में हुए थे।

ताल्लपाक के कवियों के वचन संकीर्तन :

वैराग्य वचन मालिका गीतालु : पेदतिरुमलाचार्य ने सुन्दर शैली में इन

---

1. श्री वेंकटेश्वरोदाहरण—पेद ति. चा., पृष्ठ 59
2. वही—पृष्ठ 63
3. अन्नमाचार्य चरित्रा—चिन्नन्ना, पृष्ठ 46

वचन संकीर्तनों की रचना की है। इसमें कवि के द्वारा विभिन्न राग-रागनियों में अपनी भिन्न-भिन्न मनःस्थितियों का, दीनता का, राग-द्वेष आदि षट् गुणों का वर्णन करते हुए भगवान के प्रति भक्ति भावना की अभिव्यक्ति की जाती है। इनका आरम्भ ही अत्यन्त मनोज्ञ है। "हे प्रभु ! वेंकटेश्वर। मेरा देह आपका नित्य निवास है। मेरे ज्ञान तथा विज्ञान, मेरे उच्छ्वास—निश्वास आपके दोनों ओर लगे व्यंजन सदृश हैं। आपके उभय पार्श्व के दीपक हैं। मेरे मन का राग आपके लिए वस्त्र है। नमस्कार करने वाले मेरे दोनों हाथ ही "मकर तोरण" हैं। मेरी भक्ति ही आपका सिंहासन है। ···मेरे पुण्य ही आपके नैवेद्य हैं ···मेरा सात्विक गुण आपके लिए सुगंध धूप है। आप देवाधिदेव हैं तथा मैं आपका पुजारी हूँ। सदा ऐसे ही नित्योत्सवों को मुझसे पाने की कृपा कीजिए।"[1]

एक अन्य स्थान पर कहते हैं "क्षीर सागर स्वामी। कमल जिस प्रकार से सूर्य की प्रतीक्षा करता है, उसी प्रकार मेरा मन कमल भी आपके लिए राह देख रहा है। कुमुदों की भांति मेरे चक्षु भी आपके मुख चन्द्र की चाह में हैं। ···मेघागमन पर मयूर जैसे नाचता है आपके मेघ वर्ण वाले दिव्य शरीर का स्मरण कर मेरा मन-मयूर नाचता है। स्वाति की बूंदों के लिए शुक्तियाँ जिस तरह खुली रहती हैं, उसी तरह आपके श्रीपाद तीर्थ के लिए मेरी मुख शुक्ति विकसित है। गान माधुरी से साँप जिस तरह फण फैला कर नाचता है उसी तरह मेरे कान आपकी कथाओं से पुलकित हो रहे हैं। आप परात्पर हैं। मैंने प्रकृति सम्बन्धित इन अंगों को ग्रहण किया है। उस प्रकृति के चैतन्य आप हैं। इसी नाते इन दोनों के बीच अनुराग है। जैसे आँख न जानने से भी हृदय पहचान लेता है। मैं आपको जानने में असमर्थ हूँ। हे स्वामी मैं केवल अपनी आशा को ही आपके सामने प्रस्तुत कर रहा हूँ।"[2]

कवि कहते हैं—"स्वामी तुम्हें केवल भक्ति मात्र से ही प्राप्त कर सकते हैं। दूसरे स्थान पर "केवल दास्य की चाह" तथा "दास दासों की महानता" का कीर्तन करते हैं। अन्य स्थान पर प्रश्न करते हैं—पारस को घर में रख सोने की चाह क्यों ?" इसमें शरणागति, स्वामी की कृपा आदि कई भावों को एक से एक सुन्दर रूप से माला में पिरोकर भगवान को समर्पित करते हैं। श्री प्रभाकर शास्त्री जी कहते हैं कि इस वचन संकीर्तनों में विशिष्टाद्वैत

1. वैराग्य वचन मालिका गीतालु—पे. ति. चा. 9

2. वही—पृष्ठ 4

सिद्धान्त के कई उदाहरण प्राप्त होते हैं।"[1] कवि अपनी इस काव्य कन्या के लिए श्री वेंकटेश्वर को ही उचित वर मान कर उन्हीं को इस कन्या को समर्पण करते हैं।

3.2.11. लक्षण ग्रंथ :

प्रस्तावना : ताल्लपाक के कवियों की विशेषता यह है कि उन्होंने कई शैलियों में रचना करने के साथ-साथ तत्सम्बन्धी लक्षण ग्रंथों की भी रचना की। इस प्रकार वे लक्षण तथा लक्ष्य के समन्वयकारी थे।

संकीर्तन लक्षण : पद कविता पितामह अन्नमय्या को 32 हजार संकीर्तन लिखने की अद्भुत क्षमता ही नहीं थी वरन् संस्कृत में संकीर्तन लक्षण नामक ग्रंथ लिखने की भी शक्ति थी। किन्तु आज वह अप्राप्य है। उनके पुत्र पेदतिरुमलाचार्य ने इस ग्रंथ की व्याख्या संस्कृत में लिखी थी वह भी अप्राप्य है। आज केवल अन्नमय्या के पौत्र चिनतिरुमलय्या की "संकीर्तन लक्षण" नामक तेलुगु व्याख्या ही उपलब्ध है जिनके आधार पर ही ऊपर कथित विवरण हमें प्राप्त होते हैं।[2] सामान्य पाठक तक इन संकीर्तनों के लक्षणों को पहुँचाने के लिए चिनतिरुमलाचार्य ने अत्यन्त सुलभ शैली को अपनाया है। काव्य के आरम्भ में अपने पितामह तथा पिता की प्रशंसा करते हुए संकीर्तनों की परम्परा, संकीर्तनों के लक्षण, उनके भेद, भाषा-नियम, संकीर्तनों की शाखायें आदि का विवरण देते हुए अन्त में कवि ने कुपद कवि की निन्दा भी की है।[3]

3.2.12. व्याख्यायें :

प्रस्तावना : प्राचीन परम्परा के अनुसार ताल्लपाक के कवियों ने संस्कृत ग्रंथों की व्याख्यायें तथा विवरण भी अपने जीवन काल में दिये। जहाँ तक उनकी व्याख्यायें उपलब्ध हैं—उन्हीं का एक परिचय प्रस्तुत है—

ताल्लपाक के कवियों की व्याख्यायें :

1. पेदतिरुमलाचार्य द्वारा रची गयी संकीर्तन लक्षण व्याख्या आज तक अप्राप्य है। उसके बारे में केवल उनके पुत्र चिनतिरुमलाचार्य के तेलुगु संकीर्तन लक्षण से ही ज्ञान कर सकते हैं।

2. पेद तिरुमलाचार्य ने भगवद् गीता का तेलुगु में अनुवाद प्रस्तुत किया है। यह मूल गीता का संग्रह सार के रूप में प्रस्तुत तेलुगु गद्य में है। "आन्ध्र

---

1. वैराग्य वचन मालिका गीतालु—ग्रंथ के प्राक्कथन—
2. संकीर्तन लक्षण—चिनतिरुमलाचार्य, 13 से 17 तक कविताएँ
3. वे. आनन्द मूर्ति के आधार पर

वेदान्त" तथा "भगवद् गीता टीका" इसके उपनाम हैं।[1] इसे ही भगवद्गीता का तेलुगु में प्रथम भावानुवाद माना गया है।

ग्रन्थ के आरम्भ में गीता पठन के आरम्भिक ध्यान श्लोक तथा अन्त में गीता पारायण महिमा सम्बन्धी श्लोकों का उल्लेख है। गीता के श्लोकों को लेकर कवि ने व्यावहारिक भाषा तेलुगु में व्याख्या प्रस्तुत की है। इसमें विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के लक्षणों को रामानुज के भाष्य में दिए हुए क्रमानुसार प्रस्तुत करना ही कवि ने अपना लक्ष्य मना है। इसलिए इसमें मौलिक भाव, आलोचना, चर्चा आदि नहीं हैं। प्रत्येक श्लोक का सीधा अर्थ साधारण भाषा में, संक्षिप रूप में, कहा गया है।[2]

(क) गुरुबाल प्रबोधिका :

यह तिरुवेंगलप्पा से की गयी संस्कृत अमरकोष की विस्तृत तेलुगु व्याख्या है। आज भी तेलुगु प्रदेश में अमरकोष का प्रसिद्ध व्याख्या ग्रन्थ यही है। इसे 'नाम लिंगानु शासन" भी कहा जाता है। इस ग्रन्थ की विशेषता यह है कि अमरकोष के मूल सूत्रों के साथ-साथ उनकी विभिन्न टीकाओं को भी सम्पूर्ण रूप से स्वीकार करते हुए व्याख्या की गयी है।

(ख) सुधानिधि :

इसकी रचना भी तिरुवेंगलप्पा ने ही की है। यह मम्मट की संस्कृत "काव्य प्रकाशिका" की संस्कृत व्याख्या है। किन्तु आज यह पूर्ण रूप से अलभ्य है। मद्रास के प्राच्य लिखित भांडागार मे नागरी लिपि बद्ध "काव्य प्रकाश व्याख्या" मूल भाग कुछ अंशों में उपलब्ध है। इस अंश को श्री वेटूरि आनंद मूर्ती जी ने अपने ग्रन्थ में प्रकाशित किया है।[3] 143 कारिकाएँ तथा "दस उल्लासों" हैं। केवल मंगलाचरण ही अब प्राप्त है। इसी के आधार पर अनुमान लगा सकते हैं कि कवि संस्कृत, साहित्य तथा अलंकार सम्प्रदायों के विद्वान्, व्याकरण, तर्क और मीमांसा शस्त्रों के पंडित थे।"[4]

ताल्लपाक के कवियों की रचनाओं के इस सम्पूर्ण अध्ययन के पश्चात् हमें अत्यन्त आश्चर्य तथा प्रसन्नता भी होती है कि इन कवियों ने तेलुगु साहित्य की किसी भी शैली को अछूता नहीं छोड़ा। उनका साहित्य जितना विस्तृत

---

1. 1978 में वेंकटेश्वर प्राच्य परिशोधनालय, तिरुपति से प्रकाशित हुआ है।
2. भगवद् गीता—पेदतिरुमलाचार्य, प्रस्तावना प्रो. के. सच्चिदानंद मूर्ती
3. ताल्लपाक वारिकृतुलु —विविध—साहिती प्रक्रियलु, पृष्ठ 516 से 521
4. ताल्लपाक वारि साहित्यमु—विविध साहिती प्रक्रियलु, वे. आ. मूर्ती, पृष्ठ 474

है, उतना ही गहरा भी। नवीन प्रयोगों के साथ संगीत, साहित्य तथा धर्म ही नहीं वरन् नाट्य शास्त्र में भी उनकी रचनायें अनुपम हैं। इनमें एक ओर धार्मिक जोश और उत्तेजना है तो दूसरी ओर पांडित्य पूर्ण संस्कृत और देशी तेलुगु का माधुर्य पूर्ण सम्मिश्रण। तेलुगु साहित्य में वे सदा जगमाते हुए तारे रहेंगें।

इस प्रकार से करीब-करीब डेढ़ सौ वर्षों तक ताल्लपाक के कवि तेलुगु सरस्वती के गले में साहित्यक आभूषण तथा हार पहनाते रहे। ताल्लपाक के कवियों ने तेलुगु भाषा को राज भवनों के बाहर निकाल कर सामान्य जनता के अनुकूल बनाया था। (जिसे हम "जानुतेनुगु" कहते हैं) "उस युग में उनके साहित्य के कारण जो स्फूर्ति तथा चेतना तेलुगु भाषा तथा साहित्य को प्राप्त हुई थी, वह अन्य किसी युग या कवियों के कारण प्राप्त नहीं हुई।"[1] उन्हें मालूम था कि धर्म के प्रचार तथा प्रसार के लिए साहित्य ही मूलाधार है। अतः उन्होंने भाषा को साधन बनाकर नित्य नये प्रयोगों के साथ धर्म को प्रजा के सम्मुख रखा। इस प्रकार वैष्णव धर्म तथा साहित्य दोनों की उन्नति में ताल्लपाक के कवि सहायक बन सके। ताल्लपाक के कवियों के साहित्य को एक विशाल मंदिर से तुलना कर सकते हैं।

"इनके साहित्यक मंदिर का जड़ "धर्म" है। संस्कृत तथा तेलुगु भाषाएँ निर्माण के लिए शिलाएँ हैं। संकीर्तन आदि शैलियाँ उस मंदिर में जाने के लिए सोपान हैं। उसमें आराध्य देव साक्षात् श्रीवेंकटेश्वर हैं। धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष उसकी चहार दीवारी हैं। मधुर कवितायें आंगन हैं। उत्तम भाव सम्पत्ति उस मंदिर का "श्री" भंडार है। कवि स्वयं अर्चक गण हैं। भक्ति ही भगवान् का प्रसाद है। गान ही भगवान के लिए महान् भोग है तो साहित्य प्रेमी ही यात्री हैं। यही उनकी कविता का सम्पूर्ण स्वरूप है।"[2]

3.3. अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों की रचनाओं की तुलना :

अष्टछाप और ताल्लपाक के कवियों की रचनाओं की दो-तीन प्रकार से तुलना की जा सकती है। प्रथम उनके काव्य रूप के आधार पर, द्वितीय उनके काव्य में व्यक्त भाव और तृतीय उनकी अभिव्यक्ति के आधार पर। काव्य को निम्न प्रकार से विभाजित किया जा सकता है—

---

1. ताल्लपाक कवुल—कृतुलु विविध साहिती प्रक्रियलु—वे. आनन्द मूर्ति, पृष्ठ 128
2. वही—पृष्ठ 127
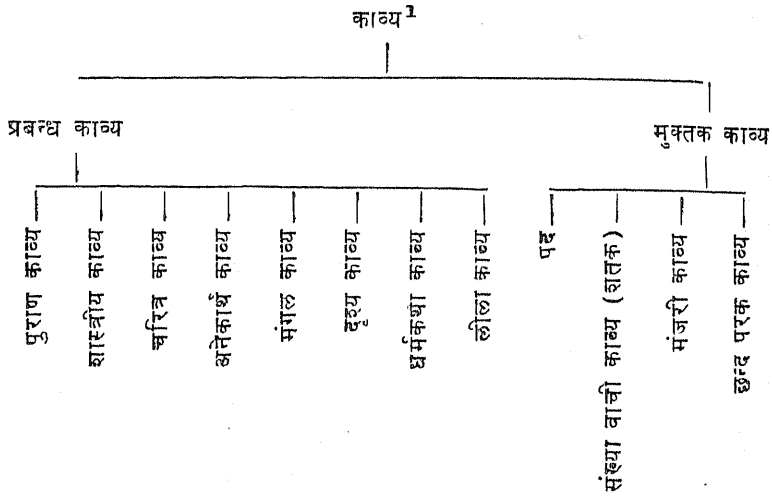
सभी काव्य रूपों का मूल स्रोत लोक वार्ता में होने के कारण आलोच्य कवियों में साम्य दिखाई देते हैं जिन्हें हम उपरोक्त तालिका के आधार पर प्रस्तुत कर सकते हैं।

दोनों ही क्षेत्रों में पूर्ववर्ती पौराणिक परम्परा का आधार लेकर रचनाएँ हुई। उसमें भी विशेष कर भागवत और हरिवंश पुराणों को आधार बनाया गया। अष्टछापी कवियों की भक्ति, साहित्य और जीवनी सभी अंग भागवत से प्रभावित थे। सूरसागर को भगवत का भावानुवाद मान सकते हैं। नंददास ने संस्कृत की भागवत को भाषा दशम स्कंध के नाम से प्रस्तुत किया। ताल्लपाक के कवियों ने भी भागवत के साथ-साथ हरिवंश का भी आधार लेकर अपने साहित्य की सृष्टि की। जैसे पेदतिरुमलाचार्य का आंध्र हरिवंशमु, चिन्नन्ना कृत "उषा परिणयमु", अष्ट महिषी कल्याण तथा अन्नमाचार्य तथा अन्यों के संकीर्तन। दोनों क्षेत्रों में कृष्ण काव्य के साथ-साथ राम काव्य की रचना भी हुई। जैसे सूरदास की "रामकथा" और अन्नमाचार्य की "द्विपद रामायण"। साथ ही अपने अनेक संकीर्तनों में ये कवि रामायण की घटनाओं का उल्लेख किया करते थे। कुछ संकीर्तन रामायण की घटनाओं पर कथा रूप में लिखे गये। उदाहरण के लिए द्रष्टव्य हैं—

1. हिन्दी और तेलुगु वैष्णव भक्ति साहित्य—डा. के. रामनाथन्, पृष्ठ 191

सूर :

"सुन सुत एक कथा कहौं प्यारी।
कमल नयन आनंद उपज्यो चतुर।
सिरोमनि दैत हुँकारी।[1]"

परमान्ददास :

"मदन गोपाल हमारे राम
धनुष बाण धरि विमल वेणुकर
पीतवसन अरु तन घनश्याम ।।......
... ...
दश सिर हति सब असुर संहारे।
गोवर्धन धार्यो कर वाम।"[2]

इसी से मिलते हुए संकीर्तन नन्ददास के भी हैं—

रामकृष्ण कहिए उठि भोर।
... ...

इनके लकुट, मूकुट, पीताम्बर, नित गायन संग नंदकिसौर[3]

तथा

"इत में अयोध्या निर्मल सरजू,
उत यमुना जल करत किलोल।"[4]

इन संकीर्तनों में कवियों ने एक ही साथ राम और कृष्ण की कथा गायी है। ताल्लपाक के—कवियों ने भी ऐसे ही एक ही संकीर्तन में राम तथा कृष्ण कथाओं का वर्णन किया है—अन्नमाचार्य जी का—

"इतनि गोलचितँने इन्निगोल्लुनु दीरु।"[5]

इसमें एक चरण में कालिय मर्दन, पूतना का वध, और दूसरे में रावण संहार, सुग्रीव—मंत्री का वर्णन है। एक अन्य उदाहरण है—

"आतुर बंदुगुडचु हरि नारायण कृष्ण।"[6]

इसमें गुरु कुमारों और गजराज की रक्षा, सोलह हजार कन्याओं और रुक्मिणी से विवाह, अनिरुद्ध को छुड़ा कर लाना, अहिल्या का उद्धार, लंका

---

1. अष्टछाप पदावली—सोमनाथ गुप्त, पृष्ठ 97–98
2. वही—पृष्ठ 88 तथा 97
3. नन्ददास ग्रंथावली—पद 3
4. वही—पद 3
5. अध्यात्म संकीर्तन—(2) 57
6. वही—पृष्ठ 477

पर चढ़ाई और सीता को वापस लाने का वर्णन है। "अष्ट महिषी कल्याण" में ताल्लपाक चिन्नन्ना ने "भागवत रामायण"[1] के नाम से रामकथा का वर्णन किया है। चिन तिरुमलाचार्य ने अपने आध्यात्म संकीर्तनों का आरम्भ ही रामकथा से की है।

उभय क्षेत्रों के आलोच्य कवियों ने कृष्ण तथा राम के साथ-साथ विट्ठल, नारसिंह, श्री रंगनायक, वामन आदि अवतारों का गान भी स्थान-स्थान पर किया है।[2] "उस युग में दशावतार का वर्णन करना एक प्रसिद्ध परिपाटी थी।"[3] जयदेव का गीत गोविन्द काव्य "जयजगदीश हरे" नामक दशावतार वर्णन से ही आरम्भ होता है। उनका प्रभाव पर्याप्त मात्रा में पड़ने के कारण अष्टछाप और ताल्लपाक के कवियों ने भी दशावतार वर्णन किया है। सूर के कुछ पदों में कई अवतारों का वर्णन मिलता है। सूरसागर में तो सभी अवतारों का वर्णन है ही। दृष्टव्य हैं—

"ब्रह्मा हरि-पद ध्यान लगायो।
तब हरि बपु बाराह धरि आयो।[4]

आदि-आदि। ताल्लपाक के कवियों की रचनाओं में भी दशावतार वर्णन की ओर अधिक मान्यता रही। अनेक स्थानों पर दशावतार वर्णन करते हुए भी ताल्लपाक के कवियों की रचनाओं में पुनरुक्ति दोष नहीं। हर एक की अपनी-अपनी अलग विशेषता होती ही है।

अन्नमाचार्य :—

"डोलायांचल डोलाया हरे डोलाया।
मीन, कूर्म, वराह मृगपति अवतारा।"[5]

तथा

"पेक्कुलंपटाल मनसु पेद वैतिवि नीवु।"[6]

इस पद में सूक्ष्म चमत्कारों के साथ दशावतार वर्णन है। चिन्नन्ना ने "उषा कल्याण" में भगवान् शंकर द्वारा कृष्ण का दशावतार वर्णन करवाया है।[7] वैसे ही आलवारों के मुख से भी चिन्नन्ना ने दशावतार वर्णन करवाया है।[8]

---

1. द्रष्टव्य है, पृष्ठ 55 से 58 तक
2. ताल्लपाक के कवियों के अध्यात्म संकीर्तन तथा अष्टछाप के पद
3. सूर की झाँकी—डा. सत्येन्द्र, पृष्ठ 147
4. सूर सागर, पृष्ठ 30
5. आध्यात्म संकीर्तन—पद 374
6. वही—वा. (5) 67
7. पृष्ठ 66
8. दृष्टव्य है—परमयोगि विलासमु, पृष्ठ 102-103

अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों ने चरित काव्यों की भी सृष्टि की। जैसे नन्ददास की रूप मंजरी। (परमानन्ददास कृत ध्रुव चरित्र विवादास्पद है।) तेलुगु साहित्य के लिए ताल्लपाक के कवियों ने "अन्नमाचार्य चरित्रा", "परमयोगि विलासमु" और "रामायण" (द्विपद में) नाम के चरित काव्य दिये। "अन्नमाचार्य चरित्रा" में कवि की जीवनी, रचनाएँ और वंश आदि का विवरण है। स्वयं लेखक कवि के पौत्र हैं। अतः उसका ऐतिहासिक महत्व भी कम नहीं। "परमयोगि विलासमु' आलवार भक्तों की चरित्र कथाओं का संग्रह है।[1]

"मंगल" का अर्थ शुभकामना है। किन्तु साहित्य में इसे एक रूढ़ अर्थ दिया गया है—विवाह। प्रस्तुत तुलना के लिए अगर "मंगल" का विवाहपरक अर्थ लें तो दोनों क्षेत्रों के निम्नलिखित काव्य समाहित होते हैं—"रुक्मणी मंगल"—नन्ददास, "अष्टमहिषी कल्याण" तथा "उषा कल्याण"—ताल्लपाक चिन्नन्ना और "सुभद्रा कल्याण—ताल्लपाक तिम्मक्का।

"मंजरी" नाम से कई काव्य आलोच्ययुग में हिन्दी में लिखे गये। इन "सभी काव्यों में छन्द साम्य नहीं है। पर विषय साम्य अवश्य है। इन सभी में प्रेम और शृंगार के प्रयोगों को ही बहुधा रखा गया है।"[2] इस संदर्भ में आलोच्य कवियों में नंददास ने रस मंजरी, विरह मंजरी और रूप मंजरी की रचना की। तेलुगु में अन्नमाचार्य जी की "शृंगारी मंजरी", पेद तिरुमलाचार्य कृत "चक्रवाल मंजरी" हैं। दोनों में भगवान् की शृंगार क्रीड़ाओं का सरस वर्णन हैं।

अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों के भाव साम्य को भी देखकर पाठक चकित हो जाते हैं। दोनों ही कवि पहले भक्त थे। उसी भक्ति में तल्लीन होकर उन्होंने भगवान् के प्रति अपनी दृढ़ प्रीति को कई प्रकार से गाया है। अष्टछाप के विनय के पद और ताल्लपाक के कवियों के अध्यात्म संकीर्तन एक ही वर्ग में रखे जा सकते हैं। अष्टछाप ने लीला पदों में व ताल्लपाक के कवियों ने शृंगार पदों में, "भगवान की आनंदमयी लीलाओं को ही अपनी रचना का प्रधान वर्ण्य विषय स्वीकृत किया।···दोनों ने एक ही प्रकार से भगवान की बाल, किशोर व यौवन लीलाओं में अनुरक्त दिखाई। फलतः दोनों की रचना वात्सल्य, सख्य व शृंगार भावों की विविध लीलाओं से ही भर गयी।"[3]

1. हिन्दी और तेलुगु वैष्णव भक्ति साहित्य, डा. के. रामनाथन्
2. वही—पृष्ठ 249   3. अन्नमाचार्य और सूरदास—एम. संगमेशम्, पृष्ठ 238·39

सूरदास और अन्नमाचार्य दोनों ही गजेन्द्र जैसे अपना भी उद्धार करने की प्रार्थना करते हैं।[1] दोनों ही हरि भक्ति को ही उन्नत धन समझते हैं क्योंकि इसे न चोरी की जा सकती हैं न अकाल पड़ने पर यह घटता है। स्थान-स्थान पर दोनों ही अपने आचरणों पर लज्जित होते हैं। दोनों ही अत्यन्त आत्म विश्वास के साथ कहते हैं कि—

"हमें नंदन मोल लिये।
जम के फंद काटि मुकराए, अभय अजाद किये।
भाल तिलक, स्रवननि तुलसी दल, मेरे अंक लिये।
मूंड्यो मूँड कंठ वन माला, मुद्रा चक्र दिये।
सब को कहत गुलाम, स्याम को सुनत सिराय हिये।"[2]

यही भाव इस संकीर्तन में व्यक्त किया गया है—

"कोटिकि बडग येत्ति कोंक नेल, येटुलेनि पदमेक्कि यिक नेलचित।
पेट्टिनदि नोसलनु पेद्द-पेद्द तिरुमणि,
कट्टिनदि मोल चिन्न कौपीनमु।
पट्टिनदि श्रीहरि पाद पद्ममुलनु।"[3]

दोनों ही कवि भगवान के चरणों को छोड़कर अन्यत्र शरण लेना, "काम धेनु तजि छेरी कौन दुहावै" ही मानते हैं। लीला वर्णनों में दोनों कवियों को थकान का नाम ही नहीं।

नंददासकृत "विरह मंजरी" तथा अन्नमाचार्य और पेद तिरुमाचार्य की क्रमश: 'शृंगार मंजरी' और "चक्रवाल मंजरी" में कृष्ण के विरह में जलने वाली एक कन्या का विस्तृत वर्णन है। अन्त में दोनों ही कवियों ने मिलन करवाया है।

अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों ने संस्कृत से अपरिचित पाठकों के लिए संस्कृत के कोष आदि का लोक भाषा में परिचय तथा अनुवाद किया है। जैसे नंददास की रचानाएँ—अनेकार्थ भाषा और नाममाला। ताल्लपाक तिरुवेंगलप्पा कृत गुरुवाल प्रबोधिक (अमर कोष की व्याख्या), सुधानिधि (काव्य प्रकाश की व्याख्या), पेदतिरुमलाचार्य की तेलुगु भगवत गीता व्याख्या।

इन साम्यों के पश्चात् उनकी रचनाओं में प्राप्त वैषम्यों पर भी एक दृष्टि डालना समीचीन होगा। अष्टछाप का काव्य क्षेत्र सीमित था। क्योंकि उन्होंने ब्रज को छोड़ दूर दूर प्रदेशों में भ्रमण नहीं किया था। अत: उन्होंने

---

1. सूरसागर–20 (पद) तथा अध्ययत्म संकीर्तन–266
2. सूरसागर–पद 171
3. अन्नमाचार्य संकीर्तन वा–19–पद–42

ब्रज के बालकृष्ण की लीलाओं का ही गान किया। किन्तु ताल्लपाक के कवियों ने आंध्र प्रदेश के ही नहीं वरन् दक्षिण भारत के समस्त वैष्णव क्षेत्रों का दर्शन किया और स्थानीय देवी देवताओं के प्रति दर्जनों रचनायें भी की हैं। इसी कारण अष्टछापी कवियों की तुलना में ताल्लपाक के कवियों की रचनाओं में क्षेत्रों की विभिन्नता अधिक है।

अष्टछापी कवियों ने अपनी रचनाओं को अधिकतर गेय पदों की शैली तक ही सीमित कर ली। उनमें से केवल नन्ददास ने ही अनेकार्थ मंजरी और "मान मंजरी" जैसे अनेकार्थ काव्यों की रचना की। ताल्लपाक के कवियों ने ऐसे प्रयोग नहीं किये। जिस प्रकार से उन्होंने संकीर्तन-लक्षण जैसे लक्षण ग्रंथों की रचना की, उनका अष्टछाप में अभाव है।

अष्टछापी कवियों ने केवल श्रीमद् भागवत के कृष्ण को ही आलम्बन माना। राधा और ब्रजांगनाएँ उनकी नायिकायें रही हैं। ताल्लपाक के कवियों ने भागवत के साथ-साथ द्वारका के कृष्ण, राधा, गोपी, अष्ट-महिषियों से उनका विवाह वर्णन आदि में रुचि ली है। जैसे कि पिछले अध्ययन में देखा जा चुका है, ताल्लपाक के कवियों ने कृष्ण के अष्ट महिषियों के विवाहों के (विशेष कर रुक्मिणी, सत्यभामा और जांबवंती) विस्तार पूर्वक वर्णन में रुचि ली है।[1] किन्तु अष्टछापी कवियों में इनका अभाव है। सूर ने तो केवल एक ही पद में पाँच पटरानियों का विवाह का उल्लेख कर छोड़ दिया है।[2] हाँ, केवल नन्ददास ने रुक्मिणी के विवाह में रुचि दिखाई और रुक्मिणी मंगल की रचना की। इसी प्रकार से अष्टछाप के कवियों ने कंस के द्वारा भेजे गये राक्षसों का सहार केवल कृष्ण से ही करवाया है। किन्तु ताल्लपाक के कवि बलराम को भी महत्व देते हैं। धेनुकासुर और प्रलंब नामक राक्षस बलराम के हाथों में ही हत हो जाते हैं।[3] चाणूर और मुष्ठिकों को मारने में और कंस वध में भी कृष्ण का बलराम बराबर साथ देते हैं। रेवती से उनका विवाह—वृतान्त भी वर्णित है।[4]

इतना सब कुछ होते हुए भी उभय क्षेत्रों की रचनाओं के अध्ययन से यह लगता है कि आलोच्य कवियों की भक्ति भावुकता में कोई भेद नहीं है। अगर भेद है तो केवल बाह्य है। अर्थात् रचनाओं के परिमाण में या उनके कहने के ढंग में। आलोच्य कवियों ने क्रमश: भागवत, पुराण, गीता, शास्त्र, वेद

---

1. द्रष्टव्य—अष्टमहिषी कल्याणमु—चिन्नन्ना
2. द्रष्टव्य है—पांच पटरानी विवाह—राग विलावल—सूरसागर पद, 4192
3. द्रष्टव्य है—अष्टमहिषी मल्याणमु—पृष्ठ 65 4. वही—पृष्ठ 172

आदि का आधार लिया है। वे भगवान के प्रति अपनी श्रद्धा और भक्ति को विभिन्न राग-रागिनियों में बाँध कर जन-मानस तक ले आये हैं। मध्य युग से लेकर आज तक भावुक हृदय उन्हें पढ़कर स्पंदित होते हैं।

अष्टछाप और ताल्लपाक के कवियों की इस असीम प्रतिभा के कारण ही तत्कालीन तथा परवर्ती युगों में भी तरह-तरह से उनकी प्रशंसा की गयी है। जैसे अष्टछाप के सम्बन्ध में निम्नलिखित उक्तियाँ प्रसिद्ध हैं—

"सूर-सूर तुलसी शशि।"
"उत्तम पद कवि गंग के···सूर तीन गुन धीर।"
"किधों सूर के सर लग्यो···।"
"तत्त् तत्त् सूरा कही··· ।"
"और सबगढ़िया, नंददास जड़िया।"

सूर और परमानन्ददास के काव्यों को "सागर" की ही संज्ञा दी गयी है। इसी प्रकार से ताल्लपाक के कवियों के बारे में भी प्रसिद्ध है कि अन्नमाचार्य को "पद कविता पितामह", हरि संकीर्तनाचार्य आदि उपाधियाँ प्राप्त थी। उनके सम्पूर्ण परिवार की प्रशंसा तेनालि रामकृष्ण नामक प्रसिद्ध कवि ने इस प्रकार से की है कि—

"चिन्नन्न द्विपद केरगुनु
पन्नुग पेदतिरुमलय्य पदमु केरगुन्
मिन्नंदि मोरसि नरसिंगन्न
कवित्वंबु गद्य पद्य श्रेणिकिन्।"

अर्थात् द्विपद के लिए चिन्नन्ना. पदों के लिए पेदतिरुमलाचार्य और गद्य-पद्य दोनों श्रेणियों के लिए नरसिंगन्ना आगे हैं। पेदतिरुमलाचार्य को "कवितार्किक केशरी" की उपाधि प्राप्त थी तो चिनतिरुमलाचार्य को "अष्टभाषा चक्रवर्ती" की उपाधि मिली थी।

अन्त में अष्टछाप व ताल्लपाक के कवियों के काव्य के बारे में यों कहा जा सकता है—"इन कवियों के ग्रंथों में केवल काव्य सौंदर्य ही नहीं है, केवल संगीत का ज्ञान ही नहीं है वरन् कृष्ण भक्ति के विविध रूप भी मिलते हैं। साहित्य प्रेमी इनके काव्य का रसास्वादन करते हैं, संगीतज्ञ स्वर साधना करते हैं, संगीतज्ञ मर्मज्ञ इनको सुनकर प्रफुल्लित होते हैं और भक्त पढ़ सुनकर परम आनन्द प्राप्त करते हैं।[1]

1. अष्टछाप और परमानन्ददास—डा. कृष्णदेव झारी, पृष्ठ 43

चतुर्थ अध्याय

अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों की भक्ति पद्धति

"रे मन समुझि सोच विचारि
भक्ति बिन भगवंत दुर्लभ, कहत निगम पुकारि।" (सूरदास)
"यही मेरा व्रत है, मैं कर्मों को नहीं मानता
भगवान की शरण में जाना ही मेरे लिए जप,
तप, धर्म और अन्य पुण्य कर्म हैं।" (अन्नमाचार्य)
"भक्ति भक्त भगवन्त गुरु चतुर्नाम वपु एक।" (परमानन्ददास)

* * *

41. **प्रस्तावना :** "भक्ति की व्याख्या परिभाषा तथा भक्ति के प्रकारों को देखने से विदित होता है कि भक्ति का सम्बन्ध मानव हृदय से है और भक्ति भावमयी होती है। आदिकाल से मानव स्वभाव भावमय प्रकृति का रहा है।[1] डा. के. भास्करन नायर[2] के विचार में भक्ति से मन का अंधकार दूर होकर मन शुद्ध होता है और असत् प्रवृत्तियों का दमन भी होता है। अपने इष्ट के स्मरण मात्र से भक्त के हृदय की हृतंत्री का तार झंकृत हो उठता है। इस स्थिति में भक्त अपने ऐहिक अस्तित्व को भूल कर आत्मविभोर हो उठता है।

भक्ति शब्द की उत्पत्ति "भज सेवायाम्" धातु में "क्तिन्" प्रत्यय लगा कर बना है। इसका अर्थ है—"वह उपाय जिसके द्वारा आनुकूल्य का संपादन किया जाता है। "भक्ति शब्द की उत्पत्ति "भज्" विश्राण से भी मानी जा सकती है। "विश्राण" का अर्थ है विभाजित करना या बाँटना। भक्त अपने को जगत् के स्वार्थों से भी विभक्त करता है और भगवान से विभक्त रह कर उनके रूप व कर्म सौंदर्य का साक्षात्कार करता है क्योंकि उसका ध्येय प्रायः केवल सामीप्य लाभ होता है।"[3] विभिन्न कोषों के अनुसार भक्ति का शाब्दिक अर्थ है—अनुराग, पूजा, उपासना आदि। भक्ति शब्द का अर्थ सेवा है। वह अनेक प्रकार से सम्पन्न होती है। जिस व्यक्ति में किसी भी प्रकार का सेवा भाव हो, उसे "भक्त" कहते हैं।"[4]

---

1. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास—पंचम भाग, पृष्ठ 22
2. हिन्दी और मलयालम के कृष्ण भक्ति काव्य
3. भक्तिकालीन हिन्दी काव्य में प्रेम भावना—डा. रामकुमार खण्डेलवाल, पृष्ठ 38
4. सूर और पोतना के काव्य में भक्ति तत्व—डा. सी. एच. रामुलु, पृष्ठ 1

भागवतकार ने भक्ति का लक्षण इस प्रकार दिया है, "मनुष्यों के लिए सर्वश्रेष्ठ धर्म वही है जिसके द्वारा भगवान कृष्ण में भक्ति हो, भक्ति भी ऐसी, जिसमें किसी प्रकार की कामना न हो और जो नित्य निरन्तर बनी रहे, ऐसी भक्ति से हृदय आनन्द स्वरूप भगवान की उपलब्धि करके कृतकृत्य हो जाता है।"[1]

मानव मन का प्रकृति के प्रति असीम जिज्ञासा ही उत्तरोत्तर काल में भक्ति के रूप में विकसित हुई। अतः भक्ति के बीज वेदों में वपन हो कर, उपनिषदों में पल्लवित और पुराणों में विकसित हुए। भक्ति के विषय में अधिकारिक व्याख्या हमें गीता, भागवत और भक्ति सूत्रों में मिलती है। ईश्वर के परम अनुराग को ही शांडिल्य महर्षि भक्ति मानते हैं तो नारद महर्षि उस परमेश्वर में अतिशय प्रेम रूपता को ही भक्ति कहते हैं जो अमृत रूप भी है।[2]

भारत में प्राचीन काल से ही भगवान को पाने के लिए कर्म, योग और उपासना के तीन मार्गों का निर्देशन हुआ है। उपनिषत्काल ज्ञान प्रधान, ब्राह्मण काल कर्म प्रधान रहे। जब इनमें विकृतियाँ पैदा होने लगीं तो जैन और बौद्ध धर्म पैदा हुए। समय की गति के साथ ये दोनों अवैदिक धर्म भी मंद पड़ गये क्योंकि दक्षिण में शंकराचार्य और कुमारिल भट्ट ने एक बार फिर वैदिक धर्म का उद्धार किया। शंकराचार्य का साधना मार्ग ज्ञान और और वैराग्य प्रधान है। दार्शनिक क्षेत्र में उनके मत को अद्वैत कहा जाता है। हिन्दू धर्म की जड़ें उनके द्वारा मजबूत की गयीं किन्तु यह धर्म तथा साधना का कठिन मार्ग सामान्य जनता के मनोनुकूल नहीं था। हाँ, इतना अवश्य मानना होगा कि शंकर के समग्र तेजस्वित व्यक्तित्व के आघात से वेद विरोधी स्वर कुछ मन्द हुआ। वास्तव में इससे भी महत्वपूर्ण कार्य दक्षिण के आलवार भक्तों ने किया। उन्होंने "उपासना" की महानता को स्थापित करते हुए विष्णु प्रेम भक्ति की रसमयी धारा का प्रचार किया। अलवार भक्त भारत के सुदूर दक्षिण में बारह की संख्या में हुए। इन्होंने लगभग चार हज़ार गीत तमिल भाषा में लिखे हैं जो "प्रबन्धम्" के नाम से संग्रहीत हैं। प्रबन्धम् को वेदों के समकक्ष रखा गया। भागवत धर्म और वैष्णव भक्ति का प्रचार इन्हीं से आरम्भ हुआ। दक्षिण में वैष्णव अनुयायी आज भी "प्रबन्धम्" का विधिवत् पारायण करते हैं। मंदिरों में भी उनका गान होता है। ये सभी आलवार

1. सूर और उनका साहित्य—प्रो. हरबंशलाल शर्मा, पृष्ठ 225 से उद्धृत
2. नारद और शांडिल्य के भक्ति सूत्र।

समकालीन नहीं थे। उनके आविर्भाव का काल लगभग दूसरी से ले कर दसवीं शताब्दी तक माना जाता है। आलवारों के द्वारा प्रसारित इस भक्ति की रसमई धारा में लोग गोते लगाने लगे और उनका मन उसमें लीन होने लगा। अत: इससे यह निष्कर्ष पर हम पहुँच सकते हैं कि कर्म, ज्ञान तथा उपासना के तीनों मार्गों में उपासना अर्थात् भक्ति का ही प्रचार अधिक रहा। इसका कारण यह है कि, "भक्ति ही एक ऐसा साधन है जिसको सभ। सुगमता से कर सकते है और जिसमें सभी मनुष्यों का अधिकार है।"[1] आलवार भक्तों के अलावा दक्षिण में नाथमुनि, आचार्य पुंडरीकाक्ष राममिश्र और यामुनाचार्य हुए। यामुनाचार्य जी ने विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय की नींव डाली। भास्कराचार्य ने निंबार्क संप्रदाय की पृष्ठभूमि तैयार की। विशिष्टाद्वैत मत की स्थापना रामानुजाचार्य द्वारा हुई। उनके पश्चात् विष्णु स्वर्मा, निंबार्क स्वामी, माध्वाचार्य प्रसिद्ध हुए। दक्षिण भारत से भक्ति की यह धारा उत्तर भारत में भी पहुँच गयी और सम्पूर्ण देश में कई वैष्णव संप्रदायों का जन्म हुआ। भारत के प्रमुख वैष्णव आचार्य, उनके भाष्य, इष्टदेव तथा संप्रदाय निम्नलिखित हैं। इसे ही हम सिद्धान्तों के आधार पर वैष्णव भक्ति का विभाजन मान सकते हैं।

सिद्धान्तों के आधार पर वैष्णव भक्ति का विभाजन :[2]

संप्रदाय अथवा सिद्धान्त	प्रवर्तक	इष्टदेव	भाष्य
1. विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त	रामानुजाचार्य	नारायण	श्रीभाष्य
2. (रुद्र) शुद्धाद्वैत सिद्धान्त	विष्णु स्वामी	श्रीकृष्ण	सर्वसूक्त
3. द्वैताद्वैत सिद्धान्त	निम्बार्काचार्य	कृष्ण और राधा	वेदान्त परिजात
4. द्वैत सिद्धान्त	माध्वाचार्य	हरि	पूर्ण प्रज्ञ भाष्य

प्रमुख रूप से इन्हीं संम्प्रदायों को आधार मान कर अथवा इनसे प्रभावित हो कर देश में कई वैष्णव संप्रदायों का जन्म हुआ। जैसे रामानन्द संप्रदाय, राधावल्लभ संप्रदाय, हरिदासी संप्रदाय, चैतन्य संम्प्रदाय आदि।

1. नवधा भक्ति—जयदयाल गोयन्दका, पृष्ठ 1
2. डा. दीनदयाल गुप्त, डा. चन्द्रभान रावत, डा. भास्करन् नायर आदि विद्वानों के ग्रंथों के आधार पर।

4.2. वैष्णव भक्ति के कुछ समान सिद्धान्त :

इन आचार्यों के द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त इस प्रकार से कहे जा सकते हैं—

(अ) ब्रह्म के सगुण रूप की मान्यता और राम तथा कृष्ण के अवतारों को विशेष महत्व ।

(आ) शंकर के मायावाद का खण्डन करते हुए जगत् और जीव की सत्यता की स्थापना ।

(इ) वेद, उपनिषद, ब्रह्म सूत्र, गीता और भागवत के साथ-साथ पुराण और लोक प्रचलित विश्वासों की भी प्रामाणिकता को स्वीकार कर समन्वय की उदार भावना की प्रतिष्ठा ।

(ई) लौकिक सम्बन्धों को छोड़कर नहीं, किन्तु उन्हें परमात्मा से जोड़ कर ही साधना करना । सभी जातियों और कुलों के मनुष्य मात्र के लिए वैष्णव धर्म के द्वार खोलना ।

(उ) भगवान में भक्ति, श्रद्धा, दैन्य, भक्तवत्सलता, उपास्य की महत्ता आदि के साथ-साथ भक्त की विवशता और अशक्तता को स्वीकार करना ।[1] शरणागति तत्व को विशेष महत्व देना । इसी उदारवादी दृष्टिकोण तथा साधना की सुलभता के कारण क्या दक्षिण, क्या उत्तर-सम्पूर्ण भारत में वैष्णव धर्म का रंग चढ़ गया ।

ऊपर के संक्षिप्त विवेचन से हमें यह विदित होता है कि—शंकर के अद्वैतवाद को खंडन करते हुए दक्षिण के आचार्य पुरुषों ने नये संप्रदायों की स्थापना की जिन्हें वैष्णव संप्रदायों की संज्ञा दी गयी । उनके व्यापक प्रभाव से उत्तर भारत में भी कई संप्रदायों का उदय और विकास हुआ । "इन संप्रदायों में विशेष भक्ति-दर्शन तथा भक्ति के लोक प्रचलित व्यावहारिक रूप का समुचित विकास हुआ । इन संप्रदायों में दीक्षित भक्त कवियों ने भक्ति की मनोहर स्रोतस्विनी समूचे भारत में प्रवाहित कर दी ।"[2]

भक्ति की व्याख्या, विकास तथा अन्य तत्वों के साथ-साथ इन भक्ति संप्रदायों के सम्बन्ध में भी मान्यवर विद्वानो के ग्रंथ और गम्भीर अध्ययन हमारे सामने प्रस्तुत हैं । अतः उनके बारे में लिखना पुनश्चरण मात्र ही होगा ।

---

1. हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास—पंचम भाग के आधार पर-सं डा. दीनदयाल गुप्त

सभी आचार्यों ने केवल एक ही बात पर विशेष बल दिया है कि भगवान किसी भी व्यक्ति के लिए सुलभ रूप में भक्ति के आचरण के द्वारा वश में हो जाते हैं। उस परमात्मा से मिलना या एकाकार हो जाना ही मोक्ष अथवा परमात्मा की प्राप्ति मानी जाती है। इसे ही निम्न प्रकार से अभिव्यक्त कर सकते हैं—
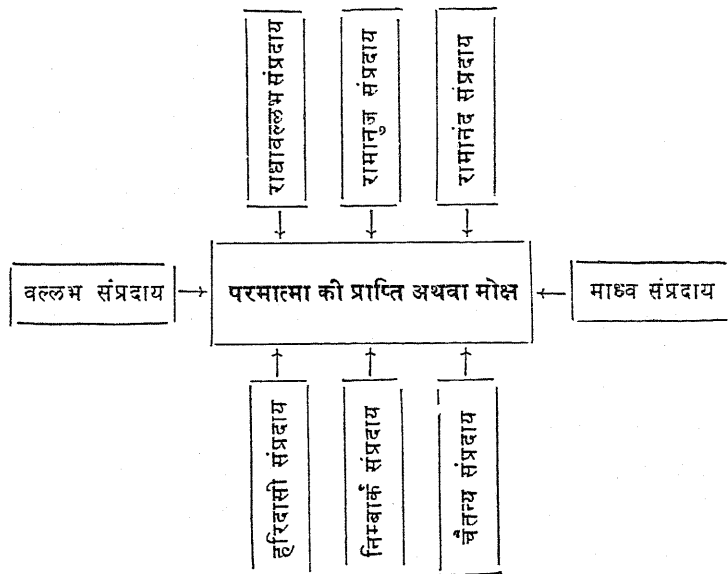
इसे एक प्रकार से हम संप्रदायों के आधार पर वैष्णव भक्ति का विभाजन भी कह सकते हैं।

4.3. भक्ति का दार्शनिक पक्ष :

भक्ति और दर्शन: सम्बन्ध : आचार्य राममूर्ति शर्मा के शब्दों में, "भाव साधना के द्वारा भगवान के साथ पूर्ण रूप से अनुरक्त हो जाना भक्ति है और जिस ज्ञानमय साधना के द्वारा परमेश्वर के स्वरूप को समझा जाता है वह दर्शन है। भक्ति की परिभाषा शाण्डिल्य ने—"परानुरक्तीश्वरे" रूप में की है। यहाँ टीकाकार स्वप्नेश्वर ने अनुरक्ति का अर्थ ईश्वर ज्ञानोत्तरवर्ती राग कहा है। जबकि दर्शन को "दृश्यतेनेन इति दर्शनम्" (जिससे देखा जाए वह वह दर्शन है) कहकर परिभाषित किया जाता है। इस प्रकार भक्ति एवं दर्शन दोनों क्रमशः भावनात्मक एवं संज्ञात्मक व्यापार हैं। वास्तव में भक्ति दर्शन

के सरलीकरण का ही नाम है और कहा जा सकता है कि उपनिषदों के ज्ञान मार्ग के सारल्य से ही भक्ति का जन्म हुआ है।"[1]

जिस प्रस्थानत्रयी के आधार पर अद्वैतवाद की स्थापना हुई थी, उसी के आधार पर एक नवीन दृष्टिकोण से भक्ति दर्शन की पृष्ठभूमि प्रस्तुत की गयी। "इन आचार्यों की यह स्थापना थी कि अद्वैत अपने शुद्ध रूप में मूल स्रोतों के आधार पर सिद्ध नहीं होता। उसके साथ वैशिष्ट्य जोड़े बिना वह न ग्राह्य है, न लोकरंजक। इस दृष्टि से अद्वैतवाद का खण्डन करके चारों प्रमुख आचार्यों ने उसे विशिष्ट बनाया।......नवीन दार्शनिक उद्भावनाओं की पुष्टि के लिए एक सुदृढ तर्क–पद्धति का प्रयोग किया।"[2] शंकर के मायावाद का खण्डन करते हुए जीव और जगत् की सत्यता की स्थापना की गयी। "जीव तथा जगत् की सत्यता को उन्होंने अपने विचारानुसार प्रकार भेद से स्थापित किया है और उन भेदों के फलस्वरूप दार्शनिक भक्तों का नामकरण किया गया है। जैसे–विशिष्टाद्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद, देताद्वैतवाद, भेदा भेदवाद तथा अचिंत्य भेदा भेदवाद।"[3] इनसे सप्रदायिक वैष्णव कवि अवश्य प्रभावित हुए।

अष्टछाप एवं ताल्लपाक के कवि क्रमशः शुद्धाद्वैत और विशिष्टाद्वैत संप्रदायों में दीक्षित थे। अतः उनके काव्य में भक्ति के अन्य तत्वों के साथ-साथ इन दार्शनिक मान्यताओं का भी समावेश अनायास ही हो गया। अतः उनके दार्शनिक विचारों के अध्ययन से पहले इन संप्रदायों के सम्बन्ध में एक संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

4.3.1. शुद्धाद्वैत दर्शन :[4] "वल्लभाचार्य जी का दार्शनिक सिद्धान्त "शुद्धाद्वैत वाद" है। शुद्धाद्वैतवाद के अनुसार ब्रह्म अद्वैत हैं और माया-रहित होने के कारण शुद्ध तथा विरुद्ध धर्मों का (गुणों) आश्रय हैं। ब्रह्म से जगत् आविर्भूत होता है, किन्तु ब्रह्म अविकृत ही रहता है। इसीलिए इस सिद्धान्त का नाम "शुद्धाद्वैत" है। वल्लभ दर्शन के अनुसार ब्रह्म सगुण और निर्गुण दोनों हैं। बल्लभ दर्शन के अनुसार ब्रह्म एवं जगत् में भेद है। जीव अणु है तथा ईश्वर का अंश है। बल्लभाचार्य जी ने जगत् और संसार में भी भेद

---

1. संस्कृत कृष्ण काव्य और सूरसागर–लेख, पृष्ठ 52
2. हिन्दी और तेलुगु वैष्णव भक्ति साहित्य–डा. के. रामनाथन्, पृष्ठ 159
3. हिन्दी का बृहत इतिहास–पंचत भाग, पृष्ठ 24
4. आधार–भारतीय साहित्य कोश–सं. डा. नगेन्द्र, पृष्ठ 1177–1262

माना। जगत् तो ब्रह्म के सत् अंश से आविर्भूत होता है और संसार जीव की अविद्या माया से। जगत् का उत्पादन और नाश नहीं होता, उसका तो केवल आविर्भाव और तिरोभाव होता है। ज्ञान प्राप्ति से संसार का नाश होता हैं, जगत् का नहीं। ब्रह्म के तीन रूप हैं—पुरुषोत्तम, अंतर्यामी तथा अक्षर ब्रह्म। अक्षर ब्रह्म से अनेक जीव और जगत् निकलते हैं जैसे अग्नि से चिनगारियाँ। जीवों में तीन भेद हैं—शुद्ध, मुक्ति और संसारी। मुक्ति में जीव और ब्रह्म का ऐक्य होता है और इसका साधन है, "पुष्टि" अर्थात् भगवदनुग्रह जो चतुर्विद है—प्रवाह-पुष्टि, मर्यादा-पुष्टि, पुष्टि-पुष्टि और शुद्ध-पुष्टि भक्ति। शुद्ध-पुष्टि भक्ति के तीन सोपान हैं—प्रेम, आसक्ति और व्यसन। ज्ञान, कर्म मार्गों की कठिनता के कारण, भक्ति मार्ग सुलभ है। श्रीकृष्ण ही परब्रह्म है। "वल्लभाचार्य का दर्शन जीव, जगत् एवं ब्रह्म की दृष्टि से एक समन्वयात्मक दर्शन है।"[1]

4.3.2. विशिष्टाद्वैत दर्शन :[2] रामानुजाचार्य का दार्शनिक सिद्धान्त "विशिष्टाद्वैतवाद" है। रामानुज दर्शन के अनुसार विभिन्न जीव एवं जड़ जगत् ब्रह्म के शरीर, प्रकार एवं विशेषण कहे गये हैं। जीव चित् एवं जड़ अचित्। चित् एवं अचित से विशिष्ट ब्रह्म ही रामानुजदर्शन का विशिष्टाद्वैत तत्व है। इसीलिए रामानुज का दार्शनिक सिद्धान्त विशिष्टाद्वैत के नाम से प्रख्यात हुआ है। रामानुज दर्शन के अनुसार यद्यपि जीव तथा जगत् की स्वतंत्र सत्ता स्वीकार की गयी है, तथापि परमेश्वर अंतर्यामी रूप से भोक्ता (जीव) एवं भोग्य (जगत्) में स्थित रहता है। रामानुज ने ब्रह्म को चिर एवं अचिर से विशिष्ट सिद्ध कर दर्शन को व्यावहारिक बनाने का प्रयत्न किया है। निष्काम कर्म, भक्ति अथवा मर्कट मार्जारी प्रपत्ति के द्वारा सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य अथवा सायुज्य मोक्ष प्राप्ति है। किन्तु मुक्तावस्था में भी ईश्वर से जीव की भिन्नता रहती है क्योंकि जीव ईश्वर की सृष्टि का कर्ता-नियंता नहीं हो सकता। ईश्वर का ध्यान लक्ष्मी-नारायण, व्यूह, विभव, अंतर्यामी तथा मूर्ति इन पाँच रूपों में से प्रत्येक में हो सकता है। "वैष्णव दर्शन के सिद्धान्तों में रामानुज का दार्शनिक सिद्धान्त सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।"[3]

---

1. डा. नगेन्द्र
2. आधार—भारतीय साहित्य कोश—डा. नगेन्द्र, पृष्ठ 1091, 1192
3. डा. नगेन्द्र

4.3.3. अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों के दार्शनिक विचार :

4.3.3.1. ब्रह्म : ब्रह्म की माया से नितान्त अलिप्त अर्थात् शुद्ध मानने को ही कारण वल्लभाचार्य जी के दर्शन का नाम शुद्धाद्वैत पड़ा। उन्होंने इस शुद्ध ब्रह्म को सच्चिदानन्द स्वरूप भी माना है। वह ब्रह्म व्यापक, नाशरहित और सर्वशक्तिमान् है। स्वतंत्र, सर्वज्ञ और गुणों से वर्जित भी है।

अष्टछाप के काव्य में ब्रह्म सम्बन्धी विचार निम्न प्रकार से हैं–

सूरदास :

"सदा एक रस एक अखंडित, आदि अनादि अनूप।"[1]

"अविगत आदि अनंत अनूपम अलख पुरुष अविनासी,
पूरन ब्रह्म प्रकट पुरुषोत्तम नित निज लोक विलासी।"[2]

परमानन्ददास :

"आनंद की निधि नन्दकुमार।
परब्रह्म नर मेष नराकृति जगमोहन लीला अवतार।"[3]

"हँसत गोपाल नन्द स्वरूप न जाने,
निर्गुन ब्रह्म सगुन धरि लीला ताहिन सुत करि माने।"[4]

नन्ददास :

"जै जै जै श्रीकृष्ण रूप गुन कर्म अपारा।"[5]

"जो प्रभु जोति जगत्मय, कारन करन अभेद।"[6]

अन्य अष्टछापी कवियों ने ब्रह्म सम्बन्धी विचार स्थान-स्थान पर प्रकट किया है।

अष्टछापी कवियों ने सगुण और निर्गुण ब्रह्म में अन्तर नहीं माना। किन्तु इन दोनों में अभेद मानते हुए भी अष्टछापी कवि सगुण ब्रह्म की ओर ही आकर्षित थे। अतः वे कहते हैं–

"अविगत गति कछु कहत न आवे।...
रूप-रेख-गुन-जाति-जुगति बिनु निरालंब कित धावै।
सब विधि अगम विचारहिं तातैं सूर सगुन पद गावैं।[7]

---

1. ब्रजमाधुरी सार—वियोगी हरि, पृष्ठ 42
2. सूरसारावली–पद–1
3. अष्टछाप पदावली–सोमनाथ गुप्त, पृष्ठ 94
4. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय—डा. दीनदयाल गुप्त, पृष्ठ 410
5. सिद्धान्त पंचाध्यायी–(नन्ददास ग्रंथावाली), पृष्ठ 31—ब्रजरत्नदास
6. अनेकार्थ मंजरी–(नन्ददास ग्रंथावली) पृष्ठ 41
7. सूरसागर–पद–2

वास्तव में सूर और नन्ददास के भ्रमर गीत इसी सगुण और निर्गुण के बीच संघर्ष का काव्यात्मक रूप है।

रामानुजाचार्य जी के विशिष्द्वैत सिद्धान्त के अनुसार भी परमात्मा नित्य परिपूर्ण और सगुण है। परमात्मा का सूक्ष्म कारण शरीर चित् और अचित् से युक्त रहता है। ब्रह्म ही सृष्टि के कर्ता, धर्ता और भोक्ता है। अन्तर्यामी और बाह्यर्यामी भी है। सबका आश्रय और आधार है। वह सगुण है। इसी ब्रह्म के सम्बन्ध में ताल्लपाक के कवियों के विचार इस प्रकार हैं—

अन्नमाचार्य :

> "आदि पुरुषु डच्युतु डचलु डनंतु डमलुड्
> आदेवु डितडे पो हरि वेंकट विभुडु।"[1]

अर्थात् हे परम तत्व ! तुम गुणातीत हो, अचिन्त्य हो, सर्वान्तर्यामी हो, इंद्रयातीत हो, मैं तुम्हारी शरण में आता हूँ। समस्त ग्रहनक्षत्र, कोटि-कोटि ब्रह्मांड आदि सभी उस ब्रह्म पर आधारित हैं। एक अन्य स्थान पर उनका कहना है कि "तुम्हारे रोम रंध्रों में से कोटि-कोटि ब्रह्मांड उत्पन्न हुए हैं। अनेक रुद्रों का आविर्भाव भी तुम्हीं से हुआ है।[2] पेदतिरुमलाचार्य भी यही कहते हैं कि, "हे कोटि सूर्य प्रकाश ! आपने अपने लीला विनोद के लिए समस्त द्रव्य समुदाय की सृष्टि की। वही लवण, इक्षु दधि क्षीर, आज्य आदि समुद्रों के रूप में कही दीखता है, तो कांचन, रजत-लोह आदि पहाड़ों सा कहीं दीखता है। पृथ्वी के गर्भ में वही सम्पत्ति वज्र-वैडूर्य पद्म राग-रत्न के निक्षेप बने और वही, खेतों में फसल की ढेरों के रूप में मिलती है। पुण्य नदियाँ आपके राज्य में बने सहज नाले हैं।···सारे जगत् को आप ही एक घर-गृहस्थी के रूप में चला रहे हैं।"[3] उनके अनुसार ब्रह्म अर्थात् वैकुण्ठनाथ ही हिरण्य गर्भ आदि के पिता हैं, सनक सनंद आदि के पालक, दिविजों के रक्षक, मुनियों के वरद, ज्ञानियों के परदेव और जगों के मूल कारण हैं।"[4]

ताल्लपाक के कवि भी सगुण और निर्गुण ब्रह्म के बीच अन्तर नहीं मानते। अन्नमाचार्य जी कहते हैं भगवान् वेंकटेश्वर को ही बौद्ध लोग बुद्ध कहते हैं, सांख्यवादी पुरुष कहते हैं, वैयाकरण उन्हीं को पद कहते हैं, वेदान्ती उनको ब्रह्म मानते हैं, मीमांसक उनको कर्म कहते हैं, नैयायिक उन्हें कर्ता कहते हैं, योगी उनको "अणिमा" आदि मानते हैं और कुछ लोग "केवल" बताते

1. संकीर्तन–81 (वा–2)
2. संकीर्तन–194 (वा–6)
3. वैराग्य वचन मालिका गीतालु–12
4. वही–15

हैं। लेकिन बहुत से लोग उनको "सुलभ" कहकर उनके भक्त बनते हैं।"[1] उनका यह भी कहना है कि कुछ के लिए जो तत्व निर्गुण है, कुछ के लिए वही सगुण है।

पेद तिरुमलाचार्य ने भी भगवान् को "उभय विभूति "नायक" अर्थात् सगुण और निर्गुण दोनों ही माना है।[2]

4.3.3 2. जीव :

शुद्धाद्वैत सिद्धान्त के अनुसार जीव की उत्पत्ति अक्षर ब्रह्म के "चित्" अंश से होती है। ब्रह्म का अंश होने के कारण जीव नित्य और सत्य है, किन्तु वह देह की उपाधि प्राप्त करके सीमित, अणु और अल्पज्ञ ही रहता है। जीव की तीन अवस्थायें इस सम्प्रदाय में मानी गयी हैं—शुद्ध, संसारी और मुक्त। अष्टछापी कवियों के जीव सम्बन्धी विचार इस प्रकार हैं—

सूरदास :

"सकल तत्व ब्रह्मांड देवपुनिमाया सब विधि काल।
प्रकृति पुरुष श्री पति नारायण, सब हैं अंश गोपाल।"[3]

नन्ददास :

"तुम तैं हम सब उपजत ऐसें।
अगिनि तैं विस्फुलिंगन जैसे।"[4]
"काल-कर्म-माया अधीन ते जीव बखाने।
विधि निषेध अरु पाप-पुण्य तिन में सब साने।"[5]

परमानन्ददास :

"सुन्दर स्याम कमल दल लोचन देखि देखि सुख पाऊँ।
जो ग्यानी ते ग्यान विचारो, जोगी ते जोग।
कर्मठ होय ते कर्म विचारो जे भोगी ते भोग।"[6]

डा. दीनदयाल गुप्तजी के अनुसार अष्टछाप के अन्य कवियों ने जीव के सम्बन्ध में कुछ विशेष रूप से विचार व्यक्त नहीं किये हैं। क्योंकि वे भक्त कवि हरि गुण गान व नाम स्मरण आदि में ही व्यस्त रहे। दार्शनिक

1. आध्यात्म संकीर्तन (वा–5) संकी–106
2. वैराग्य वचन मालिका गीतालु–पद–41
3. सूर सारावली, पृष्ठ 38
4. भाषा दशम स्कंध, पृष्ठ 208
5. सिद्धान्त पंचाध्यायी (शुक्ल) पृष्ठ 184
6. परमानन्द सागर–पद–905

सिद्धान्तों का प्रतिपादन अथवा अन्य कुछ की ओर उनका ध्यान ही नहीं गया। जीव के भेदों के सम्बन्ध में "तात्विक विश्लेषण न करने पर भी सूरदास इन सभी तरह के जीवों का वर्णन यथावसार करते ही मिलते हैं। शुद्ध जीवी गोपियों का वर्णन दशम स्कंध के पदों में, संसारी जीवों का वर्णन विनय के पदों में और मुक्त जीवों का वर्णन तत्तत् कथा—प्रसंगों में मिलते हैं।"[1]

विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के अनुसार जीव भगवान् का ही अंश है। अचेतन जगत् चेतन का शेष है। इन अचेतन व चेतन दोनों का शेषी भगवान् है। ये दोनों अंशी भूत हैं और वह अंशी है। जीव अणु स्वरूप और अस्वतंत्र है। अपने समस्त कार्य कलाप के लिए जीव ईश्वराधीन रहने के ही कारण "शेष" कहा जाता है। जीव का यही अधीनत्व उनका विशेष गुण है। इसे ही गोस्वामी तुलसीदास जी के शब्दों में—"ईश्वर अंश जीव अविनाशी" है।[2] ताल्लपाक के कवियों ने ठीक यही विचार व्यक्त किये हैं।

अन्नमाचार्य : जीव को परतंत्र मानते हुए कहते हैं—

"नीवु सर्वगुण संपन्नुडवु नेनोक दुर्गुणिनि"...[3]

इसमें उनका कहना है कि तुम अन्तर्यामी हो और मैं एक अंग मात्र। तुम स्वतंत्र और मैं परतंत्र। हे वेंकटेश्वर! मैं तुम्हारा सेवक हूँ। तुम महान् दाता और मैं एक याचक। तुम कर्ता हो और मैं शरणागत। जीव यह भूल जाता है कि देह अनित्य और देही नित्य है, अभिमान करता है। जिस प्रकार से भगवान कृष्ण ने—

"वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृहणाति नरोपराणि"[4]

कहा है—वही भाव ताल्लपाक के कवियों ने भी व्यक्त किया है—

"गुदिबात चीर मानि कोत्त चीर कट्टिनट्लु
मुदिमेनु भानि देह मोगि गोत्त मेनु मोचु।"[5]

अर्थात् यह शरीर एक रथ है। जीव उसको चलाता है उसमें निवास परमात्मा ही करते हैं। पंच महाभूत तरह तरह के वस्त्र हैं।[6] इस शरीर की उन्होंने एक मंदिर से भी तुलना की है और उसे साक्षात् वैकुण्ठ ही मान कर

---

1. अन्नमाचार्य और सूरदास—डा. एम. संगमेश्वर, पृष्ठ 127
2. मानस—उत्तरकाण्ड
3. आध्यात्य संकीर्तन-514
4. भगवद् गीता—सांख्य योग—226 श्लोक।
5. अध्यात्म संकीर्तन—अन्नमाचार्य, 419
6. वही—संकीर्तन, 152

कहा है—तन ही मंदिर, सिर ही शिखर, हृदय ही हरि के लिए पीठ, दृष्टि ही दीप है। वाक् ही मंत्र, नाना प्रकार की रुचियाँ नैवेद्य। जीव परमात्मा का दास है और उसकी चेष्टायें ही अंगरंग वैभव हैं।[1] पेदतिरुमलाचार्य भी अपनी रचनाओं में इसी प्रकार के भाव व्यक्त किये हैं! जैसे—

क्षीराब्दि शयना कमलंबु सूर्युनि कैदुरु चुचिनट्लु[2]

इसमें वे कहते हैं कि भगवान। तुम परात्म पर ब्रह्म हो और मैं प्रकृति की उपाधियों से युक्त जीव मात्र। चिन तिरुवेंगलनाथ भी अपने परमयोगि विलासमु द्विपद काव्य में भगवान को सर्वतंत्र-स्वतंत्र और सर्व शक्तिमान तथा जीव को परतंत्र, अस्थिर, अल्पज्ञ और शक्तिहीन माना है।[3]

विशिष्टाद्वैत संप्रदाय के अनुसार भोग और भोगी तत्व को इस प्रकार कहा है—

"भोगमु नेनु नीकु भोगिविनीवु[4]"

अर्थात् मैं भोग हूँ और तुम भोगी हो। कर्म रूपी मस्त हाती को नियंत्रित करने वाले तुम महावत हो। मन रूपी अश्व को नियंत्रित करने वाले भी तुम ही हो। वे श्रुतियों में कहे गये परम सत्यों को इस प्रकार अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया है।

4.3.3.3. माया : शुद्धाद्वैत दर्शन की व्याख्या के संदर्भ में वल्लभाचार्य जी ने शक्ति स्वरूपा माया के दो भेद बताये हैं—एक विद्या माया और दूसरी अविद्या माया। भगवान की उपर्युक्त दो रूपधारिणी माया ही इस सृष्टि (जगत्) और संसार का प्रसार करती है। इस माया के अधीन जीव हैं, भगवान माया के अधीन नहीं हैं। विद्यामाया सर्व समर्थ हैं। यह उसी प्रकार ब्रह्म से अभिन्न है जिस प्रकार सूर्य से उसकी प्रकाश शक्ति। अविद्या माया से जीव संसार में लिप्त रहता है तो विद्या माया से मुक्त होता है।

अष्टछापी कवियों में माया सम्बन्धी अनेक पद, मिलते हैं। दोनों प्रकार की माया का वर्णन सूर ने इस प्रकार किया है—

"सो माया है हरि की दासी निसि दिन आज्ञाकारी।"

अविद्या माया और उसके जाल के सम्बन्ध में तो सैकड़ों पद हैं। उदाहरण के सूरदास जी कहते हैं कि तुम्हारी माया के जाल से कौन बच सका है। क्योंकि······

1. अन्नमाचार्य अध्यात्म संकीर्तन, 82
2. वैराग्य वचन मालिका गीतालु, 4
3. द्रष्टव्य, पृष्ठ 7, 8
4. अन्नमाचार्य—संकीर्तन, 40

"नारद मगन भये माया में, ज्ञान में, ज्ञान-बुद्धि बल खोयौ,
संकर को मन हरयो कामिनी, सेज छांडि भू सौयौ ।"[1]
"···सूर प्रभु की सबल माया, दैति मोहि भुलाइ" ।[2]

सूर ने माया को नटिनी, सांपिन आदि कई रूपों में चित्रित करते हुए अपने मन को तथा लोगों को सावधान किया है कि इससे बचो।

नन्ददास ने भी माया का वर्णन किया है। जैसे—

1. सकल विस्व अपबस करि मो माया सोहृति है।
   मोहमयी तुम्हारी माया सोइ मोहिं मोहृति है।[3]
2. वा गुण की परछाई री माया दरपन बीच।
   गुण तै गुण न्यारे भए अमल वारि मिल कीच।[4]

परमानन्ददास :

"कमल नयन कमला पति त्रिभुवन के नाथ,
एक प्रेम तै सब बनें जो मन होई हाथ।[5]

अष्टछाप के अन्य कवियों ने भी अविद्या माया के कृत्यों की ओर संकेत किया है और उसे छोड़ने का उपदेश दिया है।

विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के अनुसार माया भगवान की शक्ति है और ब्रह्म में आश्रित रहती है। इसी शक्ति को लक्ष्मी रूपा माना जा सकता है। अविद्या में ज्ञान का सर्वथा अभाव है और वह जीवाश्रित है। इसी से जीव संसार से बंधा रहता है।[6]

ताल्लपाक के कवियों ने अपनी रचनाओं में माया का वर्णन स्थान-स्थान पर किया है। अन्नमाचार्य के अनुसार भगवान ने ही माया तथा सभी जीवों की रचना की[7] जिसे उन्होंने इस प्रकार से प्रस्तुत किया है—

अविद्या माया का जी जीवों को इन सांसारिक बन्धनों में उलझा देती है उसका एक सुन्दर उदाहरण है—

"कोलदि ब्रह्मांडपु गुंदेनली कुलिकि जीवुलनेडि"

अर्थात् ब्रह्मांड ऊखल है। जीव-समूह उसमें धान के समाने भरे हुए हैं।

---

1. सूरसागर—प्रथम स्कंध, पृष्ठ 6   2. वही—पृष्ठ 8, 9
3., 4. अष्टछाप और नन्ददास—डा. कृष्णदेव झारी के आधार पर
5. अष्टछापी पदावली—सोमनाथ गुप्त, पृष्ठ 94
6. हिन्दी और तेलुगु वैष्णव भक्ति साहित्य—डा. के. रामनाथन के आधार पर
7. वही—पृष्ठ 182

माया-मोह रूपी मूसल से जीव कूटे जा रहे हैं। माया का जाल जीव के सामने फैला रहता है। मधुमक्खियाँ मधु को बहुत कष्ट झेल कर संग्रह करती हैं। चीटियाँ भी ढो-ढोकर धान का संग्रह करती हैं। जब मनुष्येतर प्राणियों की ही इस प्रकार की स्थिति है तो माया और मोह के प्रबल शिकार होने वाले मनुष्यों के सम्बन्ध में कहने की क्या आवश्यकता ? यह मन भी ऐसा चंचल है कि श्री वेंकटेश्वर का भजन नहीं करता, किन्तु माया की ओर झट से आकर्षित हो जाता है। एक अन्य स्थान पर अन्नमाचार्य जी का कहना है—जिस प्रकार माँ की गोद में स्थित बच्चा अपनी माँ के स्तन का दूध पीता अपने पिता की ओर आकर्षित नहीं होता, उसी प्रकार माया के आकर्षण में लिपटा हुआ जीव ब्रह्म की और उन्मुख नहीं होता।[1]

पेदतिरुमलाचार्य भी कहते हैं—"जब मैं भगवान का ध्यान करना चाहता हूँ तो मन में विभिन्न प्रकार के विघ्न एकाग्र नहीं करने देते।[2] इस माया से बचने का एक ही उपाय है—भगवान की दया की प्राप्ति। इसीलिए ये कवि प्रार्थना करते हैं—जब "प्रभू जब आपकी माया हमें घेर लेती है तो हमें आपके दास समझ कर छुड़ा लेना।[3] भगवान की दया ही इन सभी माया सम्बन्धी रोगों के लिए दिव्य औषधि है। वल्लभाचार्य जी ने भी अपने भक्ति मार्ग को पुष्टि मार्ग रखा। इसका अर्थ है परमात्मा का अनुग्रह अथवा दया के बिना भक्त तर नहीं सकता।

4.3.3.4. जगत् और संसार :

वल्लभाचार्य जी के अनुसार जगत् और संसार अलग-अलग हैं। जगत् सत्य है क्योंकि इसका विकास का सम्बन्ध विद्या माया से माना गया है। संसार अविद्या माया से ग्रस्त जीव की कल्पित और ममतामयी सृष्टि होने के कारण मिथ्या है।

अष्टछापी कवियों के जगत् सम्बन्धी विचार शुद्धाद्वैत दर्शन के अनुसार ही थे। इनमें से विशेष कर सूरदास और नन्ददास ने जगत् और संसार के सम्बन्ध में अपने विचार स्पष्ट रूप से प्रकट किये हैं। "सकल तत्व ब्रह्माण्ड देव पुनि माया सब विधि काल। प्रकृति पुरुष श्रीपति नारायण सब अंशगुपाल।"[4]

---

1. डा. के. रामनाथन के आधार पर।
2. वैराग्य वचन मालिका गीतालु, पृष्ठ 44
3. वही—पद, पृष्ठ 26
4. सूरसागर, पृष्ठ 38

"मिथ्या यह संसार और मिथ्या यह माया,
मिथ्या है यह देह कहौ क्यों हरिबिसराया ।"[1]

नन्ददास के अनुसार जगत् का आधार ब्रह्म है , ब्रह्म की सत्ता ही जगत् की सत्ता है ।

"ब्रह्म निरीह ज्योति अविकारा,
सत्ता मात्रा जगत् आधारा ।

भाषा दशम स्कन्ध में यमलार्जुन के प्रति नारद वचन द्वारा नन्ददास ने संसार सम्बन्धी विचारों को स्पष्ट किया है । अष्टछापी कवियों ने ससार को माया, झूठा और दुखदाई प्रमाणित करते हुए उसे छोड़ने का उपदेश दिया है । जैसे परमानन्ददास जी कहते हैं—

"परमानन्द बसत हैं घर में जैसे रहत बटाऊँ" ।

गोविन्ददास के अनुसार यह एक "विषम विष सागर" है ।[2]

विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के अनुसार जगत् भी जीव की तरह नित्य होते हुए भी जड़ है । माया और त्रिगुणात्मिका होने के कारण जीवों को अपने मोह में डाल लेता है । अन्नमाचार्य के शब्दों में यह संसार कितना ही दुखदायी है । इसमें जीना समुद्र में तैरना जैसा है । इसमें रहना काल के मुँह में रहना है । यह अन्त तक न छोड़ने वाला रोग है । इसमें रहना युद्ध क्षेत्र में रहना ही है । यह संसार एक कठोर बन्धन है । सीधा मार्ग है ही नहीं । चन्द्रमा की तरह यह संसार भी कभी वृद्धि पाता है तो कभी क्षय पाता है । क्या कहें, यह शीत में उष्ण जैसा है । बाहर चमकने वाले सोने का मुलम्मा जैसा है ।[3] "इसे पार करने के लिए उन्होंने यह उपाय बताया है कि गुरु कृपा से रहस्य जानकर वेंकटेश्वर की महिमा का ध्यान करना ही है । "जगमुलु नी माय जकमुलु"[4] अर्थात् यह जगत् माया जन्य है ।

4.3.3.5. **मोक्ष** : मोक्ष की भावना सभी आस्तिक संप्रदायों में पायी जाती है । कभी न कभी मनुष्य ऐसी स्थिति की अवश्य इच्छा करने लगता है जिसे प्राप्त करके राग-द्वेष, स्पर्श, संघर्ष तथा उलझन-झंझटों से उसे छुटकारा

---

1. सूरसागर पद, 1110
2. विस्तार के लिए अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय—डा. दीनदयाल गुप्त देखिए,
3. अन्नमाचार्य और सूरदास—डा. एम. संगमेशम्, 118
4. अन्नमाचार्य—संकीर्तन, 219

मिल सके। वेद ने इसे परमपद, अमृत तथा तृतीय धाम कहा है। यह स्थिति गीता के शब्दों में परागति तथा परम धाम है।[1]

शुद्धाद्वैत सिद्धान्त के अनुसार पुष्टिमार्गीय भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ मुक्ति है। अष्टछापी कवियों ने भगवद् दर्शन की अभिलाषा व्यक्त की है जिसे वे मुक्ति अथवा मोक्ष मानते हैं।

सूरदास :

जो सुख होत गुपालहिं गाये।
हो सुख नहिं जप तप के कीने कोटिक तीरथ न्हाए।
... ...
सूरदास हरि को सुमिरन् करि बहुरि न भव जल आवै।[2]

सूरदास जी ने सालोक्य और सामीप्य दोनों प्रकार की मुक्ति का वर्णन किया है।

परमानन्ददास :

हौं नंदलाल बिना न रहौं।
मनसा वाचा और कर्मना हित की तोसौं कहौं।[3]
"तजि पदकमल मुक्ति जे चाहे ताके दिवस अंध्यारो।"[4]

नन्ददास स्पष्ट कहते हैं कृष्ण के सामीप्य का आनन्द करोड़ों सुखों से भी अधिक है।[5] छीत स्वामी भी भगवान से यही प्रार्थना करते हैं कि जन्म जन्मांतर का ब्रजवास और शरद् रात्रि के रास-रस का आनन्द मिले।

विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के अनुसार मुक्ति अथवा मोक्ष का अर्थ वैकुण्ठ प्राप्ति है, जो श्री नारायण का नित्य निवास है। वहाँ वे श्री, भू, नीला आदि रमणियों के साथ गरुड़, अनन्त, नारद आदि परिजनों के साथ सेवित और कीर्तित होते हैं। जीव इस लोक के पश्चात् उस लोक में साधर्म्य सुख पाता है। ताल्लपाक के कवियों की दृष्टि में तिरुमल-तिरुपति पहाड़ ही साक्षात् वैकुण्ठ है क्योंकि अन्नमाचार्य का कहना है कि यह तिरुमल पहाड़ हरि रूप वैकुण्ठ है। यहाँ के ये पेड़ कल्पवृक्ष हैं। पशु पक्षी नित्य मुक्त हैं। यही प्रत्यक्ष

---

1. हिन्दी और मलयालम में कृष्ण भक्ति काव्य डा. के. भास्करन नायर, 92
2. सूरसागर—पद, 349
3. परमानंद सागर-पद, 872
4. डा. दीनदयाल गुप्त के परमानन्ददास पद संग्रह से-पद, 285
5. अष्टछाप और नन्ददास—डा. कृष्णदेव झारी, पृष्ठ 86—87

वैकुण्ठ है ।[1] उन्होंने यह भी कहा है तुम्हारे बिना स्वर्ग, सभी प्रकार की विद्यायें, अमृत, अग्रजन्म आदि त्याज्य ही हैं। तुम्हारी भक्ति ही हमारे लिए जीवन मुक्ति है ।[2]

4.3.3.6. तुलना :

अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवि क्रमशः शुद्धाद्वैत और विशिष्टाद्वैत मतों में दीक्षित थे। सूक्ष्म भेदों के अलावा इनमें तत्वतः अन्तर अधिक नहीं है। इसका कारण यह है कि दोनों ही सम्प्रदायों को शंकर के मायावाद में संशोधन और परिवर्तन कर अपनाया गया। इसमें ब्रह्म, माया, जीव, जगत्, संसार और मोक्ष आदि मान्यताओं के सम्बन्ध में एक ही प्रकार के विचार मिलते हैं। जैसे ब्रह्म को सगुण और साकार मानते हैं। निर्गुण ब्रह्म का खंडन करते हुए-उसे सगुण से अभेद माना है। ब्रह्म माया से नितांत अलिप्त मानना "शुद्धाद्वैत" है तो चित् एवं अचित् से विशिष्ट ब्रह्म को मानना "विशिष्टाद्वैत" है। इस सूक्ष्म भेद के आलावा आलोच्य कवियों के ब्रह्म सम्बन्धी विचार एक ही हैं। माया को दोनों ही वर्ग के कवियों ने ब्रह्म की शक्ति माना है। अविद्या माया का विस्तृत विवरण दिया है। जहाँ अष्टछापी कवि विद्या माया का निरुपण स्पष्ट और विस्तृत रूप से करते हैं, वहाँ ताल्लपाक के कवि विवेचन न करते हुए भी भगवान को माया का कर्ता मानते हैं। वे जगत् का अविर्भाव और तिरोभाव ब्रह्म में ही मानते हैं। शुद्धाद्वैत में जगत् और संसार को अलग मानते हैं। जगत् का सम्बन्ध विद्या माया से और संसार का सम्बन्ध अविद्या माया से जोड़ा गया है। विशिष्टाद्वैत में यह भेद नहीं है। जीव को दोनों ही सम्प्रदायों में भगवान् का अंश माना गया है। विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त में भोक्ता और भोग्य तत्व को अधिक महत्व देने के कारण ताल्लपाक के कवियों की रचनाओं में ऐसे सैकड़ों पद प्राप्त होते हैं। दोनों ही सम्प्रदायों में मोक्ष अथवा मुक्ति की मान्यता है। आलोच्य कवियों ने क्रमशः ब्रज और तिरुपति क्षेत्रों को ही वैकुण्ठ माना है।

4.4. भक्ति के मूल उपादान :

4.4.1. प्रस्तावना : श्रद्धा, प्रेम और विश्वास के भावों से युक्त भगवत्-रति ही का नाम भक्ति है। मानव हृदय में धर्म और भक्ति की भावना प्राचीन काल से चली आ रही है। अध्ययन से पता चलता है कि मनुष्य की रागात्मक

1. आध्यात्म्य संकीर्तन-वा (1) संकीर्तन, 120
2. आध्यात्म संकीर्तन-वा (2) संकीर्तन, 238

वृत्ति से सम्बद्ध होने के कारण भक्ति के प्रति मानव का हृदय अधिक आकर्षित होता गया।

भक्ति अपनी सुलभता और आकर्षण के ही कारण अनुकूल परिस्थितियों को पाकर अंकुरित होकर मध्य युग तक आते-आते सारे देश में विस्तरित हो गयी। उस युग के सभी भक्त कवियों ने उसी भक्ति की महानता और विशेषता का तरह-तरह से गान किया। इसी सन्दर्भ में अपने आलोच्य कवियों की भी भक्ति सम्बन्धी भावनायें अवश्य देखने योग्य हैं।

4.4.1.1 भक्ति की महिमा, सुलभता और याचना :

अष्टछाप और ताल्लपाक के कवियों ने भक्ति की महिमा का गान किया है। साथ ही, वे केवल भक्ति की ही याचना परमात्मा से करते हैं। इतना ही नहीं उन्होंने भक्ति को ही एक मात्र सुलभ उपाय घोषित किया है, जिसके द्वारा भगवान् को प्राप्त कर सकते हैं। सूरदास जी के अनुसार, "रेमन। समुझि सोच-विचारि। भक्ति बिनु भगवंत दुर्लभ"।[1] इतना ही नहीं भगवान् तो भक्तों में हाथ बिक जाने की बात इस प्रकार से वे अभिव्यक्त करते हैं—'जुग जुग बिरद यह चलि आयो।"[2] भक्ति के बिना सब निष्प्रयोजन हैं। अतः सूरदास जी कहते हैं—

स्याम भजन बिनु कौन बड़ाई ?
बल, विद्या, धन, धाम, रूप, गुन और सकल मिथ्या सौं जाई"।[3]

उन्होंने यहाँ तक कहा है कि भक्ति के बिना प्राणियों को नरक में जाना पड़ता है। भक्तिहीनों को सूरदास जी ने सूकर कूकर जैसे विषयी ठहराते हैं। नंददास ने भी भक्ति की महिमा और श्रेष्ठता इस प्रकार से कही है—

"अब विधि कहत ग्यान है जोई,
भक्ति बिना सोए सिद्ध न होई"।[4]

परमानंददास जी स्पष्ट कहते हैं—

"जो ग्यानी ते विचारो जे जोगीते जोग,
कर्मठ होंय तै कर्म विचारो जे भोगी तै भोग"।[5]

इन भक्त कवियों ने ज्ञान, योग और शास्त्र आदि मार्गों की कठिनता को बताते हुए भक्ति की सुभलता और श्रेष्ठता का निरुपण करते हैं—

---

1. सूरसागर—पद—306
2. वही—पद—11
3. सूरसागर—पद, 24
4. भाषा दशम स्कंध, पृष्ठ 233
5. परमानंद सागर—पद, 905

हरि के भजन में सब बात ।
ज्ञान कर्म सो कठिन करि कत देत हो दुख गात" ।[1]

इसी प्रकार के भाव अन्य कवियों ने भी व्यक्त किये हैं ।

अष्टछापी कवियों ने भगवान् से ऐहिक भोग, सुख या संपत्ति की याचना नहीं की । की है तो केवल भक्ति की और हरि भक्तों के दासों के दास बनने की याचना । परमानन्द दासजी के शब्दों में—

"तुम भृत भृत्य परिचारक दास को दास कहाऊँ ।"[2]

तथा

"मानुष जन्म और हरि सेवा ब्रजवासियों
दीजे मोहि सुलभ ।......"[3]

साथ ही नित्य जमुना में स्नान, भागवत श्रवण और कृष्ण गुण गान मात्र ही उनकी कामना है । अपने आपको वे "वैष्णवजन" के "दास" मात्र कहलाना चाहते हैं ।

अन्नमाचार्य ने भी हरि भक्ति के बिना बड़े से बड़े पुण्यों को भी निरर्थक माना है । भक्ति को ही सर्वोच्च साधना माना है । जप, तप, यज्ञ आदि से भक्ति की महानता घोषित करते हुए कहते हैं—'शुक्र महर्षि भक्ति के कारण ही सर्व समर्थ हैं । तपस्या कर वशिष्ठ बन सकते हैं, किन्तु वह आकाश में एक नक्षत्र मात्र ही तो हैं । यज्ञ के कारण इन्द्र बनने पर भी वह एक दिक्पाल ही तो है । दान देकर कर्ण जैसे यश कमाने पर भी वह एक राजा मात्र ही है ।"[4] भक्ति के द्वारा मानसिक और शारीरिक सभी पाप नष्ट होते हैं । जीवन की यही अमूल्य सम्पत्ति हैं । उनके पुत्र पेद तिरुमलाचार्य ने कहा है—"श्री मंत्र का ध्यान करते हुए, तुलसी मालाओं का धारण कर, तिलक लगाकर तुम्हारे नाम मंत्र का यज्ञ करने वाले परम भागवतों के सौभाग्य का क्या वर्णन करूँ ?"[5] चिन्नन्ना ने भी अपने "परम योगि विलासम्" में स्थान-स्थान पर भक्ति के श्रेष्ठता का गान किया है । अन्नमाचार्य ने हरिभक्ति को भवसागर पार करने के लिए जहाज से तुलना की है ।[6] एक अन्य स्थान पर

---

1. परमानंद सागर—पद, 865
2. अष्टछाप और परमानददास—कृष्णदेव झारी के आधार पर
3. वही—
4. अन्नमाचार्य संकीर्तन—(वा–2) पद–46
5. वैराग्य वचन मालिका गीतालु—संख्या 9
6. अन्नमाचार्य संकीर्तन–56 (2 संपुटि)

वे कहते हैं—"मैं तुम्हारा सायुज्य या सामीप्य की याचना नहीं करता हूँ। केवल तुम्हारे दासों का सहवास चाहता हूँ। इतना ही नहीं भगवान् के दास के दास के दास बनना पसंद करते हैं—'कंदुव श्री वेंकटेश कडु नी बंटु बंटुकु संदडि बंटु वुटे चालदा नाकु।"[1]

एक स्थान पर कहते हैं—"हरिदासों के सौभाग्य का मैं क्या वर्णन करूँ ? क्योंकि तुम्हारी भक्ति रूपी कामधेनु, चिन्तामणि, अमृत और कल्पवृक्ष, उनके पास हैं। उन्हें इसलिए चारों ओर सुख ही सुख है।[2]

ताल्लपाक के कवियों के अनुसार, हरि के दास सभी लोकों में पावन हैं, उनसे अधिक कोई नहीं। "इतना ही नहीं उनके साथ रहने से कीटक जैसे छोटे छोटे प्राणी भी मुक्ति पा लेंगे।"[3]

वैष्णवभक्ति में दास दास दासोहम् कह कर भगवान के भक्तों के भक्तों की पाद रेणु को भी श्रेष्ठ घोषित किया है।[4] ये भाव आलवार भक्तों की रचनाओं से प्रभावित हुए हैं। अपने असंख्य रचनाओं में ताल्लपाक के कवियों ने भक्ति के बारे में सारे संसार के लिए घोषणा करते हुए थके नहीं।

4.4.1 2. भक्ति की श्रेष्ठता :

अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों ने ज्ञान और कर्म से भक्ति को ही श्रेष्ठ माना है। इस संदर्भ में हमें तुलसीदास जीं का स्मरण करना चाहिए जिन्होंने ज्ञान और भक्ति की विस्तृत रूप से तुलना किया है।[5] "भगति हि ज्ञान हि नहिं कछु भेजा" कह कर भी उन्होंने भक्ति की श्रेष्ठता की प्रतिष्ठा की। इसी प्रकार के अष्टछाप के कवियों ने भी अपनी रचनाओं में विशेष कर भ्रमरगीत संवाद में भक्ति की श्रेष्ठता को गोपियों के द्वारा कहलाया। भ्रमर गीत दार्शनिक दृष्टि से भक्ति की विजय और ज्ञान योग की पराजय का काव्य है।"[6] सूर ने स्वयं श्रीकृष्ण के मुख से कहलाया है—"योग, कर्म और ज्ञान के मार्ग से लोग मुझे नहीं पा सकते, और जो गद्गद कण्ठ ने मगन हो कर मेरा गान करते हैं, उनके हृदय में मेरा निवास है।"[7]

---

1. अन्नमाचार्य संकीर्तन वाल्यूम—8 संकीर्तन 23
2. वही वाल्यूम—2 संकीर्तन 309
3. दृष्टव्य- परमयोगि बिलासमु, पृष्ठ 67, 157
4. वही—चिन्नन्ना, पृष्ठ 72
5. रामचरित मानस—उत्तर काण्ड
6. हिन्दी और तेलुगु वैष्णव भक्ति साहित्य—डा. के. रामनाथन्, पृष्ठ 128
7. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय—डा. दीनदयाल गुप्त, पृष्ठ 534

इन कवियों ने भक्ति की महत्ता का वर्णन भी किया। उन्होंने कहा है कि सांसारिक दुःख से निवृत्ति का सरल मार्ग ईश्वर प्रेम और भक्ति ही है। इसके समक्ष ज्ञान और योग हीन ठहरते हैं। सूरदास के अनुसार हैं—

"भक्ति बिनु भगवन्त दुर्लभ कहत निगम पुकारि।"

परमानन्द जी लिखते हैं—चाहे लोग ज्ञान, योग या कर्म मार्ग के अनुसार भगवान की उपासना करें, पर मेरे लिए भगवान की भक्ति ही सुखदायक है।

ताल्लपाक के कवियों ने भी स्थान-स्थान पर ज्ञान-कर्म और योग के भक्ति को महान् घोषित किया है। पेदतिरुमलाचार्य के अनुसार—"ज्ञान के लिए विमल मन, विमल मन के लिए इन्द्रिय निग्रह, इन्द्रिय निग्रह के लिए तप, तप के लिए वैराग्य, वैराग्य के लिए अनासक्ति की आवश्यकता है। इन जटिल मार्ग में सफलता मिलना कठिन है। भक्ति से ही भगवान की कृपा होगी।"[1] वे वेद विज्ञान को कठिन और समुद्र के समान दुस्तर मानते हैं। "शास्त्र ज्ञान शत्रु के समान हैं क्योंकि शास्त्रार्थी परस्पर संघर्ष करते हैं।"[2] गजराज ने करुण पुकार से, गुह ने अपने निश्चल प्रेम से, वाल्मीकि ने वर्णाश्रम धर्म से पृथक हो कर और नारद ने अपने स्वप्नों से भगवान की कृपा को प्राप्त किया और महान् बन गये। अतः भक्ति ही सत्य और नित्य है।[3]

4.4.1.3. भक्ति की उदारता : भक्ति सुलभ है। अतः सभी लोग इसे अपना सकते हैं। इसलिए भक्ति के क्षेत्र में जात-पांत का या ऊंच-नीच का भेदभाव किसी ने नहीं माना। अष्टछाप के कवियों ने सामाजिक भेदभाव न मानते हुए मानवतावादी दृष्टिकोण को अपनाया। स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है—"स्त्रियो वैश्यास्थता शूद्रास्तेपियान्ति परांगतिम्"[4] अर्थात् जन्म से चाहे कुछ भी हो किन्तु मेरी शरण में आने पर सभी लोग समान रूप से मुक्ति पाने के लिए अधिकारी होते हैं। सूरदास जी स्पष्ट कहते हैं—

राम भक्त वत्सल निज बनों।
जाति, गौत, कुल, नाम, गनत नहिं, रंक होइ कै रानों।"[5]

इतना ही नहीं जिन पर भगवान की कृपा होती है उन्हें ही कुलीन या सुन्दर समझा जाता है। इसका उदाहरण विभीषण, कुब्जा, अजामिल, नारद और सुदामा का देते हैं जिन्हें भगवान ने उद्धार किया था।

---

1. वैराग्य वचन मालिका गीतालु—पद संख्या 37
2. वही—पद 7
3. अन्नमाचार्य संकीर्तन—वाल्यूम, 2 पद, 1
4. भगवद् गीता
5. सूरसागर—प्रथम/पद 11

"जापर दीनानाथ ढरै ।

सोइ कुलीन, बड़ी सुन्दर सोइ, जिहि पर कृपा करें ।"[1]

इसी प्रकार ताल्लपाक के कवियों ने स्वयं ब्राह्मण कुल में जन्म लिया । वह युग वर्णाश्रम धर्म के उद्धार का युग था । फिर भी उन्होंने एक ही वाणी में घोषित किया" परब्रह्म एक ही है । इसमें हीन और अधिक कुछ नहीं । सभी की आत्मा श्रीहरि ही हैं । राजा और भट्ट—दोनों की निद्रा एक ही है । ब्राह्मण और चांडाल के लिए एक ही रुद्रभूमि है । दिन-रात रईस और गरीब दोनों के लिए एक ही प्रकार से होते हैं । देवता हों या पशु-पक्षी "काम" की भावना दोनों में एक ही होती है । इसी प्रकार से सभी की भूख भी एक ही है । हाथी और श्वान दोनों पर एक ही प्रकार से धूप का प्रसार होता है । पुण्यात्मा और पापात्मा सभी को पार कराने के लिए श्री वेंकटेश्वर का नाम एक ही है ।"[2]

इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर वे कहते हैं कि जाति भेद तो शरीर का गुण है । आत्मा तो सदा परिशुद्ध रहती है । अजामिल आदि की क्या जाति है ? ये सभी जात-पांत के भेदभाव शरीर के साथ नष्ट हो जाती हैं । केवल भगवद् ज्ञान से जो दास्य मिलता है वही एकैक उत्तम जाति है ।"[3]

4.4.1.4. भक्ति और वैराग्य :

अष्टछाप एवं ताल्लपाक के कवियों ने यही माना है कि भक्त इस संसार में रह कर भी इससे अलग रह सकता है—जैसे जल व कमल का पत्ता । परमानन्ददास जी कहते हैं—"छाँड़ि अहार बिहार सुख यह और न चाहत काऊ । परमानन्द बसत है घर में जैसे रहत बटाऊ ।"[4] सिद्धान्त पंचाध्यायी में गोपियों के मुख से नन्ददास जी ने कहलवाया है—स्त्री, पुत्र, पति, गृह आदि में कोई सुख नहीं है । इनके सेवन से तो रोग बढ़ता है जो दिन-दिन महा दुःख देने वाला है । अतः हम सब कुछ छोड़ कर आपकी शरण में आयी हैं ।"[5] इसी प्रकार के सांसारिक विषयों के सम्बन्ध में अनासक्ति ताल्लपाक के कवियों में भी है वे कहते हैं कि संसार दुखमय है, सम्पत्ति चिन्ताओं का कारण है । वृद्ध पुरुषों का यौवनवती स्त्रियाँ तिरस्कार करती हैं, किन्तु भगवान अपने भक्त का साथ नहीं छोड़ता । सांसारिक भोगों की क्षणिकता का वर्णन इस

---

1. सूरसागर—प्रथम स्कंध, पृष्ठ 6, 7
2. अन्नमाचार्य संकीर्तन—(अध्यात्म,) संख्या 385 संपुटि—2,
3. वही—संकीर्तन 383
4. परमानंद सागर—पद, 468
5. नन्ददास—रसिक, विचारक, कलाकार—रूप नारायण पृष्ठ 107 से उद्धृत,

प्रकार से किया है—"भुजियिंचि नप्पुडै पोवु नाहारमुल् पूसिन गंधंबु पोल्लु रालु।···विमल रवि कोटि संकाश वेंकटेश।"[1]

अर्थात् भोजन करने के पश्चात् आहार लुप्त हो जाता है तो चन्दन लगाने के कुछ ही समय पश्चात् शुष्क हो जाता है। पहनने से वस्त्र मलिन हो जाते हैं केशों में फूल मुरझा जाते हैं, सुन्दरी स्त्रियों से मिलने के पश्चात् काम वांछा मिट जाती है। अर्थात् इन सभी के द्वारा इस संसार में शाश्वत सुख पाना तो केवल भ्रम है। शाश्वत सुख तो केवल भगवान के भजन से प्राप्त होता है। ताल्लपाक के कवियों ने स्थान-स्थान पर पिता, पत्नी, पुत्र आदि को बन्धन माना है।

4.4.1.5. गुरु महिमा :

ज्ञान, विद्या या भक्ति किसी भी क्षेत्र में साधक या भक्त गुरु कृपा के बिना अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच सकता। गुरु उन सीढ़ियों के समान हैं, जिन पर चढ़ कर शिष्य अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर सकता है। उपनिषद ने गुरु भक्ति को परमात्मा की भक्ति के समान बतलाया है। इसीलिए आध्यात्मिक साधन के सभी मार्गों में गुरु की आवश्यकता और उसकी महिमा का गान हुआ है। "चाहे सगुण मार्ग के भक्त हों, चाहे निर्गुण मार्ग के सन्त, हठयोगी साधक से अथवा सूफी कवि, सभी ने मुक्त कंठ से गुरु की आवाश्यकता मानी है। अज्ञान तिमिर में गुरु ज्ञान दीपक है। गुरु की सहायता के बिना मन की अपवित्रता और अज्ञानता दूर नही होती।···गुरु भगवान और भक्त के बीच एक अनिवार्य कड़ी है जिसके बिना दोनों का सम्बन्ध स्थापित हो ही नहीं सकता।"[2] अष्टछाप के कवियों ने स्थान स्थान पर गुरु महिमा का बखान किया है। दक्षिण में बहुत पहले ही आलवारों को भक्तों के अवतार के रूप में देखना आरम्भ कर दिया था। ज्ञान या सप्रदाय के प्रवर्तक आचार्यों को विष्णु के अवतार के रूप में माना जाता रहा है। इसी के अनुरूप श्री वल्लभाचार्य जी को और श्री विट्ठलनाथ जी को कृष्ण का अवतार मान कर स्तुतिपरक पदों की रचना की गयी।[3]

सूरदास जी के अनुसार "हरिगुरु एक रूप नृप जानि" में कुछ संदेह

1. नीति शतकमु—पेदतिरुमलाचार्य—पद्य 54
2. सूरदार और वामन पंडित—डा. सुशीला व्यापारी, पृष्ठ 402
3. कृष्ण भक्ति साहित्य : वस्तु, स्रोत और संरचना
—डा. चन्द्रभान रावत के आधार पर

नहीं। अष्टछापी कवियों ने गुरु और गोविन्द में कुछ अन्तर न माना। वे कहते हैं—"प्रकृति सकल सृष्टि आधार श्रीमद्‌वल्लभ राजकुमार।"[1] उनकी इतनी ही कामना है "नन्ददास यह मांगत हौं श्रीवल्लभ कुल को दास कहाऊँ।"[2] छीत स्वामी ने भी विट्ठलनाथ अवतार के प्रति विशेष श्रद्धा प्रकट की। भवसागर को पार करने के लिए गुरु भगवान नाम रूपी नौका शिष्य को प्रदान करते हैं।[3] कबीरदास जी का उल्लेख इस संदर्भ में अवश्य करना चाहिए जिन्होंने गुरु को गोविन्द से भी महान् माना है।

ताल्लपाक के कवियों के काव्य में कई स्थानों पर गुरु की महिमा घोषित हुई है। नारद महर्षि के भक्ति सूत्रों के अनुसार "तस्मिन तज्जनै भेद भावात्" वैष्णव भक्ति में भगवान के पश्चात् गुरु का ही स्थान है। अन्नमाचार्य अपने गुरु घनविष्णु का ध्यान अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति से करते हैं[4] और वे अपने आपको धन्य मानते हैं क्योंकि इस कलियुग में गुरु घनविष्णु के ही कारण हमें मंत्रोपदेश मिला और वैष्णव बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वे ही हमारे माता, पिता और भगवान हैं। इतना ही नहीं कवि लोगों को यह सिखाते हैं—हरि के अन्तरंग में रहने का उल्लेख है। किन्तु वैष्णव गुरु तो सर्वव्यापी हैं। उनका स्मरण करो और परमात्मा का अनुग्रह पाओ। चिनतिरुमलाचार्य अपने पितामह अन्नमाचार्य का स्मरण गुरु के रूप में कहते हैं—"ताल्लपाक अन्नमाचार्य दैवमनु नीवु माकु"[5] क्योंकि अन्नमाचार्य ने स्वयं अपने पौत्र चिनतिरुमलाचार्य को मंत्रोपदेश दिया था। पेदतिरुमलाचार्य भी अपने पिता को गुरु के स्थान में बिठा कर कहते हैं—"मैं तो अज्ञानी हूँ। इसीलिए हे अन्नमाचार्य ! मैंने आपकी शरण ली है। हम जैसे पातकों को तुम्हीं क्षमा करो।"[6] अन्नमाचार्य जी ने एक स्थान पर लिखा है—

"आसलनेटि पेद्द् अंगटि गालालु मिंगि।"[7]

अर्थात् मछली की तरह मैं सांसारिक आशा रूपी काँटे में फंस गया था। कान्ता प्रेम एक घनघोर वन के समान है जिसमें फँस कर मैं राह भटक गया हूँ। मेरी इस विह्वल दशा में गुरु ने ही मुझे परमात्मा वेंकटेश्वर का ज्ञान

1., 2. अष्टछापी पदावली—सोमनाथ गुप्त—नन्ददास का पद, पृष्ठ 176
3. विस्तार के लिए— अष्टछाप पदावली में गुरु सम्बन्धी पद देखिए।
4. अन्नमाचार्य संकीर्तन—वाल्यूम 2—पद संख्या 372
5. संकीर्तन संख्या—39 (अध्यात्म)
6. संकीर्तन संख्या—127
7. अन्नमाचार्य संकीर्तन—वाल्यूम, 2 पद 64

कराया और मैं सत्य-पथ पर वापस आ सका। पेदतिरुललाचार्य भी मोक्ष प्राप्ति में गुरु की आवश्यकता स्पष्ट करते हैं ।

"मोक्ष मार्गमुनु चूपु मुख्युंडे याचार्युडात्मकु
निष्ट मोनतडु सवुडु।"[1]

अन्नमाचार्य जी का कहना है कि जिस प्रकार प्रियतम के हाथों मंगल सूत्र से अलंकृत हुए बिना एक पतिव्रता के लक्षणों का मूल्य नहीं उसी प्रकार भक्त अनेक शुभ लक्षणों से युक्त होते हुए भी गुरु की सहायता के बिना भगवान को अपने वश में नहीं कर सकता। इसी प्रकार जब तक यज्ञोपवीत का धारण नहीं होता, तब तक ब्राह्मण वंश में जन्म लेने पर भी वह ब्राह्मण नहीं कहलाता।"[2]

श्रीकृष्णदास जी के अनुसार गुरु वल्लभ जी कोटि-कोटि सूर्यों से भी अधिक ज्योतिर्मय हैं।[3] कुम्भनदास जी भी गुरु को परमात्मा का अवतार ही मानते हैं।[4] पेदतिरुमलाचार्य ने राजा, प्रजा, मंत्री, पुरोहित आदि के लक्षणों के साथ-साथ सच्चे गुरु के लक्षणों का वर्णन भी किया है। इनके अनुसार शास्त्र परायणता, वेद विज्ञान, दया, आचारवान ज्ञानी, कुशलोपदेशक होना, शांतचित्त तथा तपोनिष्ठता–[5] सच्चे गुरु के लक्षण हैं।

4.4 1.6. **दीनता :** अष्टछाप एवं ताल्लपाक के कवियों ने परमात्मा के सामने अपने हीनत्व एवं छोटेपन को सहर्ष स्वीकार किया है। अत्यन्त दीनता से प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभु। मेरा उद्धार करो। "अपने को छोटा, अल्पज्ञ और अकिंचन मान कर भगवान को सबसे बडा, महान् और सर्वज्ञ समझ कर भक्त को मनसा, वाचा और कर्मणा अपने इष्टदेव के चरणों में झुकना चाहिए। ऐसा करने में जो दीनता का अनुभव होता है उसी से उसका अहंकार दूर होता है।"[6] अष्टछापी कवि स्वयं स्वीकार करते हैं कि मैं पतितों में भी पतित हूँ। हरि तो पतित पावन हैं, समदर्शी हैं अतः वे प्रार्थना करते हैं—"प्रभु मेरे अवगुनचित न धरौ समदर्शी प्रभु नाम तिहारो" और "प्रभु मैं पतितन

1. नीति शतकमु—पद्य 6
2. अन्नमाचार्य आध्यात्म संकीर्तन—वाल्यूम –8–95
3., 4. मध्ययुगीन हिन्दी और तेलुगु वैष्णव भक्ति साहित्य
—डा. के. रामयाथन के आधार पर।
5. नीति शतकमु—पद्य 92
6. अन्नमाचार्य और सूरदास डा. एम. संगमेशम्, पृष्ठ 139

का राजा।"[1] "प्रभु मेरे मो सौं पतित उधारौ। कामी, कृपिन, कुटिल, अपराधी, अधनि भरयौ बहु भारौ।"[2] ताल्लपाक के कवि भी स्थान-स्थान पर अपनी दीनता प्रकट करते हुए, मन को यह समझाते हैं कि परमात्मा की कृपा के बिना तुम्हारा उद्धार नहीं होगा। अन्नमाचार्य अपनी भूल मानते हैं और अपने इष्टदेव के सामने यही विनती लेकर पहुँचते हैं, 'हे वेंकटेश्वर मैं अतीव दुष्ट हूँ। मुझ में विवेक कहाँ ? मेरी भूलें करोड़ों की संख्या में हैं, जो ज्ञानकृत भी हैं और अज्ञानकृत भी हैं। अब मुझे आश्वासन देकर, मेरा भय दूर करके उद्धार करने का भार अब तुम पर है"[3] इतना ही नहीं वे यह तर्क भी प्रस्तुत करते हैं—"आधिकुनि गाचुटेमरुदु नन्नु नधमुनि गाचुट यरुद गाक नीकु" अर्थात् मैं अधमाधम हूँ, भगवान्, मेरा उद्धार ही उद्धार है। जो पुण्यों से अधिक है, उसके उद्धार करने में क्या आश्चर्य है ? मेरे जैसा अधम का उद्धार ही सच्चा उद्धार है।"[4] एक और स्थान पर अन्नमाचार्य भगवान से यह निवेदन करते हैं कि "हे परमात्मा। तुम तो निर्हेतुक दया निधि हो। अतः मेरा उद्धार करो। तुम्हारी महिमाओं को सम्पूर्ण रूप में जानने के लिए ब्रह्मा आदि के लिए भी असम्भव है। फिर मैं तो एक पशु ही हूँ। हे वेंकटेश्वर तुम्हारी शरण ली हे मैंने उद्धार करो।"[5]

अन्नमाचार्य कहते हैं—"किसका कौन लगता है ? सभी के सहारे तुम्हीं तो हो क्योंकि तुम्हें अनाथ नाथ कहा गया है। इस संसार में सभी लोग जिन्हें हम बन्धु, मित्र या परिवार के मानते हैं, सबमें स्वार्थ भरा है। केवल तुम ही सदा हमारी रक्षा करने वाले हो।"[6]

4.4.1.7. **सत्संग की महिमा :** "भक्ति भाव के पोषण के लिए और प्रतिकूल भावों के शमन के लिए सत्संग आवश्यक है।"[7] इसीलिए सभी भक्त कवियों ने सत्संग की महिमा का गान किया है। तुलसीदास जी ने रामचरित मानस में अत्यन्त विस्तार से यह प्रसंग लिखा है। "सत्संग-भक्ति की उत्पत्ति

---

1. सूरसागर पृष्ठ 81
2. वही—पृष्ठ 16
3. अन्नमाचार्य और सूरदास डा. एम. संगमेशम, 145
4. उसी के आधार पर
5. अन्नमाचार्य आध्यात्म संकीर्तन—वाल्यूम—2, संख्या 106
6. वही—पद 306
7. हिन्दी और तेलुगु वैष्णव भक्ति साहित्य—डा. के. रामनाथन्, पृष्ठ 115

एव विकास के लिए अनुकूल वातावरण उपस्थित करने वाला अद्वितीय साधन माना गया और बहुधा सत्संग और साधु संग को उसके पर्यायरूप में ग्रहण किया गया है।"[1] अष्टछापी कवियों ने भी स्थान-स्थान पर सत्संग की महिमा पर जोर दिया है। सूर के शब्दों में—

"बड़ी वारणासि मुक्ति क्षेत्र है चलि तो को दिखराऊँ।
सूरदार साधुन की संगति बड़ो भाग्य सो पाऊँ।[2]

उनके अनुसार संतों का आगमन "तीरथ कोटि सनान करें फल" समान पवित्र है। परमानन्ददास जो कहते हैं—

दरशन मात्र ताप त्रय नासन, छुड़वावै गृह बंधन कूप"

नन्ददासजी के मत में सत्संग के कारण—"पारस परसै लोह तुरत कंचनह्वै जाइ।"[3] सत्संग की महानता के साथ साथ अष्टछापी कवियों ने दुर्जनों के सांगत्य को छोड़ने की सीख भी दी है। ताल्लपाक के कवियों ने भी सत्संग की महिमा का स्थान स्थान पर गान किया है। उनकी दृष्टि से ब्रह्मा आदि देवताओं से हरि भक्त श्रेष्ठ है। अन्नमाचार्य कहते हैं—"केवल हरिदासों के साथ एक ही गाँव में रहने में हम पार हो जाएँगे। श्री वेंकटेश्वर के पाद-पद्मों के दर्शन जिन्होंने किये हैं, उनके सेवक बनने मात्र से और उनकी चरण धूलि के प्रसार से हम तर जाएँगे।"[4] उन्होंने यहाँ तक कहा है कि भक्तों का जूठा खाना भी सौभाग्य है। इसीलिए अन्नमाचार्य परमात्मा से मोक्ष की नहीं वरन् सतसंग की याचना करते हैं। तीनों लोकों में उन्हें भक्तों के निकट रहना ही पसन्द है।[5] पेदतिरुमलाचार्य कहते हैं—"यदि मैं शास्त्राध्ययन करता हूँ तो संशय रूपी वन में उलझ जाता हूँ। भगवद्दर्शन की इच्छा से इधर-उधर देखूँ तो संसार की उलझनें दिखती हैं। अनेक चिन्ताओं के कारण मन को ध्यान में नहीं रख सकता।······इन सब झझटों से बचने का एक मात्र उपाय है भक्तों के मार्ग का अनुसरण करना। परमपद को पाने के लिए यही रामबाण है।"[6] इन्होंने भी हरिभक्ति के विमुख लोगों को त्यागने का उपदेश दिया है।

---

1. गुजराती और व्रजभाषा कृष्ण काव्य का तुलनामक अध्ययन
—डा. जगदीश गुप्त, पृष्ठ 218
2. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय—डा. दीनदयाल गुप्त से उद्धृत, पृष्ठ 684
3. वही—
4. अन्नमाचार्य अध्यात्म संकीर्तन—वाल्यूम—2 पद 352
5. वही—पद संख्या 21
6. वैराग्य वचन मालिका गीतालु—पद संख्या—32

4.4.1.8. **नाम महिमा :** डा. हजारीप्रसाद द्विवेदी जी के शब्दों में "मध्य युग के भक्तों में भगवान के नाम का माहात्म्य बहुत अधिक है। मध्ययुग की समस्त धर्म साधना को नाम की साधना कहा जा सकता है। चाहे सगुण मार्ग के भक्त हों चाहे निर्गुण मार्ग के नाम जप के बारे में किसी को संदेह नहीं।"[1] "नाम कीर्तन अथवा नाम स्मरण को भक्ति के अन्य साधनों में इसलिए सर्वाधिक महत्व दिया गया क्योंकि भक्त को भगवान का परिचय नाम के ही आधार पर प्राप्त हो पाता है। वही दोनों का मध्यस्थ है। नाम के अभाव में नामी का परिज्ञान संभव नहीं।"[2] भाषा चाहे जो भी हो किन्तु भारत के सभी भक्त कवियों ने मुक्त कण्ठ से नाम स्मरण और महिमा का बखान किया है। "भगवान का नाम भक्त को केवल सांसारिक प्रलोभनों से छुड़ा कर भगवान की ओर ही उन्मुख नहीं करता वरन् वह भगवान के प्रति भक्त का अनुराग बढ़ाने का प्रमुख और मूलभूत साधन भी होता है।"[3] विशेष कर इस कलियुग में इससे बढ़ कर द्वियौषधि और क्या ?

अष्टछाप के कवियों ने भगवान के नाम की अपार महिमा को गाया है। सूरदास जी ने तो उदाहरणों को प्रस्तुत कर यह निरुपण किया है— "को को न तर्‌यो हरिनाम लिए। सुवा पढ़ावत गनिका तारी, व्याध तरयो सरघात किएँ।"[4]

और

"शत यज्ञ नाहीं नाम सम परतीति करि करि करि।
गज गृद्ध गणिका व्याध के अध गये गरि गरि गरि।"[5]

इतना ही नहीं—

"बड़ी है राम नाम की ओट।······
बैठत सबै सभा हरि जू की, कौन बड़ौ को छोट ?
सूरदास पारस के परसैं मिटति लोह की खोट।"[6]

---

1. मध्ययुगीन धर्म साधना—पृष्ठ 13
2. गुजराती और ब्रजभाषा कृष्णकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन —डा. जगदीश गुप्त, पृष्ठ 218
3. सूरदास और वामन पंडित—डा. सुशीला व्यापारी, पृष्ठ 398
4. सूरसागर—पद, संख्या 90
5. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय—डा. दीनदयाल गुप्त, पृष्ठ 576
6. सूरसागर, पृष्ठ 19

परमानन्दन जी के अनुसार—

"प्रात समै उठि हरि नाम लीजै आनंद सों सुख में दिन जाई।"[1]

और नन्ददास ने स्पष्ट कहा है—

"कलि कलि युग जहाँ अबर बाहि केवल केसव नाम।"[2]

ताल्लपाक के कवियों ने भी नाम महिमा में रुचि ली है। अन्नमाचार्य कहते हैं—"आपका नामोच्चारण ही दुःख निवारणकारी और शुभ कर भी है। नाना प्रकार के वेद, पुराण और उपनिषदों का सार तो केवल आपके नाम में ही हैं। अतः अन्य मार्ग कुछ काम के नहीं हैं।"[3] "कोंडल वंटिवि घोर पापमुलु। खंडिचुनु हरि घन नाम जपमु"—अर्थात् पहाड़ जैसे घोर पापों को भी हरि नाम खण्डन करने में समर्थ है। आपत्ति के समय राम नाम लेने की सलाह देते हैं। उनके अनुसार नाम साधना के पश्चात् मोक्ष मार्ग ढूंढने की आवश्यकता ही नहीं। पेदतिरुमलाचार्य के अनुसार भी हरि को छोड़े बिना रटने से वैकुण्ठ के द्वार खुल जाते हैं।[4] उनका कहना है कि "हे कृष्ण! तुमने अर्जुन को गीता का महान् उपदेश दिया और अपना विराट स्वरूप अर्जुन के लिए प्रत्यक्ष किया। किन्तु मुझ जैसे अधम जीवों का उद्धार उस उपदेश से सम्भव नहीं है। वाल्मीकि, नारद, विभीषण आदि ने केवल दो अक्षरों का नाम जप कर मुक्ति पा ली। अतः मेरे लिए यही एक सरल उपाय है दूजा नहीं।"[5] एक अन्य स्थान पर उनका कहना है—"काम क्रोध आदि मन के विकारों को मिटाने के लिए आपका नाम ही एक मात्र उपाय है। हंस के समान आपका नाम गुण त्रयों को अलग कर देने में समर्थ है। मन का अंधकार मिटाने के लिए रवि जैसा आपका नाम है। पंचेन्द्रिय रूपी मेघों के लिए आपका नाम प्रचंड मारुत जैसा हैं। साँप को जिस प्रकार से गरूड़ नष्ट करता हैं, उसी प्रकार से आपका नाम स्मरण भी सभी पापों का नाश कर देता है।"[6] ताल्लपाक के कवियों ने भी राम नाम को पारस माना है, जिससे हीन कुलज भी कंचन जैसे उत्तम कुलज बन सकता है।[7] अतः सभी आचार विचार या पठन-पाठन से हरि नाम का स्मरण अधिक प्रभावशाली है।

---

1. परमानंद सागर—पद, 574 2. अनेकार्थ मंजरी, पृष्ठ 42
3. आध्यात्म संकीर्तन—वाल्यूम—2 पद 425
4. आध्यात्म संकीर्तन—पेदतिरुमलाचार्य—पद 206
5. वैराग्य वचन मालिका गीतालु—पद 18
6. आध्यात्म संकीर्तन—पेदतिरुमलाचार्य पद 458
7. आध्यात्म संकीर्तन—अन्नमाचार्य—वाल्यूम—2 पद 391

4.5 **भक्ति के भेद :**

प्रस्तावना : भक्ति के अनेक भेद हैं। इनके मुख्यतया चार आधार माने जाते हैं।[1]

(1) साधना का आधार (2) अधिकारी का आधार

(3) प्रेरणा का आधार और (4) विकास का आधार

साधना के आधार पर नवधा भक्ति आती है। अधिकारी के आधार पर भक्ति के चार भेद माने गये हैं—सात्विकी, राजसी, तापसी और निर्गुण। प्रेरणा के आधार पर भक्ति के अनेक भेद हो सकते हैं क्योंकि प्रेरणाओं की कोई संख्या निर्धारित नहीं की जा सकती। गीता में "आर्तो जिज्ञासुरर्थाथी ज्ञानी च भरत र्षभ"[2] के आधार पर आर्त भक्तकी भक्ति तामसी, जिज्ञासु की सात्विकी, अर्थार्थी की राजसी और ज्ञानी की निर्गुण भक्ति कहलाती है। विकास के आधार पर भक्ति के तीन भेद हैं—साधन रूपा, भावरूपा और प्रेम रूपा।

भक्ति का एक और आधार साध्य रूप भी मान सकते हैं। जिसको प्रेमा-प्रेमलक्षणा आदि नामों से कहा है। "इनमें सेवा साधन रूप है और प्रेम साध्य है। अब यह विचार करना चाहिए कि सेवा किसका नाम है। इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि स्वामी जिससे संतुष्ट हों उस प्रकार के भाव से भावित होकर उसके आज्ञा के अनुसार आचरण का नाम सेवा है।"[3] शास्त्रों में उनके अनेक प्रकार के लक्षण बतलाये गये हैं।

स्वयं अष्टछाप एवं ताल्लपाक के कवियों ने भक्ति के भेदों को अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया है। जैसे सूरदासजी कहते हैं—

"माता भक्ति चार प्रकार सत रज तम गुन सुधासार।"[4]

अन्नमाचार्य ने भक्ति के मिश्रित रूप को इस प्रकार प्रस्तुत किया है— "मनुष्यों के विभिन्न प्रकार के भक्ति-मार्ग हैं। किसी भी बहाने से यदि कोई मनुष्य भगवान के प्रति भक्ति प्रदर्शित करता है तो भगवान् उसे अवश्य स्वीकार कर लेते हैं। हरि के पक्ष में रहकर वाद-विवाद करना "उन्माद-भक्ति" है। दूसरों पर आश्रित न रहना "पतिव्रता-भक्ति" है। प्रयत्न से आत्म-साक्षात्कार पाना "विज्ञान-भक्ति" है तो आनंद को परित्याग कर आनंद को

---

1. रसखान ग्रंथावली—सटीक—डा. देशराज सिंह भाटी, पृष्ठ 72
2. श्रीमद् भगवत गीता—परहंस विज्ञान योग श्लोक—16
3. नवधा भक्ति—जयदयाल गोयन्दका, पृष्ठ 6
4. सूरसागर—पद, 394

अनुभव करना "आनंद भक्ति" है। अत्यन्त साहस से की जाने वाली भक्ति "राक्षसा भक्ति" है। भगवद् सेवकों की सेवा करना "तुरीय-भक्ति" है। फलापेक्षा सेकी जाने वाली भक्ति "तामसिक-भक्ति" है। अहंको त्यागे बिना की जाने वाली भक्ति "राजसा-भक्ति" है। भगवद् शरण में जाना "निर्मला-भक्ति" है। दृढ़ता से श्री बालाजी का कैंकर्य करके जो भक्ति की जाती है वही सच्ची भक्ति है।"[1]

भगवद् भक्ति की साधना कई प्रकार से कर सकते हैं—जैसे भागवत पुराण में कही गयी नवधा भक्ति द्वारा—

"श्रवणं, कीर्तनंविष्णोः स्मरणं पादसेवनम्
अर्चनं वन्दनं दास्य सख्य मात्म निवेदनम्"[2]

अथवा नारद भक्ति सूत्र के अनुसार एकादश प्रकार की आसक्तियों के द्वारा[3]—1. गुण माहात्म्या सक्ति 2. रूपा सक्ति 3. पूजा सक्ति 4. स्मरणा सक्ति 5. दास्या सक्ति 6. सख्या सक्ति 7. वात्सल्या सक्ति 8. कान्ता सक्ति 9. आत्म निवेदना सक्ति 10. तन्ममता सक्ति 11. परम विरहा सक्ति।

सूरदास जी ने, सूरसारावली में भागवत की नौ प्रकार की भक्ति के साथ दसवीं "प्रेमलक्षणा" जोड़ी है।

परमानंद दासजी के अनुसार भी "ताते नवधा भक्ति भली।"[4] उन्होंने उदाहरण भी दिया है—कि श्रवण—परीक्षित, कीर्तन-शुकदेव, स्मरण-प्रह्लाद पाद सेवन-कमला, अर्चन प्रधु, वन्दन-सुफलक सुत, दास्य हनुमान, सख्य-अर्जुन, आत्म समर्पण-बलि, प्रेमासक्ति-गोपियाँ।

नंददास भी कहते हैं—"यह कृति (रास पंचाध्यायी) मेरे श्रवण, कीर्तन, स्मरण आदि भक्ति साधनों का फल-स्वरूप सार है।"[5]

"इस प्रकार शास्त्रों में भक्ति के भिन्न-भिन्न प्रकार से अनेक लक्षण बताये गये हैं, किन्तु विचार करने पर सिद्धान्त में कोई भेद नहीं है। तात्पर्य प्रायः सबका एक ही है कि स्वामी जिस भाव और आचरण से संतुष्ट हों, उसी प्रकार के भावों से भावित होकर उनकी आज्ञा के अनुकूल आचरण करना ही सेवा यानी भक्ति है।"[6]

---

1. अन्नमाचार्य संकीर्तन—वाल्यूम—2, 469
2. श्रीमद् भागवत—7/5/23
3. नारद भक्ति सूत्र—82
4. अष्टछाप पदावली—सोमनाथ गुप्त, पृष्ठ 99
5. डा. दीनदयाल गुप्त
6. नवधा भक्ति—जयदयाल गोयन्दका, पृष्ठ 7

4.5.9. अष्टछाप एवं ताल्लपाक के कवियों की नवधा भक्ति :

"नवधा भक्ति एक ऐसा सामान्य धरातल है जहाँ पर भारत वर्ष के सभी सम्प्रदाय समान है। किसी न किसी रूप में नवधा भक्ति की मनोवैज्ञानिक भावभूमि और प्रेरित क्रियायें सभी संप्रदायों में स्वीकृति हैं।[1]

ईश्वर सम्बन्धी कथाओं का स्मरण करके उनका कीर्तन करना और उनके स्मरण कर मन में श्रद्धा पैदा करनी चाहिए। "पाद सेवन, अर्चन और वन्दना के द्वारा विश्वास को दृढ़ करना चाहिए। तत्पश्चात् धीरे-धीरे दास्य सख्य और आत्म निवेदन द्वारा रागात्मिका भक्ति का सच्चा आनन्द भक्त पा सकेगा। भागवत तथा अन्य शास्त्रों में वर्णित नवधा भक्ति का क्रम यही है।"[2] आलोच्य कवियों की नवधा भक्ति पर एक विहंगम दृष्टि डालेंगे—

4.5.1.1. **श्रवण :** नारद जी के अनुसार भगवान के गुणानुवादों का श्रवण सब धर्मों से श्रेष्ठ है। इससे वैकुण्ठ की प्राप्ति होती है।[3] भगवान के नाम, यश, महत्ता, गुण तथा उनकी लीलाओं का श्रद्धापूर्वक सुनना श्रवण भक्ति है। हरिनाम के श्रवण मात्र से सारे पाप कट जाते हैं। श्रवण भक्ति के उदाहरण राजा परीक्षित हैं।

अष्टछाप भक्तों की सम्पूर्ण वाणी भगवान के नाम और लीला के सुनने और सुनाने से समम्बन्ध रखती है। सूरदास तथा नन्ददास ने कृष्ण की अनेक लीलाओं का चित्रण किया है। उन लीलाओं की समाप्ति में बहुधा उन्होंने उनके सुनने और सुनाने का माहात्म्य कहा है।"[4] जैसे—"जो यह लीला सुनै सुनावै, जो हरि भक्ति पाइ सुख पावै।"[5] सूरदास जी के अनुसार ईश्वर की सरस कथा का सुधारस पान करने में श्रवणों की सार्थकता है। इतना ही नहीं वे हरि लीला के श्रवण की तुलना में "अष्टसिद्धि नव निधि सुख-सम्पत्ति लघुता कर दरसाऊँ।"[6] कहते हैं। परमानन्ददास जी प्रार्थना है—"हे भगवान। यदि आप मुझे अपनी भक्ति देते हैं तो अपनी कथा के श्रवण में मेरी रुचि भी दीजिए।"[7] परमानन्ददास जी स्पष्ट रूप से कहते हैं—

---

1. हिन्दी और तेलुगु वैष्णव भक्ति साहित्य—डा. के. रामनाथन्, पृष्ठ 151
2. हिन्दी और मलयालम कृष्ण भक्ति काव्य
—डा. के. भास्करन नायर, पृष्ठ 116
3. नवधा—भक्ति जयदयाल गोयन्दका के आधार पर
4. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय—डा. दीनदयाल गुप्त, पृष्ठ 558
5. सूरसागर—नवम स्कंध। 6. सूरसागर—दशम स्कंध—पद 1796
7. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय—डा. दीनदयाल गुप्त के आधार पर

"कृष्ण कथा बिन कृष्ण नाम बिन
कृष्ण भगति बिन दिवस जात ।
वह प्राणी काहे को जीवत नहीं मुख
बदत कृष्ण की बात ।"[1]

ताल्लपाक के कवियों की रचनायें भी श्रवण भक्ति से भरमार हैं। अन्नमाचार्य जी का प्रसिद्ध संकीर्तन—

"विनरो भाग्यमु विष्णु कथा ।
वेनुवल मिदिओ विष्णु कथा ।"[2]

इसमें वे कहते हैं कि आरम्भ से ही विष्णु कथा को वेद माना जाता है। इसे नारद आदि ने कोने-कोने में पहुँचाया है। वेद व्यास ने इसे कहा है। विष्णु कथा के श्रवण से मुक्ति मिलती है। ताल्लपाक के कवियों ने भी अपनी रचनाओं के अन्त में फल श्रुति जिसे दिया है वह श्रवण भक्ति का ही उदाहरण है। जैसे "अष्ट महिषी कल्याणमु", काव्य के अन्त में चिन्नन्ना कहते हैं कि "इस कृष्ण काव्य को जो सुनते हैं या सोचते हैं या सुनाते हैं तो उनकी सारी कामनाएँ पूरी होंगी।"

45.12 कीर्तन : श्रीमद् भगवद् गीता में भगवान ने कहा है "न च तस्मान् मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रिय कृत्तम: । भविता न च मे तस्मादन्य: प्रियतरोभुवि"[3] अर्थात् निष्काम भाव से जो व्यक्ति मेरे भक्तों को पढ़ावेगा, वही मुझे अत्यन्त प्रिय व्यक्ति है। कीर्तन सेवा की अपार महिमा का बखान रामायण तथा भागवत आदि कई ग्रंथों में प्रतिपादित किया गया है। "जिस तरह सूर्य अन्धकार को, प्रचण्ड वायु बादलों को छिन्न-भिन्न कर देता है उसी तरह कीर्तित होने पर विख्यात प्रभाव वाले अनन्त भगवान मनुष्यों के हृदय में प्रवेश करके उनके सारे पापों को निस्संदेह विध्वंस कर डालते हैं।"[4] कलियुग में संकीर्तन सेवा ही सबसे सरल उपाय माना गया है।

अष्टछाप तथा ताल्लपाक के सभी कवि दिन में आठों याम भगवान के निकट संकीर्तन सेवा में ही अपने आपको धन्य कर लिया था। वे केवल कवि ही नहीं थे वरन् उच्च कोटि के गायक भी थे। अत: संगीत तथा साहित्य के

---

1. अष्टछाप और परमानन्ददास—डा. कृष्णदेव झारी से उद्धृत
2. आध्यात्म संकीर्तन—वाल्यूम—9 संकीर्तन 66
3. मोक्ष संन्यास योग—श्लोक, 69
4. नवधा भक्ति—जयदयाल गोयन्दका, पृष्ठ 17

सरस सम्मिश्रण से हजारों की संख्या में मधुर कीर्तन देश के चारों ओर गूँज उठे।

अष्टछाप का सम्पूर्ण काव्य ही कीर्तन भक्ति का उदाहरण मान सकते हैं। "कीर्तन रूप में भगवान के यश, गुण, लीला और नाम के प्रकाशन के साथ इन अष्टछाप भक्तों ने कीर्तन की महिमा तथा उसमें अपने मन की लीनता का भी वर्णन किया है।"[1] सूरदास जी का कथन है—

जो सुख होत गुपालहिं गाये।

सो नहिं होत जप तप के कीने कोटि तीरथ न्हाये।[2]

कुम्भनदास जी के अनुसार उनका व्रत है कि दिन रात—"माई गिरिधर के गुण गाऊँ।"[3] कृष्णदास का भी यही कहना है "मेरे तो गिरिधर ही गुणगान।"[4]

ताल्लपाक के कवियों ने भी संकीर्तन सेवा को अपनाया। अन्नमाचार्य और उनके पश्चात् पेद तिरुमलाचार्य दिन में एक-एक संकीर्तन लिख कर भगवान वेंकटेश्वर को वाक् प्रसूनों से पूजा की थी। उन्होंने भी संकीर्तन को लिखने के साथ साथ उसकी महिमा का भी वर्णन किया है—"चालदा ब्रह्म मीदि संकीर्तनमाकु। जालेल्ल नडगिंचु संकीर्तनं।"[5] अर्थात् अन्नमाचार्य जी कहते हैं कि यही संकीर्तन उद्धार के लिए काफी है। इससे कभी कष्टों का निवारण हो कर संतोष की प्राप्ति होती है। साथ ही संकीर्तन की महिमा को कहते हैं—"प्यासे के लिए शीतल जल के समान है। पतिव्रता के लिए मंगलसूत्र के समान और दरिद्र के लिए आंगन का धन।[6] तुम्हारे पास सदा नाम है तो और किसी बात की क्या चिन्ता? ताल्लपाक के कवियों के नाम संकीर्तनआज भी बड़े चाव से भजन समूहों के द्वारा गाया गाया जाता है। जैसे—

"नारायण ते नमो नमो

नारद सुन्नुत नमो नमो।"······

---

1. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय—दीनदयाल गुप्त, पृष्ठ 566
2. सूरसागर—पद 349
3. अष्टछाप पदावली—सोमनाथ गुप्त—पृष्ठ 143
4. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय—डा. दीनदयाल गुप्त, पृष्ठ 567
5. अन्नमाचार्य के आध्यात्म संकीर्तन—वाल्यूम—11—पद 131
6. वही—वाल्यूम—2—पद 289

"परम पुरुष भव बन्ध विमोचन
नर मृग शरीर नमो नमो ।"[1]

ताल्लपाक के कवियों ने भी यही माना है कि—"राम नाम का जप ही तप है, वही शाश्वत पुण्य लाभ का मूल मंत्र है।" "मुक्ति का एक मात्र राजमार्ग नलिनाक्ष श्री हरि का नाम है।" 'हरि संकीर्तन से सब तरह के दुःख दूर होते हैं।" "वाल्मीकि जैसे लोग वेद शास्त्रों को सुनकर नहीं, बल्कि हरि गुण कथा संकीर्तन से ही महात्मा बन गए।"[2] इस प्रकार के भाव कई सकीर्तनों में उन्होंने व्यक्त किया है।

अन्त में अष्टछाप एवं ताल्लपाक के कवियों की संकीर्तन सेवा के संदर्भ इतना ही कहना ठीक होगा कि केवल सूरदास जी ही सवा लाख पद लिखने का उल्लेख है तो स्वयं अन्नमाचार्य जी बत्तीस हजार से भी अधिक संकीर्तन लिखने का। इनके अलावा उनके अन्य सह कवियों ने भी बराबर संकीर्तन सेवा में ही जीवन बिताया। अष्टछाप को "संकीर्तनिया" कहते हैं तो ताल्लपाक के कवियों को "वाग्गेयकार।"

45.1.3. स्मरण :

"प्रभु के नाम, रूप, गुण, प्रभाव, लीला, तत्व और रहस्यभरी अमृतमयी कथाओं का जो श्रद्धा और प्रेमपूर्वक श्रवण तथा पठन किया गया है, उनका मनन करना एवं इस प्रकार मनन करते-करते देह की सुधि भुलाकर भगवान के स्वरूप में ध्रुव की भांति तल्लीन हो जाना स्मरण भक्ति का स्वरूप है।"[3] संध्योपासना विधि के आरम्भ लिखा गया है—

"अपवित्र: पवित्रोवा सर्वावस्थां गतो पिवा।
य: स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं सबाह्याभ्यंतर: शुचि:।"[4]

अर्थात् किसी भी अवस्था के भगवान का स्मरण करने से वह बाहर और भीतर से शुद्ध हो जाता है। गीता में भी कृष्ण ने अर्जुन से ही कहा है—

"अनन्याश्चिन्तयं तोमां ते जना: पर्युपासते।
ते षां नित्याभियुक्तानां योग क्षेमं वहाम्यहम्।"[5]

---

1. अन्नमाचार्य के आध्यात्म संकीर्तन—वाल्यूम 13 पद 32
2. अन्नमाचार्य और सूरदास—डा. एम. संगमेशम् के आधार पर
3. नवधा भक्ति जयदयाल गोयंदका, पृष्ठ 20
4. संध्या वन्दन—प्रथम श्लोक (श्रीरामा प्रेस)
5. श्रीमद् भगवद् गीता—राज विद्या राजगुह्य योग-श्लोक—22

पुराणों में कहे गए स्मरण सम्बन्धी सभी विषयों का अध्ययन करने पर हम इस तथ्य पर पहुँचते हैं कि भगवान् के नाम, गुण, लीला आदि का हमेशा याद रखना और उसी में तल्लीन होना स्मरण भक्ति है। इसे "भ्रमरकीटक न्याय" कह सकते हैं।

सूरदास जी अपने कई संकीर्तनों का आरम्भ, "हरि हरि हरि सुमिरन करो" से कहते हैं। क्योंकि हरि स्मरण के समान दूसरा कुछ उपाय नहीं है। हरि सुमिरन के बिना मुक्ति असम्भव है।[1] "कृष्ण भक्त होने के कारण उन्होंने कृष्ण के पर्यायवाची नामों से विशेष रूप से स्मरण किया है पर राम नाम का प्रचुरता से प्रयोग किया है।"[2] उदाहरण के लिए—"अद्‌भुत राम नाम की ओट" आदि। अष्टछाप के अन्य कवियों ने भी स्मरण को महत्ता दी है। जैसे "हरि तेरी लीला की सुधि आवै।"[3] छीत स्वामी कहते हैं—

"सुमरि मन गोपाल लाल सुन्दर अति रूप जाल"[4]

नंददास ने अपने "अनेकार्थ भाषा" में श्रवण के साथ-साथ स्मरण का भी उल्लेख किया है। रास पंचध्यायी की ये पंक्तियाँ श्रवण, कीर्तन और स्मरण की ओर संकेत करती हैं—[5]

"श्रवण कीर्तन सार सार सुमिरन को है पुनि।
ज्ञान-सार हरि-ध्यान—सार सार गहतमुनि।"

अन्नमाचार्य के मत में हरि का नाम ही मुक्ति है। वे एक स्थान पर कहते हैं कि जीवात्मा स्मरणासक्ति से भगवान् वेंकटेश्वर के पास जाने के कारण भावों में विकार नहीं होता।[6] अन्नमाचार्य जी कहते हैं—"हे मन! सदा कह नारायण, हरिनारायण। इस जगत् में नारायण रूपी बीज को प्रथमत: नारद ने बोया, बालक ध्रुव द्वारा वह पल्लवित हुआ, राजा रुक्मांगद द्वारा विकसित हुआ···जब समस्त फल देनेवाले इस नाम का सहारा है, तब जप,

---

1. सूर सागर—पद 349
2. भक्ति कालीन हिन्दी काव्य में प्रेम भावना
   —डा. रामकुमार खण्डेलवाल, पृष्ठ 351
3. अष्टछाप पदावली—परमानंददास पद 37
4. वही—पृष्ठ 206
5. नंददास—रसिक, विचारक, कलाकार—रूपनारायण, पृष्ठ 107
6. ताल्लपाक कवुल पद कवितलु—
   भाषा प्रयोग विशेषालु वेटूरि आनन्द मूर्ति, पृष्ठ 165

तप, होम, नेम आदि की क्या आवश्यकता है ? अत एव हे मन ! तुम निरन्तर श्री वेंकटेश्वर का ध्यान करो।"[1] इतना ही नहीं नाम के प्रति लोगों की उदासीनता देखकर अन्नमाचार्य कभी-कभी खीजकर कहते हैं ? कि नारायण का नाम लेने तुम्हें क्या कष्ट है ? क्या जीभ में काँटे गाड़ दिये गये ? काशी जाना अथवा तीर्थ यात्रा करने का कष्ट क्यों उठाते हो ? रोज उपवास क्यों करते हो ? जाड़े में गंगा में गोते लगाने की क्या आवश्यकता है ? मुक्ति का का साधन "हरिनाम" है–क्या यह छोटी सी बात तुम नहीं जानते हो ?[2] उनके अनुसार–

"अन्निटिकि निदि परमौषधमु
वेन्नुनि नाममे विमलौषधमु"[3]

अर्थात् सभी प्रकार के रोगों के लिए यह विष्णु का नाम ही परमौक्षध है। चित्त की शांति के लिए, सभी बंधों के विमोचन के लिए, भवरोगों के लिए हरिनाम स्मरण, हरि पाद जलधि ही औषधि है और कर्म विमोचन हो जाता है। "इह" और "पर" की प्राप्ति के लिए, श्री वेंकटेश्वर के शरण में जाना ही नित्य औषधि है।

4.5.1.4. पाद-सेवन :

"सेव्य-सेवक भाव इसका प्रधान लक्षण है। जिस प्रकार सच्चा सेवक अपने स्वामी की, मन लगाकर, सेवा करता है उसी प्रकार भगवान् के प्रति भक्त की सेवा-पाद सेवा है।[4] इस पाद सेवा से भक्त का मन उज्जवल बन जाता है। उसके सभी दोषों का निवारण होकर सभी विपत्तियाँ टल जाती हैं। भगवान् के पाद-सेवन का माहात्म्य रामायण, भागवत आदि ग्रन्थों में शंकराचार्य, वल्लभाचार्य आदि आचार्यों ने मुक्त कंठ से घोषित किया है। श्री राम के पाद-स्पर्श से ही अहल्या का विमोचन हुआ। उनके पाद–सेवन का भाग्य सीता, निषाद राजा गुह, भरत और हनुमानजी को मिला था।

"अष्टछाप भक्तों ने कृष्ण को अर्चावतार-स्वरूप मूर्तियों में से "श्री नाथजी" स्वरूप की पाद-सेवा की थी। उन्होंने अपने गुरु वल्लभाचार्य जी

---

1. मीराबाई एवं अन्नमाचार्य–(तुलनात्मक लेख)
–डा. को. शिवसत्यनारायण, पृष्ठ 76

2. वही–

3. अन्नमाचार्य संकीर्तन (व्याख्या) श्रीनिवासुल–संकीर्तन 19

4. सूरदार और वामन पंडित–डा. सुशीला व्यापारी पृष्ठ 412

तथा उनके बाद गोस्वामी विट्ठलनाथ जी को भी भगवान् रूप में ही देखा था तथा उनके प्रति उसी प्रकार की धारणा रख कर उनकी चरण सेवा की थी।[1]

अष्टछापी कवियों ने भगवान के चरणों की स्तुति इस प्रकार की है–

"परम पंकज अति मनोहर सकल सुख के करन।
सनक शंकर ध्यान ध्यावत निगम अवरन वरन।"[2]

तथा

"चरन कमल बन्दो हरिराई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लांघे अंधे को सब कुछ दरसाई।"[3]

सूरदास जी ने विस्तार से वर्णन किया है कि—

"जे पद पदुम सदा शिव के धन सिंधु
सुता उर तैं नहिं टारैं।
जे पद पदुम तात रिसि त्रासित मन-वच-क्रम
प्रह्लाद संभारैं······
··· ··· ···
सूरदास तेई पद-पंकज त्रिविध ताप
दुःख हरन हमारे।"[4]

तथा परमानन्ददास जी ने–

"चरन कमल बंदों जगदीश के जे गोधन संग धाए"

कहते हुए पाद कमलों का वर्णन किया है–

"बलिहारी पद कमल को जिन यह शतलक्षण
·····················
ते चिंतत त्रय-ताप हरत शीतल सुख दायक।
गंगादिक तीर्थ प्रसाद भक्तन मन भावन।
भक्त धाय कमल-निवास माया गुण वादक।"[5]

परमानन्द जी की बस यही प्रार्थना है कि–

'चरन कमल की सेवा दीजै।'

---

1. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय–डा. दीनदयाल गुप्त, पृष्ठ 579
2. सूरसागर–पद—302
3. सूरसागर–पद–2
4. सूरसागर–पद–64
5. अष्टछाप पदावली–सोमनाथ गुप्त, पृष्ठ 90

नन्ददास जी अपने गुरु गोस्वामी विट्ठलनाथ की स्तुति में जो पद लिखे हैं उनमें दास्य भाव से पाद सेवन का रूप ही मिलता है।[1]

"प्रात समय श्रीवल्लभ सुत वो पुन्य पवित्र विमल जस गाऊँ।

....

रहो सदा चरनन के आगे महा प्रसाद को जूठन पाऊँ।"[2]

स्थान-स्थान पर पाद सेवन का उल्लेख किया है। जैसे रूप मंजरी में इन्दुमति गिरिधर को संतुष्ट करने की अभिलाषा से "मन के हाथों से उनके चरणों को पकड़ लेती है।"[3]

ताल्लपाक के कवियों ने भी पाद सेवन से सम्बन्धित अनेक पद गाये हैं।

"श्रीमन्नारायण श्रीमन्नारायण

श्रीमन्नारायण नी पादमे शरणु।

....

श्री कमल नाम नी पद कमलमे शरणु"[4]

अन्नमाचार्य जी तो अपने संकीर्तन को ही भगवान के चरण कमलों को समर्पित पूजा पुष्प मानते हैं—

"दाचुको नी पादालकु दग ने जेसिन पूजलिवि।।"[5]

एक अन्य संकीर्तन में कहते हैं—

ब्रह्म कडिगिन पादमु ब्रह्ममुतानी पादमु।"[6]

इसमें भगवान के चरणों की महिमा वे गाते हैं कि ब्रह्मा ने स्वयं हरि के चरण धोये हैं। ये चरण ही स्वयं ब्रह्म हैं। इसी चरण ने ब्रह्मांड को नापा और बलि के सिर पर भी यही चरण शोभित हुआ। सारे आसमान में यही चरण विराजा। देवेन्द्र की रक्षा और अहल्या का उद्धार भी इसी चरण के द्वारा हुए। कालिय नाग के फणों पर इन्हीं चरणों ने नृत्य किया। लक्ष्मी को यही प्रिय है। गरुड़ भी इसी की सेवा करते हैं। योगीश्वरों का मन इसी शरण में सदा मग्न रहता है। यही परमपद का वर देने वाला है।

---

1. नन्ददास—जीवनी और काव्य—सावित्री अवस्थी, पृष्ठ 202
2. अष्टछाप पदावली—सोमनाथ गुप्त, पृष्ठ 176
3. नन्ददास—रसिक विचारक कलाकार—रूप नारायण, पृष्ठ 107
4. अन्नमाचार्य—वाल्यूम-5-पद 97
5. अध्यात्म संकीर्तन—वाल्यूम 2—पद 38
6. ताल्लपाक अन्नमय्य पाटलु (स्वरसहित), पृष्ठ 36

पेद तिरुमलाचार्य के मत में भगवान के ही नहीं उनके दासों के पादतीर्थ भी सिर पर रखना सकल नदी स्नान के समान पुण्य कारक है।[1] वे कहते हैं कि, "हे परमात्मा। मैं तो तुम्हारे चरणों के शरण में आया हूँ। तुम्हें ही मुझे उद्धार करना होगा।"[2] और "मुझे मालूम है कि मुझमें कुछ शक्ति नहीं है। केवल तुम्हारे चरण ही गति हैं।"[3]

4.5.1.5. अर्चन :

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मैं भक्तया प्रयच्छति।
तदहं भक्त्यु पहुतमश्नामि प्रयतात्मन:।[4]

अर्चन का अर्थ है अपने आराध्य देव की पूजा, परिचर्या, सेवा आदि करना। यह दो प्रकार से की जाती है बाह्य तथा मानसिक। षोड़शोपचार विधि से चन्दन, पुष्प, धूप, दीप, आरती आदि समर्पित करना बाह्य है। मानसिक अर्चना में भगवान का ध्यान और आत्म समर्पण किया जाता है। श्रीमद् भागवत के अनुसार ईश्वर के चरणों का अर्चन–पूजन मनुष्यों के लिए स्वर्ग मोक्ष तथा इस लोक की सम्पूर्ण सम्पत्ति और सिद्धियों का मूल है।[5]

वल्लभ संप्रदाय के अनुकूल अष्टछापी कवियों में अर्चन सेवा के भाव स्पष्ट गोचर होते हैं। जैसे सूरसागर के नवम सकंध में अम्बरीष की कथा में सूर ने अम्बरीष की अर्चन-भक्ति का उल्लेख किया है। भगवान के विराट रूप की आरती के वर्णन में भी सूर ने विश्वव्यापी–भगवान की विश्वव्यापी पूजा का चित्र खींचा है जो ब्रह्म ज्योति–रूप से घट घट में व्याप्त है, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र अग्नि सब उसी के प्रकाश से प्रकाशित हैं, उसी सर्वव्यापी भगवान की सम्पूर्ण लोक, नारद, सनकादि, प्रजापति ब्रह्मा, देवता, मनुष्य और असुर सब मिल कर इस विश्व आरती में सहयोग देते हुए पूजा कर रहे हैं।[6] नन्ददास ने भाषा दशम स्कन्ध में वरुण से कृष्ण की पूजा करायी है। नन्ददास का "अर्चना भक्ति का स्वरूप रूप मंजरी ग्रंथ में मुखरित हुआ है। रूप मंजरी के हृदय मंदिर में स्थित कृष्ण की मूर्ति की पूजा इन्दुमती के रूप में स्थित नन्ददास स्वयं पुत्रं, पुष्पं, फलं, तोयं से करते हैं।"[7]

---

1. वैराग्य वचन मालिका गीतालु–37 2. वही–35 3. वही–47
4. श्रीमद्भगवद्गीता–राज विद्या राजगुह्य योग–श्लोक, 26
5. अष्टछाप और बल्लभ संप्रदाय–डा. दीनदयाल गुप्त के. आधार पर।
6. वही–पृष्ठ 583
7. नन्ददास–जीवनी और काव्य–डा. सावित्री अवस्थी, पृष्ठ 202

"रूपमंजरी तिय को हियो गिरिधर अपनी आलय कियो ।
इंदुमती तहं अति अनुरागी, ताही में प्रभु पूजन लागी ।
जहं जहं जो कछु उत्तम पावै, सो सब आनिकै ताहि चढ़ावै ।
बान बनावै पान खवावै, मंद हिलौर हिंडोर झुलावै ।[1]

परमानन्ददास जी अपने इस पद में

"मंगल आरती कर मन मोर,
गरम निशा बीती भयो भो ।"[2]

कहते हैं–

ताल्लपाक के कवियों की रचनाओं में बाह्य तथा मानसिक दोनों प्रकार की अर्चनाओं से सम्बन्धित रचनाएँ भी अधिक संख्या में हैं । परमात्मा की प्रभाती सेवा से ले कर शयन तक सभा विधियाँ अर्चन सेवा में आती हैं । एक संकीर्तन में शयन के समय भगवान के पैर दबाना, झूलने में झुलाना, मच्छरदानी लगाना आदि का वर्णन है जिसे शयन सेवा कर कहते हैं—

"निद्दिरिंची बाल जलनिधिवलैने
ओद्दिक श्री रमणुनिकि नोत्तरे पादमुलु ।
....
योगीन्द्र वरदुनि नूचरे उय्यालनु ।"[3]
....

एक अन्य संकीर्तन में अन्नमाचार्य षोड़श उपचार पूजा का वर्णन करते हैं—

"षोड़श कला निधिकि षोड़शोपचारमुलु ।"[4]

(षोड़श कलाओं से संपन्न भगवान को यह षोड़शोपचार पूजा समर्पित कर रहा हूँ । विश्व ही जिसकी आत्मा है उसे आवाह्न कर रहा हूँ । जो पर्वत पर बसा हैं उसे आसन दे रहा हूँ । गंगा जनक को अर्घ्य, पाद्य और आचमनीय तथा सागर शयन को स्नान समर्पित कर रहा हूँ । पीताम्बर को वस्त्रालंकार, श्रीपति को आभूषण, धरणीधर को चन्दन, पुष्प तथा धूप दे रहा हूँ । करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशवान भगवान को दीप दिखा रहा हूँ । अमृत

1. रूपमंजरी—नन्ददास (शुक्ल), पृष्ठ 14
2. परमानंद सागर—पद 590
3. अन्नमाचार्य संकीर्तन—वाल्यूम—3, पद 409
4. अन्नमाचार्य के आध्यात्म संकीर्तन—वाल्यूम—2, पद 134

को जिसने मंथन किया था उसे नैवेद्य, चन्द्र नेत्र को कपूर सहित तांबूल के साथ-साथ श्री वेंकटेश्वर की मैं परिक्रमा और प्रणाम कर रहा हूँ ।)

अपने एक और संकीर्तन में अन्नमाचार्य जी कहते हैं—"मैं तुम्हारी पूजा कैसे कर सकता हूँ ? मेरी मानस पूजा ही तुम ग्रहण करना । क्योंकि तुम तो पहले से ही सर्वसम्पन्न हो । अन्तर्यामी को आह्वान, सर्वव्यापी को आसन, पुष्करिणी का जल अर्घ्य और जो गंगा सदा तुम्हारे पास है वही पाद्य है । जलधियाँ आचमनीय, वरुण जल स्नान, आपकी महिमाएँ ही वस्त्र और आभूषण हैं । वेद ही आपके लिए यज्ञोपवीत हैं । पहले कुब्जा ने जो चन्दन दिया था, वही आज भी ग्रहण करो । फूल वाले पर तुमने जो कृपा, दिखाई थी, वे ही फूल हैं । मुनियों का होम ही धूप है ।"[1] इनके साथ साथ नित्य यथा नैमित्तिक अवसरों पर विभिन्न अर्चनाओं का वर्णन है ।

पेदतिरुमलाचार्य भगवान को मानस पूजा अर्पित करते हैं । एक स्थान पर उनका कहना है—

"हे वेंकटेश्वर ! मेरा देह तुम्हारा नित्य निवास स्थान है । मेरे ज्ञान तथा विज्ञान तुम्हारे उभय पार्श्व के दीपक हैं । हृदय का राग ही तुम्हारे लिए वस्त्र है । नमस्कार करने वाले मेरे हाथ मकर तोरण हैं । मेरी भक्ति ही तुम्हारा सिंहासन है । ....मेरे पुण्य ही तुम्हारे नैवेद्य हैं । मेरा सात्विक गुण तुम्हारा धूप है । तुम देवाधिदेव हो और मैं तुम्हारा पुजारी । इस प्रकार से मेरा नित्योत्स ग्रहण करो ।"[2]

4.5.1.6. वन्दना : भगवान के स्वरूप को हृदय में धारण कर उनकी स्तुति करना, नतमस्तक हो कर विनय से उनको प्रणाम करना वन्दन भक्ति है । तुलसीदासजी कहते हैं—

"सिया राम मय सब जग जानी ।
करुऊँ प्रनाम जोरि जुग पानी ।"[3]

भगवान कृष्ण को हृदय से किया जाने वाला एक प्रणाम भी दस अश्वमेधों के फल से अधिक माना जाता है । अक्रूर तथा भीष्म के वन्दन भक्ति से मुग्ध हो कर श्रीकृष्ण प्रसन्न हो जाते हैं ।

सूरसागर का आरिम्भक पद ही वन्दन भक्ति का उत्कृष्ट उदाहरण है—

---

1. अन्नमाचार्य आध्यात्म संकीर्तन—वाल्यूम—2, पद 272
2. वैराग्य वचन मालिका गीतालु—पद 1
3. रामचरित मानस

"चरन कमल बन्दौं हरि राई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघे अंधे को सब कुछ दरसाई।"

वन्दना भक्ति के दर्शन नन्ददास के प्रत्येक ग्रंथ में होते हैं। रसमंजरी, मानमंजरी, अनेकार्थ मंजरी, रूप मंजरी, सिद्धान्त पंचाध्यायी और भाषा दशम स्कंध में कवि ने कृष्ण की वंदना की है—

"नमो नमो आनन्द घन सुन्दर नंदकुमार।"[1]
"वन्दन करौं कृपा निधान श्री सुक सुभकारी।"[2]

परमानन्ददास :

"चरन कमल बन्दौं जगदीश जै गोधन संग धाए।[3]

कृष्णदास :

"वन्दे धरनि गिरिवर भूप।"[4]

छीत स्वामी :

"जय-जय श्रीवल्लभ–नन्द कोटि कला वृन्दावन चन्द।"[5]

चतुर्भुजदास :

"जयति आभीर नागरी प्राण नाथ॥"[6]

"वन्दन भक्ति में इन भक्तों ने अपने इष्टदेव श्रीकृष्ण, गुरु तथा भगवद् भक्तों की वंदना के अतिरिक्त कृष्ण की रस शक्ति राधा तथा यमुना की भी वन्दना की है।"[7]

ताल्लपाक के कवियों ने भी अपने सम्पूर्ण हृदय से वन्दन सेवा की है। "नारायण ते नमो नमो—" कहते हुए सर्वशक्तिमान् परमात्मा की महिमाओं को जान कर उनके अर्चामूर्ति का वन्दन करते हैं। जैसे—

"विन्नप मिदे नीवु वेवेलु विधमुल
नन्नु गाववे हरि नमो नमो।"[8]

---

1. रस मंजरी–(शुक्ल) पृष्ठ 39 2. रासपंचाध्यायी (शुक्ल) पृष्ठ 155
3. परमानंद सागर–पद 1
4. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय–डा. दीनदयाल गुप्त के आधार पर
5. अष्टछाप पदावली–सोमनाथ गुप्त, पृष्ठ 224, 280
6. वही–
7. अष्टछाप तथा बल्लभ संप्रदाय–डा. दीनदयाल गुप्त, पृष्ठ 589–90
8. ताल्लपाक कवुल पद कवितलु–भाषा प्रयोग विशेषालु
–वे. आनन्दमूर्ति पृष्ठ 167

अर्थात् सहस्र बार तुम्हें बन्दन करते हुए यह प्रार्थना करता हूँ कि मेरा उद्धार करो।

एक अन्य स्थान पर नृसिंह की वन्दना करते हैं—

नमो नमो लक्ष्मी नरसिंहा
नमो नमो सुग्रीव नरसिंहा।[1]

एक संस्कृत संकीर्तन में—

"वेदान्त वैद्याय विश्वरूपाय नमो
आदिमध्यांत रहिताधिकाय
भेदाय पुनरप्य भेदाय नमो नमो
नाद प्रियाय मम नाथाय तस्मै।"[2]

ताल्लपाक के कवियों ने भी अपने गुरु घनविष्णु की वन्दना, तिरुपति क्षेत्र, अलमेल मंगा तथा वहाँ स्थित पुष्करिणी की भी वन्दना की है।

4.5.1.7. दास्य : "भगवान के गुण, तत्व, रहस्य और प्रभाव को जानकर श्रद्धा प्रेम पूर्वक उनकी सेबा करना और उनकी आज्ञा का पालन करना दास्य भक्ति है।"[3]

इसमें प्रभु स्वामी तथा भक्त दास रूप में रहते हैं। भगवान भक्तवत्सल हैं तो भक्ति दीनहीन। "परमेश्वर मेरा पिता है, माता है, स्वामी है और मैं उनका आज्ञाकारी पुत्र, अथवा स्वामिभक्त दास हूँ। यह दास्य प्रीति या दास्य भक्ति है।"[4]

भक्त भगवान की सेवा और आज्ञा का पालन करने के अलावा कुछ नहीं चाहता। दास्य की भावना वे "भक्त का हृदय निर्मल बन जाता है तथा अहं की भावना से वह मुक्त हो जाता है। विनय, प्रार्थना, दैन्य भाव, भगवान का स्तवन आदि दास्य भक्ति के रूप हैं।[5]

पुराणों के कई भक्तों के चरित दास्य भक्ति की महानता की ही घोषणा करते हैं। हनुमान जी इसके श्रेष्ठ उदाहरण है। तुलसी दास जी के मत में तो—

---

1. अन्नमाचार्य—अध्यात्म संकीर्तन—वा—2 पद 348
2. वही—संख्या, 83
3. नवधा भक्ति—जयदयाल गोयन्दका, पृष्ठ 44
4. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय—डा. दीनदयाल गुप्त, पृष्ठ 598
5. सूरदास और वामन पंडित—डा. सुशीला व्यापारी, पृष्ठ 417

"सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगरि ।"[1]

अष्टछापी कवियों के विनय के पद इसी कोटि में आते हैं। सूरदासजी इसमें अग्रगण्य हैं। गोपिकाओं के माध्यम से वे कहलाते हैं—"हम दासी तुम नाथ हमारे ।"[2] अपने आपको कृष्ण के दास कहने में उन्हें अत्यन्त आनंद आता था।

"सूरदास को और बड़ो सुख, जूठनि खाई जिये ।"[3]

"सूर ने विनय के पदों के अतिरिक्त भी कई स्थलों पर भक्त की दीनता प्रकट की है। द्वादश स्कंध में रुक्मिणी का भक्ति भाव तथा नवम स्कंध में राम स्तुति इसके उदाहरण है। जहाँ जहाँ सूर ने भक्तों के चरित्र का वर्णन किया है, वहाँ भगवान् की भक्त वत्सलता का भी विवेचन किया है। प्रह्लाद चरित्र, कालिया दमन, चीर हरण, गोवर्धन लीला आदि प्रसंगों में भगवान् की भक्त वत्सलता और भक्त के दैन्य का साथ-साथ वर्णन है।"[4]

परमानंददास ने भी सूर की ही भाँति परमात्मा के सम्मुख दास बनकर रहने का भाव व्यक्त किया।

"दीन दयालु पतित पावन जसवेद उपनिषद गावै ।"

कहते हुए वे कहते हैं—"यह दास भी पापी होकर आपकी शरण में आया है और आपके विरद ने इसे बुलाया है। फिर क्या कारण है ? आपके दरवाजे पर "दाद" नहीं मिलती ?"[5] अन्य अष्टछापी कवियों में दास्य की भावना इतनी अधिक नहीं मिलती।

ताल्लपाक के कवियों ने अपनी दीनता और दास भावना को कई स्थानों पर प्रकट किया है। अन्नमाचार्य अपने को "केशव दास" ही नहीं "केशवदासी" भी कहते हैं। अन्य दासी जनों से वे कहते हैं—

"रानु मी कड्कु औ रमणुलारा पूवुं वानुपु हरिकि ने वरव वलयु नेडु"[6]

अर्थात् अब मैं तुम्हारे पास नहीं आऊँगी क्योंकि हे रमणियों। मुझे आज भगवान के लिए फूल की सेज सजानी है। "कभी वे मुख्य दास या प्रधान दासी बनकर अन्यों को ऐसे उपदेश देते हैं—"भगवान् के अभ्ययंजन का समय है। मंगलवाद्य करो, आरती तैयार करके रखो, वेद-मंत्र का पाठ

---

1. रामचरित मानस— 2. सूरसागर—पद 1410 3. वही—131
4. सूरदास और वामन पंडित—डा. सुशीला व्यापारी, पृष्ठ 418
5. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय—डा. दीन दयालगुप्त, पृष्ठ 608
6. अन्नमाचार्य संकीर्तन—वाल्यूम—4—पद 127

करो"[1] आदि। एक स्थान पर कहते हैं—"हे वेंकटेश्वर ! मैं तुम्हारा सेवक हूँ। मुझे तुम बुद्धि दो।"[2]

यह दास्य केवल भगवान में ही नहीं बल्कि, भगवान के भक्तों, भागवतों और दासों के तथा गुरु के दास्य में भी अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवि अपनी अनुरक्ति दिखाते हैं।

4 5.1.8. **सख्य** : भगवान के प्रभाव, तत्व, रहस्य और महिमा को समझ कर परम विश्वास पूर्वक मित्र भाव से उनकी रुचि के अनुसार बन जाना, उनमें अनन्य प्रेम करना और उनके गुण रूप और लीला पर मुग्ध हो कर नित्य निरन्तर प्रसन्न रहना सख्य भक्ति है।[3]

"परमेश्वर मेरे सुख दुख, आमोद प्रमोद में मेरा साथी है, वह मेरा परम मित्र है, बन्धु है, उसके सिवाय मेरा अन्य कोई ऐसा मित्र या बन्धु नहीं है, यह सख्य प्रीति या सख्य भक्ति है।"[4]

सख्य भक्ति के उदाहरण उद्धव, कृष्ण, ब्रजसखा तथा अर्जुन, राम-सुग्रीव और विभीषण आदि हैं।

"लौकिक व्यवहार में जो मित्रता का आदर्श उपस्थित किया जाता है उसी आदर्श भाव की सख्य भक्ति में भक्त, भगवान के प्रति रखता है। वह अपने सखा भगवान से कोई स्वार्थ नहीं रखता, वह केवल मित्र भाव से अहैतुक प्रेम व्यवहार करता है।"[5] तुलसीदास ने अपने राम द्वारा इस मित्रता की व्याख्या यों करायी है—

जे न मित्र दुःख होंहि दुखारी तिन्हिं विलोकत पावकमारी।[6]

अष्टछाप के कवियों का सखा और सखी रूप और नाम वल्लभ संप्रदाय में मान्य है, जिनका उल्लेख पीछे हो चुका है।[7]

अष्टछापी कवियों ने मानसिक जगत में सख्य भक्ति का अनुभव करते हुए कृष्ण की बाल और यौवनकाल की लीलाओं का जो विशेष वर्णन किया है,

---

1. अन्नमाचार्य और सूरदास–एम. संगमेशम्, पृष्ठ 165
2. अन्नमाचार्य संकीर्तन–(2) पद–236
3. नवधा भक्ति–जयदयाल गोयन्दका, पृष्ठ 48
4. डा. दीनदयाल गुप्त
5. अष्टछाप और बल्लभ संप्रदाय–डा. दानदयाल गुप्त पृष्ठ 609
6. रामचरितमानस
7. देखिए–पृष्ठ 1

उसमें सख्य भक्ति का चित्रण है। "कृष्ण की बाल लीला के अन्तर्गत, बालकों के विविध खेल, गोचारण, माखन चोरी आदि प्रसंगों का जहाँ इन भक्तों ने किया है, वहाँ इनकी सख्य भक्ति का ही परिचय मिलता है।"[1]

गोचारण प्रसंग के अलावा सख्य भक्ति का अत्युत्तम उदाहरण सूरदास जी के "सुदामा" के प्रसंग में मिलता है। दुर्बल तन, मलिन बदन अत्यन्त दीन और क्षीण वस्त्रधारी सुदामा के प्रति महान् कृष्ण का व्यवहार इस प्रकार—

"दूरहितै देखे बलबीर
अपने बाल सखा सुदामा, मलिन वसन और छीन शरीर।
पौढ़े हुतै प्रंरक परम रूचि का रुक्मिणी चमर होलावत तीर,
उठि अकुलाइ अनमने लीने मिरुत नैन भरि आए नीर।"[2]

इतना ही नहीं—

"सिंहासन तजि चले मिलन को सुनत सुदामा नाऊँ।"[3]

कितना उज्जवल है उनका स्नेह भाव। कृष्ण तथा अन्य सखाओं के आमोद प्रमोद के सहज वर्णनों की सूरसागर में भरमार है। बालक कृष्ण खेल में श्रीदामा को अपने प्रतिद्वंद्वी समझते हैं और बाल मनोविज्ञान के अनुसार उसे ही पकड़ने के लिए दौड़ते हैं। श्रीदामा भी दबता नहीं है। जब श्रीदामा कृष्ण को छूते हैं तो कृष्ण रूठ जाते हैं और झगड़ा हो जाता है। आंख मिचौनी में भी यही स्थिति है। कृष्ण के प्रति श्रीदामा के वचन हैं—

"खेलत मैं को काको गुसैंयां।"[4]

अर्थात् खेल में सभी बराबर हैं। खेल में कौन किसका गुसैंयां है, क्योंकि उसे मालूम है कि नन्द के पुत्र होने के कारण कृष्ण गुसैंयां है। रूठने वाले से कौन खेलेगा? इस पर कृष्ण को ही हार माननी पड़ी। इस पद में एक साथ सामाजिक समानता के साथ-साथ अद्वैत की स्थिति भी स्थापित हो गयी है। सूर के इस पद में, भक्त और भगवान में द्वैत को समाप्त करने का कैसा विचित्र खेल प्रदर्शित है। खेल-खेल में कैसे अद्वैत की स्थापना हो गयी है। भगवान लुका-छिपी करना चाहता है तो सखा भक्त बरबस अपने अधिकार से भगवान को आनन्द प्रदान करने को बाध्य कर देता है। कोई अन्तर रहने नहीं देता।[5] इसी प्रकार श्रीदामा की गेंद का कृष्ण के द्वारा कालीदह में जा गिरना, श्रीदामा

---

1. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय—डा. दीनदयाल गुप्त, पृष्ठ 609
2. सूर सागर, पृष्ठ 627-628 3. वही—पृष्ठ 628 4. वही—पद 863
5. सूर और पोतना की भक्ति पद्धति—डा. सी. एच. रामुलु, पृष्ठ 108

का कृष्ण से झगड़ना और अन्त में कृष्ण का जाकर कालीदह में कूदना आदि प्रसंगों में भी सख्य भक्ति का महत्व प्रकट किया गया है।[1] परमानन्ददास ने भी गोचारण और छाक के पदों में सख्य भक्ति को प्रकट किया है। जैसे—

"आजु दधि मीठो मदन गोपाल।

भावत मोहि तिहारी झूंठो चंचल नयन विशाल।[2]

अन्त में यह कह सकते हैं कि भक्तों के सख्य वात्सल्य भगवान को षटरस व्यंजनों में वह स्वाद नहीं आता जो उनको ग्वाल सखाओं के जूठे कौर, सुदामा के चावल तथा विदुर के साग में आता है।[3]

बाल लीलाओं के अलावा सख्य भक्ति शृंगार रस से भी सम्बन्धित है। "ब्रजभाषा साहित्य में कृष्ण और राधा नायक और नायिका के बीच होने वाली शृंगार लीलाओं में सखी सक्रिय रहती है। मान और वियोग के क्षणों में उसकी उपयोगिता बहुत बढ़ जाती है। ....सूरदास जी चंपकलता सखी के रूप में कृष्ण-राधा की युगल लीलाओं में इसी प्रकार तन्मय रहते हैं। हास, मान, और निकुंज विहार में गोपियां जब सखी कर्म से प्रवृत्त होती हैं, तो चंपकलता रूप सूर भी चुपके से—"इन गोपियों के साथ मिल कर अपनी विविध सेवाएँ समर्पित करते हैं। सुरदास का सखी भाव वियोग और संयोग दोनों ही संदर्भों में सक्रिय रहता है।"[4]

ताल्लपाक के कवियों ने भी अपने संकीर्तनों के साथ-साथ अन्य रचनाओं में भी सख्य भक्ति को चित्रित किया है। एक प्रबन्ध काव्य होने के कारण अष्टमहिषी कल्याणमु में कवि चिन्नन्ना के कृष्ण का गोचारण प्रसंग, कलैऊ आदि का वर्णन एक क्रमिक रूप में किया है। कृष्ण की भोजन सामग्री एक तेलुगु भाषा-भाषी के घर की ही है जिसम सोंठ, अदरक, काली मिर्च मुरुकुलु के साथ-साथ विभिन्न प्रकार की चटनियाँ भी हैं।[5] बाल गोपाल का

1. द्रष्टव्य हैं पद—1. फेंट छांड़ि मेरी देहु श्रीदामा—तोसों कहु धुताईकरिहों।
सूरसागर—पद 1154
और सूरसागर—पद 1157 आदि।
2. वही—पृष्ठ 625
3. अष्टछाप और बल्लभ संप्रदाय—दीनदयाल गुप्त, पृष्ठ 614
4. तेलुगु कृष्ण काव्य और सूर—डा. रावत—(लेख) पृष्ठ 102
5. अष्टमहिषी कल्याणमु, पृष्ठ 47

आपस में हास–परिहास, एक दूसरे की सामग्री लेकर खाना आदि का वर्णन है।[1]

इसी संदर्भ में उल्लेखनीय विषय यह है कि अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों ने बालकों के और बालिकाओं के खेलों के साथ साथ सामूहिक क्रीड़ाओं, खुली हवा में खेले जाने वाले खेल, गेंद से खेलना आदि का वर्णन प्रस्तुत किया है।[2]

ताल्लपाक के कवियों ने परमात्मा से सख्य भक्ति स्थापित करते हुए स्थान स्थान पर अर्जुन और कृष्ण का उदाहरण दिया है। जैसे एक संकीर्तन में कहा गया है–

"बलुवगु दन रूपमु जूपेन
कर्लदितयु दव घनतेरिंगिचेन्।

अर्थात् अर्जुन को कृष्ण ने अपना विराट् रूप दिखाया। अपनी महानता भी स्पष्ट की। अर्जुन को धर्म का उपदेश दिया। अपनी अपरम्पार दया के कारण पाण्डवों की रक्षा की।"[3] इसी स्नेह वश कभी-कभी वे भगवान वेंकटेश्वर से हास-परिहास कर लेते हैं। जैसे श्री वेंकटेश्वर का आवास तिरुमल पहाड़ है। उनके गले में लक्ष्मी (अलमेल मंगा) की प्रतिमा से युक्त एक हार सदा रहता है। हार को अभिषेक के समय भी निकाला नहीं जाता। इसे देख अन्नमाचार्य जी भगवान के कुशल परिहास करते हैं–

"और सभी को कर्म बंध में तुमने बांधा कभी पुरा
वही बंध अब लगा तुम्हें भी, ले लो अपना भला-बुरा।
नारी का वध किया पुरा, नारी को अब गले धरा,
गिरि वन का तब नाश किया, गिरि पति का अब रूप धरा।"[4]

एक और इसी प्रकार का हास–परिहास देखिए–

"दो सतियों की चाह हुई
तो चार भुजाएँ धरनी पड़ी।
बहु नारी सुख लौल्य हुआ
तो तदनुरूप मति करनी पड़ी।"[5]

---

1. देखिए अन्नमाचार्य संकीर्तन–भाग–3, 12 आदि
2. विस्तार के लिए देखिए अन्नमाचार्य और सूर साहित्य का समाज शास्त्रीय अध्ययन–डा. एम. संगमेशम्–अध्याय, 7
3. अन्नमाचार्य संकीर्तन
4. अनुवाद–एम. संगमेशम्
5. अनुवाद–एम. संगमेशम्।

पेद तिरुमलाचार्य भी अपने संकीर्तनों में भगवान बालाजी से हास-परिहास करते हैं। उनका कहना है कि वाह। आपने जो कार्य किये थे, वे केवल आप ही कर सकते हैं। अन्यों को संभव नहीं। जैसे यादवों से आपने इन्द्र पूजा को समाप्त करवाया और पर्वत की पूजा आरम्भ करवाई। इसी प्रकार अर्जुन से शिवपूजा की समाप्त करवा कर अपनी पूजा करवाने लगे। मुनि पत्नियों से उनके पतियों की अवहेलना करवा कर "यज्ञ अन्न" मंगवाया। गोपिकाओं से दही और मक्खन आपने ही ग्रहण कर लिया। यहाँ आश्चर्य इस बात का है कि इन सभी कार्यों के द्वारा आपने इस पृथ्वी पर धर्म की स्थापना की।[1] इसी प्रकार एक अन्य संकीर्तन में राम, कृष्ण परशुराम और वामन आदि की लीलाओं का कथन हास-परिहास के द्वारा करते हैं।[2]

इसी प्रकार से अन्नमाचार्य भी कहते हैं—"वह ! आपने जो कार्य किये थें वे ही कर्म अन्य करते हैं तो उन्हें पाप माना जाता है। लेकिन आपने किया तो वे पुण्य हो गये। उदाहरणार्थ जब प्रह्लाद ने अपने पिता का विरोध किया तो आपने उस बालक का पक्ष लिया। अतः वही धर्म और सत्य माना गया। सुग्रीव और बाली के भाइयों के झगड़े में आपने सुग्रीव का साथ दिया और बाली का संहार किया। वैसे ही जब अर्जुन ने अपने पितामह के विरुद्ध युद्ध करना न चाहा तो आपने स्वयं चक्र धारण कर लिया। ये सभी कार्य इस संसार में नीतियुक्त माने जाते हैं क्योंकि करने वाले आप स्वयं थे।[3] इस प्रकार के हास परिहास केवल निकट मित्र से ही किया जा सकता है। सखी भाव की स्वीकृति ताल्लपाक के कवियों ने भी की है। वे अपने आपको केशव की दासी कहते हैं। सखी के रूप में नायक और नायिका के मिलन कराने के लिए सहयोग देते हैं। नायिका की विरह वेदना को नायक को निवेदन करते हैं। श्रृंगार मंजरी[4] और चक्रवाल मंजरी[5] में वन में वनसंतागमन के कारण नायिका का विरह उद्दीप्त हो जाता है और वह विरह का अनुभव करती है। अतः सखियाँ जाकर वेंकटेश्वर से उसकी तीव्र विरहावस्था का विवरण देकर साथ लाती हैं।

---

1. आध्यात्म संकीर्तन—पद 342
2. वही—पद 346
3. अन्नमाचार्य आध्यात्म संकीर्तन—वाल्यूम—2 पद 316
4. अन्नमार्च—पृष्ठ 7
5. पेदतिरुमलाचार्य, पृष्ठ 18—19

अन्नमाचार्य और पेदतिरुमलाचार्य के श्रृंगार संकीर्तन में नायिका को सखी की सीख, अलमेलमंगा और वेंकटेश्वर के मिलन पर अलमेलमंगा के सौभाग्य पर स्वयं कवि का सखी के रूप में आनन्द पाना आदि वर्ण मिलते हैं। एक सखी नायिका से कहती है—'हे तरुणी ! तुम्हारी किस तपस्या का फल है कि तुम्हारे प्रियतम सदा तुम्हारे साथ रहते हैं और तुम्हारे प्रेम की सदैव इच्छा भी करते हैं। तुमने अपने हास-विलास मधुर-वचन और नैन-कटाक्ष से वेंकटेश्वर को अपने अधीन कर लिया है।[1]

4.5.1.9. आत्म निवेदन : भगवान कृष्ण ने स्वयं अर्जन से कहा है–

"सर्व धर्मान परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।"[2]

भक्त का अपनी सभी इन्द्रियों के साथ-साथ अपनी आत्मा का भी परमात्मा को ही समर्पित करना आत्म निवेदन है। "वैराग्य से प्रेरित होकर भक्त अन्त में भगवान से दुराव-छिपाव न रखकर अपनी दीनता, हीनता तथा पाप कर्मों का व्योरा देकर भगवान के चरणों में आत्म समर्पण कर लेता है। आत्म निवेदन भक्ति की अंतिम सीढ़ी है।"[3] विभीषण का उदाहरण इसके लिए दिया जाता है। इसे ही "प्रपत्ति" अथवा "शरणागति" कहा जाता है। वैष्णव धर्म में शरणागति का महत्वपूर्ण स्थान है।

"स्वामिन सुशील सुलभाश्रित पारिजात
श्री वेंकटेश चरणौ शरणं प्रपद्ये।"[4]

अर्थात् हे प्रभु ! तुम सर्वगुण सम्पन्न, दया समुद्र और सभी लोकों के कर्ता हो। तुम्हें सर्वस्व मालूम है और तुम सारे संसार के आधार हो। गुणवानों के लिए सुलभ साध्य और आश्रित भक्त कोटि के लिए कल्पवृक्ष के समान हो। मैं तुम्हारे चरणों की शरण में आया हूँ। मेरा और कोई उपाय नहीं है। रक्षा करने वाले केवल तुम ही हो। मुझे पार कराने वाले तुम ही हो। इस भाव से जब भक्त भगवान की शरण में जाता है तो भगवान उसका उद्धार करते हैं। इसके लिए गजेन्द्र की कथा का उदाहरण देते हुए श्रीवैष्णव संप्रदाय में शरणागति तत्व को अत्यन्त महत्व दिया गया है।[5] श्रीमद् भागवत में ही नहीं वरन् अन्य भक्ति ग्रंथों में भी शरणागति का महत्व स्वीकृत है।

---

1. अन्नमाचार्य श्रृंगार संकीर्तन–पद 66
2. श्री मद्भगवद्गीता
3. सूर और पोतना की भक्ति पद्धति–डा. सी. एच. रामुलु, पृष्ठ 194
4. श्री वेंकटेश्वर सुप्रभातम् प्रपत्ति–श्लोक, 2
5. श्री गौरिपेद्दि राम सुब्ब शर्मा के आधार पर

सूरदास जी ने आत्म दोष और अपनी अकिंचनता का प्रकाशन करते हुए, अभिमान के त्याग, दीनता और आत्म निवेदन सहित भगवान की शरण पाने के लिए अनेक आर्त विनय के पद लिखे हैं। वे कहते हैं—

"प्रभु मेरे गुन अवगुन न विचारो।"[1]

परमानन्ददास जी का कथन है—

"अब डर कौन कौ रे मैया······

परमानन्ददास को ठाकुर सब प्रकार सुख देया।[2]

नंददास जी कहते हैं—"हे भगवान् जब तक लोग तुम्हारी पूर्ण शरण में नहीं जाते तभी तक वे रागादिक से सताये जाते हैं।"[3] कृष्णदास भी इसी प्रकार कृष्ण से अपने को शरण में लेने की प्रार्थना करते हैं।

"तिहारी चरन को हों शरन,······

कृष्णदासनि तेरोई बल बिरह जलनिधि तरन।"[4]

इसी प्रकार ताल्लपाक के कवि भी स्थान-स्थान पर शरणागति की प्रार्थना करते हैं—"ते शरण महंते शरण महं शैशव कृष्ण ते शरणं गतोस्मि।"[5] एक संकीर्तन में वे भगवान् की लीलाओं के साथ-साथ शरणागति तत्व का भी प्रतिपादन करते हैं कि—"तुम्हारी कथाओं को सुनकर मुझे आश्चर्य होता है। तुम्हारे समान अन्य कोई नहीं। मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ। तुम्हारे अकारण बांधव्य को हमने अहिल्या के उद्धार रूप में पाया है। गजेन्द्र उद्धार से तुम्हारे आर्त रक्षक तत्व मुझे मालूम हुआ। आपत्ति में तुम सहायक बनते हो—इसका उदाहरण द्रौपदी की रक्षा से मिला। "शरण" में आते ही विभीषण को अपना लिया। तुम्हारी भक्त वत्सलता शबरी से, अनाथ के नाथ का उदाहरण सुग्रीव से, निर्हेतुक प्रेम का उदाहरण राजा परीक्षित और तुम अपने दासों के वश में रहते हो—इसकी जानकारी प्रह्लाद की कथा से हुई। गोवर्धन उद्धार से तुम्हारे सर्व जीवों पर दया का भाव प्रकट हुआ।"[6]

---

1. सूरसागर—पद 111
2. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय—डा. दीनदयाल गुप्त—के आधार पर पृष्ठ 674
3. वही
4. वही—पृष्ठ 675
5. अध्यात्म संकीर्तन—अन्नमाचार्य पद 401
6. वही वा. 2—पद—321

अपने दीन-हीन भावों को इस प्रकार कहते हैं—"तुम तो पुरुषोत्तम हो, मैं एक अधम हूँ। मुझमें अच्छाइयाँ ही कहाँ हैं ? मैंने अनंत अपराध किए। किन्तु तुम्हारी दया भी अनंत है। तुम्हें न जानना मेरा गुण है तो मुझे न छोड़ना तुम्हारा गुण। सभी से याचना करना मेरा लक्षण है तो सभी की रक्षा करना तुम्हारा लक्षण है। मैं अज्ञानी हूँ। तुम ज्ञानी हो।"[1] अतः मैं तुमसे शरण माँग रहा हूँ। मेरा उद्धार करो।

पेद तिरुमलाचार्य भी शरणागति की महत्ता स्थान-स्थान पर गाते हैं। उनका कहना है कि हमें भी विभीषण के ही समान शरणागति तत्व को ही अपनाना है जो अत्यन्त सुलभ है। वे कहते हैं— 'हे माधव ! आपने अर्जुन को गीता सुनाये, विश्वरूप दिखाकर अभय वचन दिया और अपने को जानने का उपदेश दिया। पहले "राम" कहकर दो अक्षर जप किये वाल्मीकि ब्रह्मर्षि बन गए और आपके कृपा के पात्र भी हो गये। आपके नाम संकीर्तन के बल नारद महर्षि कृतार्थ हो गये। आपकी शरण जाकर विभीषण चिरंजीवी बन गये। हे वेंकटेश्वर ! हमें भी यही मार्ग सुगम है।"[2]

एक अन्य स्थान पर वे कहते हैं[3]—"हे मधुसूदन ! शास्त्रों को अगर पढ़ने बैठता हूँ तो अनेक प्रकार के संशय मुझे घेर लेते हैं। अगर न पढ़ूँ तो अज्ञान नहीं छोड़ता। तुम्हें ढूँढने के लिए चारों ओर ढूँढूँ तो सांसारिक मोह पकड़ लेते हैं। इसलिए आँखें मूँदता हूँ तो नाना प्रकार की चिन्तायें आ जाती हैं। पुण्य करूँ तो बन्धन और न करूँ तो नास्तिकता। अतः तुम्हारे दासों के मार्ग में मैं भी चलकर केवल तुम्हारी शरण में आना ही उत्तम और सरल उपाय मानता हूँ। मैं शरण मैं आऊँ तो तुम मेरी रक्षा अवश्य करोगे।" पेद तिरुमलाचार्य ने अपनी अन्य रचनाओं में भी अपने को अत्यन्त दीन, हीन तथा मलिन मानते हुए परमात्मा से शरण की याचना की है।

"शरणागति" का शास्त्रीय रूप भी "पाँचरात्र संहिता" में प्राप्त है। उसके अनुसार—"अनुकूलस्य संकल्पः प्रतिकूलस्य वर्जनम्।

रक्षिष्यतीति विश्वासो गोतृप्त वरणं तथा
आत्म निक्षेप कार्यण्यो षड्विधा शरणागतिः"[4]

---

1. अध्यात्म संकीर्तन—अन्नमाचार्य—वा. 2 पद—53
2. अनुवाद : श्री एम. संगमेशम्—सप्तगिरि पत्रिका, पृष्ठ 27
3. वैराग्य वचन मालिका गीतालु, 18
4. अष्टछाप और बल्लभ संप्रदाय—डा. दीनदयाल गुप्त, पृष्ठ 671

अष्टछाप एवं ताल्लपाक के कवियों की रचनाओं से शरणागति के इस शास्त्रीय पक्ष का निरूपण भी किया जा सकता है।

4.5.1.9.1. आनुकूल्य का संकल्प :भगवान को प्राप्त करने में जो साधन अनुकूल पड़ते हैं उन्हीं को अपनाने का दृढ़ संकल्प भक्त लोग करते हैं। इसके लिए भक्त के स्वयं संकल्प की विशेष आवश्यकता होती है। सूरदास जी का यह पद इस संदर्भ में दृष्टव्य है—

"पतित पावन सरन आयो।

उदधि—संसार सुभ नाम-नौका तरन,.........

सूर प्रभु चरण चित चेतन करत, ब्रह्म—सिव से सुक सनक ध्यायो।"[1]

इसी संदर्भ में अन्नमाचार्य जी का कहना है—

"इदिये नाकुमतमु इदिये व्रतमु

नुडुट कर्मंमु नोल्लनिकनु।"[2]

अर्थात् आपके शरण में आना ही मेरा धर्म है, मेरा मत है। आपका दास कहलवाने से ही मुझे "इह" तथा "पर" सुख मिल जायेंगे। आपके शरण में आना ही कई जप, तप, धर्म आदि के समान है।

4.5.1.9.2. प्रतिकूलस्य वर्जनम् : केवल अनुकूल विषयों का संकल्प करने मात्र से कुछ नहीं होता। प्रतिकूल विषयों को छोड़ने की भी आवश्यकता होती है। सूरदास जी स्पष्ट कहते हैं—

"तजो मन, हरि विमुखन को संग।

जिनके संग कुमति उपजति है,

परम भजन मैं भंग।"[3].........

अन्नमाचार्य जी भी इसी प्रकार से कहते हैं—

"प्रपन्नुलकु निदि परमाचारमु

विपरीताचारामु विडुवग वलयु।"[4]

उनके अनुसार वैष्णव धर्म यही है कि भगवान तथा भागवतों का अपचार न करना, भगवान को ही एक मात्र संरक्षक मानकर शरण में जाना। दुरहंकार, दुःख, सुख आदि प्राकृतिक विषयों को जीतकर परिशुद्ध रूप से धर्म को न छोड़ना ही वैष्णव धर्म है।

---

1. सूरसागर—पद 119
2. अध्यात्म संकीर्तन—पद 172
3. सूरसागर—पद—332
4. अध्यात्म संकीर्तन—83 पद

4.5.1.9.3. रक्षिष्यतीति विश्वास : गीता में कहा गया है—"संशयात्मा प्रणस्यति ।" अर्थात भगवान के सर्वरक्षक तत्व अथवा सर्वशक्ति तत्व पर भक्त को कुछ संशय नहीं होना चाहिए । उसे ऐसा दृढ़ विश्वास होना चाहिए कि भगवान सदा मेरी रक्षा किसी भी अवस्था में करेंगे । सूरदास जी ने कितनी दृढ़ता के साथ यह बात कही है—

"जाके दीनानाथ निवाजें
भवसागर मैं कबहुं न झुके, अभय निसाने बाजें ।"[1]

परमानन्दन दास जी कहते हैं—

"जाको तुम अंगीकार कियो,
तिनको कोटि विघन सब टारै अभय प्रतापु दियो ।
बहु सासना दई प्रह्लादै, सबहिं निसंक जियो ।
निकसे खंम मध्य ते नरहरि आपुन राखि लियो ।
दुर्वासा अम्बरीस सतायो सो पुनि शरण गह्यो ।"[2]

अपनी संशयहीनता के बारे में प्रमुख उद्धरणों को देते हुए ताल्लपाक के कवि इस प्रकार कह रहे हैं—

"इदिये कामनिदान मिदिये मूलधनम
इदिये नम्मुट गाक नितरमु लेला
'नमे भक्त प्रणश्यति' यनुमाट
अमोघमे नीवानतिय्यगा.........
नाडु "मामेकं शरणं ब्रज" यनुमाट
...   ...
अलमुचु तुदि पदमे युंडगा
....
गलिगे नी करुण कथलु नेल ।"[3]

अर्थात् "हे भगवान । आपने 'मामेकं शरणं ब्रज,' 'योगक्षमं वहाम्यहं' आदि वाक्यों के द्वारा हमें बहुत पहले ही भक्तों की रक्षा करने का वादा किया था । अब हमें और भय था संशय कुछ नहीं हैं । क्योंकि हम आपकी शरण में आ गये हैं ।"

---

1. सूरसागर—पद 36
2. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदान—डा. दीनदयाल गुप्त, पृष्ठ 674
3. पेदतिरुमलाचार्य आध्यात्म संकीर्तन—पद 57

4.5.1.9.4. गोतृप्तवरणम् : आपके बिना मेरा कोई रक्षक नहीं है—इस भावना से सर्वशक्तिमान भगवान को अपना रक्षक मानना । उनके इस रक्षक स्वरूप का वर्णन करते हुए सूरदास जी कहते हैं—

"हरि जु तुम तैं कहाँ न होई ?
बोल गुंग पंगु गिरि लंधे अरु आवै
अंधी जग जाई ।"[1]

अन्नमाचार्य जी भी भगवान से अपनी रक्षा के लिए याचना करते हैं और कहते हैं—

"हरिकि मोर वेट्टिते
अन्नि पनुलु लेस्सवुनु ।"[2]

अर्थात् हरि से हम प्रार्थना करेंगे यो सब कार्य ठीक हो जायेंगे । यह जीव अधिक समय तक अपने वैरियों से लड़ नहीं सकता, अत. वे "त्वमैव शरणं त्वमैव शरणं । कमलोदर श्री जगन्नाथा ।" की करुणा पुकार करते हैं ।

4.5.1.9.5. आत्मनिक्षेप अथवा आत्म समर्पण :

अपने आपको मनसा, वाचा, कर्मणा भगवान को समर्पित कर निर्मल जीवन व्यतीत करना आत्म समर्पण की भावना है । सूरदास जी अपना सर्वस्व समर्पण करते हुए कहते हैं—

"मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै ।
"जैसे उड़ि जहाज को पँछी फिर जहाज पर आवे ।"[3]

इसी प्रकार परमानन्ददास जी और अष्टछाप के अन्य कवियों ने भी सम्पूर्ण आत्म समर्पण सम्बन्धी उल्लेख किये हैं ।[4] इसी संदर्भ में ताल्लपाक के कवि इस प्रकार कहते हैं कि—"मेरा सम्पूर्ण भार आप पर डाल कर जीना ही अच्छा है क्योंकि आप मेरे लिए हैं । पहले आपने गजेन्द्र तथा द्रौपदी की रक्षा इसी प्रकार आत्म समर्पण के ही कारण की थी ।"[5] इस प्रकार अपनी रक्षा, पोषण, विपत्तियों से दूर करना मोक्ष दिलाना आदि सभी भार भगवान पर डाल कर भक्त स्वयं निश्चित हो जाते हैं ।

1. सूरसागर—पद 95
2. अध्यात्म संकीर्तन—6
3. सूरसागर—पृष्ठ 15
4. देखिए—अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय—डा. दीनदयाल गुप्त, पृष्ठ 676-677
5. अध्यात्य संकीर्तन—भाग-2 पद 31

4.5 1.1.6 कार्पण्य : दंभ और अहम् की भावना को छोड़ कर भगवान की अनुग्रह की प्राप्ति के लिए अत्यन्त दीन भाव को ग्रहण करना ही कार्पण्य कहलाता है। 'मैं अकिंचन हूं, मुझे और गति नहीं हैं। आप ही को मेरा उद्धार करना होगा'—इस प्रकार के भाव के कई पद सूर तथा अन्य अष्टछाप के कवियों की रचनाओं में हैं। सूर कहते हैं—

"प्रभु मेरे अवगुण चित न धरो।"[1]

तथा

शरण आये की लाज उर धरिये।[2]

सूर अपने आपको एक अशक्त दीन चिड़िया से तुलना करते हैं।[3]

ताल्लपाक के कवि भी अत्यन्त दीनहीन भावना से भगवान से प्रार्थना करते हैं। वे अपनी भूलों को करोडों की संख्या में मानते हैं। अतः रक्षा करने का भार आपका ही है। मैं अधमाधम हूँ। मेरा उद्धार करो इतना ही नहीं वे "अपने आपको एक अधम याचक तथा परमात्मा को एक शक्तिमान् दाता मानते हैं। उनका कहना है कि मैंने बहुत ढूंढ़ ढूंढ कर आपको पाया है। आप मुझे छोड़ना नहीं। मैं आपका दास हूँ। आप ही मेरे स्वामी हैं।"[4]

ऊपर कथित नवधा भक्ति का विवरण पुराण के आधार पर है। नारद तथा शांडिल्य के भी भक्ति सूत्रों के अध्ययन से पता चलता है कि उनमें तत्वतः कोई अन्तर नहीं है। जैसे

5.6. नारद जी द्वारा प्रतिपादित आसक्तियाँ :

	नवधा भक्ति
1. गुण माहात्म्यासक्ति	1. श्रवण
	2. कीर्तन
2. पूजासक्ति	3. अर्चन
	4. पाद सेवन
	5. वन्दन
3. स्मरणासक्ति	6. स्मरण
4. दास्यासक्ति	7. दास्य

1., 2. सूरसागर—पृष्ठ 9

3. अन्य कवियों के लिए देखिए—अष्टछाप और बल्लभ संप्रदाय
—डा. दीनदयाल गुप्त, पृष्ठ 672—673

4. आध्यात्म संकीर्तन—पद 299

5. सख्यासक्ति
6. आत्म निवेदनासक्ति
7. रूपासक्ति
8. वात्सल्यासक्ति
9. कान्तासक्ति
10. तन्मयतासक्ति
11. परम विरहासक्ति

8. सख्य
9. आत्मनिवेदन

प्रेमलक्षणा
(सूरदास जी द्वारा जोड़ी गयी)

इन समस्त आसक्तियों का समाहार दास्य, वात्सल्य सख्य और कान्ता-सक्ति में हो जाता है। ये इन मुख्य आसक्तियों के अंग हैं।[1] इसी संदर्भ में नारद जी द्वारा कथित अंतिम चार भक्ति भेदों का भी परिचय देना समीचीन होगा।

4.6.1. वात्सल्यासक्ति : निष्काम भक्ति का उत्कृष्ट उदाहरण वात्सल्या-सक्ति है। यह सर्वव्यापक भाव है जिसमें न तो विरक्ति की भावना है न इन्द्रिय सुख की कामना। केवल सर्वशुद्ध भाव है। डा. दीनदयाल जी गुप्त के शब्दों में—"परमेश्वर बालक है, पुत्र है और मैं उसकी पालक माता हूँ, धात्री हूँ, मैं उसका पिता हूँ। शिशु के प्रति यह भाव वात्सल्य प्रीति अथवा वात्सल्य भक्ति है।"[2] यशोदा और नन्द इसके श्रेष्ठ उदाहरण हैं।

वात्सल्य के सम्बन्ध में सूर की तो कोई भी कवि बराबरी नहीं कर सकता। उन्होंने वात्सल्य के दोनों संयोग एवं वियोग पक्षों का विस्तृत विवेचन किया है। सच्चा मातृ हृदय उनमें है। कितने उदाहरण दें—

"हरिकिलकत जसुदा की कनियां।"[3]
"जसुमति मन अभिलाष करे।
कब मोरो लाल घुटरन रेंगो
कब धरनी–पग द्वैक धरै।"[4]
संदेशों देवकी सो कहियो।[5] आदि आदि।

ताल्लपाक के कवि भी बालकृष्ण की विविध विनोदमय लीला चेष्टाओं का वर्णन अत्यन्त तल्लीनता से करते हैं। बालक कृष्ण को नहलाने, धुलाने

1. सूरदास और वामन पंडित—डा. सुशीला व्यापारी, पृष्ठ 434
2. अष्टछाप और बल्लभ संप्रदाय, पृष्ठ 598
3. सूरसागर–पद 699
4. वही—694
5. वही—3793

खिलाने-पिलाने, लोरियाँ गाने आदि में कवि अत्यन्त आनंद पाते हैं। कवि स्वयं एक सखी बन कर कह रहें हैं—

"मोत्तकुरे यम्मलाला मुद्दुलाडुवीडे
मुत्तेमुवलेनुन्नाडु मुद्दुलाडु।"[1]

इस संकीर्तन में कृष्ण लीलाओं के वर्णन के साथ-साथ अन्त में जब गोपिकायें कृष्ण के बारे में यशोदा से शिकायत करने आती हैं तो वहाँ कृष्ण को अपनी माँ की गोद में दूध पीते हुए देख आश्चर्य में पड़ जाती हैं। कवि का कहना है कि माँ अपने आँखों में वात्सल्य को बरसाती हुई, कृष्ण के सिर पर प्यार से हाथ फेर रही है। एक अन्य पद में माता यशोदा कहती हैं कि अरेरे ! बालक को ऐसा हाथों में बहुत अधिक मत घुमाओ। अभी-अभी दूध पिया है। शायद उसके पेट के अन्दर तीनों लोक ही उथल-पुथल हो जाएँगे।[2] इसमें एक माँ की उत्कंठा और एक भक्त का तड़पना भी है। पद पढ़ने से लगता है कि यशोदा में और अन्नमाचार्य का तादात्म्य हो गया है। कितने ही उदाहरण हैं इस प्रकार के।

4.6.2. कान्तासक्ति : श्रीकृष्ण के प्रति रुक्मिणी और सत्यभामा के प्रेम का उदाहरण कान्तासक्ति के लिए नारद महर्षि ने दिया है। वास्तव में अष्टछाप एवं ताल्लपाक के कवियों के शृंगार सम्बन्धी रचनाओं को इसके उदाहरण मान सकते हैं।

4.6.3. परम विरहासक्ति : ब्रज की गोपिकाओं को इसका श्रेष्ठ उदाहरण नारद जी ने माना है। अष्टछाप एवं ताल्लपाक के कवियों की रचनाओं में गोपिकाओं के तथा अन्य विरह सम्बन्धी सभी रचनायें इसके सुन्दर उदाहरण हैं।

4.6.4. तन्मयतासक्ति : इसका उदाहरण नारद जी ने सनत्कुमार और याज्ञवल्क आदि का दिया है। जीवात्मा और परमात्मा के मिलन के समय उत्पन्न तन्मयता का उदाहरण गोपिकाओं और कृष्ण के महारास के संदर्भ में दे सकते हैं। इसका वर्णन अष्टछाप के कवियों ने एवं ताल्लपाक के कवियों ने शृंगार संकीर्तनों के साथ अन्य रचनाओं में भी किया है।

4.7. माधुर्य भक्ति : माधुर्य भक्ति के सम्बन्ध में चैतन्य संप्रदाय में श्री रूप गोस्वामी का कथन है कि माधुर्य एक पृथक रस है। कृष्ण और

---

1. ताल्लपाक अन्नमय्य पाटलु, पृष्ठ 19
2. ताल्लपाक अन्नमय्य पाटलु, पृष्ठ 127

गोपियाँ तथा ब्रजाँगनाएँ आदि इसमें उद्दीपन विभाव हैं। स्वेद, कंप, रोमांच, विवर्णता आदि अनुभाव हैं। निर्वेद, हर्ष, आदि व्यभिचारी भाव हैं। कृष्ण में रति स्थायी भी है। शृंगार रस के समान विप्रलंभ और संयोग अवस्थायें भी इसमें पायी जाती हैं।[1] अर्थात् परमेश्वर मेरा पति है और मैं उसकी पत्नी हूँ। अथवा परमेश्वर प्रिय है और मैं उसका प्रेमी हूँ या परमात्मा प्रेमी है और मैं उसकी प्रिया हूँ। इस प्रकार भक्त का परमेश्वर से सम्बन्ध जोड़ना ही माधुर्य भक्ति है। "लोक में प्रेम के जितने भिन्न-भिन्न सम्बन्ध हो सकते हैं उन सबको भक्तों ने लोक से हटा कर ईश्वर के साथ जोड़ा है, यहाँ तक कि ऐंद्रिय विषयों में अनुरक्त लोगों को संसार—विषय से छुड़ाने के लिए भक्ति शास्त्र के आचार्यों ने ईश्वर को ही उनकी विषय तृप्ति का साधन बताया।"[2] इतना ही नहीं, "कृष्ण भक्तों की आँखें लोक रूप को छोड़ साकार भगवान की रूप—मधुरी से, कान लोक विषयक स्वर को छोड़ कृष्ण के मुरली नाद में, जिह्वा उनके अधरामृत में, त्वचा उनके आनन्दकारी स्पर्श से तथा मन उनके साथ रमण से तृप्ति लाभ करते हैं। मर्यादा भक्ति में भगवान के साथ वे ही भाव जुड़ते हैं जो लोक मर्यादा से सम्मत हैं।.........इसमें अच्छे बुरे सभी सम्बन्ध परमात्मा से हैं।"[3]

माधुर्य भक्ति का प्रचार और प्रसार यद्यपि 16–17 वीं शताब्दियों में विशेष रूप से हुआ, पर इसका आरम्भ अत्यन्त प्राचीन है। श्रीमद् भागवत में तथा आलवारों के पदों में यही भाव मिलता है। नम्मालवार, तिरुमंगेयालवार और आंडाल की रचनाओं में मधुर रस भरा हुआ है। नम्मालवार ने उपास्य देव के मिलन को आध्यात्मिक सहवास की संज्ञा देते हुए तीन प्रकार से प्रेम को मुख्य साधन ठहराया है—जो क्रमश: सख्य, वात्सल्य और माधुर्य कहे जा सकते हैं। किन्तु इन तीनों में से उन्होंने माधुर्य को ही प्रधानता दी है।[4]

एक स्त्री होने के कारण आंडाल की रचनओं में सहजता और स्वाभाविकता थी। माधुर्य भक्ति की तन्मयता की अनुभूति तीन प्रकार से की जा सकती है—

---

1. हिन्दी और मलयालम में कृष्ण भक्ति काव्य
—डा. के. भास्करन् नायर, पृष्ठ 147
2. अष्टछाप और बल्लभ संप्रदाय—डा. दीनदयाल गुप्त, पृष्ठ 621
3. वही—पृष्ठ 622
4. मध्यकालीन प्रेम साधना—डा. परशुराम चतुर्वेदी के आधार पर।

1. कान्ताभाव से, 2. गोपी भाव से और 3. सखी भाव से ।

अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों की श्रृंगार सम्बन्धी सभी रचनाओं में मधुर भक्ति सम्बन्धी सभी तत्वों का समावेश है । जैसे भक्ति में स्त्रीभाव, स्वकीय एवं परकीय भाव, संयोग-वियोग आदि आदि । अर्थात् लौकिक पक्ष में जो श्रृंगार रस है वही भक्ति के क्षेत्र में मधुर भक्ति है । इन कवियों के लिए गोपियां एवं अन्य नायिकायें कृष्ण के प्रति अपने अटूट प्रेम के लिए आलम्बन ही नहीं वरन् साधन मात्र भी हैं । वल्लभ सम्प्रदाय में प्रेमभक्ति की प्राप्ति में भगवत्कृपा अथवा पुष्टि को बड़ा महत्व दिया गया है । अतः अष्टछाप के काव्य में मधुर भक्ति के उदाहरण बहुत अधिक मात्रा में दिखाये जा सकते हैं । उदाहरण के लिए—

सूरदास जी की प्रार्थना यही है कि—

"प्रेम भक्ति बिनु मुक्ति न होई,
नाथ कृपा कर दीजै सोई ।"[1]

यद्यपि कृष्ण से प्रेम करने वाली कुमारिकायें तथा विवाहिता गोपियाँ भी थीं किन्तु अष्टछाप के कवियों ने स्वकीया के रूप में ही गोपियों को अधिक चित्रित किया है । विवाह न होने पर भी वे गोपियाँ लोक-लाज, कुल मर्यादा आदि के बंधनों को तोड़ कर कृष्ण प्रेम में आगे बड़ गयीं । संयोग और वियोग दोनों स्थितियों में उनका प्रेम एक रूप और अचंचल है । उनके आत्म समर्पण अनन्य भाव की छटा दानलीला, चीरहरण लीला और रासलीला में चरम परिणति को प्राप्त हुए हैं । संयोग हो या वियोग—उनका मन कृष्ण-मय है—

"नाहिं न रह्यो मन में ठोर ।"[2] तथा
"उर में माखन चोर गड़े ।
अब कैसेहुं निकसत नहिं ऊधो तिरछे ह्वै जु अड़े ।"[3]

शरीर तो ब्रज में है लेकिन मन ?

"ऊधो मन नहिं हाथ हमारे ।
रथ चढ़ाय हरि संग गये ले मथुरा जो सिधारे ।"[4]

नन्ददास परकीया भाव को महत्व देते हुए कहते हैं—

---

1. सूरसागर—पद 4919
2. भ्रमर गीत—पद 27
3. वही—पद 37
4. वही—पद 51

"तजि तजि तिहि छिन गुनमय देह ।
जाइ मिलीं करि परम सनेह ।
जद्यपि जारबुद्धि अनसरी ।
परमानन्द कंद रस भरी ।"[1]

नन्ददास के कृष्ण सर्वात्मा हैं। यह वही ब्रह्म है जिनके विषय में वेद नेति-नेति कहते हैं और इस प्रकार उन्हें अगम बताने की चेष्टा करते हैं। परन्तु इनकी विशेषता यह है कि यह अगम होते हुए भी प्रेम से सुगम हैं।··· इसीलिए कवि इनकी अगम, अनादि, अनन्त, अबोध आदि नकार और नीरस शब्दों में स्तुति नहीं करता, वरन् उसके लिए कृष्ण आनन्दघन रसमय रसकारण और स्वयं रसिक हैं। ऐसे ही कृष्ण उनके आराध्य हैं और उसकी प्रेमाभक्ति के आलंबन हैं। राधा इन्हीं रसमय कृष्ण की प्रिया हैं। दोनों की जोड़ी अद्भुत है। कवि के शब्दों में[2]

"दूलह गिरिधर लाल छबीलो दुलहिन राधा गोरी ।"

परमानन्ददास जी एक गोपी के मुख से कहलवाते हैं—"मैंने तो कृष्ण से प्रेम किया है। यदि लोग इसे पातिव्रत्य कहेंगे तो अच्छा और यदि व्यभिचार कहेंगे तो भी अच्छा ही है। "वस्तुतः इन कवियों का उद्देश्य यह सिद्ध करना है कि जिस भगवान को प्राप्त करने के लिए ऋषि–मुनि संसार त्याग करते हैं, उसे गोपियाँ इहलोक में ही अपने शुद्ध तथा आनन्द प्रेम द्वारा प्राप्त कर लेती हैं।"[3]

चतुर्भुजदास, गोविन्द स्वामी और छीत स्वामी ने भी इसी माधुर्य भक्ति को अपनाया है।[4]

ताल्लपाक के कवियों की रचनायें भी शृंगार रस, जिसे भक्ति के क्षेत्र में माधुर्य भक्ति कहा जाता है, से भरी हैं। ताल्लपाक के कवियों पर एक ओर आलवारों के प्रगाढ़ प्रभाव के कारण प्रेम भक्ति की स्निग्ध धारा मिलती

---

1. भाषा दशम स्कंध—नन्ददास (शुक्ल) पृष्ठ 321–22
2. ब्रजभाषा के कृष्ण काव्य में माधुर्य भक्ति
—डा. रूपनारायण, पृष्ठ 416 के आधार पर
3. हिंदी और मलयालम में कृष्ण भक्ति काव्य
—डा. के. भास्करन् नायर, पृष्ठ 148
4. विस्तार के लिए दृष्टिव्य है—ब्रजभाषा के कृष्ण काव्य में माधुर्य भक्ति—डा. रूपनारायण।

है तो दूसरी ओर भागवत पुराण, गीत गोविन्द और कृष्ण कर्णामृत में प्रतिपादित गोपिका भक्ति की सुमधुर धारा भी विराजमान है। इनके इष्टदेव भगवान बालाजी का प्राकट्य तिरुमल पहाड़ पर होने के कारण वहाँ की भील, किरात आदि नायिकाओं का सहज प्रेम भी अंतर्वाहिनी की तरह निर्मल रूप में दृष्टिगत होता है। अतः उनकी माधुर्य भक्ति. अत्यन्त विस्तीर्ण और अतीव गंभीर हो कर, संयोग-वियोग रूपी दोनों कूलों को लांघती हुई चल कर श्री वेंकटेश्वर के दिव्य चरणों में विश्राम लेती है।[1] नायिका भाव में अन्नमाचार्य कभी अपने को भगवान वेंकटेश्वर की देवी अलमेल मंगा मानते हैं और प्रीति पुरातन वाली वात कहते हैं—"सखि, मैं अलमेल मंगा हूँ वेंकटेश की प्रिय पत्नी, सुन वे मुझसे यहीं मिले, तभी बने हम पति-पत्नी।"[2] अपने आपको वेंकटेश्वर की दासी मात्र कहलवाना उसे अच्छा लगता है। चीरहरण-लीला, दान-लीला, मान-लीला आदि प्रसंगों में गोपियों की शृंगार भक्ति का वर्णन है। ताल्लपाक के कवियों के इस मधुर रस के संयोग या वियोग किसी भी पक्ष में लौकिकता की गंध नहीं है। वे नायक के भगवत् स्वरूप को एक पल के लिए भी नहीं भूलते। अतः यह अमलिन शृंगार भक्ति है। ताल्लपाक के कवियों के शृंगार संकीर्तनों की एक ऐसी विशेषता है कि पद का आरम्भ नायक या नायिका के विरह के वर्णन से होता है किन्तु अन्त संयोग के मधुर संकेत से ही करते हैं। इन्होंने भी स्वकीया; परकीया आदि भेद भावों के साथ साथ शृंगार रस के शास्त्रीय पक्ष के एक अंग को भी अछूता नहीं छोड़ा। नायिका के रूप में अन्नमाचार्य की यही चाह हैं—

"यहीं रहें फिर कहीं रहें,
मैं उनकी हूँ, वे मेरे।
कुशल रहें, बस यही चाहती
उनके हित में हित मेरे।"[3]

आलोच्य कवियों में परम्परागत सभी मधुर भक्ति धाराओं का सामंजस्य पूर्ण रूप प्राप्त होता है। आलवारों की अज्ञात नायिका ताल्लपाक के कवियों की रचनाओं में अलमेल मंगा है तो भागवत की प्रमुख गोपी सूर तथा अन्य अष्टछापी कवियों की राधा बन कर स्पष्ट होती है। दोनों की राधा स्वकीया

---

1. अन्नमाचार्य और सूरदास—डा. एम. संगमेशम, पृष्ठ 175
2. अनुवाद—डा. एम. संगमेशम। 3. अनुवाद—डा. एम. संगमेशम

ही है। क्योंकि अष्टछापी कवियों ने स्थान स्थान पर श्याम-राधा के विवाह का वर्णन किया है—देखिए उदाहरण के लिए नन्ददास की एक सखी कहती है—"हे सखी, श्रीकृष्ण के साथ राधा के ब्याह का शुभ अवसर निश्चित कर लिया गया है ·········राधा-कृष्ण को वधू-वर के रूप में देख कर मैं बलि जाती हूँ।"[1]

वहाँ ताल्लपाक के कवियों ने कृष्ण और वेंकटेश्वर में अभेद मानने के कारण उनको रचनाओं में गोपियाँ ही नहीं राधा भी उसी भगवान बालाजी की नायिका स्वाभाविक रूप से बन जाती है। यथा—

"अभिशोभितैयं राधा, सतत विलास वशा राधा।
....

श्री वेंकटगिरि देव कृपा मुद्रा वैभव सनाथा राधा।"[2]

अंत में इतना ही कहना उचित होगा कि गोपियों ने अपने पूर्व जन्म पुण्य के बल से भगवान के साथ सुख भोगने के लिए कृष्ण के साथ अवतार लिया है। अत: ऋषि मुनियों ने कठोर तपस्या या साधना के साथ भगवान को पाने का जो प्रयत्न किया है उसे गोपियाँ अपनी शुद्ध प्रेम के कारण आसपास ही पा लेती हैं। इसीलिए नन्ददास ने ठीक कहा है—

"प्रेम-धुजा रस रूपिनी, उपजावनि सुख पुंज।"[3]

4.8. भक्ति साधन :

अष्टछाप की पुष्टिमार्गीय भक्ति साधना :

4.8.1. प्रस्तावना : तात्विक दृष्टि से वल्लभाचार्य जी के जिस संप्रदाय को शुद्धाद्वैत वाद कहते हैं, उसे ही साधना की दृष्टि से "पुष्टिमार्ग" कहते हैं। "पोषणं तदनुग्रहः" के आधार पर इस मार्ग का साधन भगवान के अनुग्रह से पोषित होता है। श्री वल्लभाचार्य जी ने अपने अणुभाष्य, तत्वदीप सुबोधिनी, तत्वदीप निबन्ध आदि ग्रंथों में शुद्धाद्वैत सम्बन्धी विचारों का विस्तृत विवेचन किया। अष्टछापी कवि इसी पुष्टिमार्ग में दीक्षित थे। अत: उनकी रचनाओं में पुष्टिमार्गीय भक्ति का स्वरूप दर्शन स्वाभाविक है। वल्लभाचार्य जी की जिस प्रकार की स्वच्छ प्रतिभा और समर्पित व्यक्ति की आवश्यकता थी, उन्हे मानों "सूर" में मिल गया। "श्रीवल्भाचार्य जी ने विशुद्ध प्रेम को ही शुद्ध पुष्टि कहा है। अतएव पुष्टि भक्ति में प्रेम को महत्व दिया गया

---

1. डा. भास्करन नायर के आधार पर
2. आध्यात्म संकीर्तन—49
3. भ्रमरगीत पद—1

है। विशुद्ध प्रेम के दृष्टान्त गोपियाँ हैं। इसीलिए आचार्य जी ने परमदेव् श्रीकृष्ण की प्राप्ति के लिए गोपियों की प्रेम भावना वाली सेवा को प्रकट किया है।"[1]

पुष्टि मार्ग के अन्तर्गत भक्त परमेश्वर की करुणा और अनुग्रह पर निर्भर करता है। अष्टछाप के कवि कई स्थानों पर भगवान के नाम स्मरण तथा उनके अनुग्रह का वर्णन करते हैं। जैसे—

"जान अज्ञान नाम जो लेई।
हरि बैकुण्ठ-वास तिहिं देई।
बिन जानैं कोऊ औषध खाई।
ताकी रोग सकल नसि जाई।"[2]

इसीलिए उन्हें और कुछ चाह नहीं। केवल भगवद् भक्ति की ही याचना करते हैं कि "अपनी भक्ति देहु भगवान।" (सूर)

यह केवल भक्ति की ही चाह क्यों? क्योंकि उन्हें मालूम है कि भक्ति की उत्पत्ति भी भगवान की कृपा से ही संभव है। अपार कृपा अपने भक्तों पर अकारण ही बरसाने वाले केवल कृपालु भगवान ही हैं। सूर के शब्दों में, "ऐसी को सकै करि तुम बिनु मुरारी।"[3] हरि की कृपालुता का वर्णन अष्टछाप के अपने पदों में ही नहीं वरन् गजेन्द्र का उद्धार, प्रह्लाद की कथा आदि प्रसंगों में भी हुआ है।

पुष्टिमार्ग में गुरु की महानता और सत्संग की महिमा को स्वीकारा गया है। इसीलिए अष्टछाप के सभी कवियों ने मुक्त कण्ठ से गुरु की महिमा का गान किया है, और सत्संग की महानता का भी है।

पुष्टिमार्ग में गोपियों के शुद्ध प्रेम को महत्व दिया गया है। गोपियों को तीन प्रकार का माना गया है जो हैं—ब्रजांगनायें, गोप-कुमारियाँ और विवाहित गोपांगनायें। इसी "गोपीभाव" से अष्टछाप के कवियों ने भी अपनी साधना को आगे बढ़ायी।

1. गोपांगनाओं ने लोक लाज तथा सभी मर्यादाओं के बन्धनों से अपने आपको मुक्त कर साक्षात् रूप से पुरुषोत्तम का भजन किया है। यह "पुष्टि पुष्टि" रूप है। परकीय भावासक्ति की इस प्रकार की गोपांगनाओं का वर्णन अष्टछाप के काव्य में हुआ है। उनका एक चित्र यह है—

---

1. सूरदास और वामन पंडित—डा. सुशीला व्यापारी, पृष्ठ 427
2. सूरसागर—पद 415
3. वही—पद 436

"नैन जहाँ दरसन हरि अटके,
स्रवन थके सुनि बचन सुहाई।
रसना और कछू नहिं भाषत,
स्याम-स्याम रट यहै लगाई।
चित चंचल संगहि संग डोलत
लोक-लाज मरिजाद मिटाई।"[1]

दूसरी श्रेणी गोपी की है, जो "पुष्टि मर्यादा" का प्रतिनिधित्व करती है। इनमें स्वकीया स्त्री भावना रहती है और अभीष्ट सुख रासलीला द्वारा प्राप्त हुआ। चीरहरण लीला के समय इनकी भक्ति का वर्णन है।

"भजि सखि भाव भाविक देव।
कोटि साधन करो कोऊ, तोऊ न मानै सोव।"[2]

तीसरी कोटि ब्रजांगनाओं की है, जिनका परिभाषिक नाम "पुष्टि प्रवाह" है। ये लोक साधारण बाल भाव से अनुरक्त होती है। अष्टछाप के काव्य में वर्णित बाल लीला वर्णन इसके उदाहरण हैं।

पुष्टिमार्ग के अनुसार अष्टछापी कवियों ने (सूर के अलावा) गृहस्थाश्रम में ही भक्ति साधना की। गृहस्थी में रहते हुए भी "बटाऊ" की तरह रहने का संदेश दिया है।

अष्टछापी कवियों ने पुष्टि मार्ग के ही अनुरूप कृष्ण के बाल तथा यौवन रूपों को महत्व देते हुए, मधुरभक्ति का और रासलीला का वर्णन किया। सारे संसार को हरिमय माना। भगवान की भक्तवत्सलता का वर्णन किया। "उनके उपास्य देव भगवान के भक्त के पीछे चलने वाले, पितृवत् अपने अकिंचन और सशक्त बालक के समान भक्त की रक्षा करने वाले और उसे सुख शान्ति देने वाले हैं। यही उनकी भक्त वातसलता है।"[3] भगवान स्वयं कहते हैं—"हम भक्तन के भक्त हमारे।" (सूर) "परमानन्द प्रभु भक्त वछल हरि जिनके मन बच कायक" (परमानन्द दास)। पुष्टिमार्ग में "शरणागति" अथवा प्रपत्ति का भी महत्वपूर्ण स्थान है।

1.8.1.1. सेवा विधि :

पुष्टि मार्ग में नित्य सेवा विधि का भी विशेष महत्व है। बल्लभाचार्य

---

1. सूर साहित्य : नवमूल्यांकन—डा. चन्द्रभान रावत, पृष्ठ 92
2. वही—
3. अष्टछाप और बल्लभ संप्रदाय—डा. दीनदयाल गुप्त, पृष्ठ 679

जी ने सेवा को दो प्रकार–क्रियात्मक और भावात्मक कहा है। पुष्टिमार्गीय सेवा के दो क्रम हैं–नित्योत्सव सेवा और वर्षोत्सव सेवा।[1] नित्योत्सव में वात्सल्य की प्रधानता है क्योंकि आचार्य जी ने पुष्टिमार्ग की गुरु व्रज गोपियों को माना है।
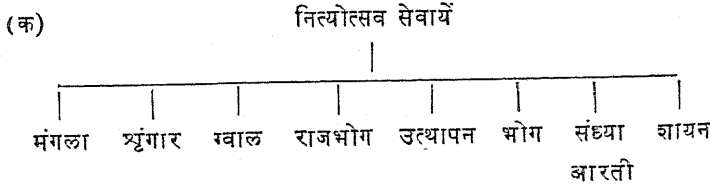
प्रातः से सायंकाल तक कृष्ण के सेवा में मन लगा रहता है। सबेरे से शाम तक आठ पहर की सेवाएँ और आठ झांकियाँ होती हैं। विट्ठलनाथ जी के समय में इन सेवाओं का विभव अधिक किया गया जैसे आठ शिरोलंकार, अन्नकूट, 56 भोग आदि। अष्टछापी भक्त कवियों में इन सभी नित्य–सेवाओं के उदाहरण प्राप्त होते हैं। यथा–

मंगला :

इसमें जगाने, कलेऊ कराने, आरती आदि के पद आते हैं।

जगावति अपने सुत को रानी।
उठो मेरे लाल, मनोहर सुन्दर, कहि मधुर बानी।
माखन, मिश्री और मिठाई दूध मलाई अपनी।[2]

श्रृंगार :

"कराति सिंगार मैया मन भावत।
पहिरौ लाल झगा अति सुंदर,
आँख आंजिकै तिलक बनार्वात।"[3]

ग्वाल :

"गाइ खिलावत सोभा भारी।
गोरज-रंजित बदन कमलपे, अलक-झलक धुंधारी।"[4]

---

1. विस्तार के लिए देखिए–ब्रजस्थ वल्लभ संप्रदाय का इतिहास–
   प्रभुदयाल मीतल तथा सूर और उनका साहित्य–प्रो. हरवंश लाल शर्मा।
2. नंददास–पद 31
3. सूरदास–सूर साहित्य : नवमूल्यांकन, पृष्ठ 95 से उद्धृत
4. नंददास–पद 38

राजभोग :

"मोहन जीमत छाक, ग्वाल-मंडली मांही ।
······नंददास आस जूठन की, फूले अंग न समाही ।"[1]

(ख) उत्सव सेवायें :

"इन दैनिक झांकियों के अतिरिक्त सम्प्रदाय में वर्षोत्सव भी मनाये जाते हैं। इनमें धार्मिक और ऋतु सम्बन्धी उत्सव भी सम्मिलित हैं। इन वर्षोत्सवों को पाँच भागों में विभक्त किया जा सकता है। पहले वर्ग में वे उत्सव आते हैं जिनमें लीला भावना प्रधान रहती है। नित्य एवं अवतार लीलाओं से सम्बन्धित उत्सव हैं—संवत्सर, गनगौर, अक्षतृतीया, रथ यात्रा, पवित्रा, जन्माष्टामी, राधाष्टमी, दान, झांकी, नवरात्रि, रास, अन्नकूट, गोपाष्टमी, व्रतचर्या।"[2] अष्टछाप के काव्य में इनका वर्णन इस प्रकार किया गया है—

संवत्सर :

"चैत्र मास संवत्सर परिवा
बरस प्रवेस भयो है आज ।[3]

रथयात्रा :

"देखो भाई रथ बैठे गिरधारी ।"[4]

पवित्रा :

"पवित्रा पहिरैं श्री गिरिधर लाल ।"[5]

जन्माष्टमी :

"जनम लियो सुभ लगन बिचार ।"[6]

दूसरा प्रकार ऋतुओं का है।

अष्टछापी कवियों ने ऋतु संबंधी उत्सवों का गान भी किया है। डोल (वसंत), फूलमंडली (ग्रीष्म), हिंडोरा, (वर्षा) रास (शारदा) देव प्रबोधिनी जागरण (हेमन्त) होली (शिशिर)।

डोल :

"गोकुल नाथ विराजत डोल ।
संग लिए वृषभानु नंदिनी, पहिरे नील निचोल ।"[7]

---

1. नंददास—पद 111
2. सूर साहित्य : नवमूल्यांकन—डा. चन्द्रभान रावत, पृष्ठ 96
3. परमानंद दास—पद 761
4. परमानंद दास—पद 742
5. कुम्भनदास
6. परमानंद दास—पद 36
7. सूरदास—पद

हिंडोरा :

"हिंडोरे भाई, झूलत गिरिधर लाल ।
संग राजत वृषभानु नंदिनी अंग-अंग रूप रसाल ।"[1]

रास :

"संग ब्रज नारि हरि रास कीन्हों ।"[2]
"नित्य रास रस नित्य गोपी जन वल्लभ ।"[3]

होली :

"कुंज कुटीर मिलि यमुना तीर खेलत होरी रस भरे अहीर ।"[4]
"खेलत नंदकों नंदन होरी ।"[5]
"इति श्री राधा उत श्री गिरिधर इत गोपीउत ग्वाल
खेलत फागु रसिक व्रजवनिता सुन्दर स्याम तमाल ।"[6]
"खेलत फाग कहते हो होरी ।"[7]

देव प्रबोधिनी :

"अष्टछापी कवियों में इसका वर्णन परमानंददास ने किया है । उनकी यशोदा इक्षुदण्ड और पुष्पों का मंडप बनाकर उसके चारों तरफ दिये जलाती, धूप-दीप करके भोग लगाती और रात्रि में जागरण करती हैं । साथ-साथ ताल, पखावज, भेरी, शंख आदि वाद्य भी मधुर ध्वनि से बजते हैं ।"[8]

तीसरा प्रकार वैदिक पर्वों का है । जैसे

रक्षा बंधन :

"रच्छा बाँधति जसुदा मइया ।"[9]
"राखी बंधन नंदकराई ।
गर्गादिक सब रिसिन बुलाये लालहिं तिलक बनाई ।"[10]
"राखी बाँधत गरग स्याम कर" (नन्ददास)

इनके आलावा आज तक बल्लभ संप्रदाम में मास-क्रम के अनुसार भी उत्सव मनाये जाते हैं ।[11] जैसे–

---

1. नंददास–पद 164 2. सूरदास–1753 3. नन्ददास–
4. नन्ददास–174 5. नंददास–182 6. सूरदास– 7. सूरदास–3526
8. अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन–डा. मायारानी टंडन, पृष्ठ 129
9. कुम्भनदास– 10. परमानंद सागर–पद 796
11. ब्रजस्थ बल्लभ संप्रदाय का इतिहास
–प्रभुदयाल मीतल पृष्ठ 110 के आधार पर ।

चैत्र—यमुना जी का जन्मोत्सव	वैशाख—वल्लभाचार्य जी का जन्म
ज्येष्ठ—जल यात्रा उत्सव	आषाढ़—गुरु पूर्णिमा
श्रावण—पुष्टिमार्ग की स्थापना	भाद्रपद—कृष्ण तथा वामन जयंतियाँ
आश्विन—हरिराय जी का जन्म दिन	कार्तिक—गोचारणोत्सव
मार्गशीर्ष—गोकुलनाथजी का जन्मोत्सव	पौष—विट्ठलनाथ जी का जन्म दिवस
माघ—वसंतोत्सव	फाल्गुन—होली ।

चौथा प्रकार : अवतारों की जयंतियाँ । जैसे—श्रीराम जयंती, वामन जयंती, नृसिंह जयंती आदि ।

अष्टछाप की सेवा के सम्बन्ध में इतना कहना ही आवश्यक होगा—"उनमें जो गृहस्थी भक्त थे, जैसे कुम्भनदास, चतुर्भुजदास और छीतस्वामी—वे श्रीनाथ जी की सेवा तन, धन तथा मन तीनों प्रकार से करते थे। जो भक्त त्यागी थे वे तन और मन से करते थे। मानसिक तथा कीर्तन सेवा के फलस्वरूप तो अष्टछाप का संपूर्ण काव्य ही है। गोपी, ग्वाल, नन्द यशोदा आदि की मानसिक स्थिति के शब्द चित्रों में इन्हीं भक्तों की अंतरात्मा बोलती प्रतीत होती है।"[1]

नित्योत्सव और वर्षोत्सव दोनों प्रकार की सेवा-विधियों के तीन प्रमुख अंग हैं—श्रृंगार, भोग और राग। बल्लभाचार्य जी ने इन्हें भगवत्सेवा में लगा दिया। अष्टछापी कवियों ने भगवान कृष्ण को अपनी शक्ति के अनुसार इन तीनों प्रकारों की सेवा भाव से अपने आपको समर्पित कर धन्य हो गये। कई पदों में इसीलिए सूरदास जी ने यह प्रबोध किया है कि भगवान की सेवा पूजा के लिए मनुष्य को शरीर मिला है। उसे साधारण बातों में लगाना उचित नहीं।

4.8.2. ताल्लपाक के कवियों की (श्रीसंप्रदाय) भक्ति साधना :

4.8.2.1. प्रस्तावना :

ताल्लपाक के कवियों के मूल पुरुष अन्नमाचार्य ने विशिष्टद्वैत मत में दीक्षा ली और और अहोबिलम् के आचार्य श्री आदिवन् शठगोपयति से "उभयवेदान्त" का अध्ययन किया। फिर वेदान्तदेशिक वेंकटाचार्य के निर्दिष्ट "वड़हल" मार्ग के अनुसार अपनी साधना के मार्ग में अग्रसर होते चले गये। इस संप्रदाय के लोग वेदशास्त्र एवं प्रबन्धम् दोनों में विश्वास रखते हैं।

---

1. अष्टछाप और बल्लभ संप्रदाय—डा. दीनदयाल गुप्त, पृष्ठ 664

साधक स्वीय प्रयत्न पर भी जोर देता है (मर्कट किशोर न्याय) और प्रपत्ति पर भी विश्वास रखता है। (मार्जाल किशोरन्याय।)

विशिष्टाद्वैत स्वामी के नक्षकतत्व पर भक्त अखंड विश्वास रखते हैं। इस संसार के कर्ता और जीवों का आधार वही प्रत्यक्ष देव श्री हरि हैं। हरि और वेंकटेश्वर में अभेद मान कर ताल्लपाक के कवि भी इसी प्रकार के विश्वास को व्यक्त करते हैं। —"आप जैसे दूसरे देवता कौन हैं ? अपने दासों की रक्षा करने के लिए आप अपने अभय हस्त के साथ तैयार हैं, आपके नामों के उच्चारण मात्र से सारे पाप कट जाते हैं। सभी को पवित्र बनाने के लिए श्रीपाद तीर्थ है। सभी की अनायास ही रक्षा करने के लिए ही आपने तिरुमल पहाड़ पर अवतार लिया है।"[1] उस परमात्मा को मानने वाले भक्त की रक्षा वे माता-पिता, पत्नी, देवता सब कुछ बन कर करते हैं।[2] सभी की समान रूप में रक्षा करने वाले इस परमात्मा के दिव्य सौंदर्य को बार बार गा कर भी ताल्लपाक के कवि थकते नहीं।

"नल्लनि मेनु नगवु जूपुलवाडु
तेल्लनि कन्नुल देवुडु।"[3]

श्यामल शरीर, मन्द मुसकान और श्वेत आँखों के परमात्मा के सौंदर्य का वर्णन कैसे करना ? एक अन्य स्थान पर उनके पीताम्बर, कस्तूरी, पुनुगु गुलाब जल आदि की तुलना उनकी मूर्ति से करते हुए उन सबसे भी सुन्दर मूर्ति का वर्णन[4] करते हैं।

अनेक स्थानों पर परमात्मा की भक्तवत्सलता और अकारण ही भक्तों पर बरसाने वाली कृपा का वर्णन भी किया है। साथ ही एक ही संकीर्तन में उनके अनेक कल्याण गुणों का वर्णन है। जैसे

"नीकु दौल्ले यलवाटु निरुहैतुकपुदय"[5]

इसमें उन्होंने कहा है कि अपनी नारी के पुकारने मात्र से नारायण मान कर तुमने रक्षा की। "मरा-मरा" कहने पर राम मान कर रक्षा की। अपने दुःखों को दूर कर, मेरे अपराधों को क्षमा करने के लिए हे केशव ! तुम ही हो। हमारा उद्धार करनेवाले भी तुम ही हो।

---

1. अन्नमाचार्य आध्यात्म संकीर्तन—वाल्यूम 1—पद 193
2. पेद तिरुमलाचार्य—2 वा—पद 148
3. अन्नमाचार्य संकीर्तन (स्वर रहित), पृष्ठ 49
4. अन्नमाचार्य संकीर्तन
5. वेटूरि आनन्द मूर्ति के आधार पर, पृष्ठ 146

विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त में प्रपत्ति को अत्यधिक महत्व दिया गया है । भक्त को अपने तन, मन, धन, से भक्ति की साधना करनी चाहिए। विशिष्टाद्वैत भक्ति साधना को "प्रपत्ति मार्ग की साधना" का नाम भी इसीलिए दिया गया है। नम्माल्वार की रचना "तिरुवायमोडि" को "दीर्घशरणागति" का नाम दिया गया है। आचार्यों के अनुसार यह एक रहस्य संप्रदाय भी कहा जाता है। यहाँ रहस्य का अर्थ गुरुपदेश से प्राप्त होने वाले सिद्धिप्रद मंत्र और उसके अर्थ विवरण सहित साधनोंपाय से है। इसके तीन अंग हैं—तिरुमंत्र, द्वयार्थ और चरम श्लोक ।

4.8.2.1.1. तिरुमंत्र : यह "ओम् नमो नारायणाय" नामक अष्टाक्षरी हैं। यह लक्ष्मी युक्त नारायण का तत्व बतलाया है। अन्नमाचार्य को "ओम् नमो वेंकटेशाय" का मंत्रोपदेश हुआ। अतः ताल्लपाक के कवियों के सभी संकीर्तनों के अन्त में इसी निरुमंत्र की छाप मिलती है। ताल्लपाक के कवियों ने भगवान के सभी अवतारों का वर्णन या उनके किसी भी लीला का वर्णन करने पर भी अन्त में उन्हें वेंकटेश की मुद्रा दे कर एकाकार कर दिया है।

4.8 2.1.2. द्वयार्थ : "श्रीमन्नाराय चरणौ शरणं प्रपद्यै", "श्रीमते नारायणाय नमः" यह द्वयार्थ है। यही शरणागति का मूल प्रेरक है। ताल्लपाक के कवियों ने श्रीवेंकटेश्वर के चरणों को ही मुक्ति का साधन मान कर कई रचनायें कीं। जैसे—"ब्रह्म कडिगिन पादमु" आदि।

4.8.2.1.3. चरम श्लोक : गीता में भगवान कृष्ण ने अर्जुन से कहा था "सर्व धर्मान् परित्याज्य मामेकं शरणं व्रज।" यही चरण श्लोक है। जो भक्त निश्चित हो कर (अन्य सभी धर्मों को छोड़ कर) भगवान के शरण में जाता है उसका उद्धार हो जायेगा। क्योंकि उद्धार का भार स्वयं भगवान ने ग्रहण कर लिया। आलवारों के ही समान ताल्लपाक के कवियों ने भी इस चरम श्लोक की भावना को पग-पग पर व्यक्त किया है। "यही मूल धन है और इसे ही हमें मानना चाहिए। बहुत पहले ही आपने "मामेकं शरणं व्रज" की बात कह दी। अब हम आपके दास बन गये हैं। अन्य विधियों (कर्तव्यों) की क्या चिन्ता ?"[1]

एक अन्य स्थान पर अन्नमाचार्य जी दोष अपना ही मानते हुए कहते हैं कि भगवान तुम्हारा क्या दोष है ? तुम दयानिधि हो। दोष तो हमारा है

1. पेदतिरुमलाचार्य—संकीर्तन, पृष्ठ 57

जो इन बातों को समझ नहीं सकते । तुमने पहले ही चरम श्लोक में बतलाया कि मैं तुम्हारा उद्धार करूँगा । तुम्हें परम पद में स्थान दूँगा । खैर, हमने कब विश्वास किया ? फिर तुमने वह भी कहा था कि मेरे चरण ही तुम्हारे आश्रय हैं । यह द्वयार्थ में तो मान लिया है, लेकिन हम कब माने ? कब उस पर भरोसा रखा है ?"[1]

4.8.3. परमात्मा का स्वरूप : विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के अनुसार परमात्मा पाँच प्रकारों से प्रयत्यक्ष होता है । वे हैं–"परा, व्यूहा, विभव अन्तर्यामी और अर्चा रूप ।"[2] ताल्लपाक के कवियों ने भगवान बालाजी का इन सभी रूपों में स्तवन किया है ।

4.8.3.1. परा : यह परब्रह्म स्वरूप है । उसे परा वासुदेव भी कहते हैं जिसमें वैकुण्ठवासी नारायण का संकेत भी है ।

> "ईतडै ईतडै सुंडि येंत येंचि चूचिना
> चैंतने वरालिच्ची शेषाद्रलेषुडु ।"[3]

इसमें विश्वरूप, विराट ब्रह्म को शाश्वत मानते हुए सारी सृष्टि में विराजमान भी मानते हैं । सूर्य और चन्द्रमा का तेज भी वही है । अवतारों का भी तेज भी वही है । वह परम पुरुष, प्रकृति मूर्ति भी है । वेद, शास्त्र, पुराण, भागवत और महाभारत सभी में वर्णित देवता भी यही है । इसी प्रकार परम पुरुष के विराट स्वरूप का वर्णन है–

> "वेदान्द वेद्याय विश्वरूपाय नमो
> आदि मध्यांत रहिताधिकार
> भेदाय पुनरप्य भेदाय नमो नमो
> नाद प्रियाय मम नाथाय तस्मे
> परम पुरुषाय भवबंध हरणाय नमो
> निरुपमानंदाय नित्याय
> दुरित दूराय कलिदोष विध्वस्ताय
> हरियच्युताय मम आत्माय तस्मे ।"[4]

4.8.3.2. व्यूह : सृष्टि के लिए इसी विराट ब्रह्म के दूसरे रूपों की रचना होती है । अर्थात् परमात्मा के विश्लेष रूप हैं । परा वासुदेव ही संकीर्ण

---

1. अनुवाद–श्री एम. संगमेशम
2. सूर और उनका साहित्य–प्रो. हरवंशलाल शर्मा, पृष्ठ 89
3. अन्नमाचार्य संकीर्तन (2 वां) 137 पद
4. वही–पद 83

(जीव) प्रद्युम्न (मन) और अनिरुद्ध (अहंकार) नाम के रूपों को ग्रहण करते हैं। इन चारों को मिलाकर चर्तुव्यूह कहा जाता है। ताल्लपाक के कवियों का इस सम्बन्ध में कीर्तन द्रष्टव्य है—

"अनिरुद्ध पुरुषोत्तमाधोक्षज उपेन्द्र
जनार्दन केशव संकर्षण।"[1]

4.8.3 3. **विभव :** दुष्टों को परास्त कर शिष्ट रक्षण और अपने भक्तों अनुग्रह के लिए भगवान अवतार लेते हैं। इसे ही विभव कहा जाता है। भगवान के सभी अवतार यही विभव रूप ही हैं। ताल्लपाक के कवियों ने सैकड़ों की संख्या में राम, कृष्ण, वामन, नरसिंह आदि अवतारों की स्तुति के साथ-साथ दशावतारों का वर्णन भी किया है। इनमें पुनरुक्ति का दोष कहीं नहीं है। एक संकीर्तन में अत्यन्त चमत्कार के साथ दशावतारों का वर्णन है।[2] जैसे कवि का कहना है कि—मत्स्यावतार में आपको आँख मूँदने का भी समय नहीं था।

(मीन कभी आँख नहीं मूँदती।)

कूर्मावतार में आपको पाँव पसारने की सुविधा नहीं थी। (कूर्म पाँव अन्दर ही समेट लेता है।)

वाराह अवतार में मिट्टी खोद कर भी आपने उसके नीचे वास नहीं किया। (वाराह मिट्टी खोदता है किन्तु उस गड्ढे में रहता नहीं।)

नृसिंहावतार में हिरण्य कश्यप को मारने के पश्चात आपको नाखून रखने की भी जगह (छोटी सी भी) नहीं मिली।

वामनावतार में तो पैर रखने के लिए स्थान न होने के कारण आपने बलि के सिर पर रखा।

परशुरामावतार में आपने क्षात्र धर्म को ग्रहण करने पर भी रक्षा करने के बदले संहार किया।

रामावतावतार में खान-पान के लिए भी समय नहीं था। (क्योंकि सीता वियोग, रावण वध आदि में राम दर-दर भकटते रहे।)

कृष्णावतर में बाल चेष्टाओं को नहीं छोड़ा।

बुद्धावतार में वेदों का पठन नहीं किया। (बौद्ध धर्म अवैदिक धर्म है।)

इस कालियुग में तो आप पर्वत पर जा बैठे। (बालाजी)

---

1. अन्नमाचार्य संकीर्तन—(वा—11) पद—110
2. वही—(वा 5) पद 67

इसी प्रकार का चमत्कार पूर्व वर्णन चिन्नन्ना ने भी अपने "परम योगिविलासमु" में किया है। वे कुंभकोण में स्थित शयन रूपी भगवान से कहते हैं कि शायद आप समुद्र में छिपे हुए वेदों का उद्धार करने में, क्षीरसागर मंथन और हिरण्य कश्यप के संहार कर थक गये थे। इसीलिए आज इस शयन मुद्रा में हैं।[1] इसी प्रकार सभी अवतारों का वर्णन है।

4.8.3.4. अन्तर्यामी : चराचर प्रपंच में व्याप्त रहने वाला अन्तर्यामी रूप है। भक्त इसी की प्रेरणा को ग्रहण कर कर्म करता है और उसका फल उसी को समर्पित कर मुक्त हो जाता है। ताल्लपाक के कवियों का कहना है कि "हे सबल लोकेश्वर। आप ही सभी की शक्ति हैं। मेरा उद्धार और रक्षा कीजिए। सभी कर्मों के, भोगों के कर्ता और भर्ता आप ही हैं क्योंकि आप सर्वान्तिर्यामी हैं।"[2] ताल्लपाक के कवियों ने अपने शरीर को भी उस परमात्मा का निवास स्थान तिरुपति माना है।

4.8.3.5. अर्चारूप : विभिन्न क्षेत्रों और तीर्थों में स्थित भगवान के अर्चारूप को श्री वैष्णव सिद्धान्त में भगवान ही मानते हैं। परमात्मा को समर्पण करने के भाव से जो कुछ भी अर्चा मूर्ति को समर्पित किया जाता है वह परमात्मा को ही अर्पित हो जाता है। इस कलियुग में तो तिरुमल पहाड़ पर स्थित श्री वेंकटेश्वर की अर्चा मूर्ति सभी के लिए सुलभ रूप से प्राप्य है।

> चेरिकोल्वडो ईतडु श्रीदेवुडु
> ईरीति श्रीवेंकटाद्रि निरवैन दैवुडु।"[3]

इसमें अलमेलमंगा सहित, शंख-चक्र धारण किये अभय हस्त से विराजमान मकर कुंडल, पीतांबर, तुलसी और वनमालाओं से शोभित करोड़ों मन्मथाकार श्री वेंकटेश्वर की दिव्य मूर्ति का अति सुन्दर वर्णन है। उसको भजने के लिए वे कहते हैं। चिन्नन्ना ने अपने "परमयोगि विलासमु"[4] में कांचि, कुंभकोण तथा पद्मनाभ स्वामी अर्चारूपों का वणन सुन्दर ढंग से किया है। ताल्लपाक के कवियों ने अनेक वैष्णव प्रदेशों की यात्रा की थी। उन सभी देवी देवताओं के वर्णन कर सजीव चित्र हमारे सामने रखा।

ताल्लपाक के कवियों ने परमात्मा के इस करुणा स्वरूप के साथ साथ जगत् कल्याण के लिए विष्णु से धारण किये गये पंचायुधों का भी वर्णन

---

1. पृष्ठ 102—103 2. अन्नमाचार्य संकीर्तन—150 पद
3. ताल्लपाक अन्नमय्य पाटलु—पृष्ठ 89
4. दृष्टव्य है—पृष्ठ 29, 30, 1, 102, 111—112

भक्तिपूर्वक किया है। उदाहरण के लिए अपने संकीर्तनों में अंबरीष की रक्षा करनेवाले चक्र का, ध्रुव के अज्ञान को मिटाने वाले पांचजन्य (शंख) का, जरासंध आदि से युद्ध करने में उपयोग किया गया खड्ग का, रावण का वध करने वाला शर का वर्णन किया गया है।[1]

पेदतिरुमलाचार्य ने सुदर्शन चक्र के प्रति अपनी भक्ति "सुदर्शन रगड़" नामक रचना के द्वारा तथा अनेक संकीर्तनों में भी प्रकट की।

ताल्लपाक के कवियों ने भगवान के पाद पद्म, श्रीपाद तीर्थ और अभय हस्त का भी वर्णन किया है, श्री पादरेणु की महिमा का भी गान किया है।[2]

4.8.4. **वैधी भक्ति :** "श्री वैष्णव संप्रदाय में वैधी भक्ति साधना के अन्तर्गत पंचपूजा, नवधा भक्ति, यात्रा, व्रत, ताप, (शंख चक्र जैसी मुद्राओं का धारण) पुंड (तिलक, तिरुमणि जैसे चिह्नों का धारण) आदि कितने ही साधन बताये गये हैं।"[3] आलवारों के समय से ही प्रसिद्ध पंच पूजा के अन्तर्गत अभिगमन उपादान, इज्या, स्वाध्याय और योग नामक पाँच अंग होते हैं।

4.8 4.1. **अभिगमन :** अर्थात् देवमंदिर का अलंकरण, पवित्रीकरण और रक्षण करना है। ताल्लपाक के कवि इसी प्रकार की सेवा में तत्पर थे। अपने गाँव के कल्याण वेंकटेश्वर मंदिर, तिरुपति के श्री वेंकटेश्वर मंदिर, वाराह मंदिर, पुष्करणी आदि के जीर्णोद्धार के साथ-साथ नये मंदिरों की स्थापना और व्यवस्था भी इन्होंने की। उन्होंने कई गाँव दान में दे दिया। शुक्रवार अभिषेक के समय ताल्लपाक के कवि स्वयं अपने हाथ से चन्दन और कर्पूर का जल दिया करते थे। इस संदर्भ में गाये जाने वाले कई संकीर्तन भी प्राप्त हैं।

> "कंटि शुक्रवारमु गडिय लेंडिट
> अंटि अलमेलमंग अंड नुंडे स्वामिनि।"[4]

4.8.4 2. **उपादान :** पत्र, फल, पुष्प, जल क्षीर, धूप-दीप और नैवेद्य आदि से भगवान की अर्चा करना ही उपादान है। ताल्लपाक के कवियों ने अपने समय तक प्रचलित सेवाओं के साथ-साथ कई नयी सेवाओं का भी आयोजन किया था।

---

1. वेटूरि आनन्दमूर्ति के आधार पर पृष्ठ 155
2. अन्नमाचार्य के नाते ने "श्रीपाद रेणु माहात्म्य"–नामक ग्रंथ ही लिखा।
3. अन्नमाचार्य और सूरदास—एम. संगमेशम, पृष्ठ 197
4. ताल्लपाक अन्नमय्य पाटलु–(स्वर सहित) पृष्ठ 100

4.8.4.3. **इज्या :** अर्थ है देवपूजा। ताल्लपाक के कवि अपने घर में वेंकटेश्वर की पूजा के साथ-साथ कई तीर्थ स्थानों के देवी देवताओं की भी पूजा करते थे। एक बार जब अन्नमाचार्य जी की अर्चा मूर्तियों की चोरी हो गयी थी उस समय वे सभी देवी देवताओं से प्रार्थना करने लगे कि 'मेरे इंदिरा रमण को ला दो।"[1] उनके लिए वह विरह सह्य नहीं था। मन की वेदना उन्होंने उस कीर्तन में दयनीय रूप में व्यक्त की। ताल्लपाक के कवि भगवान की अर्चना-बहिरंग, अंतरंग (मानस) षोडषपचार आदि कई विधियों से करते थे।

4.8.4.4. **स्वाध्याय :** इसका अर्थ है मंत्र जप, नामकीर्तन, दार्शनिक चर्चा और निगमागमों का अध्ययन। ताल्लपाक के कवियों ने (जो एक साथ भक्त, दार्शनिक तथा आचार्य थे) अपना सारा जीवन इन्हीं में बिता दिया।

4.8.4.5. **योग :** हठ योग आदि से भिन्न प्राणायाम आदि से युक्त सात्विक योग ही श्री वैष्णव संप्रदाय में मान्य है। ताल्लपाक के कवियों ने इस प्रकार के योग की प्रशंसा में कई पद लिखे। "जो योगी है वही सबसे बड़ा है। क्योंकि वह अंतरात्मा को देख पाता है। वह सब कुछ करता है, पर पाप-पुण्यों का फल अपने को लगने नहीं देता। पानी में कमल के पत्ते समान रहता है।"[2]

4.8.4.6. **पंच संस्कार :** श्री वैष्णव संप्रदाय में दीक्षित होते समय पंच संस्कार किये जाते हैं—

ताप: पुंड्र: तथा नाम मंत्रो यागश्च पंचम:
अमी परम संस्कारा पारमेकान्त्यहेतव: ।[3]

4.8.4.6.1. **ताप :** श्री वैष्णव संप्रदाय में दीक्षित व्यक्ति को अपने दोनों भुजाओं पर शंख-चक्र के तप्त मुद्राओं को धारण करना पड़ता है।

4.8.4.6.2. **पुंड्र :** शरीर पर और प्रधान रूप से फाल भाग पर ऊर्ध्व पुंड्र धारण करना पड़ता है, जिन्हें द्वादशोर्ध्वपुंड्र कहते हैं।

आज तिरूपति के मंदिर में प्राप्त अन्नमाचार्य, पेदतिरुमलाचार्य की मूर्तियाँ ठीक इसी प्रकार की मिलती हैं। अन्नमाचार्य इसका प्रचार भी करते थे, जिनका उल्लेख भी है। जैसे—

"नीटमुंचिना पालमुंचिना नीचित्तमिकनु।"

---

1. वा-22-पद—134
2. अन्नमाचार्य और सूरदास : संगमेशम के आधार पर, पृष्ठ 190
3. ताल्लपाक अन्नमय्य आध्यात्म संकीर्तनलु—पीठिका

अर्थात् "मैं तो तुम्हारी कृपा के बारे में प्रचार कर चुका। अब तुम्हारी इच्छा। जो चाहे सो करो। भुजाओं पर शंख-चक्र को मुद्रायें और जीभ पर तिरुमंत्र मेरे व्रत की पहचान हैं।...संकीर्तन ही मेरे तप का रूप है और ये तिरुमणि चिह्न ही मेरे ज्ञान के सूचक हैं।"[1]

पेदतिरुमलाचार्य जी निश्चिन्त होकर कहते हैं कि, अगर यम के किंकर आएँगे तो मैं अपने शंख चक्र मुद्राओं को दिखाकर उन्हें डराऊँगा।[2]

4.8 4.6.3. नाम : जन्म के समय माता-पिता से दिये गये नाम के अलावा गुरु एक दीक्षा नाम देते हैं।

4.8 4.6.4. मंत्र : जैसे कि पहले ही कहा गया है इन्हें 'ओम नमो नारायण' की अष्टाक्षरी का उपदेश दिया जाता है।

4.8.4.6.5. योग : श्री वैष्णव सिद्धान्तों के अनुसार भगवान की आराधना करना ही "योग" कहलाता है। ताल्लपाक के कवियों ने अपनी रचनाओं में इन पंच संस्कारों के बारे में उल्लेख किया है। उनका कहना है कि गुरु घनविष्णु के ही कारण हम वैष्णव बन सके और वेद-पुराणों का रहस्य, शरणागति, मोक्ष, अष्टाक्षरी आदि का ज्ञान मिला।[3]

4.9. सेवा विधि : जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है वैष्णव संप्रदाय में सेवा विधि का बहुत अधिक महत्व है। ताल्लपाक के कवियों ने भी अपनी जीवनी भगवान के नित्य और उत्सव सेवाओं में सफल की थी। तनिक उनका अध्ययन करें।[4]

4.9.1. नित्य सेवायें : निम्न प्रकार से की जाती हैं—

1. सुप्रभात (जगाऊ)	...	प्रत्यूषकाल
2. विश्वरूप संदर्शन	...	प्रभात पूजा
3. तोमाल सेवा	...	मध्याह्न पूजा
4. कोलुवु (दरबार)	...	"
5. सहस्रनामार्चन	...	"
6. नैवेद्य (पहली बार)	...	"

1. अन्नमाचार्य संकीर्तन—224
2. वैराग्य वचन मालिका गीतालु—11
3. अन्नमाचार्य आध्यात्म संकीर्तन—372 तथा संकीर्तन—148
4. इन सभी उत्सवों का विशेष अध्ययन के लिए "दि हिस्टरी आफ तिरुपति" देखें।

7. धर्म दर्शन ... ,,
8. संग्रहार्चन, नैवेद्य (दूसरी बार) ,,
9. आर्जित सेवा, उत्सव आदि ... सांध्यकाल
10. तोमाल सेवा, अर्चन नैवेद्य (तीसरी बार) ,,
11. रात को धर्म दर्शन और ... ,,
12. एकान्त सेवा (रात्रि) ... ,,

ताल्लपाक के कवियों की रचनाओं में नित्य सेवाओं के कई उदाहरण हमें मिलते हैं—नीचे अन्नमाचार्य के संकीर्तन प्रस्तुत हैं—

प्रभाती गीत :

> "विन्नपालु विनवले विंतविंतलु पन्नगपु दोमतेर पैकेगरनीवय्या।"[1]
> "वारधिशयन वोवटपत्र परियंक
> गारवान मेलुकोनि कन्नुलु देरुववे।"[2]

पेदतिरुमलाचार्य ने "श्री वेंकटेश्वर प्रभातस्तवमु" नामक लघुकृति की रचना की। यह प्रभाती गीत है।

1. **विश्वरूप :** "षोडष कलानिधिकि षोडषोपचारमुलु"[3]
2. **स्नान :** "संदडि विडुबुमु सासमुखा"[4]
3. **नैवेद्य :** "पंकजाक्षुलु सोलसि पलिकि नगगा
निकानारगिचु मिट्लने अय्या।"[5]

(इसमें कई प्रकार के पकवानों का वर्णन है)

4. **लोरी :** अनेक गीत मिलते हैं। विशेषकर पालने में झुलाने का यह प्रसिद्ध है—"जो अच्युतानंद जो-जो मुकुंदा।" आज भी हर तेलुगु माँ अपने बच्चे को सुलाने के लिए अनायास ही यह पद गा लेती है।

5. **डोला :** "डोलायांचल डोलाया।"[6]

6 **नौका विहार :** "एंदुकु प्रियमो नीकु ई तेप्प तिरुनाल्लु"[7]

इसमें कहा गया है कि भगवान् जब क्षीर सागर में थे तो आदि शेष उनकी नौका बने। प्रलय के समय बरगद का पत्ता और अमृत मंथन के समय

---

1. वा 4—पद—25
2. वही—(वा—11) पद—170
3. वही—वा—6 पद—134
4. वही—(वा—5) पद—12
5. वही—पद—80
6. वही—पद—374
7. वही—(वा—6) पद—143

साक्षात मंधर पर्वत, यमुना में कालीय। आज तिरुपति क्षेत्र में पुष्करिणी में यह नौका विहार भगवान कर रहे हैं।

7. आरती : "एत्तरे आरतुलु इय्यरे कानुकलु
इत्तलनेगि वच्चीनि इंदिरानाधुडु"[1]

इनके अलावा शुक्रवार अभिषेक, फूलों की सेवा, सहस्रार्चना आदि संदर्भों में बार-बार गाने के लिए ताल्लपाक के कवि नित्य नए-नए संकीर्तनों की सृष्टि करते थे। अलमेलमंगा की प्रशंसा में भी उन्होंने कई संकीर्तन इन संदर्भों के लिए लिखे थे।

4.9.2. उत्सव सेवायें :

तिरुपति में स्थित श्री बालाजी को सन् नौ तथा दस शताब्दियों से ही नित्योत्सव, पक्षोत्सव, मासोत्सव संवत्सरोत्सव सेवाओं के आयोजन का उल्लेख वहाँ के पुरालेखों से प्राप्त होते हैं। इनकी संख्या विजय नगर राजाओं के आदर और ताल्लपाक के कवियों की विशेष श्रद्धा के कारण दिन ब दिन बढ़ने लगी थीं। इनमें से विशेष उल्लेखनीय ब्रह्मोत्सव है, इसे आज भी दस दिन तक दशहरे के समय में मनाया जाता है। जब तिरुपति क्षेत्र साक्षात वैकुण्ठ ही लगता है। इन दस दिनों में स्वामी को रथ, पालकी, हनुमान, सिंह, गरुड़ आदि वाहनों पर बिठाकर जुलूस ले जाते हैं। ब्रह्मोत्सव सम्बन्धी कई संकीर्तन ताल्लपाक के कवियों के प्राप्य हैं जिसमें उन्होंने स्वामी के वैभव और इन वाहनों का भी सजीव चित्रण किया है।

"नाना दिक्कुल नरुलेल्ल।
वानल लोनने वत्तुरु गदलि।"[2]

अर्थात् सभी दिशाओं से लोग ब्रह्मोत्सव के लिए वर्षा में भीगते हुए भी आ जाते हैं। वे अपने सारे परिवार को साथ ले कर भगवान् के लिए मनौतियाँ, धन, आभूषण आदि साथ लेकर आते हैं। सामान्य प्रजा ही नहीं वरन् राजा-महराजा भी भाग लेते हैं।

विवाह महोत्सव :

वेंकटेश्वर का कल्याण हर वर्ष चैत्र के महीने में सम्पन्न होता है। इसके जन्मदाता स्वयं ताल्लपाक अन्नमाचार्य थे।[3] उनके वंशजों ने उसका वैभव

---

1. (वा–10) पद–31 2. अन्नमाचार्य संकीर्तन–331 पद (वा–2)
3. आज भी उन्हीं के वंशजों को इस उत्सव में कन्यादाता बनने का गौरव प्राप्त होता है। धन्य हैं वे वंशज, जिन्होंने स्वयं भगवान् को अपने जामाता बना लिए।

और भी बढ़ाया। पांच दिन के इस विवाह के संदर्भ के लिए कई संकीर्तनों का इन कवियों ने सृजन किया था। अक्षत डालना, गजारोहण, तलंब्रालू,[1] चंदन चर्चा, तांबूल सेवन आदि के गीत आज भी गाये जाते हैं।

"गरुड़ ध्वजंबेक्के कमलाक्षिकि।"[2]

इसमें उन्होंने स्वामी वेंकटेश्वर के विवाह में आने वाले अतिथियों का वर्णन किया है। जैसे भारती और गिरिजा गा रही हैं और रम्भा आदि अप्सराएँ नृत्य कर रही हैं।

"पसिडि अक्षितलिवे पेट्ट वेगमै रारो।
कंदर्पजनकुनिकि कमला देविकि पेंड्लि।"[3]

अर्थात् कामदेव के पिता (विष्णु) और कमला का विवाह है। अक्षत डालो। अंत में विवाह में उपस्थित अतिथि—जैसे ब्रह्मा, शिव, सुर, मुनि आदि की बिदाई का भी वर्णन है। वे कहते हैं कि आगामी वर्ष भी विवाह महोत्सव में भाग लेने अवश्य उपस्थित हो जाइए।

इसके अलावा प्रमुख सेवायें हैं—वसंतोत्सव, बैकुण्ठ एकादशी, द्वादशी धनुर्मास, उगादि, (नववर्ष) दीपावली, कर्कि संक्रमण, मकर संक्रान्ति, श्रीरामनवमी, श्रीकृष्ण तथा नरसिंह जयन्ती, रथ सप्तमी, गोदा परिणयोत्सव आदि आदि।

वसंतोत्सव : तिरुमल-तिरुपति क्षेत्र में आज यह तीन दिन का उत्सव है। उत्सव के दिनों में हर प्रात: और सायंकाल भगवान को एक न एक वाहन पर बिठा कर जुलूस में ले जाते हैं। जल क्रीड़ा का प्रबन्ध करते हैं और डोलोत्सव मनाते हैं। इनका विस्तृत वर्णन ताल्लपाक के कवियों ने अनेक स्थानों पर किया है। जैसे अन्नमाचार्य जी का कहना है—"भगवान के रथ को स्वयं देवता लोग खींच रहे हैं। शंखों की ध्वनि आकाश में गूँज रही है। रथ के साथ-साथ सुदर्शन चक्र भी चला। अब तो असुर समूह का अन्त निकट आ गया।"[4]

---

1. तेलुगु प्रदेश में वर-वधु शुभ मुहुर्त के पश्चात् एक दूसरे पर दोनों हाथों से कच्चा चावल डालते हैं। शायद इसका अर्थ यह हो सकता है जैसे—फूलों फलों और दूधो नहाओ। यह दृश्य देखते हुए दर्शक भी स्वयं वर-वधु के साथ आनंद पाते हैं।
2. अन्नमाचार्य संकीर्तन—12 वाल्यूम—8 3. वही—194
1. अन्नमाचार्य और सूरदास का साहित्य-समाज शास्त्रीय अध्ययन
एम. संगमेशम, पृष्ठ 183

मार्गलि अथवा धनुर्मास : हेमंत ऋतु में मार्गशीर्ष के महीने भर वैष्णव मंदिरों में पूजा, तिरुप्पावै का पठन और विशेष प्रकार के नैवेद्य चढ़ाना आज भी होते हैं। अंत में गोदा विवाह भी सम्पन्न करते हैं। इसका उदाहरण है—

"वेगु नालुगु घडियलनगा वेदवेद्युलु लेचि सरगुन.........
बागुगा पुजिचिरि चेडपक धनुर्मास विधुलने, धनुलु।"[1]

4.9 3. अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों की भक्ति साधना की तुलना :

पिछले अध्ययन से यह विदित होता है कि आलोच्य कवियों ने भगवान के मंदिर को अपनी साधना स्थली मानकर वहाँ संकीर्तनियाँ बनकर जीवन बिताया। नयी सेवाओं का आयोजन किया। नित्य तथा नैमित्तिक अवसरों के लिए, विशेष उत्सवों के लिए सेवा क्रम के आयोजन के साथ-साथ तत्सम्बन्धी कई संकीर्तनों की रचना भी की। आलोच्य कवियों में समान रूप से पर्व त्योहार सम्बन्धी और लीला अवतार संबंधी पद मिलते हैं जैसे—शरद पूर्णिमा, हिंडोला, मार्गलि अथवा कात्यायनी व्रत, रथयात्रा, कृष्ण, नारसिंह, राम, वामन आदि की जयंतियाँ, श्रावणी, दशहरा, दीपावली, डोलोत्सव, अनन्त चतुदर्शी आदि आदि। इनके साथ-साथ अपने प्रादेशिक भिन्नतायें भी गोचर होती हैं। जैसे उत्तर में जो होली का त्योहार है, दक्षिण में वही वसंतोत्सव के नाम से विख्यात है। इसी प्रकार से श्रावण पूर्णिमा का दिन दक्षिण में यज्ञोपवीत संस्कार के लिए है तो उत्तर में रक्षा बन्धन को महत्व दिया जाता हैं। अतः आलोच्य कवियों के वर्णनों में भी ये भेद आ जाते हैं। उसी प्रकार से ब्रज प्रदेश के लिए मुसलमानी शासकों के सदा विघ्न डालने के कारण, उसके वैभव के लिए भक्तों को बहुत प्रयास करना पड़ा। किन्तु दक्षिण में हिन्दू राजाओं के विशेष आदर के कारण तिरुपति क्षेत्र को नित नये वैभव प्राप्त होते गये। ताल्लपाक के कवियों ने स्वयं मंदिर की उन्नति के लिए अथक परिश्रम किया था।

4.10. भक्ति साधना के स्थल :

4.10.1. प्रस्तावना : अष्टछाप एवं ताल्लपाक के कवियों ने क्रमशः ब्रज और तिरुपति क्षेत्रों को अपना साधना स्थल बनाया था। उनके साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि उन्होंने अपने इष्टदेव के सन्निध्य को और उनकी लीला-स्थली को ही वैकुण्ठ से भी श्रेष्ठ घोषित किया था। अपनी भक्ति-

---

1. अन्नमाचार्य और सूरदास का साहित्य-समाजशास्त्रीय अध्ययन
एम. संगमेशम, पृष्ठ 183

साधना के पथ में अग्रसर होने के लिए उन कवियों को इन्हीं क्षेत्रों से प्रेरणा मिली थी। अत: इन भक्त कवियों के साधना स्थल के अध्ययन के बिना उनका भक्ति सम्बन्धी अध्ययन असम्पूर्ण ही रहेगा।

4.10 2. अष्टछाप—ब्रज :

अष्टछाप के आठों कवियों ने भिन्न-भिन्न प्रदेशों में जन्म लेने पर भी वल्लभ संप्रदाय में दीक्षा लेकर, भगवान कृष्ण तथा ब्रज के प्रति मोहित होकर इसे ही अपना साधना का स्थल बनाया था। पुष्टि संप्रदाय की मान्यता के अनुसार "जब गोवर्धन की गिरिराज पहाड़ी पर श्रीनाथ जी का प्राकट्य हुआ तब उनकी नित्य लीलाओं में सदैव साथ रहने वाले उनके आठ अंतरंग सखा भी उनकी सेवा के लिए इस भूतल पर प्रकट हुए थे। उक्त मान्यता के अनुसार ही अष्टछाप के आठों महानुभावों को पुष्टि संप्रदाय में श्रीनाथ जी के "अष्ट सखा" कहा गया है।"[1]

"ब्रज, भारत के उस प्रदेश का नाम है. जो मथुरा को केन्द्र मानकर 84 कोस के बीच मण्डलाकर स्थित है।"[2] मान्यवर विद्वानों ने ब्रज की सीमाओं के सम्बन्ध में अपने-अपने अलग-अलग विचार प्रकट किये हैं क्योंकि इसका निर्धारण एक कठिन कार्य रहा है। इस कठिनाई का कारण यह हो सकता है कि धार्मिक दृष्टि से ब्रज मण्डल मथुरा जिले तक ही सीमित है, किन्तु ब्रज की बोली मथुरा के चारों ओर दूर-दूर तक बोली जाती है।"[3] ब्रज की सीमाओं के सम्बन्ध में यह दोहा अत्यन्त प्रचलित है—

"इत बरहद इत सोन हद, उत सूरसेन को गाँव।
ब्रज चौरासी कोस में मथुरा मण्डल मांह।"[4]

ब्रज प्रदेश के भौगोलिक विस्तार तथा सीमाओं के सम्बन्ध में डा. चन्द्रभान रावत का यह कहना अक्षरश: सत्य है कि "वस्तुत: आज धार्मिक दृष्टि से ब्रज का विस्तार चौरासी कोस माना जाता है, पर यथार्थ भौगोलिक सीमायें आज निश्चित होना कठिन है। सीमा और विस्तार के निर्धारण के कथनों में धार्मिक, राजनैतिक आदि कई दृष्टियाँ आ जाने से प्रश्न जटिल हो गया है।"[5] इसलिए सामान्य परिचय की दृष्टि से हम डा. चन्द्रभान रावत

1. ब्रजस्थ बल्लभ संप्रदाय का इतिहास—प्रभुदयाल मीतल, पृष्ठ 55
2. मथुरा जिले की बोली—डा. चन्द्रभान रावत से उद्धृत, पृष्ठ 11
3. वही— 4. अष्टछाप तथा वल्लभ संप्रदाय—डा. दीनदयाल गुप्त, पृष्ठ 2
5. मथुरा जिले की बोली—पृष्ठ 12-13

द्वारा दिया हुआ मानचित्र ही यहाँ देना श्रेयस्कर समझते हैं। जो भी हो मथुरा जिले को ही ब्रज प्रदेश मानना उचित होगा।

(मानचित्र) :

इस ब्रज मण्डल के प्रति अष्टछापी कवियों में बड़ी श्रद्धा रही है। इसके दो मुख्य कारण जान पड़ते हैं। प्रथम तो यह कि इस मंडल के अन्तर्गत गोकुल, वृन्दावन, गोवर्द्धन, बरसाना, मथुरा आदि ऐसे प्रसिद्ध स्थल आते हैं, जो अष्टछाप के परमाराध्य श्रीकृष्ण की लीला भूमि रहे हैं। दूसरे, उक्त स्थानों में से कुछ यथा महावन, जमुनावती, गोपालपुर आदि अष्टछापी कवियों के निवास स्थान भी थे। "इनके अतिरिक्त गोवर्धन पर महाप्रभु वल्लभाचार्य द्वारा संस्थापित श्रीनाथ जी का प्रसिद्ध मंदिर भी है जहाँ श्रीनाथ जी के समक्ष वे कवि कीर्तन किया औरे पद रचा करते थे।"[1]

"ब्रज" शब्द का प्रयोग वैदिक काल में एक क्षेत्र के लिए न होकर 'ब्रजन्ति गावो यस्मिन्निति ब्रज:" के अर्थ में हुआ था। ब्रज जनपद के विभिन्न नाम मिलते हैं—मथुरा, मथुरा–मण्डल, मध्य प्रदेश, शूरसेन, बृह्मर्षि और ब्रज।[2]

श्रीकृष्ण काव्य की वस्तु का सम्बन्ध ब्रजभूमि में है। ब्रज में कृष्ण की वे भावात्मक लीलाएँ घटित हुई, जो कृष्ण काव्य में वस्तु के रूप में गृहीत हुई। जब भावात्मक लीलाओं के स्थलीय संदर्भ प्राप्त हुए, तो स्थलों की पौराणिक युग और ऐतिहासिक युग में खोज हुई। ऐतिहासिक युग में स्थलीय खोज भक्ति के प्रमुख आचार्यों के द्वारा पौराणिक साहित्य और अनुश्रुतियों के प्रकाश में हुई।[3] वाराह पुराण के अनुसार भूमंडल के समस्त तीर्थ ब्रज में ही उपस्थित हैं। पौराणिक युग में वायु, ब्रह्मा, उद्धव, नारद वज्रनाभ (अनिरुद्ध का पुत्र) प्रह्लाद, ध्रुव, गरुड़, अम्बरीष और परीक्षित आदि भक्तों से ब्रज यात्रा करने के उल्लेख प्राप्त होते हैं।[4] परवर्ती युगों में इस प्रदेश पर जैन, बौद्ध,[5] शैव और शाक्त धर्मों का प्रभाव पड़ा। ब्रज की लोक-संस्कृति

---

1. अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन—मायारानी टंडन, पृष्ठ 16
2. इस सम्बन्ध में विशेष अध्ययन के लिए द्रष्टव्य हैं—डा. सत्येन्द्र तथा डा. चन्द्रभान रावत के ग्रंथ।
3. कृष्ण काव्य: वस्तु, स्त्रोत और संरचना—डा. चन्द्रभान रावत, पृष्ठ 1
4. मथुरा की पौराणिक विभूतियाँ (लेख) रामस्वरूप सहाय
5. मथुरा: इतिहास और संस्कृति-सम्पादक—बनारसी दास चतुर्वेदी

में शिव पूजा नियमित रूप से मिलती है। इसी संदर्भ में यह भी स्मरणीय है कि वहाँ यह प्रचलित है कि ब्रज में श्रीनाथजी का मंदिर पहले शैव मंदिर ही था।

"मथुरा के चारों ओर चार शैव मंदिर है। नगर के पश्चिम में भूतेश्वरजी, पूर्व में पिप्पलेश्वर. दक्षिण में रंगेश्वर और उत्तर में गोकर्णेश्वर। कहा जाता है कि वैष्णव प्रभाव से पहले मथुरा पर शैवोपासक भक्तों का प्रभाव था।"[1] इन सबके बावजूद यह मानना ही पड़ेगा कि यद्यपि ब्रज क्षेत्र का प्रचलन पौराणिक काल से हुआ, फिर भी प्रबलता इसमें 11–16 वीं शताब्दी के वैष्णव आंदोलनों के द्वारा ही आयी। वैष्णव सम्प्रदायों ने शाक्तों से संघर्ष कर इस पर अपना अधिकार स्थापित करने में सफलता पायी। यह मानना ही होगा कि जब से बल्लभाचार्य जी ने ब्रज का अन्वेषण किया था, "तब से आज तक ब्रज वैष्णव संस्कृति का प्रधान क्षेत्र रहा है। आज ब्रज में इसी वैष्णव संस्कृति की कितनी ही परम्पराएँ साथ-साथ चलती मिलती हैं। इन सभी परम्पराओं के मूलाधार कृष्ण हैं।"[2] ब्रज से सम्बन्धित प्रधान वैष्णव संप्रदाय हैं—1. वल्लभ सम्प्रदाय 2. निंबार्क सम्प्रदाय 3. चैतन्य सम्प्रदाय 4. राधावल्लभ सम्प्रदाय 5. हरिदासी सम्प्रदाय आदि। स्वयं वल्लाभाचार्य जी, विट्ठल नाथजी, चैतन्य महाप्रभु, निंबार्काचार्य आदि आचार्यों ने ब्रज की यात्रा की और अपनी गद्दियों को स्थापित किया। वल्लभाचार्यजी ने ब्रज का ब्रह्मत्व स्वीकार किया। स्वामी हरिदास जी और हित हरिवंशजी को तो ब्रज की पुण्य स्थली में जन्म लेने का सौभाग्य ही प्राप्त था। अष्टछापी-कवियों ने तो मानो "कृष्ण" रस ही बहाया। जिस से भारतीय साहित्य में एक अनोखा मोड़ आ गया और ब्रज प्रदेश का आध्यात्मिक सांस्कृतिक, धार्मिक महत्वों के साथ-साथ साहित्यिक महत्व भी चारों ओर तेजी से फैलने लगा। "ब्रज की महिमा के लिए यह कहा जा सकता है कि द्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत, बिशिष्टाद्वैत, सिद्धाद्वैत, इच्छाद्वैत आदि सभी दार्शनिक वाद राधा कृष्ण के नाम रूप में यहाँ आ कर समा गये हैं।"[3]

ब्रज प्रदेश के प्रसिद्ध मंदिर हैं—श्रीनाथ जी का मंदिर, मदनमोहन जी का मंदिर, रंगनाथ जी का मंदिर, राधा-वल्लभ जी का मंदिर, नवनीत प्रिया जी का मंदिर, बांके बिहारी जी का मंदिर आदि।

---

1. अष्टछाप और बल्लभ सम्प्रदाय—डा. दीनदयाल गुप्त, पृष्ठ 10
2. ब्रज साहित्य का इतिहात—डा. सत्येन्द्र, पृष्ठ 7 3. वही—पुष्ठ 8

ब्रज प्रदेश प्राकृतिक तौर पर भी एक रमणीय प्रदेश है। सुन्दर यमुना तट के अलावा पर्वत, टीले, कछार, चौरस मैदान, झील, कुण्ड, पोखर, वृक्ष, वनों की कुंज गली, खंजन, मोर, पपीहा आदि पक्षी और दुधारु गाय मन मोह लेती हैं। सावन और भादों के महीनों में भिन्न भिन्न संप्रदायों के कृष्ण भक्त 84 कोस की यात्रा करते हैं। इसके अतिरिक्त गिरिराज या गोवर्धन पर्वत की यात्रा भी माननीय है। ब्रज यात्रा में आने में आने वाले प्रदेश हैं– 12 वन–जैसे मधुवन, तालबन, कुमुदबन, लोहबन। 24 उपवन–गोकुल, गोवर्धन, नंदगाँव, श्रीकुण्ड आदि। 5 टीले (पर्वत) गोवर्धन, बरसाना, नंदीश्वर और चरण पहाड़ी। इनके अलावा चार झील और 84 कुण्ड भी बताये जाते हैं।[1] अष्टछाप के काव्य में इन सभी का वर्णन तथा उनकी महत्ता को घोषित करते हुए पद प्राप्त होते हैं। उदाहरण के लिए–

1. यमुना स्तुति :

"कालिन्द कन्या श्रीकृष्ण सूर्यप्रिया श्री यमुना जी का हमारे आर्यावर्त की नदियों में एक महत्वपूर्ण और पूज्य स्थान है। धार्मिक, आध्यात्मिक, अधिदेविक, आधिभौतिक, आयुर्वेदिक एवं औद्योगिक सभी दृष्टियों से श्री यमुना जी का महत्व है।"[2]

1. सूरदास :

श्री यमुना जी पतित पावन करण।
प्रथम ही जाकी दर्श पायो कोटि कलिमल हरण।"[3]

2. कृष्णदास :

"नमोतरणि–तनया परम पुनीत जग पावनी।"[4]

3 छीत स्वामी :

दोऊ कूल खंभ तरंग सीढ़ी मानो, श्री जमुना जगत बैकुंठ निसेनी।[5]

---

1. विस्तृत अध्ययन के लिए द्रष्टव्य है–अष्टछाप और बल्लभ संप्रदाय–डा. दीनदयाल गुप्त तथा अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन–मायारानी टंडन
2. मथुरा–इतिहास और संस्कृति–अभिनंदन ग्रंथ, पृष्ठ 211
3. अष्टछाप पदावली–सोमनाथ गुप्त से उद्धृत
4. अष्टछाप पदावली–सोमनाथ गुप्त, पृष्ठ 81
5. अन्य कवियों के भी पद द्रष्टव्य हैं।

ब्रज तथा गोवर्धन की महिमा :

1. सूरदास : "वृन्दावन मोको अति भावत ।.........
यह वृन्दावन यह यमुनातट ये सुर भी
अति सुखद चरावत ।
करहुं मोहिब्रज रेणु देहु वृन्दावन वासा ।
मांगो यहै प्रसाद और नहि मेरे आसा ।"[2]

2. परमानन्ददास : "यह मांगो जसोदा नंदन ।......
ब्रज बसिबों जमुना अचिबो श्रीवल्लभ
को यही दास मन ।'

3 नन्ददास : "जोगी रे बसो तो गोवर्धन
नगर बसो तो मथुरा धाम ।"[4]

"अष्टछाप भक्तों ने इस लोक की ब्रजभूमि के प्रति अपना अनुराग, य के पशु, पक्षी, यमुना तथा प्रकृति के प्रति अपनी सौंदर्य भावना तथा यहाँ सुखद निवास की कामना अपने पदों में प्रकट की है ।"[5]

"ब्रज" क्षेत्र के सम्पूर्ण अध्ययन से यह पता चलता है कि यहाँ "ग अक्षर से आरम्भ होने वाले कई नाम प्राप्त होते हैं । जैसे "गोवर्धन, गोकु गोपाल, गोविन्द, गोपीनाथ, गोप-गोपिका, गोकुल-चन्द्रमा आदि । इस यह हो सकता है कि ब्रज का शाब्दिक अर्थ ही जहाँ गायें नित्य चरती ह तथा यहाँ के सुख समृद्ध जलवायु में गोचारण का अधिक महत्व है और उ पर यहाँ जीविका चलती है । इन सबसे अधिक कृष्ण का सम्बन्ध विशेष र से गौओं से ही है । गोचारण कृष्ण का अत्यन्त प्यारा काम है । इसीलि अपनी माँ से प्रार्थना करते हैं कि—

"मैया हों गाय चरावन जैहों ।"[6]

नटखट कृष्ण दूध-दुहने बैठते हैं तो क्या कम लीलायें करते हैं ? इस चित्र है—

---

1. सूरसागर—पद 1063
2. अष्टछाप तथा वल्लभ संप्रदाय—डा. दीनदयाल गुप्त, पृष्ठ 492
3. वही—पृष्ठ 103
4. अष्टछाप पदावली—सोमनाथ गुप्त, पृष्ठ 165
5. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय—डा. दीनदायल गुप्त, पृष्ठ 494
6. सूरदास—अष्टछाप पदावली—सोमनाथ गुप्त, पृष्ठ 27, 29

ब्रज प्रदेश प्राकृतिक तौर पर भी एक रमणीय प्रदेश है। सुन्दर यमुना तट के अलावा पर्वत, टीले, कछार, चौरस मैदान, झील, कुण्ड, पोखर, वृक्ष, वनों की कुंज गली, खंजन, मोर, पपीहा आदि पक्षी और दुधारु गाय मन मोह लेती हैं। सावन और भादों के महीनों में भिन्न भिन्न संप्रदायों के कृष्ण भक्त 84 कोस की यात्रा करते हैं। इसके अतिरिक्त गिरिराज या गोवर्धन पर्वत की यात्रा भी माननीय है। ब्रज यात्रा में आने में आने वाले प्रदेश हैं– 12 वन–जैसे मधुवन, तालबन, कुमुदबन, लोहबन। 24 उपवन–गोकुल, गोवर्धन, नंदगाँव, श्रीकुण्ड आदि। 5 टीले (पर्वत) गोवर्धन, बरसाना, नंदीश्वर और चरण पहाड़ी। इनके अलावा चार झील और 84 कुण्ड भी बताये जाते हैं।[1] अष्टछाप के काव्य में इन सभी का वर्णन तथा उनकी महत्ता को घोषित करते हुए पद प्राप्त होते हैं। उदाहरण के लिए–

1. यमुना स्तुति :

"कालिन्द कन्या श्रीकृष्ण सूर्यप्रिया श्री यमुना जी का हमारे आर्यावर्त की नदियों में एक महत्वपूर्ण और पूज्य स्थान है। धार्मिक, आध्यात्मिक, अधिदेविक, आधिभौतिक, आयुर्वेदिक एवं औद्योगिक सभी दृष्टियों से श्री यमुना जी का महत्व है।"[2]

1. सूरदास :

श्री यमुना जी पतित पावन करण।
प्रथम ही जाकी दर्श पायो कोटि कलिमल हरण।"[3]

2. कृष्णदास :

"नमोतरणि–तनया परम पुनीत जग पावनी।"[4]

3 छीत स्वामी :

दोऊ कूल खंभ तरंग सीढ़ी मानो, श्री जमुना जगत बैकुंठ निसेनी।[5]

1. विस्तृत अध्ययन के लिए द्रष्टव्य है–अष्टछाप और बल्लभ संप्रदाय– डा. दीनदयाल गुप्त तथा अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन– मायारानी टंडन
2. मथुरा–इतिहास और संस्कृति–अभिनंदन ग्रंथ, पृष्ठ 211
3. अष्टछाप पदावली–सोमनाथ गुप्त से उद्धृत
4. अष्टछाप पदावली–सोमनाथ गुप्त, पृष्ठ 81
5. अन्य कवियों के भी पद द्रष्टव्य हैं।

ब्रज तथा गोवर्धन की महिमा :

1. **सूरदास :** "वृन्दावन मोको अति भावत ।.........
यह वृन्दाबन यह यमुनातट ये सुर भी
अति सुखद चरावत ।"[1]
करहुं मोहिबज रेणु देहु वृन्दावन वासा ।
मांगो यहै प्रसाद और नहि मेरे आसा ।"[2]

2. **परमानन्ददास :** "यह मांगो जसोदा नंदन ।......
ब्रज बसिबों जमुना अचिबो श्रीवल्लभ
को यही दास मन ।"[3]

3 **नन्ददास :** "जोगी रे बसो तो गोवर्धन
नगर बसो तो मथुरा धाम ।"[4]

"अष्टछाप भक्तों ने इस लोक की ब्रजभूमि के प्रति अपना अनुराग, यहाँ के पशु, पक्षी, यमुना तथा प्रकृति के प्रति अपनी सौंदर्य भावना तथा यहाँ के सुखद निवास की कामना अपने पदों में प्रकट की है ।"[5]

"ब्रज" क्षेत्र के सम्पूर्ण अध्ययन से यह पता चलता है कि यहाँ "गो" अक्षर से आरम्भ होने वाले कई नाम प्राप्त होते हैं । जैसे "गोवर्धन, गोकुल, गोपाल, गोविन्द, गोपीनाथ, गोप-गोपिका, गोकुल–चन्द्रमा आदि । इसका यह हो सकता है कि ब्रज का शाब्दिक अर्थ ही जहाँ गायें नित्य चरती हैं" तथा यहाँ के सुख समृद्ध जलवायु में गोचारण का अधिक महत्व है और उसी पर यहाँ जीविका चलती है । इन सबसे अधिक कृष्ण का सम्बन्ध विशेष रूप से गौओं से ही है । गोचारण कृष्ण का अत्यन्त प्यारा काम है । इसीलिए अपनी माँ से प्रार्थना करते हैं कि–

"मैया हों गाय चरावन जैहों ।"[6]

नटखट कृष्ण दूध-दुहने बैठते हैं तो क्या कम लीलायें करते हैं ? इसका चित्र है–

---

1. सूरसागर–पद 1063
2. अष्टछाप तथा वल्लभ संप्रदाय–डा. दीनदयाल गुप्त, पृष्ठ 492
3. वही–पृष्ठ 103
4. अष्टछाप पदावली–सोमनाथ गुप्त, पृष्ठ 165
5. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय–डा. दीनदायल गुप्त, पृष्ठ 494
6. सूरदास–अष्टछाप पदावली–सोमनाथ गुप्त, पृष्ठ 27, 29

"इत चितवत उत धार चलावत" तथा[1]
"एक धार दोहनि पहुँचावत
एक धार जहं प्यारी ठाढ़ी ।"[2]

4.10.3. ताल्लपाक के कवि- तिरुपति :

ताल्लपाक के कवियों का जन्म स्थान आंध्र प्रदेश के कड़पा जिले में स्थित "राजम्पेट" तालुका के "ताल्लपाका" नामक गाँव है । इस वंश के मूल पुरुष अन्नमाचार्य ने अपने जन्म स्थान से तिरुपति आकर वहीं विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त में दीक्षा ली । तब से इन कवियों के वंशजों ने तिरुपति क्षेत्र को ही अपनी साधना का स्थल बनाया । साक्षात् विष्णु और लक्ष्मी के अवतार श्री वेंकटेश्वर तथा अलमेलमंगा की क्रीड़ा स्थली तिरुपति क्षेत्र को ही उन्होंने अपना तन, धन और मन के साथ-साथ संगीत और साहित्य सब कुछ अर्पित कर दिया । अतः यह क्षेत्र उनके संगीत-साहित्य तथा भक्ति के लिए प्रेरणा श्रोत बना ।

"नल्लमलै" नाम से विख्यात पूर्वी घाटियाँ (ईस्टर्न घाट) चित्र विचित्र आकृतियों में कृष्णा नदी के निचले भाग में कर्नूल, कड़पा और चित्तूर जिलों में व्याप्त हैं । ये आकृतियाँ शेष नाग की शयन आकृति से मिलती हैं अतः ये "शेषाचल" नाम से विख्यात हो गयी हैं । इसके पृच्छ भाग में "श्रीशैलम्" (ज्योतिर्लिंग) पृष्ठभाग में 'अहोबलिम्" (नरसिंह) शीर्षस्थान में "तिरुपति" (वेंकटेश्वर) और मुख स्थान में "श्रीकालहस्ती" (शैव क्षेत्र) स्थित हैं । यह भारत की विशेषता-समन्वयता का द्योतक है । इसके समीप स्वर्णमुखी नदी है । यह भी एक छोटे से सर्प की आकृति में ही दीखती है । मानों वे बड़ी पर्वत पंक्तियाँ शेषनाग हैं तो यह नदी उसके पुत्र "वासुकी" से आकार की हैं—किन्तु विपरीत दशा में । अतः ऊपर कथित क्षेत्रों का स्थान भी बदल जाता है । इन्हें देखने पर लगता है कि शिव-केशव में अभेद तत्व को मानों ये अपने सहस्रों जिह्वाओं से घोषित कर रहे हैं ।

4 10.3 1. पौराणिक कथा : बाराह और भविष्योत्तर पुराणों के अनुसार तिरुपति क्षेत्र और वहाँ के मंदिर का निर्माण साक्षात् भगवान के द्वारा ही माना जाता हैं । उसके सम्बन्ध में पौराणिक गाथा निम्न प्रकार से है—एक बार मुनियों में इस प्रश्न का उदय हुआ था कि त्रिमूर्तियों में से कौन श्रेष्ठ हैं ? इसका समाधान ढूँढने के लिए योग्य भृगु महर्षि को मान कर उन्हें

1., 2. सूरदास—अष्टछाप पदावली—सोमनाथ गुप्त, पृष्ठ 27, 29
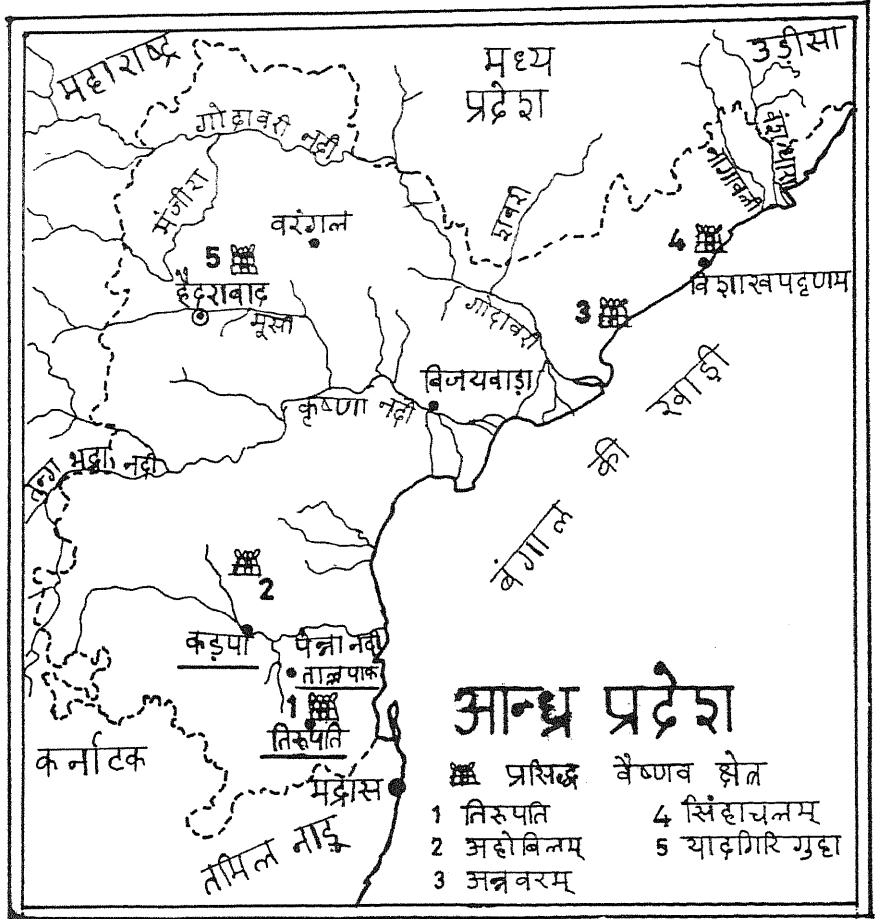
• अन्नमाचार्यजी का जन्म स्थान—ताल्लपाक गाँव

ही भेजा गया। ब्रह्मा और शिव ने उन्हें देख कर भी अनदेखा कर दिया। मुनि बैकुण्ठ पधारे, जहाँ, श्रीमन्नारायण योग निद्रा में थे। इस कारण उनका स्वागत न कर सके। कुपित मुनि ने साक्षात् हरि के वक्ष:स्थल पर लात मारी। मुनि के इस कार्य का हरि ने बुरा न माना बल्कि क्षमा की याचना करते हुए सेवाएँ कीं। उनके आदर सत्कारों से प्रसन्न हो कर मुनि चले गये और हरि को ही श्रेष्ठ घोषित किया। किन्तु सदा हरि के वक्षस्थल पर निवास करने वाली लक्ष्मी को यह अपमान सह्य नहीं था। वे रुठ कर पृथ्वी पा आ गयीं। विरह में व्याकुल नारायण भी लक्ष्मी को ढूँढ़ते–ढूँढ़ते इस पृथ्वी पर आ गये। तिरुपति के समीप घने जंगलों में, जो उस समय वाराह क्षेत्र था, एक वल्मीक (बांबी) में रहने लगे। विष्णु की इस स्थिति को देख स्वयं ब्रह्मा और शिव गाय बन गये और उस प्रदेश के नरेश-चोलवंश के राजा की गायों के झुण्ड में रहने लगे। प्रतिदिन चरने के बहाने जा कर विष्णु के वल्मीक पर दूध डाल कर आ जाते थे। एक दिन यह दृश्य एक गोपालक ने देख लिया और उस वल्मीक पर प्रहार किया। इससे विष्णु के सिर पर चोट पहुँची और रक्त बहने लगा। विषय की जानकारी पा कर राजा आया और क्षमा की याचना की। विष्णु ने इस पाप के परिहार के लिए यह आज्ञा दी कि थोड़े दिन तक तुम प्रेत योनि में रह कर दूसरे जन्म में राजा "तोंडमान" बन कर अपनी पुत्री से मेरा विवाह सम्पन्न करना। राजा ने अत्यन्त आनन्द के साथ हाँ कर दी। अब विष्णु श्रीनिवास के नाम से जाने जाने लगे और उनकी देख भाल बकुला नाम की एक वृद्धा करने लगीं। एक दिन मृगया खेलते समय श्रीनिवास का मिलन "पद्मावती" नाम की कन्या से हुआ। पद्मावती तोंडमान की ही कन्या थी। देवताओं के समक्ष अत्यन्त वैभव के साथ हरि और पद्मावती अथवा अलमेल मंगा (साक्षात् लक्ष्मी का ही अवतार) का विवाह सम्पन्न हो गया। विवाह के पश्चात् श्रीनिवास इसी तिरुमल पहाड़ को अपना निवास स्थान बनाया। तोंडमान राजा ने अत्यन्त वैभव के साथ मंदिर बनवाया तो ब्रह्मा ने स्वयं "ब्रह्मोत्सव" का आयोजन किया जो परम्परा आज तक चली आ रही है। यही है संक्षेप में तिरुमल क्षेत्र की पौराणिक कथा।[1]

इस क्षेत्र के वैभव और महिमा प्राचीन काल से ही समृद्ध थे और दिन ब दिन बढ़ने लगे। आलवारों की रचना "प्रबन्धम्" में श्रीमन्नारायण रूपी

---

1. तिरुपति यात्रा दर्पणमु, हिस्टरी आफ तिरुपति आदि ग्रंथों के आधार पर।

भगवान वेंकटेश्वर के दिव्य स्वरूप, शृंगार, महिमा, आदि का वर्णन है। तत्पश्चात् अनेक कवियों ने अपनी रचनाओं में इस क्षेत्र और प्रदेश का गौरव गान किया है। जैसे ताल्लपाक के कवि तथा अन्य तेलुगु कवियों ने ही नहीं वरन् पुरन्दरदास आदि कन्नड़ के कवि तथा तमिल आदि अन्य दक्षिण भाषा-भाषियों ने भी अपने साहित्य को वेंकटेश्वर के दिव्य वर्णनों से समृद्ध किया।

एक समय में इस क्षेत्र के भी शैव क्षेत्र होने के दावे किये गये थे। प्राय: चोल राजाओं का शैव धर्मावलम्बी होना भी एक कारण था। किन्तु रामानुजाचार्य ने शास्त्रार्थ में सभी को हरा कर सप्रमाण इसे वैष्णव क्षेत्र निरुपित किया। इससे संतुष्ट न हो कर उन्होंने भगवान की पूजा और अर्चना में एक व्यवस्था लायी। उन्होंने ही स्वामी के गले में लक्ष्मी की प्रतिमा की माला, शुक्रवार पूजा, ऊर्ध्व पुंड्र, बृहस्पतिवार को फूलों से ही आभूषण पहनाना, द्रविड़ प्रबन्ध का पठन, बैखानस पद्धति में पूजा आदि सेवाओं का आयोजन किया। अभिषेक के लिए जल की व्यवस्था, फूलों की व्यवस्था भी हुई। पहले से ही यह वाराह क्षेत्र था। इस कारण वाराह स्वामी की ही प्रथम पूजा आरम्भ हुई। इन सबके साथ-साथ उन्होंने वहाँ के वैष्णव पुजारियों पर भी नियम लगाये ताकि ये सारे काम व्यवस्थित रूप में चलें। रामानुजाचार्य से भी पहले यामुनाचार्य और नाथमुनि ने भी स्वामी की पूजा पद्धति को ठीक करने का प्रयत्न किया था। बल्लभाचार्य जी ने भी अपने दक्षिण देश की यात्रा में तिरुपति क्षेत्र के दर्शन किये थे। माधवाचार्य और आदिवन शठगोपयति, वेदान्त देशिक आदि वैष्णवाचार्यों के भी तिरुपति से घनिष्ठ सम्बन्ध थे। इस प्रकार से वैष्णव आचार्य पुरुषों के ही परिश्रम के कारण तिरुपति क्षेत्र का वैभव और प्रबन्ध दिन ब दिन बढ़ता गया।

वैष्णव आचार्यों के साथ-साथ तत्कालीन राजा-महाराजाओं ने भी अत्यधिक रूप में दान-धर्म दे कर इस क्षेत्र को साक्षात् बैकुण्ठ बनाया। उनमें से विशेष कर विजयनगर के राजा महाराजाओं के नाम उल्लेखनीय हैं। रामानुजाचार्य द्वारा आरम्भ की गयी पूजाओं को तथा अन्य पद्धतियों को अत्यन्त श्रद्धा के साथ इन्होंने भी चलाया। स्वयं श्रीकृष्णदेवराय ने सात बार तिरुपति क्षेत्र की यात्रा की। विभिन्न व्यक्तियों के द्वारा वहाँ के मंदिर को सात बार स्वर्ण लेपन लगाया गया। नयी नयी सेवाओं का आयोजन बढ़ने लगा। धर्मकीर्ति नामक बौद्ध दार्शनिक तथा वैयाकारणिक का जन्म यहाँ होने के कारण बौद्धों के लिए भी यह यात्रा स्थान बना। मुसलमान होने पर भी लाला मखाराम ने भी यात्रा की और आज भी उनकी स्वयं की मूर्तियाँ

मंदिर में हैं, जिस प्रकार कृष्ण देवराय तथा उनकी रानी की है। प्राकृतिक तौर पर भी यह एक अत्यन्त मनोरम स्थल है। सप्तगिरि के नाम से विख्यात सात ऊँचे-ऊँचे पर्वत, हरी-हरी घाटियाँ, रंग-बिरंगे फूलों के उद्यान, कदम-कदम पर देवी-देवता, आकाश गंगा, पाताल गंगा, पुष्कारिणी आदि के साथ वहाँ का वातावरण अत्यन्त मनमोहक ही नहीं सुखद भी है। इतना हीं नहीं, प्राय: एक सौ करोड़ वर्ष पुराना पत्थर का तोरण (बन्दनवार) भी यहाँ है। इस प्रकार के बन्दनवार सारे संसार में केवल तीन ही हैं।[1] (तिरुपति के अतिरिक्त अमरीका और इंगलैंड में हैं।)

तिरुमल तिरुपति क्षेत्र में अनेक मंदिर हैं। वेंकटाद्रि पर भगवान वेंकटेश्वर के मंदिर के अलावा तिरुचानूर में पद्मावती का मंदिर, वाराह मंदिर, नरसिंह मंदिर, गोविन्दराज स्वामी का मंदिर, श्रीराम, श्रीकृष्ण के मंदिर और हनुमान मंदिर तथा रामानुज मंदिर आदि-आदि। समरसता की भावना और कौतूहल उत्पन्न करने वाली बात यह है कि इस महान् वैष्णव क्षेत्र के चारों ओर शैव मंदिर हैं। वे हैं—

आग्नेय दिशा में—अगस्त्येश्वरालय
नैऋत्य दिशा में—आदिने पल्ली का शिव मंदिर
वायव्य दिशा में—श्री सिद्धेश्वरालय
ईशान्य दिशा में—श्री कालहस्तीश्वरालय

तिरसठ नायनमारों (शैव भक्त) में कम से कम चार-पांच भक्तों ने तिरुपति क्षेत्र की यात्रा की थी। उनमें से प्रमुख थे—अप्परर्, सुन्दरर्, माणिक्य-वाचकर, भक्त कन्नप्पा आदि।

ताल्लपाक के कवि भी इस पुण्य, स्थली से अत्यन्त प्रभावित हुए थे। यहाँ भगवान वेंकटेश्वर, देवी अलमेलमंगा, अन्य देवी-देवताओं के साथ-साथ तिरुपति क्षेत्र के कण-कण का भी वर्णन किया गया है। पहली बार जब अन्नमाचार्य जी ने तिरुपति के मंदिर के दर्शन किये तो उनके मुख से अनायास ही शतक का जन्म हुआ। उस मंदिर को देखने में भक्त के मन में जो उत्साह भक्ति और श्रद्धा आदि भाव एक साथ उठते हैं उनका सजीव चित्र इस संकीर्तन में है—

"अदिवो अल्लदिवो हरिवासमु
पदिवेल शेषुल पडगल मयमु।"[2]

---

1. मन आलयमुल चरित्रा—गोपीकृष्ण, पृष्ठ 286
2. ताल्लपाक अन्नमय्या पाटलु—पद 1

अर्थात् वही है हरि का निवास जो दस सहस्र फणियों से युक्त हैं। वह वेंकटाचल ब्रह्मा आदि के लिए प्रिय है और देवी-देवताओं तथा मुनियों का नित्य निवास है। यह सोने के शिखरों का मंदिर हम सबके लिए मूलधन है। उन्होंने सातों पहाड़ों पर चढ़ते समय पूरे रास्ते का, वहाँ के देवी-देवताओं का सुन्दर वर्णन एक क्रम में किया है।

रामानुज का वर्णन :

उन्नतोन्नतुडु उडयवर्लु–येन्ननंतुडें उडयवर्लु[1]

धन विष्णु :

"गतुलान्निखिलमैन कलियुग मंदुन–गति ईतडे चूपे घन गुरु दैवमु।"[2]

पुष्करिणी :

1. "देव देवुनिकि नी तेप्पल कोनेरम्मा
   वे वेलमोक्कुलु लोक पावनि नीकम्मा।"[3]
2. एंदुकु प्रियमोनीकु ई तेप्प तिरु नाल्लु"[4]

गोविन्दराज स्वामी :

"सिरुलसोम्मुलतोड शेषुनिपैबवलिचि
सोरिहि दासुल गृप जू चुकोंटानु।"[5]

इस प्रकार से भूलोक स्वर्ग के नाम से विख्यात तिरुपति और कलियुग के प्रभु वेंकटेश्वर के वर्णन में इन कवियों ने कभी भी थकान का अनुभव नहीं किया।

तिरुपति क्षेत्र सम्बन्धी अध्ययन से पता चलता है कि यहाँ से सम्बन्धित कई नामों का आरम्भ "तिरु" से होता है। उदाहरण के लिए–

तिरुपति, तिरुमल, तिरुमलनंबि, तिरुप्पावै, तिरुचानूर, तिरुवेंगडम्, तिरुचानूर, तिरुमलाचार्य, तिरुवेंगलनाथ, तिरुमंगेआलवार, तिरुवायमोडि, तिरुचूर्ण आदि। "तिरु" का अर्थ है श्री। अर्थात् लक्ष्मी। इसकी पौराणिक कथा से यह विदित होता है कि लक्ष्मी के विरह में नारायण यहाँ भटक रहे थे। शायद वे कोने-कोने में, लता-निकुंजों में पहाड़ियों में "श्री"–"श्री" पुकारते रहे होंगे। मानों वही लक्ष्मी के लिए नारायण की पुकार चारों ओर गूँज उठी होगी। शायद इसी कारण से यहाँ से सम्बन्धित कई नाम तिरु अथवा श्री से आरम्भ होते हैं। वास्तव में लक्ष्मी और नारायण में तत्वतः अन्तर न

---

1. अन्नमाचार्य संकीर्तन–(वा–2) पद–229
2. अन्नमाचार्य चरित्रा–पीठिका, पृष्ठ 17
3. अन्नमाचार्य संकीर्तन–(वा–7)–पद–192
4. वही–(वा–6) पद–143
5. वही–(वा–5) पद–303

होने के कारण ही वेंकटेश्वर का नाम "श्रीनिवास" ही पड़ गया। इसीलिए ताल्लपाक के कवियों ने अपनी अनेक रचनाओं में उस अभेद तत्व का ही वर्णन किया है। अलमेलमंगा ही वेंकटेश्वर है तथा वेंकटेश्वर ही अलमेलमंगा। दोनों एक दूसरे के बारे में ही सोचते हैं। अलमेलमंगा वेंकटेश्वर की वाणी है तो वेंकटेश्वर ही अलमेलमंगा का हृदय है। लक्ष्मी सदा वेंकटेश्वर के हृदय पर ही अलंकृत रहती है। भगवान के स्नान के समय में भी उसे अलग नहीं किया जाता। भक्तगण गोविन्दा नाम स्मरण करते हुए अपनी तिरुपति की यात्रा पूरी कर लेते हैं।

4.10.4. अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों के साधना स्थलों की तुलना :

ब्रज तथा तिरुपति के इस सम्पूर्ण अध्ययन से यह पता चलता है कि दोनों ही देश के प्रसिद्ध वैष्णव क्षेत्र रहे। आलोच्य कवियों के अलावा अन्य कई कवियों को भी इन क्षेत्रों से भक्ति और संगीत-साहित्य की सृष्टि के लिए प्रेरणा मिली। जैसे भगवानदास, गरीबदास, विष्णुदास, गदाधर, गोपालदास आदि कवि ब्रज से सम्बन्धित थे।

ताल्लपाक के कवियों के अलावा दासकूट के पुरन्दरदास, त्यागराज, श्यामशास्त्री आदि ने भी वेंकटेश्वर के प्रति भक्ति पूर्ण रचनाएँ कीं। वैष्णव आचार्य पुरुषों ने दोनों ही स्थानों को व्यवस्थित रूप प्रदान किया। ब्रज क्षेत्र की कुछ प्रथाओं को देख कर लगता है कि वल्लभाचार्य जी ने स्वयं दक्षिणात्य होने के कारण और तिरुपति क्षेत्र का पर्यटन करने के कारण यहाँ की प्रथाओं का वहाँ भी प्रचलन किया। जैसे रंगनाथ मंदिर में सभी दक्षिणात्य संप्रदाय के पुजारी हैं। उसी प्रकार उत्तर भारत से आये हुए एक योगी "हत्तीराम महंत" जी ने तिरुपति क्षेत्र को अपना निवास स्थान बनाया। आज भी उनके नाम पर मठ आदि हैं। इस प्रकार से भारत के ये दोनों प्रमुख वैष्णव क्षेत्रों का प्रचार एवं प्रभाव बहुत व्यापक है। ब्रज और तिरुपति क्षेत्र के साम्य और वैषम्य दृष्टव्य हैं।

साम्य :

	ब्रज प्रदेश	**तिरुपति**
1.	उत्तर भारत का प्रसिद्ध वैष्णव क्षेत्र-ब्रज है।	दक्षिण भारत का प्रसिद्ध वैष्णव क्षेत्र तिरुपति है।
2.	यमुना नदी के किनारे गोवर्धन पर्वत पर मंदिर है।	स्वर्णमुखी नदी के पास सप्तगिरियों पर मंदिर है।
3.	सुन्दर प्रकृति।	रमणीय वातावरण।
4.	"गो" शब्द से आरम्भ होने वाले नाम।	"तिरु" शब्द से आरम्भ होने वाले नाम।

5. राधा और कृष्ण का विहार क्षेत्र ।	श्रीनिवास और अलमेलमंगा का क्रीड़ा क्षेत्र ।
6. चारों ओर शैव मंदिर ।	चारों ओर शैव मंदिर ।
7. वैष्णव आचार्य पुरुषों के कारण वैभव ।	वैष्णव आचार्यों के कारण वैभव ।
8. जैन और बौद्ध धर्मों का भी सम्बन्ध रहा है ।	जैन और बौद्ध धर्मों से भी सम्बन्ध रहा है ।

वैषम्य :

1. मुसलमानी आक्रमणकारियों के आघात होते रहे ।	मुसलमान पहुँच न सके ।
2. मुसलमानों की कटुता के कारण कई वर्ष मंदिर बहुत कुछ उन्नत प्राप्त नहीं कर सके वरन् उनका विध्वंस होता रहा । केवल अकबर ने उदारता दिखाई ।	राजा-महाराजाओं की आसक्ति के कारण दिन ब दिन वैभव बढ़ता गया । विजयनगर राजाओं का नाम विशेष उल्लेखनीय हैं ।

4.11. अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों की भक्ति पद्धति का तुलनात्मक अध्ययन :

दोनों ही वर्ग के कवियों ने भक्ति की सुलभता और श्रेष्ठता घोषित की है और भक्ति की याचना की है । भगवान के ही नहीं वरन् उनके भक्तों के भक्त बनने की भी कामना प्रकट की है । "तुव भृत भृत्य भृत्य परिचारिक दास को दास कहाऊँ"—कहा है । अन्नमाचार्य तो केवल हरिदासों के गाँव में रहना मात्र ही भाग्य माना है । अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों ने ज्ञान कर्म और योग की सराहना करते हुए भी भक्ति को सुलभ ग्राह्य माना है । भगवान के भक्तों की तुलना में ज्ञानी और तपस्वियों का कुछ महत्व नहीं है । उन्होंने भक्ति को ही महान् धर्म माना है । अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों ने परमेश्वर को पाने के लिए जाति-पांति या ऊँच-नीच का भेद नहीं माना है । "हरि को भजे सो हरि का होई । जाति पांति पूछे नहिं कोई"—यही उनका विचार था ।

अष्टछाप एवं ताल्लपाक के कवियों ने इस संसार में रहते हुए भी उसके जाल में न फँसने की शिक्षा दी है । दोनों ने ही वैराग्य भावना पर जोर दिया । उन्होंने माना है—"धन सुत-दारा काम न आवे ।" (सूरदास) इष्ट देव घर के कल्प वृक्ष के समान हैं । उन्हें छोड़ अन्यों के पीछे दौड़ना पानी में नाव

को छोड़ कर पानी में डूबते हुए का सहायता की याचना करना जैसी मूर्खता ही है। (अन्नमाचार्य)

अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों ने अन्य भक्तों की ही भांति गुरु को ही इस भव सागर पार कर भगवान के पाने के लिए एक मात्र उपाय माना है। गुरु को "पूरण ब्रह्म प्रकटे पुरुषोत्तम श्रीवल्लभ सुखदाई।" (नन्ददास) कह कर इन भक्त कवियों ने गुरु को पूर्ण ब्रह्म ही माना है। गुरु को हरि का अवतार माना है—"हरि अवतार मितडु अन्नमय्या" (पेद तिरुमलाचार्य या चिनतिरुमलाचार्य)

अष्टछाप और ताल्लपाक के कवियों ने स्थान-स्थान पर परमात्मा के सामने अपने दीनत्व को स्वीकार करते हुए आत्मभर्त्सना की है। उद्धार का भार उस परमात्मा पर ही छोड़ दिया है क्योंकि वे अपने आपको असमर्थ ही मानते हैं। अपने उद्धार के सम्बन्ध में दोनों क्षेत्रों के कवियों ने यही तर्क प्रस्तुत किया है—"नाथ सको तो मोही उधारो। पतितनि में विख्यात पतित हों, पावन नाम तुम्हारो।" (सूर)

उभय क्षेत्र के कवियों ने सत्संग की महानता को स्वीकार किया है और हरि भक्ति से विमुख रहने वालों से दूर रहने की चेतावनी भी दी है। वे भगवान से मुक्ति नहीं वरन् सत्संग का वर माँगते हैं क्योंकि "संगति रहें साधु की अनु दिन, भव-दुःख दूरिनसावत" (सूरदास)।

अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों ने "हरि हरि हरि हरि सुमिरन करो" का संदेश देश के कोने कोने में पहुँचाया है। दोनों ही कवियों ने राम नाम की पारस से तुलना की है। "नामोच्चारण से सभी ने तीन प्रकार के फलों की प्राप्ति बतायी है—संकट मोचन, मन की शुद्धि और मोक्ष प्राप्ति। नाम साधना की सरलता और तज्जन्य फल-प्राप्ति की क्षिप्तता को विभिन्न शैलियों में पुष्ट किया है।"[1]

अष्टछाप एवं ताल्लपाक के कवियों ने राम, कृष्ण, विठ्ठल आदि को अपने इष्टदेव से अभेद मानते हुए नाम का सम्बन्ध विशेष कर राम से तथा लीला का सम्बन्ध विशेष कर कृष्ण से रखा है। सगुण और निर्गुण दोनों प्रकार के भगवान को मानते हुए भी आलोच्य-कवियों ने सगुणोपासना पर विशेष बल दिया था।

अष्टछाप एवं ताल्लपाक के कवियों ने हरि और हरि भक्ति ही सच्चा धन माना है। "वसु धन जग में सो धनी, जाके धन बलवीर" (नंददास) हरि

---

1. डा. के. रामनाथन्

भक्ति ऐसा अमूल्य धन है जिसे न चोर चुरा सकते हैं न कोई उसे घटा बढ़ा सकते हैं।

अष्टछाप और ताल्लपाक के कवियों ने भक्ति के प्रकारों को बताया है। उनकी रचनाएँ नवधा भक्ति के आधार पर खरी उतरती हैं पर संप्रदाय में भिन्नता के कारण बारीक भेद आ जाता है। कारण यह है कि रामानुजाचार्य और वल्लभाचार्य जी दोनों ने नवधा भक्ति को स्वीकार किया है। किन्तु रामानुजाचार्य जी ने भावात्मक सम्बन्धों को इसमें समाविष्ट नहीं किया है। वल्लभाचार्य जी भी नवधा भक्ति से अधिक प्रेम-लक्षणा भक्ति को महत्व दिया है। इसी संप्रदाय गत भेद के कारण अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों में स्वल्प भेद आ जाता है। तेलुगु के कवियों ने नवधा भक्ति को मानते हुए भी उसकी परिगणन में रुचि नहीं ली। "प्रबन्धम्" के प्रभाव के कारण ताल्लपाक के कवियों की रचनाओं में प्रेम-भक्ति का समावेश अनायास ही हो गया है, यद्यपि उन्होंने रामानुगा भक्ति को सिद्धान्त रूप में स्वीकार नहीं किया था। दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य भक्ति पर समान भाव के पद प्राप्त होते हैं। उनकी माधुर्य भक्ति का लक्ष्य एक ही है। वह है—आत्म समर्पण पूर्वक भगवत् कृपा का वरण। भक्ति भाव में कुछ धब्बा न लगाते हुए वे शृंगार वर्णन को उल्लास और उत्साह से आगे बढ़ाते हैं। अष्टछाप एवं ताल्लपाक के कवियों के विनय के पदों में दैन्य प्राप्त होता है तो सख्य-वात्सल्य और शृंगार में उल्लास, उत्साह ही नहीं वरन् सरस व्यंग्य और हास्य की छटा भी प्राप्त होती है। मधुर भक्ति के भाव सम्बन्धी पदों में कहीं-कहीं अन्नमाचार्य की तुलना मीरा से की जा सकती है, क्योंकि दोनों ने प्रेम में एक ही प्रकार की पीड़ा को व्यक्त किया है।

दोनों ने प्रपत्ति अथवा शरणागति की महानता को घोषित किया है। दोनों ही भक्त कवि अर्चामूर्ति में अपने इष्टदेव को साक्षात्कार कर उनके नित्य, मास तथा वर्षोत्सवों में अपने जीवन को धन्य मानते थे। इन सब उत्सवों के वर्णन में उन्हें तल्लीनता और अलौकिक आनन्द की प्राप्ति होती थी। अतः "औपचारिकता के स्थान पर निजी अनुभवों के संयोग से सजीव संदर्भ की योजना के कारण संप्रदायाश्रित काव्य भी विशुद्ध मानवीय भावभूमि पर उतर आया है।"[1] धर्म संप्रदाय की आत्मा को ग्रहण करते हुए इस प्रकार उसकी योजना की गयी है कि उसकी आत्मा अक्षत रह सके।

---

1. डा. चन्द्रभान रावत

अष्टछाप एवं ताल्लपाक के कवियों की भक्ति साधना के क्षेत्रों में भी समानता दिखाई देती है। दोनों के साधना के स्थल क्रमशः व्रज और तिरुपति थे। वहाँ वे भगवान की तनजा, वित्तजा और मानसी सेवा में लगे थे। नित्य, पक्ष, मास और वर्षोत्सवों का आयोजन किया जाता था। प्रभु के लीला गान में ही संकीर्तनियाँ बन कर जीवन को धन्य कर लिया था। अतः दोनों भक्त कवि अर्चामूर्ति में ही अपने इष्टदेव का साक्षात्कार करके उनकी नित्योत्सव सेवाओं व वर्षोत्सव लीलाओं का तल्लीनता से वर्णन करते थे और उसी में अलौकिक आनन्द की छटा को प्राप्त करते थे। "संप्रदायगत मान्यताओं की पूर्ण स्वीकृति के साथ-साथ अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व को निभाते रहने में भी इन दोनों भक्त कवियों का तत्व एक है।"[1] दोनों ही कवियों ने वहाँ के मंदिर, मूर्ति, यमुना नदी व पुष्पकारिणी देवी-देवता, पशु-पक्षी और प्रकृति के कण-कण के बारे में अत्यन्त भक्ति तथा उत्साह के साथ गाया है।

भक्ति के क्षेत्र में भी अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों को कई उपाधियाँ प्राप्त थीं। जैसे सूरदास को "पुष्टिमार्ग के जहाज", कहा गया है। उसी प्रकार से सूर तथा परमानन्ददास की भक्ति विलक्षणता के ही कारण उनके काव्य को "सागर" कहा गया। उसी प्रकार से ताल्लपाक के कवियों को भी अनेक उपाधियाँ थीं। जैसे पेदतिरुमलाचार्य "श्रीमद् वेद मार्ग प्रतिष्ठापनाचार्य, श्री रामानुज सिद्धान्त स्थापनाचार्य, वेदान्ताचार्य, शरणागत वज्रपंजर" आदि उपाधियों से विभूषित थे।

अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों के भक्ति सम्बन्धी इस अध्ययन से यह पता चलता है कि आलोच्य कवियों के मंतव्य परस्पर साम्य रखते हैं। उन्होंने जो दार्शनिक संप्रदायों को माना था, वे केवल भिन्न थे। भिन्न होने पर भी उन दार्शनिक विचारों में भी साम्य है। जैसे ब्रह्म के एक अखण्ड, अद्वैत रूप को मानना, सगुण-निर्गुण को अभेद मानते हुए भी सगुण को मान्यता देना, जगत को नित्य और सत्य मानना, भगवान को मायापति मानना, भक्ति को मुक्ति से अधिक मानना, वृन्दावन तथा तिरुपति को ही वैकुण्ठ मानना आदि आदि। जहाँ अष्टछापी कवि सरल रूप में काव्योचित ढंग पर ही दार्शनिक विचारों को व्यक्त करते हैं, वहाँ ताल्लपाक के कवि दार्शनिक तत्वों का विवरण शास्त्रीय ढंग पर तर्क-वितर्क और वेदों से उद्धरणों को ले कर प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत करते हैं। कहीं कहीं उन्होंने अन्य मतों की निन्दा भी कटुवाणी में

---

1. एम॰ संगमेशम्

की। शायद यह उनके आचार्यत्व और सहज उद्वेग पूर्ण स्वभाव का फल है। सूक्षम भेद चाहे क्यों न हो किन्तु मूल में अष्टछाप और ताल्लपाक के कवियों की मन की वाणी यही घोषित करती है—

> "सब तजि भजिए नंद कुमार।
> ....
> वेद पुरान, भागवत, गीता सबके यह मत सार।
> भव समुद्र हरि पद नौका बिनु कोउ न उतरे पार।" (सूरदास)

पंचम अध्याय

अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों का भावपक्ष

'इन कवियों ने तानपूरा पर श्रीनाथ के मंदिर में कीर्तन के समय आत्मा की मधुरतम उद्वेलित होने वाली भाव लहरियों को गा-गा कर जीवन के परे जो सत्य और सुन्दर है, उसे बहुत ही सहज भाव से उद्घाटित किया है।" (डा. नगेन्द्र—भाषा साहित्य कोश)

* * *

5.1. प्रस्तावना :

"मानव मन की अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वह अपनी अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए आकुल रहता है। दूसरे के सुनने और अपने इस कहने की चाट के कारण ही मनुष्य को समाजिक प्राणी कहा जाता है। अभिव्यक्ति की अदम्यता के साथ ही साथ उसमें सौंदर्य के प्रति आकर्षण भी स्वाभाविक रूप से विद्यमान रहता है जिसके कारण वह अपनी प्रत्येक वस्तु को सौंदर्य समन्वित देखना चाहता है, अतएव वह अपने भावों को सुन्दरतम रूप में प्रकट करने को उत्सुक होता है।"[1] मानव मन की अंतरंग की भावनाएँ— सुख-दुख, हर्ष—विषाद, उल्लास और उदासीनता आदि उमड़ कर एक क्रमबद्ध रूप में प्रकट होने पर उसे काव्य की संज्ञा दी जाती है। आदिकवि वाल्मीकि से ले कर आज तक सहृदय एवं कुशल कवि की भावनाएँ अपने चारों ओर के वातावरण से प्रेरित और प्रभावित हो कर "काव्य" का रूप धारण करती रही हैं। अत: हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि काव्य के सृजन में मूलत: तीन वस्तुएँ सहायक होती हैं। वे हैं—मानव चेतना, अनुभूति और अभिव्यक्ति। इन तीनों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध भी है। मानव चेतना के सहारे अनुभूतियों का जन्म होता है। मानव जब स्वयं उन अनुभूतियों की अभिव्यक्ति, उनका विस्तृतीकरण एवं प्रसार करता है, तब कला का जन्म होता है।

मानव जीवन का अंतिम लक्ष्य है "आनन्द।" उसके विविध क्रिया कलाप मनुष्य के आनन्द प्राप्ति के लिए ही संयोजित होते हैं। "व्यावहारिक रूप से यह आनन्द ही रस है। इसकी साहित्यिक मीमांसा करते हुए कहा जा सकता है कि वाणी के माध्यम से अभिव्यक्त भाव सौंदर्य का आस्वादन "रस" है।"[2] इसकी महिमा व्यापक है। काव्य में रस का महत्व ब्रह्मानुभूति के समकक्ष

---

1. सूर और उनका साहित्य—प्रो. हरबंशलाल शर्मा, पृष्ठ 315
2. लोकगीतों की साहित्यिक पृष्ठभूमि—डा. विद्याचौहान, पृष्ठ 330

होने के कारण इस को ब्रह्मानन्द सहोदर माना गया है। "जिस काव्य में रस नहीं, वह शब्दाडंबर मात्र है। रस काव्य की आत्मा है।"[1]

अष्टछाप एवं ताल्लपाक के कवियों ने भक्ति के मूलभाव को ग्रहण करते हुए भगवान की आनन्दमयी लीलाओं को अपना वर्ण्य विषय बनाया। लीला रसानुभूति के अमर गायक होने के कारण दोनों ही भाषा के कवियों की रचनाओं में भगवान की लीलाओं का ही तरह-तरह से वर्णन मिलता है। विशेष कर सूर और अन्नमाचार्य, "दोनों ने एक ही प्रकार से भगवान की बाल, किशोर व यौवन लीलाओं में अनुरक्ति दिखाई। फलतः दोनों की रचना वात्सल्य, सख्य व शृंगार भावों की विविध लीलाओं से ही भर गयी। इन कवियों के हाथ में ये भाव इतने विशद व विस्तृत रूप से वर्णित हुए हैं कि चाहे अन्यत्र इनमें से किसी किसी को रस संज्ञा मिले या न मिले, यहाँ तो वे अवश्य रसदशा को प्राप्त हो चुके हैं।"[2] प्रस्तुत अध्याय में—अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों के द्वारा चित्रित विभिन्न रस अथवा भावों का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

5.2. वात्सल्य रस :

"कवि कर्णपूर गोस्वामी के अनुसार इस रस का स्थायी भाव ममता है।···आश्रय ये हो सकते हैं—मात पिता, गुरुजन, परिजन आदि। आलंबन पुत्र, पुत्री, शिशु तथा अनुकंपेय। उद्दीपन में शिशु के गुण, चेष्टा तथा प्रसाधन आते हैं। प्राकृतिक उद्दीपनों में वे सभी वातावरण आ जाते हैं, जिनमें बच्चे के प्रति प्यार बढ़ता है। आलिंगन, चुम्बन, स्पर्श, सस्नेह देखना, पुलक, आनंदाश्रु, आदि अनुभाव हैं। आशंका, हर्ष, गर्व, आवेग, पुलक, स्मृति, विस्मय आदि संचारी हैं।"[3]

अष्टछापी कवियों ने विशेष कर सूर और परमानन्ददास ने वात्सल्य भाव को ही ग्रहण कर भगवान कृष्ण की आराधना की। इसीलिए सूर को तो वात्सल्य के कवि सम्राट माना जाता है। "वात्सल्य के भीतर की जितनी मानसिक वृत्तियों और दशाओं का अनुभव और प्रत्यक्षीकरण सूर कर सके, उतना और कोई नहीं।"[4]

1. हिन्दी और मलयालम कृष्ण भक्ति काव्य—डा. के. भास्करन नायर, पृष्ठ 240
2. अन्नमाचार्य और सूरदास—डा. एम. संगमेशम्, पृष्ठ 239
3. सूर साहित्य : नव मूल्यांकन—डा. चन्द्रभान रावत, पृष्ठ 227
4. त्रिवेणी—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

ताल्लपाक के कवियों की रचनाओं में भी वात्सल्य भाव के चित्रण अनेक स्थानों पर प्राप्त होते हैं। इनके संकीर्तनों के अलावा चिन्नन्ना कृत अष्टमहिषी कल्याणमु में भागवत और हरिवंश पुराणों के आधार पर प्रबन्धात्मक रूप में कृष्ण की बाल लीलाओं का वर्णन हुआ है। हिन्दी और तेलुगु दोनों भाषाओं के कवियों ने वात्सल्य भाव का चित्रण करते समय अपने आपको नन्द यशोदा से हृदय साम्य स्थापित कर अपने इष्ट की लीलाओं को समीप से देखने का आनन्द उठाया है और उसी में तल्लीन हो गये हैं।

बालक का मनमोहक रूप वात्सल्य भाव को जगाता है। अतः मानव मनोविज्ञान के कुशल कवि होने के कारण आलोच्य कवियों ने बालकृष्ण के आकर्षक रूप को शब्दों में इस प्रकार से बाँधा है—

"घूँघर वारि लटें लटकें छवि कुंडल लोल कपोलन की
दंतकि पंगत कुंदकली अधरामृत बोलन खोलन की।
चपला चमके तन बीच छटे उर मोतिन माल अमोलन की
रुनक झुनक पग पैंजनि बाजै चलन चटक इन डोलन की।
सूरदास प्रभु करि न्योछावरि लटक भुजा गलमेलन की।"[1]

यहाँ गोस्वामी तुलसीदास जी की कवितावली की प्रसिद्ध पंक्तियाँ "वर दंत की पंगति कुंदकली अधराधर पल्लव खोलन की।"[2] अवश्य स्मरणीय हैं। एक कुशल कवि होने के कारण सूर ने कृष्ण के अलंकृत व स्वाभाविक दोनों रूपों का सशक्त चित्रण किया है। बालक कृष्ण का एक स्वाभाविक रूप सूर के शब्दों में—

"सोभित कर नवनीत लिए
घुटुरुनि चलत रेनु-तन-मंडित, मुख दधि लेप किये।"[3]

अन्य कवियों ने भी बालक कृष्ण के मन मोहक रूप का वर्णन इस प्रकार किया है—

परमानन्ददास :

पांय पैंजनियाँ रुनझुन बाजें, आंगन-आंगन खोलना।
कज्जर तिलक कंठ कठुला मनि पीतांबर को चोलना।[4]

---

1. सूर ग्रंथावली—पंचम खण्ड—पद—5685
2. पद—5
3. सूरसागर पद—717
4. परमानन्द सागर—पद 86

नन्ददास :

"कुटिल अलकावली, तिलक गोरोचन।
चरन-अंगूठा मुख किलक-किलक कूलैं।
नैननि अंजन सुरेख, भेष अभिराय सुचि।
कंठ केहरि नख, किंकिन कटि झूलें।"[1]

तथा छोटे से कृष्ण का एक और सुन्दर चित्रण है—

"छोटो सो कन्हैया, मुख मुरली मधुर छोटी,
छोटे-छोटे ग्वाल-बाल, छोटी पाग सिर की।
छोटे-छोटे कुंडल कान, मुनिन हू के छूटे ध्यान,
छोटे पट छोटी लट छुटी अलकन की।"[2]

गोविन्ददास :

"तेरो मुख मानो जैसोरी—शरद शशि।
दसन-ज्योति जुन्हाई, वचन सीतलताई।·········
कस्तूरी तिलक भाल ऋतु कलंक छवि
नक्षत्र माल मनि मंगलसि।"[3]

गोविन्ददास के इस वर्णन में अलंकारों की साज-सज्जा नहीं है। अष्टछाप के कवियों के वात्सल्य वर्णन में रेखांकित करने योग्य विशेषता उनकी सहज स्वाभाविकता है।

ताल्लपाक के कवियों ने भी बालक कृष्ण के दिव्य सौंदर्य का वर्णन किया है। जैसे अन्नमाचार्य का यह संस्कृत संकीर्तन प्रस्तुत है—

"भावयामि गोपाल बालं। मनस्सेवितंतत्पदं चिंतयेयं
कटिघटित मेखला खचित मणि घंटिका
पटल निनदेन विभ्राज मानं।
कुटिल पद घटित संकुल सिंजितेनतं
चटुलनटना समुज्जवल विलासं।"[4]

बालक कृष्ण के इस अद्भुत और सम्मोहनकारी रूप देखने शुक, नारद आदि प्रच्छन्न रूप में आते हैं। बालक कृष्ण के मनमोहक रूप के साथ-साथ अन्य लीलाओं को भी नवरत्नों से जोड़ते हुए कवि यों प्रस्तुत करते हैं—

---

1. नन्ददास पदावली—पद 34
2. वही—पद—33
3. अष्टछाप पदावली—सोमनाथ गुप्त, पृष्ठ 229
4. आध्यात्म संकीर्तन—वा—पद 79

मुद्दुगारे यशोदा मुंगिटि मुत्यमु वीडु
तिद्दरानि महिमला देवकी सुतुडु ।"[1]

अर्थात् यह मनमोहक और महिमान्वित बालक माता यशोदा के आंगन का मोती ही नहीं, देवकी का पुत्र भी है। इसकी महिमाओं के बारे में क्या कहें ? यह बालक गोपिकाओं के हथेली का "मानिक" है। अर्थात् प्रेम के द्वारा सभी की पहुँच में रहता है। क्रूर कंस के लिए तो तीक्ष्ण "वज्र" ही है। गरुड़ पर तीनों लोकों में विहार करने वाले भगवान "मरकत" हैं।[2] शृंगार के नायक कृष्ण रुक्मिणी के अधरों के लिए लाल-लाल "मूंगा" ही हैं। गोवर्धन धारी कृष्ण "गोमेदक" होने में कुछ विचित्रता नहीं। दोनों ओर शंख और चक्र धारण करने के कारण उनके बीच "लहसुनिया" के प्रकाश से जगमगाने वाले, सारी सृष्टि की रक्षा करने वाले प्रभु कमलाक्ष ही हैं। कालिय के फनों पर नृत्य करने वाले बालक कृष्ण "पुखराज" हैं। तिरुपति क्षेत्र में विराजमान घनश्याम "नीलम" नहीं तो और क्या ? सदा क्षीरसागर में शयन करने वाले प्रभु "रत्न" ही हैं। (यह भी एक ऐसा रत्न है, जिसे रत्नाकर से निकाला नहीं गया।) इस प्रकार का अनोखा चित्रण केवल हृदय और मस्तिष्क के उचित समन्वय कर सकने वाले इने-गिने कवि ही कर सकते हैं। बालक कृष्ण का एक और चित्रण प्रस्तुत है—

"ऐसे शिशु हमें देखने में बहुत कम बार मिलते हैं। घुंघराले बाल, सोने के घुंघरू बंधे पैरों से यशोदा के पीछे चलने वाले कृष्ण अत्यन्त मनमोहक हैं। उनकी उंगलियों में अंगूठियाँ शोभा दे रही हैं। उसके गाल आइनों के समान हैं। उसके मुख पर मक्खन तथा पेट पर दूध के निशान अत्यन्त शोभा दे रहे हैं।"[3]

चिन्नन्ना ने भी अपने "अष्टमहिषी कल्याण" में बालक कृष्ण और बलराम का सुन्दर वर्णन किया है—

"अन पादमुल गज्जियलु पोंदुपडग
अंदुल मैवलंबुलो यनग ।"[4]

---

1. अन्नमय्या संकीर्तनलु—स्वर सहित पृष्ठ 132
2. तेलुगु में मरकत को गरुड़ पच्चपूसा भी कहते हैं। अतः यहाँ चमत्कार भी है।
3. (वा. 4)—पद—1
4. पृष्ठ 28

अर्थात् पाँवों में नूपुर, कटि पर सूत्र, गुरियों की करधनी और भ्रमरों के समान कुटिल कुंतलों से कृष्ण और बलराम नन्द के घर में शोभा दे रहे हैं।

वात्सल्य भाव से सम्बन्धित अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों की रचनाओं को अध्ययन की सुविधा के लिए निम्न प्रकार से विभाजित कर सकते हैं। जैसे—1. पुत्र जन्म और जन्मोत्सव 2. पालना 3. उलटना 4. नामकरण 5. अन्नप्रशासन और वर्षगांठ 6. घुटुरन चलना 7. पैरों चलना 8. मथानी ग्रहण 9. कृष्ण का बोलना 10. बालछवि 11. बाल क्रीड़ा 12. माटी भक्षण 13. उलाहना 14. मातृहृदय और 15. वात्सल्य वियोग।[1]

इन प्रसंगों के अलावा असुर निकंदन बालकृष्ण और माखनचोर बालकृष्ण का रूप भी वात्सल्य भावों को जगाता है। वास्तव में ये सभी प्रसंग एक शृंखला के रूप में हो कर एक से एक मिल कर अत्यन्त प्रभावशाली बन जाते हैं।

कृष्ण जन्म के पूर्व प्रसग बालकृष्ण के आधिदैविक रूप से सम्बद्ध हैं। पूर्व जन्म में देवकी ने कृष्ण को जन्म देने के लिए और यशोदा ने वात्सल्य रस के आस्वादन के लिए तपस्या की थी। इसीलिए अन्नमाचार्य कृष्ण को यशोदा के लिए "सोने की निधि", देवकी के लिए "भाग्य की रेखा" और "वसुदेव का तप:फल" कहते हैं।[2]

आकाशवाणी एक अलौकिक तत्व है, जिसने कृष्ण की बालकथा के लिए संकट उपस्थित कर दिया। सज्जनों की रक्षा के साथ-साथ भय की एक रेखा और भगवान के एक अलौकिक शक्ति के प्रदर्शन के लिए वातावरण भी प्रस्तुत किया गया। कंस के द्वारा देवकी के सात पुत्रों के वध के कारण माता देवकी का वात्सल्य भय और करुणा के चीत्कारों में दब गया है। इस प्रकार बालकृष्ण के वात्सल्य की पृष्ठभूमि में अलौकिकता, भय और करुणा का मिश्रित वातावरण है। इन प्रसंगों का वर्णन अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों ने प्राय: समान रूप से ही किया है।

5.2.1. कृष्ण जन्य के पूर्व प्रसंग :

हम निम्न तालिका के रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं—

5.2.1.1. भगवान के द्वारा पृथ्वी को आश्वासन :

"धेनु रूप धरि पुहुमि पुकारी, सिव विरिंचि के द्वारा।

... ...

---

1. सूरसाहित्य : नवमूल्यांकन के आधार पर—डा. चन्द्रभान रावत
2. आध्यात्म संकीर्तन—वा. 3—पद, 234

उधरौं धरनि, असुर-कुल मारौं धरि नर-तन अवतारा ।।

... ...

आग्या भई विलंब न करौ । जदुकुल विषै जाई अवतारौ ।"[1]

तथा

साधुवाल्कुलचे जड़िसित्तिनिक

नैधीरुचे दीरुनी भारमन्न··· ।[2]

5.2 1.2. वसुदेव और देवकी का विवाह और कंस के द्वारा देवकी के पुत्रों की हत्या :

"दई विवाह कंस वसुदेवहि, दुःख भंजन सुख माला ।

... ...

कंस बंस को नाम करत है, कह लें जीव उतारों ।[3]

तथा

भगनी रथ को सारथि भयो । प्रीति बिवसि सुदूर लै गयो ।

जोइ जोइ बालक उपजत जात । सोइ-सोइ इतै न ग्रूझै बात ।[4]

तथा

नारामतो बुट्टुवगु कंसुंडिद··· ।"[5]

5.2 1.3. भगवान का देवकी के गर्भ में प्रवेश और देवताओं द्वारा गर्भ स्तुति :

"सुर नर देव वन्दना आए, सोवति तैं उठि जागी ।"[6]

तथा

"पुनि वन्दन करे भरे आनन्द । चले धरनि बृन्दारक वृन्द ।"[7]

इस प्रसंग में तेलुगु में देवकी की गर्भ स्तुति के स्थान पर देवकी के गर्भ का वर्णन है ।[8]

5 3. जन्म और जन्मोत्सव :

महापुरुषों के जन्म की परिस्थितियों और तत्सम्बन्धी अभिप्रायों की परम्परा मिलती है । उनका जन्म मनोरम परिस्थितियों में भी हो सकता है । तुलसी के राम का जन्म ऐसी ही परिस्थितियों में हुआ । दूसरा अभिप्राय

---

1. भाषा दशम स्कंध—नंददास, पृष्ठ 192
2. अष्टमहिषी कल्याण—चिन्नन्ना, पृष्ठ 10, 11
3. सूरसागर—पद 622
4. भाषा दशम स्कंध—नन्ददास, पृष्ठ 193
5. अष्टमहिषी कल्याण, पृष्ठ 14, 15
6. सूरसागर—पृष्ठ
7. भाषा दशम स्कंध—पृष्ठ 198
8. अष्टमहिषी कल्याण—पृष्ठ 17

इसके विपरीत मिलता है।[1] अष्टछाप और ताल्लपाक के कवियों ने दोनों प्रकार के वर्णन किये हैं। जैसे-सूर ने भादों का महीना, अंधकार पूर्ण आधीरात, मेघ गर्जन, उमड़ती हुई जमुना वर्षा और विद्युत का वर्णन करके वातावरण को उद्धृत और उग्र बनाया है।

"भादों की अध-राति अंध्यारी।.........

गरजत मेघ, महा डर लागत, बीच बढ़ी जमुना जलकारी।"[2]

नन्ददास ने भाषा दशम स्कंद में कृष्ण जनने के समय का वर्णन इस प्रकार से किया है—

"भादों सलिल सुच्छ अस भये।......

सुन्दर अर्द्ध रैनि जब गई, अति सिंगार मई छवि छई।

तब देव तें प्रगट ऐसें। पूरबतैं पूरन ससि जैसे।"[3]

ताल्लपाक के कवियों के मत में कृष्ण का जन्म एक मामूली घटना नहीं है। उसका विशेष प्रयोजन और विश्व व्यापक प्रभाव है।

अन्नमाचार्य : अदिवो चंद्रोदय मिदिवो रोहिणि पोद्दु,
अदन श्रीकृष्णुडेत्ते नवतारमु।[4]

अर्थात् श्रावण बहुल अष्टमी को आधीरात के समय रोहिणी नक्षत्र में कृष्ण का जन्म अधर्म रूपी अंधकार के अस्त और धर्म रूपी चन्द्रमा के उदय होते समय इस लोक में हुआ। इसी संदर्भ में वे अपार हर्ष व्यक्त करते हुए कहते हैं कि ब्रह्मा आदि लोग कृष्ण की सेवा के लिए उपस्थित हैं। उधर चन्द्र का उदय हुआ और इधर कृष्ण का जन्म हुआ। वह समुद्र का बेटा है और यह समुद्र के दामाद हैं। लेकिन यह उसका शासक बना। चाँद गोरा है और कृष्ण साँवले। वह खुद अमृत है लेकिन यह अमृतनाथ हैं। वे कहते हैं कि कृष्ण का जन्म हुआ अब कंस कहाँ जाएगा।[5]

चिन्नन्ना : कवि ने अपने अष्ट महिषी कल्याण द्विपद काव्य में कृष्ण जन्म के समय का वर्णन इस प्रकार किया है कि सावन की अष्टमी को आधी रात के समय रोहिणी नक्षत्र में जब धीमी-धीमी वर्षा हो रही थी तब कृष्ण

---

1. सूर-साहित्य—नवमूल्यांकन—डा. चन्द्रभान रावत, पृष्ठ 231
2. सूरसागर—पृष्ठ 112
3. नन्ददास ग्रंथावली—पृष्ठ 195
4. आध्यात्म संकीर्तन (वा. 10) पद 1, पद 20
5. अन्नमाचार्य और सूरदास—एम. संगमेशम, पृष्ठ 239
   तथा अन्नमाचार्य आध्यात्म संकीर्तन पद 478

जन्म हुआ। मुनि और सुर प्रार्थना कर रहे थे। सज्जनों के लिए शुभ और दुर्जनों के लिए अशुभ लक्षण प्रकट हो रहे थे।[1]

कृष्ण जन्म के समय देवताओं की दुंदुभी, किन्नरी आदि का गायन अष्टछाप और ताल्लपाक के कवियों ने किया है। साथ ही कृष्ण के चतुर्भुज रूप में प्रकट होना और देवकी वसुदेव द्वारा स्तुति भी करवायी है।[2] इसके पश्चात् कृष्ण का आदेश पाकर वसुदेव बालक को व्रज में छोड़ आने का निश्चय करना, कारावास में सभी का माया के वश में हो जाना और यमुना के रास्ता देने की कथा भी समान है। नन्ददास के शब्दों में—

भरि भांदों की रैन अंधियारी।
लहलहात बिजुरी बज मारी।
बहुर्यो बीच कालिंदी कारी।
भरि रही नीर भयानक भारी॥[3]

उक्त अलौकिक वातावरण के चित्रण में स्रोत की एकता के कारण दोनों क्षेत्रों से कवियों में पूर्ण साम्य ही है। वात्सल्य के साथ इस प्रकार के अलौकिक चित्रण का महत्व है।[4]

कृष्ण से बिछुड़ने की बात सोचकर देवकी का वात्सल्य फूट पड़ा। किन्तु उनकी स्थिति निस्सहाय थी। कृष्ण के चतुर्भुज रूप को देखकर माता संतुष्ट हुई। "किन्तु सारा वातावरण वात्सल्य के परिपाक के लिए उपयुक्त नहीं रह गया। अतः कृष्ण को गोकुल पहुँचा दिया गया। गोकुल में शिशु की रक्षा हुई जहाँ माता यशोदा के द्वारा वात्सल्य का पूर्ण परिपाक संभव हुआ।"[5] योगमाया का प्रसंग भी दोनों भाषाओं में समान रूप से प्राप्त होता है।[6]

---

1. अष्टमहिषी कल्याणमु, पृष्ठ 18
2. सूरसागर पद–622, 624 अन्नमाचार्य संकीर्तन (वा. 1) पद 220, भाषा दशम स्कंद पृष्ठ 199 तथा अष्टमहिषी कल्याणमु–पृष्ठ 18
3. द्रष्टव्य है—सूरसागर पद 623 भाषा दशम स्कंध पृष्ठ 201 तथा अष्टमहिषी कल्याणमु–पृष्ठ 20
4. हिन्दी और तेलुगु वैष्णव भक्ति साहित्य–डा. के. रामनाथन्, पृष्ठ 302
5. सूर साहित्य–नवमूल्यांकन–डा. चन्द्रभान रावत, पृष्ठ 232
6. सूरसागर-पद 623, भाषा दशम दशम स्कंध पृष्ठ 202,
तथा अष्टमहिषी कल्याण, पृष्ठ 20

अब कृष्ण अपनी लीलाओं का एक ऐसी माँ तथा अन्य व्यक्तियों के पास विस्तार करते हैं, जिन्हें उनके रहस्यमय रूप का कुछ पता नहीं था। अत: सच्चे अर्थ में, बिना किसी अलौकिकता के पुट के (बहुत सीमा तक) नन्द, यशोदा तथा गोप-गोपी वात्सल्य के आश्रय बन जाते हैं। कृष्ण काव्य का वात्सल्य यहीं से उमड़ता है। पुत्र जन्म के अवसर पर यशोदा अपने आप में फूली न समा सकी। "गद्गद् कंठ बोल नहिं आवै, हरषवंत ह्वै नन्द बुलाइ" के अवसर पर—"शब्द पंगु हो रहे हैं। उसके जन्म-जन्म के पुण्यों ने सघन घटा की भाँति रस की अविरल वर्षा की। यशोदा का अंतरबाह्य भीग उठा।"[1] हर्ष के मारे नन्द और यशोदा उपहारों की बरसा देते हैं।[2] अन्नमाचार्य ने भी नन्द के द्वारा पुत्रोत्सव के समय अनेक गौओं को देने का उल्लेख किया है।[3] मंगल गायन, मंगल कलश लिए उल्लास भरे गीतों को गाते हुए दूध, दधि-अक्षत लिए गोपी और गोप नन्द के द्वार पर जा रहे थे। वे एक दूसरे पर केशर मिश्रित दूध और दही और अक्षत छिड़कते हैं।[4]

"ब्रज में फूले फिरत अहीर। ....
मंगल कलस दूध दधि अच्छत वेद पढ़त द्विज धीर।
फूले नन्दराय पहरावत छिरकत कुम-कुम नीर।"[5]

तथा

"मंगल गीतनि गावति। चहुँ दिसितैं आवति
छवि पावति। ...
सींचति सबनि हरद अरु दही। तबकी छबि
कुछ परति न कही।"[6]

ताल्लपाक के कवियों ने भी श्रीकृष्ण के जन्म के समय ब्रज प्रदेश के उत्साह को अपने शब्दों में बाँधा है।

---

1. सूरसाहित्य: नवमूल्यांकन—डा. चन्द्रभान रावत, पृष्ठ 233
2. पुत्र जन्मसुमिकैमन फुले दान देते जिय मैं बाढ़ी रति—
   (सूर ग्रंथावली—पंचम खण्ड पद—5661)
3. (वा. 2) 478 पद
4. सूरसागर—पद 649
5. परमानन्द सागर—पद 4
6. भाषा दशम स्कंध-नन्ददास—पृष्ठ 204 तथा दृष्टव्य है—नंददास पदावली के श्रीकृष्ण जन्म तथा बधाई के पद

'ब्रज की युवतियाँ गावो, नाचो। आज कंस को मारने के लिए कृष्ण का जन्म हुआ है। चारों ओर आनन्द और उत्साह छा गया है।[1]

तथा

"धेनु सहस्रमुलु द्विजुलकु निच्चि···
गोमरू चेक्किकल्ल गुंकुममु चल्लुचुनु।"[2]

अर्थात् आनन्द के साथ एक सहस्र गायों को नन्द ने ब्राह्मणों को दान में दे दिया। तरह-तरह के वस्त्र और आभूषण पहन कर ब्रज के नर-नारी एक दूसरे पर दूध और दही छिड़क रहे थे।

इस संदर्भ में सूर ने अधिक बल सांस्कृतिक पक्ष पर दिया है। जैसे—नार काटने वाली का अधिक नेग माँगना, बन्दनवार, कलश आदि का कोलाहल तथा बढ़ई का पालना ले आना आदि। नन्ददास ने भी लिखा है कि ढाठिन अपने पति से कहती है—'जाउ जाउ तुम नन्द नृपति के दान कोठरी खोली जू। ···हमको लै पो नख-सिख गहिनो जेहरि सहित सु जोरी–जु।"[3]

सूर और नन्ददास ने इस संदर्भ में अलौकिक उपकरणों का नियोजन भी किया है। "जैसे अष्ट सिद्धियाँ झाड़ू लगा रही हैं और नवनिधियाँ स्तवित कर रही हैं।"[4]

"जनसमूह का आनंदोल्लास एक ओर तो वात्सल्य से प्रेरित हैं, दूसरी ओर सारा ब्रज यशोदा के वात्सल्य के अभूतपूर्व आश्रयत्व पर आश्चर्य चकित है।"[5]

5 3.1. **पालना :** पालने पर आने के साथ ही वात्सल्य की दो धाराएँ पृथक-पृथक बहने लगती हैं। बल देव के रूप में कृष्ण लोकोपकारक दानवीय शक्तियों का नाश करते हैं। दूसरी ओर मानवीय धरातल पर अपनी माँ की वात्सल्य भावना का आलंबन बन कर वे बाल चेष्टायें और बाल-लीलाएँ करते हैं। ···दोनों धारायें एक दूसरे को वेग प्रदान करती हैं।[6] सूर ने यशोदा

---

1. अन्नमाचार्य आध्यात्म संकीर्तन (वा. 8) पद 112
2. अष्टमहिषी कल्याणमु—चिन्नन्ना, पृष्ठ 21
3. नन्ददास पदावली—पद 30
4. सूरसागर–पद 650 तथा नंददास पदावली, 25
5. सूरसाहित्य–नवमूल्यांकन–चन्द्रभान रावत, पृष्ठ 235
6. वही–पृष्ठ 235–36

से जो जो लोरियाँ गवायी हैं वे अत्यन्त सहज और वात्सल्य की सौ सौ फुवारें बरसाती हैं। जैसे—

"जसोदा हरि पालने झुलावै।
हलरावै दुलराइ मल्हावै, जोई सोई कछु गावै।"[1]

तथा

जसुदा मइया लाल झुलावे।......
हुलु लुलु हुलुलुलु हाँ हाँ हाँ हाँ कहि कहि गोद खेलावे।[2]

पालने में सोते हुए बालक को देख यशोदा का मन कितनी ही खुशियों से भर जाता है। अत: यशोदा—

"निरखि-निरखि मुखारविंद की सोभा मन में अति सचु पावै।"[3]

केवल माता यशोदा ही नहीं, ब्रजांगनायें भी श्रीकृष्ण को पालने में सुला कर लोरियाँ गाती है। जैसे—

माई री कमलनैन श्याम सुन्दर झूलत हैं पलना।
बाल लीला गावत सब गोकुल की ललना।"[4]

तथा

गावति हंसति हंसावति ग्वालिन झुलावति पकरि डला।

तथा

"सूरदास प्रभु झूलत पलना, झुलावति हैं ब्रजबाम।"[5]

ताल्लपाक के कवि भी यशोदा बन कर लोरी गाते हैं—

"जो वच्चुतानंद जो-जो मुकुन्दा।"[6]

और गोपियाँ भी इसमें आनन्द पाती हैं—

"उच्याल बाल नूचेदरु कडु
नोय्य नोय्य नोय्यनुचु।......
लालि लालि लालेम्म येल्ला
लालि लालि लाले नुयु।"[7]

---

1. सूरसागर—पद 661
2. सूर ग्रंथावली—पंचम खण्ड—पद 5677
3. वही—पद 5670
4. अष्टछाप पदावली (परमानन्ददास) पृष्ठ 132
5. सूर ग्रंथावली—पंचम खण्ड—पद 5674
6. अन्नमाचार्य आध्यात्म संकीर्तन—स्वर सहित
7. वही—वा. 3 पद—314

अर्थात् बालक कृष्ण को ब्रज की युवतियाँ पालने में झुलाते हुए "लालि" (अर्थात् लोरी) गा रही हैं। अन्नमाचार्य ने तो यशोदा और गोपियों से तरह तरह की लोरियाँ गवायी हैं। वे कहते हैं—

"डोलयां चल डोलया"

लोरियाँ गाने के अलावा यशोदा के साथ-साथ गोपियाँ भी कृष्ण को झुलाने, स्नान कराने और सुलाने आदि कार्यों में आनन्द पाती हैं। स्नान के समय तेल, उबटन, कुंकुम का लेप आदि लगाने का विस्तृत वर्णन है।[1]

5.3.2. **उलटना** : कृष्ण के उलटने का उल्लेख अष्टछाप के काव्य में है किन्तु ताल्लपाक के कवियों के काव्य में नहीं। सूर और नन्ददास ने इसका विशेष रूप से उल्लेख किया है कि पहली बार कृष्ण का उलटना देख नन्द और यशोदा अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। माता यशोदा—

"महरि मुदित उलटाइ के मुख चूमन लगी।"[2]

तथा

इक दिन करवट आपुहि लई।
जननी निरखि मुदित अति भई।"[3]

5.3.3. **नामकरण** : गर्ग ऋषि आते हैं और कृष्ण के अलौकिकत्व का का व्याख्यान कर कृष्ण और बलराम के नामकरण करते हैं।[4] वात्सल्य भाव सम्बन्धी इस चर्चा में उल्लेखनीय तत्व यह है कि गर्ग ऋषि ने, "ज्योतिष विधान की अनुकूलता बतला पर माता यशोदा के भाग्य को सराहा। यशोदा ने अलौकिकता पर कोई ध्यान नहीं दिया।"[5] यशोदा के लिए वह माँ है और कृष्ण एक पुत्र। इस प्रकार वे आलंबन और आश्रय (वात्सल्य के) बन जाते हैं। वहाँ तुलसीदास का उदाहरण भी स्मरणीय है—

माता पुनि बोली, सोचति डोली
तजहु तात यह रूपा
कीजे सिसु लीला अतिप्रिय सीला
यह सुख परम अनूपा।[6]

---

1. द्रष्टव्य है—सूरसागर—पद 660 तथा अष्टमहिषी कल्याण, पृष्ठ 21
2. सूरसागर पद—696
3. भाषा दशम स्कंध—नन्ददास, पृष्ठ 209
4. सूरसागर पद 703, 705
5. सूर साहित्य : नवमूल्यांकन—डा. चन्द्रभान रावत, पृष्ठ 238
6. बालकाण्ड—दोहा चौपाई।

"तब ही गरग पुरोहित आयो । नामकरन वसुदेव पठायो ।
... ...
बहरयो राज परम अभिराम । अतिबल तें कहियो बलराम ।
... ...
इक श्रीकृष्ण नाम अस ह्वै है । ससि सम सुधा सवनि परिच्वै ।"[1]

ठीक इसी प्रकार के भाव ताल्लपाक के कवियों ने भी प्रस्तुत किये हैं—

"गाम जयंतुल कंटे लोकाभि
रामुजैंतकमुन राम नाममुन
रुचिर सुधा मातृ रोहिणि पुत्रु
ब्रचुरतं बिल्वुडी पट्टुनमीरु
हरिण पीतारुणा स्ययंगुंडुगाक
हरिनील निभमूर्ति यगुट गृष्णारण्य
यलवडु शौरिकि ननि तेल्पि यरिगे ।"[2]

अर्थात् महान् बलशाली तथा कामदेव जैसे लोकाभिराम होने के कारण रोहिणी पुत्र 'बलराम' और हरि नील वर्ण होने के कारण "शौरी" को 'कृष्ण' का नाम गर्ग ऋषि ने दिया। अन्नमाचार्य के संकीर्तनों में भी कृष्ण का जन्म और जातक कर्म का उल्लेख है ।[3] जहाँ अष्टछापी कवियों ने विशेष कर और सूर परमानन्ददास ने अन्नप्राशन, वर्षगाँठ और कनछेदन का भी उल्लेख किया है, वहाँ ताल्लपाक के कवियों ने उन प्रसंगों को छोड़ दिया है । वहाँ तक कृष्ण की बाल-लीलाओं की आरंभिक स्थिति समाप्त हो जाती है । अब आलम्बन की चेष्टायें भी कुछ सुनिश्चित होने लगीं, जो अब तक अधिक सचेष्ट नहीं थे । वात्सल्य की गति परिपाक की ओर अग्रसर होने लगी ।

5.3.4. घुटनों चलना : धीरे-धीरे माता यशोदा की अभिलाषायें एक-एक करके पूरी होने लगती हैं । उनमें से प्रथम है—कृष्ण के घुटनों चलना । सूर के शब्दों में कमर की करधनी और पूरों के नूपुरों की झंकार से यशोदा का घर झंकृत हो जाता है ।

"सोभित कर नवनीत लिए
घुटुरनि चलत रेनु—तन मंडित, मुख दधि लेप किये ।"[4]

1. भाषा दशम स्कंध—नन्ददास, पृष्ठ 212-213
2. अष्ट महिषी कल्याणमु—चिन्नन्ना, पृष्ठ 27
3. आध्यात्म संकीर्तन (वा. 2) पद—478
4. सूरसागर—पद 717

बालक के इस आकर्षक रूप और तोतली वाणी से माता-पिता अत्यन्त आकर्षित होते हैं और अपनी ओर बालक को बुलाते हैं।[1] माता यशोदा का मन वात्सल्य से भर जाता है। अपने लाड़ले के धूल धूसरित शरीर को प्रेम से पोंछती हैं।[2] परमानन्दन के अनुसार—

अब चलिहैं पायन डाढे ह्वै महरि बजाय बधायो।

घर-घर आनन्द होत सबन के दिन-दिन बढ़त सवायो।[3]

घुटुरुन चलते कृष्ण अपने प्रतिबिम्ब को पकड़ने का प्रयत्न करते हैं। उस बालक के मनोरम चित्र तो सूर ने प्रस्तुत किया ही[4] साथ में नन्ददास ने भी खींचा है—

"कटि तट किंकिनि पैंजनि पाइनि।

चलत घुटुरवनि तिनके चाइनि।

निज प्रतिबिंब तिरखि थकि रहैं।

पकर्‌यो चहैं अधिक छबि लहैं।"[5]

ताल्लपाक के कवियों ने घुटनों चलने का उल्लेख किया है किन्तु सामान्य रूप से और अलौकिकता को जोड़ते हुए जैसे—

"घुटनों पर चलते कृष्ण कूर्मावतार के समान थे।"[6]

अथवा

"हम धर्म को पृथ्वी पर चारों पैरों से चलायेंगे—

इस प्रकार बच्चे घुटनों चल रहे थे।"[7]

इसमें वात्सल्य का संस्पर्श नहीं है।

5.3.5. **पैरों चलना :** बालक कृष्ण को पहले-पहले "सिखवत चलत जसोदा मैया।" जब बालक गिर जाता है तो उसकी भुजाएँ पकड़कर सहायता देती हैं। "पुनि क्रम क्रम भुज टेकि के पग द्वैक चलावै।"[8] अपने पैंजनियों के शब्द से प्रेरित होकर कृष्ण और भी चलते हैं।

---

1. सूरसागर—पद 726
2. वही—728
3. अष्टछाप और परमानन्ददास से उद्धृत
4. सूरसागर—पद 719-720
5. भाषा दशम स्कंध—पृष्ठ 213
6. आध्यात्म संकीर्तन—अन्नमाचार्य—(वा. 10) पद 262
7. अष्ट महिषी कल्याण—चिन्नन्ना, पृष्ठ 28
8. सूरसागर—पद 751

"मोहन चलत बाजत पैंजनी पग ।
सब्द सुनत चकित ह्वै चितवन त्यों-त्यों ठुमकि—
ठुमकि धरत हैं डग ।"[1]

नन्ददास ने लिखा है कि

"अंगुरि गहाइ समुंदहि मंद ।
ललनहिं चलन सिखावत नन्द ।"[2]

सूर की यशोदा तो कृष्ण को चलने के साथ-साथ नाचना भी सिखाती है ।

इस प्रसंग को भी ताल्लपाक के कवियों ने सामान्य उल्लेख ही करके छोड़ दिया । अन्नमाचार्य जी को इस संदर्भ में अपने तीनों पगों से समस्त ब्रह्मांड को नापने वाले वामन का स्मरण आता है ।[3] अथवा "मुझे छोड़ कर अन्य धर्मों के मार्ग में चलने से ऐसे ही डगमगायेंगे—मानों इस प्रकार चलना सीखते समय बच्चों के पैर डगमगा रहे थे ।"[4] इन पंक्तियों में कवि की वैष्णव धर्म के प्रति भक्ति अधिक प्रकट होती है, न कि वात्सल्य ।

5.3.6. **मथानी ग्रहण :** इसका उल्लेख केवल अष्टछापी कवियों ने ही किया है । द्रष्टव्य है—

"अहो दधि मथन करै नन्दरानी ।
बारे कन्हैया आर न कीजे छांड अब देहौ मथानी ।"[5]

तथा

"अहो दधि मथति घोष की रानी ।
... ...
गोविन्द प्रभु घुटुरुनि चलि आये पकरी रई मथानी ।"[6]

ताल्लपाक के कवियों में यह भाव नहीं है । उन्होंने अपनी रचनाओं में कभी कृष्ण का दही की हांडी पर हाथ मारने का या गरम दूध की मटकी उलटाने का उल्लेख किया है ।[7]

---

1. अष्टछाप पदावली—(चतुर्भुजदास पद) सोमनाथ गुप्त, पृष्ठ 198
2. भाषा दशम स्कंध—पृष्ठ 213
3. आध्यात्म संकीर्तन—(वा. 10) पद 262
4. अष्टमहिषी कल्याण—चिन्नन्ना, पृष्ठ 28
5. परमानंद सागर—पद, 39
6. अष्टछाप पदावली (गोविन्ददास पद) सोमनाथ गुप्त, पृष्ठ 240–41
7. अन्नमाचार्य और सूरदास-एम. संगमेशम्, पृष्ठ 243

5.3.7. कृष्ण का बोलना : सूर ने लिखा है कि अब यशोदा की अभिलाषा पूर्ण हो गयी है क्योंकि—

"कहन लागे मोहन मैया मैया ।
नंद महर सों बाबा-बाबा अरु हलधर सों भैया ।[1]

तथा परमानन्ददास के अनुसार—

"जनम फल मानत यशोदा माय ।.........
गोद बैठि गहि चिबुक मनोहर बातें कहत तुतराय ।"[2]

सूर तो अत्यन्त स्वाभाविकता से कहते हैं—

"बलि जाऊँ लला इन बोलन की ।"[3]

इसके पश्चात् कृष्ण का मीठे वचन बोलना, चांद को मांगना, अन्यों की शिकायत करना आदि कितने ही प्रसंग मिल जाते हैं जो पाठकों के मन को मोहन लेते हैं । ताल्लपाक के कवियों ने लिखा है—

"बच्चों की वाणी मधु जैसी मधुर थी ।"[4]

5.3. बाल छवि : "कृष्ण की बाल छवि के सूर ने आश्रयों के अनुसार अनेक चित्र अंकित किये हैं । गोपियों पर भी इसका प्रभाव पड़ा और यशोदा पर भी । यशोदा में वात्सल्य की वृद्धि हुई और गोपियों में प्रेम की ।"[5] अष्टछाप के आराध्य बालकृष्ण होने के कारण उनकी बाल छवि का वर्णन करते हुए थकान ही नहीं होती । सूर के शब्दों में—

"हरि जूकी बाल छवि कहौं बरनि
सकल सुख सींव कोटि मनोज सोभा हरनि ।"[6]

और कहते हैं—

"हौ बलि जाऊँ छबीले लाल की ।"

बालकृष्ण के अनेक चित्र सूर सागर में मिलते हैं । उदाहरण के लिए माँ जब नहलाने के लिए बुलाती हैं तो बालक कृष्ण लौट कर रोने लगते हैं ।

---

1. सूरसागर—पद 773 तथा परमानंददास का पद—73
2. परमानंद सागर —पद—2
3. सूर ग्रंथावली—पंचम खण्ड—पद 5685
4. अष्टमहिषी कल्याणमु—चिन्नन्ना, पृष्ठ 29
5. सूर साहित्य—नवमूल्यांकन—डा. चन्द्रभान रावत, पृष्ठ 242
6. सूरसागर—पद 727

"जसुमति जबहिं कह्यौ अन्हावत,
रोइ गये हरि लौटत री ।"[1]

"कभी कभी बच्चा इतना मचलता है कि मानता हीं नहीं। बाल हठ तो प्रसिद्ध है ही। क्षोभ में वह अपने वस्त्रों को भी बकोटने लगता है। यदि कोई उसे हाथ भी लगाता है तो वह और भी मचल कर रोदन क्रिया को जारी रखता है। प्रसन्न होता है तो स्वयं ही अपनी मौज में आ कर। बच्चे की इसी मनोवैज्ञानिक दशा का सूर ने सुन्दर चित्रण किया है—

"चंचल अधर, चरन-कर चंचल, मंचल अंचल गहत बकोटनि ।
लेतु छुड़ाइ महति कर सौं कर, दूरि भई देखति दुरि ओटनि ।"[2]

वास्तव में बालक कृष्ण की ऐसी कौन सी छवि है जो मन को मोहित नहीं करती। इसीलिए नन्ददास कहते हैं—

"नख सिख रूप अनूप रूप छवि,
कवि पैबरनि न जात है ।"[3]

हाथों में नवनीत लिए हुए, घुटने चलते हुए, आंगन में खेलते हुए, नाचते हुए, तोतली बातें करते हुए सब प्रकार से अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। सूर ने इन सभी का विस्तृत वर्णन किया है। परमानन्द दास का एक सुन्दर पद बाल छवि सम्बन्धी है—

"नन्द जू के लालन की छवि आछी
चरन पैंजनियाँ छुमछुम बाजें, चलते पूँछ गहि बाछी ।
अधर अरुन मुख दधि सों लपट्यो तन राजत छींटे छाछी
परमानंद प्रभू की लीला हँसि हँसि के मुरि पाछी ।"[4]

बालक कृष्ण बाल मनोविज्ञान के अनुसार अपनी परछाई को देख कर पकड़ने का प्रयत्न करते हैं। इसका चित्रण इस प्रकार से हिन्दी और तेलुगु में है।

"मनिमय कनक नंद के आंगन बिम्ब पकरि बैं धावत ।[5]

सूर के कृष्ण कभी कभी मक्खन की हांडी में अपनी परछाई देख कर

---

1. सूरसागर—पद 804
2. सूर और उनका साहित्य-हरबंशलाल शर्मा, पृष्ठ 324 और 425 से उद्धृत
3. नन्ददास पदावली—पद 45
4. डा. दीनदयाल गुप्त के परमानन्ददास संग्रह से पद—12
5. सूरसागर—पद 728

एक और बालक समझ नन्द से शिकायत करते हैं। परमानन्ददास ने भी इसे अत्यन्त मनोहर शब्दों में यों बांधा है—

"क्रीड़त कान्ह कनक आंगन।
निज प्रतिबिम्ब बिलोकि किलकि धावत पकरन को परछांवन।
पकरन धावत, स्रमित होत, आवत उलटि लाल तहं डायन।
परमानन्द प्रभु की यह लीला निरखत जसुमति हंसी मुसकावत।"[1]

अन्नमाचार्य ने भी इसका चित्र इस प्रकार खींचा है—

"नीराट लोन तन नीड जूचि पोंचियुन्नाडु कृष्णुडु।"[2]

अर्थात् कृष्ण अपनी परछाई को पानी में देख कर उसे पकड़ना चाहते हैं। पानी के हिल जाने से परछाई गायब हो जाती है। कभी उसके लिए रोते हैं। कभी इस ताक में बैठे रहते हैं कि परछाई फिर से आवे तो उसे पकडें। अन्नमाचार्य ने बालक के परछाई के लिए प्रतीक्षा करने का वर्णन कर एक बाल मनोवैज्ञानिक तथ्य पर प्रकाश डाला है।

कभी-कभी कृष्ण चाँद के लिए मचल जाते हैं। माता यशोदा मनाने का बहुत प्रयत्न करती हैं। किन्तु माने तब न। उसका एक ही हठ है—"लागी भूख चंद मैं खै हौं।"[3] तथा "मैया मैं तो चन्द खिलौना लैहों।"।[4] यह देख "बार-बार जसुमति सुत बोधति, आउ चंद तो हि लाल बुलावे।

"मधु-मेवा-पकवान-मिठाई, आपुन खैहै, तोहि खवावै।"[5]

माता कभी-कभी कृष्ण को मनाने के लिए गगन में उड़ने वाली चिड़िया दिखाकर कहती है कि मैंने उसे चाँद को लाने के लिए भेजा है। कभी-कभी "लै लै मोहन चन्दा लै" कहकर "नभतें निकटि आनि राख्यौ है।"[6] या नहीं तो नई दुल्हन लाने का वचन देती है। अन्नमाचार्य ने भी इसी प्रसंग को इस प्रकार वर्णन किया है—

"चन्द माम रावै, जाबिल्लि रावै।
कुन्दनपु पैडिकोर वेन्न बालु देवो।"[7]

यहाँ माता चाँद को बुला रही है कि हमारे कान्ह को सोने के प्याले में दूध और मक्खन लाना। कृष्ण को मनाने के लिए माता चाँद को दिखाती

1. परमानंद सागर—पद 74
2. आध्यात्म संकीर्तन (वा–3) पद 535
3. सूरसागर–पद 806
4. वही–811
5. वही–909
6. वही–813
7. आध्यात्म संकीर्तन–स्वर सहित–पद 144

है तो कृष्ण उसे मक्खन का गोला समझकर पाने के लिए हाथ बढ़ाते हैं :[1] कृष्ण तो नटखट हैं ही। मालूम नहीं क्या संकेत कर रहे हैं कि स्वयं चाँद उतर कर आ गया है। इसे देख भय और विस्मय से यशोदा आँख मूँद लेती है। आँख खोलने पर सारी घटना को भूलकर एक साधारण माँ बन जाती है।[2] इसी प्रकार से दूध की दतियाँ, रुनक-झुनक बजती पैजनियाँ और अटपटी मृदु वाणी-कितनी मन मोहक छबि है।[3] ताल्लपाक के कवि भी कहते हैं—

"कृष्ण अपने छोटे-छोटे दाँत दिखलाते हुए किल किलाकर हंस रहे थे।"[4] बाल छबि का वर्णन चिन्नन्ना ने भी अपने "अष्टमहिषी कल्याणमु" में किया है।[5] किन्तु इसमें, "बालकृष्ण के आभूषण और साज-सज्जा ही गिनाये गए हैं। स्वाभाविक रूप से लार गिरने का भी उल्लेख है। किन्तु सारा वर्णन परिगणन शैली में है, जो भाव या अनुभूति का उत्तेजक नहीं है।"[6]

5.3.9. बाल क्रीड़ा :

अष्टछापी कवियों ने क्रमिक रूप में कृष्ण का घर के आँगन में ही खेलना, देहरी लांघकर बाहर जाकर अन्यों के साथ खेलना और रूठना आदि का सजीव चित्रण किया है। ताल्लपाक के कवियों में केवल इसका उल्लेख मात्र ही है।[7]

5.3.10. माटी भक्षण :

वात्सल्य के विकास में इस प्रसंग का विशेष महत्व है। पहली बार गोपकुमारों के द्वारा माता यशोदा को शिकायत मिलती है कि कृष्ण ने मिट्टी खायी है। तब यशोदा कृष्ण को दंड देना चाहती है।[8] बालक से पूछती है कि तुम घर के पदार्थों को छोड़कर मिट्टी क्यों खाते हो ? पहले कृष्ण कहते हैं मैंने मिट्टी नहीं खायी और बाद में माँ को विश्वास दिलाने के लिए मुँह

---

1. आध्यात्म संकीर्तन—पद (वा—3)—535
2. वही—(वा—10)—पद 259
3. अष्टछाप और परमानंदास—कृष्णदेव झारी, पृष्ठ 75
4. अष्टमहिषी कल्याणमु-चिन्नन्ना, पृष्ठ 30
5. वही—पृष्ठ 28–29
6. हिन्दी और तेलुगु वैष्णव भक्ति साहित्य—डा. के. रामनाथन्, पृष्ठ 311
7. अन्नमाचार्य आध्यात्म संकीर्तन—(वा. 6) पद 65
8. सूरसागर—पद-871, 873 तथा अष्टमहिषी कल्याण, पृष्ठ 34

खोलकर दिखाते हैं। कृष्ण यह भी कहते हैं कि ये ग्वाल बाल सभी झूठ बोल रहे हैं।[1] कृष्ण के मुख खोलने पर माता यशोदा को ब्रह्मांड के दर्शन होते हैं—

'बदन उघारि दिखायो त्रिभुवन, बन घन नदी सुमेर।
नभ-ससि-रवि मुख भीतर ही सब सागर धरनी फेर।"[2]

नंददास की यशोदा कृष्ण को डांटती हुई मुंह दिखाने के लिए कहती है तो कृष्ण अपने मुंह में—

"प्रथम चह्यौ भूगोलिक तहाँ।
दीप समुद्र सरित गिरि जहाँ।"[3] दिखाते हैं।

इस संदर्भ में अन्नमाचार्य ने कहा है—

"वेरपिंच बोयि ताने वेरचे तल्लि यशोद
मरचिई बालु नेट्टु मानिसेंटा बुंडेनो।"[4]

अर्थात् बच्चे को डराने के लिए तत्पर माता स्वयं डर गयी। कवि चिन्नन्ना ने भी कुछ ऐसा ही वर्णन प्रस्तुत किया है। सारे ब्रह्मांड को अपने बच्चे के मुख में देख माता अकुलाती है और सोचती है कि क्या यह सब कुछ सपना है या वैष्णव माया।[5]

कृष्ण के मुख में ब्रह्मांड के दर्शन कर सूर, नंददास व चिन्नन्ना की यशोदा समान रूप से चौंक जाती है। किन्तु वात्सल्य की आश्रया माता पर इस माया का तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ता। "वात्सल्य की इतनी दृढ़ता कहाँ देखी जा सकती है कि अलौकिकता की प्रचण्ड आँधी भी इसे हिला नहीं सकती।"[6]

5.2.11. माखन चोरी और उलाहने :

"कृष्ण अब चोर हो गया। घर-घर जाकर माखन की चोरी करने लगा। वास्तव में गोपियाँ चाहती थीं कि कृष्ण हमारे घर चोरी करने के लिए आवे। पर, वे यशोदा को उलाहने देने भी आती थीं। उलाहना देना तो कृष्ण के दर्शन और उसके बत-रस से आस्वादन का बहाना था।"[7] ये उलाहने

---

1. सूर सागर—पद 871, 873 तथा अष्टमहिषी कल्याण, पृष्ठ 34
2. वही—पृष्ठ 148
3. भाषा दशमस्कंध, पृष्ठ 215
4. आध्यात्म संकीर्तन—(वा 10) पद 258
5. अष्ट महिषी कल्याणमु, पृष्ठ 34
6. सूर साहित्य: नवमूल्यांकन—चन्द्रभान रावत, पृष्ठ 244
7. सूर साहित्य : नवमूल्यांकन—डा. चन्द्रभान रावत, पृष्ठ 245

केवल माखन-चोरी तथा शृंगार सम्बन्धी ही नहीं, वरन् अन्य कई प्रकार के भी होते थे। सखाओं के साथ मिलकर नटखट कृष्ण घर-घर में दूध, दही-माखन की चोरी करते थे। खाते कम और बिखेरते अधिक। "नित प्रति हानि होत गोरस की" देख गोपियाँ तंग आकर यशोदा से शिकायत करतीं, जिसे चतुर्भुजदास ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

"जसोदा कहा कहो हों बात।
तुम्हारे सुत के करतब मोपे कहत कहें नहिं जात।
भाजन फोरि ढोरि सब गोरस ले माखन दधि खात।"[1]

तथा परमानंद दास के शब्दों में—

"भाजि गए मेरो भाजन फोरि।
कहा कहों सुन मात यशोदा अरु खायो माखन सब चोरी।"[2]

चोरी की कला में निपुण कृष्ण तरह-तरह के उपाय सोचने में भी कम चतुर नहीं। अतः भाजन हाथ न आने पर एक दूसरे पर चढ़कर अथवा ऊखल पर चढ़कर या नहीं तो हांडी फोड़कर सखाओं के साथ खा लेते हैं।[3] परमानंद-दास ने भी इसका वर्णन किया है—

"खोलि कपाट पैंठि मंदिर में सब दधि अपने सखानि खवायो।
छींके हूंते चढि ऊखल पर अन भावतो धरणी ढरकायो।"[4]

गोपियाँ यशोदा से कहती हैं—"मालूम नहीं तुम्हारे बेटे के नन्हें से पेट में भूत हैं या और कुछ। अन्यथा, इतना छोटा बच्चा ऐसे गटगट इतना सारा दूध-दही बार-बार कैसे पी ले सकता?"[5] इतना ही नहीं, वे अपने खाली भाजनों को लाकर दिखाती हैं और कहती हैं—"देखो यशोदा! इस बच्चे ने दूध-दही और घी आदि पदार्थ आधा खाकर आधा छोड़ देने के कारण हमारी गलियों में बाढ़ सी आ गयी है।[6] यहाँ तक कि गोपियाँ गालियाँ भी देते हुए कृष्ण को पकड़कर बाँधने की चेष्टा करती हैं।[7]

---

1. अष्टछाप पदावली—सोमनाथ गुप्त, पृष्ठ 195
2. वही—पृष्ठ 122
3. अष्टमहिषी कल्याणमु—चिन्नन्ना, पृष्ठ 31
4. अष्टछाप पदावली—सोमनाथ गुप्त, पृष्ठ 121
5. अष्टमहिषी कल्याण—चिन्नन्ना, पृष्ठ 32
6. आध्यात्म संकीर्तन—अन्नमाचार्य (वा—3) पद—294
7. वही—(वा—17) पद—450

कृष्ण भी अपनी सफाई अच्छी तरह दे सकते हैं—

"मैया मोहि मैं नहिं माखन खायो।.........

होंजु कहत नान्हे कर अपने मैं कैसे करि पायो।"[1]

इतना ही नहीं अन्नमाचार्य के कृष्ण अपनी माँ के पास खड़े होकर गोपियों से कहते हैं—"तुम तो मुझ पर झूठमूठ आक्षेप लगा रही हो। मैं थोड़े ही तुम्हारे घर जाता हूँ?"[2] पकड़े जाने पर भी कृष्ण अपना तर्क प्रस्तुत करते हैं—

"देखत हौं गोरस में चींटी, काढन कों कर नायो।"[3]

पकड़े जाने पर अन्नमाचार्य की गोपियाँ कृष्ण को अपने घर रखती हैं। कोई उसे डाँटती हैं तो कोई रस्सी से बाँधने का प्रयत्न तो और कोई मनाने का प्रयत्न।[4]

उलाहने केवल माखन चोरी के सम्बन्ध में ही नहीं, अन्य प्रकार के भी होते हैं। जैसे कृष्ण कभी गाय-बछड़ों को खोल देते हैं या सोते हुए बालक की चोटी बछड़े के पूँछ से गाँठ लगाकर बाँध देते हैं।[5] कभी-कभी ऐसी शिकायतें भी यशोदा के पास पहुँचती हैं कि जब मेरे पुत्र और पुत्र वधू एकान्त में थे तो तुम्हारे लड़के ने उन पर साँप फेंक दिया।[6] हरकतें केवल गोप-गोपियों के घरों में ही नहीं वरन् साथियों के साथ भी कृष्ण करते हैं। परमानंददास ने एक पद में इसका चित्रण किया है—

"जसोदा चंचल तेरो पूत।

... ...

लरिकन के कान मरोरे तहाँ ते चले पलाइ।"[7]

एक और गोपी कहती है—"तुम्हारे कृष्ण ने हमारे छोटे बच्चे को छींके पर रखकर स्वयं कहीं छिप गया।"[8] क्या कहें? इस प्रकार के काम तो न कहीं सुने हैं और न देखे हैं। "देखो यशोदा! तुम्हारे पुत्र ने हमारे बच्चे से मुंह खोलने के लिए कहकर उसमें मिट्टी डाल दी। शिकायत हम तक पहुंचने पर जाकर देखा तो हमारे बच्चे का मुंह शक्कर से भरा हुआ था। ऐसे ही

---

1. सूरसागर—पृष्ठ 155 2. आध्यात्म संकीर्तन (वा—3) पद—293
3. सूरसागर—पद—911 4. आध्यात्म संकीर्तन (वा. 17) पद 450
5. अष्टमहिषी कल्याणमु—चिन्नन्ना, पृष्ठ 32 6. वही—
7. अष्टछाप पदावली—सोमनाथ गुप्त, पृष्ठ 123
8. आध्यात्म संकीर्तन अन्नमाचार्य—(वा. 2) पद 1(6

बच्चों के शरीर पर केवांच बाँधने की बात सुन कर देखा तो बच्चे का शरीर आभूषणों से भरा था।[1] यहाँ अन्नमाचार्य जी की सुन्दर कल्पना अलौकिकता के संस्पर्श से मणिकांचन संयोग हुआ है।

ये शिकायतें कभी कभी शृंगार सम्बन्धी भी होती हैं। कोई गोपी कहती है—कृष्ण ने—

"बांह पकरि चोली गहि फारि भरि लीन्हीं अंकवारी।"[2]

इसीलिए गोपियाँ कहती हैं—अब तुम्हारा बच्चा छोटा नहीं है। उसकी चेष्टायें हद से बढ़ कर हैं—

"पडुचु चेतल गावु बाल कृष्णुडु।"[3]......

अर्थात् कृष्ण अब बालकृष्ण नहीं। माखन हाथ में पकड़ कर गोपियों को इशारे करता है। गृहिणी को भी छेड़ता है। इतना ही नहीं गोपियाँ बालक समझ कर उसे गोद में उठाती हैं तो उनके स्तनों को स्पर्श कर और मोहकारी वचनों से मालूम नहीं कैसे जादू कर लेता है।[4] क्या ये सभी बच्चों की चेष्टाएँ हैं? नहीं। वे यहाँ तक कहती हैं—"तुम्हारा बच्चा हमारे कुचों को मर्दन कर भाग जाता है।"[5] लेकिन माँ को इन सब पर विश्वास कहाँ?

5.3.12. मातृ हृदय : आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जी के शब्दों में "कहा जाता है कि सूरदास बाल-लीला वर्णन करने में अद्वितीय हैं, मैं कहूँगा सूरदास मातृ-हृदय का चित्र खींचने में अपनी सानी नहीं रखते।"[6] माँ के हृदय में बच्चे के विकास के प्रति अदम्य उत्सुकता रहती है कि बच्चा कब घुटुरुन चलेगा, कब तोतली वाणी में बोलेगा और झगड़ेगा? तथा कब अपने आप चल कर खेलेगा?[7]

चतुर्भुजदास ने माँ की इन अभिलाषाओं को प्रस्तुत किया है—

सरबस ताहि देऊंगी जो मेरे नान्हरे गोविन्द को पाँ-पाँ चलन सिखावे। यह अभिलाष होत दिन-दिन प्रति कब मोहन धेनु चरावे।"

---

1. आध्यात्म संकीर्तन-अन्नमाचार्य—(वा. 2) पद 167
2. सूरसागर—पद 924
3. आध्यात्म संकीर्तन—(वा. 17) पद 121
4. वही—पद 141
5. अष्टमहिषी कल्याणमु—चिन्नत्रा, पृष्ठ 32
6. सूर साहित्य—पृष्ठ 120
7. सूरसागर—पद 696

और इनकी पूर्ति के लिए वह सब कुछ देने के लिए तैयार है।

"दधि माखन चौगुनी देऊँगी।"[1]

इन सभी अभिलाषाओं के साथ-साथ सौ प्रतिशत एक भारतीय माँ होने के कारण वह भी सोचती है—

"कबहिं देखोंगी दूलह दुलहनी।"[2]

एक माँ होने के कारण यशोदा अपने कान्ह से एक क्षण के लिए भी बिछुड़ कर रह नहीं सकती। इसीलिए जब कृष्ण खेलने दूर जाना चाहता है तो—

"आज सुन्यो मैं "हाऊ" आयो, तुम नहिं जानत नान्हा"[3]

कहकर टोक देना चाहती हैं। भोजन का समय होने पर भी कृष्ण न आने पर माता की चिन्ता बढ़ जाती है। घर-घर ढूँढती है या श्रीदामा से पुकार लगवाती है—

"देखो री गोपाल कहाँ है खेलत।"

चतुर्भुजदास ने भी माता की इस व्याकुलता का चित्रण किया है—

"जसुमति ढूँढत ह्वै गोपाले।

... ...

चकित नैन अतिसम अकुलानी भई-भई बेहाले।"[4]

अपने बालक को ढूँढ कर लाने वाले को माँ यशोदा सब कुछ देने के लिए तैयार है, जैसे चतुर्भुजदास की यशोदा कहती है—

"मेरे छगन मगन ही दिखावे ताहि देऊँ उर माले।"[5]

अन्नमाचार्य की यशोदा अपने दासियों को चारों ओर भेजती हैं और कहती हैं कि "अभी-अभी बालक यहाँ खेल रहा था। न मालूम अब कहाँ गया। उधर कोई हलचल हो रही है। कहते हैं कि कोई भारी गाड़ी उलट कर टूट गयी। देखो कहीं कृष्ण उस ओर तो नहीं गया।"[6] अन्त में मुख पर रजकणों से आये कृष्ण को देख माँ का मन उमंग उठा और आँखें शीतल हुईं।

1. अष्टछाप पदावली—सोमनाथ गुप्त, पृष्ठ 199
2. परमानन्ददास पद—92 भी दृष्टव्य है
3. अष्टछाप तथा परमानन्ददास—कृष्णदेव झारी से उद्धृत पृष्ठ 79
4. अष्टछाप पदावली—सोमनाथ गुप्त, पृष्ठ 199 5. वही—
6. अध्यात्म संकीर्तन—(वा. 6) पद 65

"गये प्राण मानो फिरि आये लियो उछंग उताले ।"[1]

अपने कान्ह को सीख सिखाती है कि—

"ऐसी प्रीति पिता माता की पलक ओट नहीं की जै ।"[2]

अन्नमाचार्य जी की यशोदा अपने बच्चे की कुम्हलाती हुई सूरत देखकर हमदर्दी दिखाती हुई कहती हैं कि—"अरेरे ! देख ! कहाँ-कहाँ खेलकर आया है तू ! धूप के कारण मुख कुम्हला गया है। सारे बदन पर कितना पसीना है। मालूम नहीं। तुमने कितना दौड़ा है कि अब सांस इतनी तेजी से ले रहे हो।"[3] हिन्दी और तेलुगु दोनों भाषाओं के कवियों ने इसके पश्चात् या तो यशोदा के द्वारा प्रेम से भोजन खिलाने का उल्लेख किया है या नहीं तो गरम-गरम दूध पिलाने का। अन्नमाचार्य जी की यशोदा गोपियों से कहती हैं—"इसे शाम के समय बाहर ले जाना नहीं क्योंकि पक्षीदोष लग जाएगा। घर के कोने में नहीं ले जाना क्योंकि साँपों का डर है।[4] बालक को घुट्टी और दूध पिलाने के तुरन्त बाद गोपियाँ उसे खेल-खेल में ऊपर नीचे करने लगती हैं तो माता सहन नहीं कर सकती और कहती हैं—"अभी अभी तो बच्चा घुट्टी पीया है, उलटी हो जाएगी। अभी अभी दूध पिया है, देख कहीं बाहर न आ जाए। जब वे सुनती नहीं तो यशोदा उन्हें चेतावनी देती हैं—"यह बालक साक्षात् वेंकटेश्वर है।"[5]

अपने बच्चे का सहज विकास चाहने के कारण यशोदा स्वयं ही उसे अन्य ग्वाल बालकों के संग गोचारण के लिए भेजती हैं। लेकिन जब अन्य बालक भी अपने गायों को नन्हें कृष्ण के द्वारा ही घिरवाने के साथ साथ उसके पाँव दुखने की बात सुनती हैं तो उसकी ममता जागृत हो जाती है और उन्हें गाली तक दे देती हैं।

"सूर स्याम मेरे अति बालक, मारत ताहि रिंगाई ।"[6]

तथा

"परमान्ददास को जीवन ग्वालन पर जसुमति जू रिसाय ।"[7]

---

1. अष्टछाप पदावली—चतुर्भुजदास पद—
2. अष्टछाप और परमानन्ददास—कृष्णदेव झारी, पृष्ठ 79
3. आध्यात्म संकीर्तन (वा. 17) पद—332
4. आस्यात्म संकीर्तन (वा. 3) पद 315
5. अन्नमय्या संकीर्तन—स्वर सहित
6. सूरसागर पद—1128
7. परमानन्ददास

अपना छोटा सा बच्चा जब असुरों को मारता है, गोवर्द्धन उठाता है या अपने ही आँखों के लिए अति सुन्दर दिखाई देता है तो माता झट राई-नोन उतार लेती हैं ताकि दृष्टि न लग जाए। अष्टछाप के कवियों ने इस संदर्भ में माता की विभिन्न मनोदशाओं का वर्णन किया है—

यह तन बारि डारो कमलनयन पर सांवलिया मोहि भावे रे।
चरम कमल की रेनु जसोदा तोले सिरहिं चढ़ावे रे।
ले उछंग मुख निरखन लागी रहि रहि राई नोन उतारे रे।"[1]

तथा

नन्ददास नन्दरानी छवि निरखि वारि
पीवत पानी काहू जिन दीठि लागै।[2]

माँ का हृदय छोटी सी बात पर भी आशंका करने लगता है और सोचती है—

"काहू जोगी नज़र लगाई मेरो कान्ह रोवै।
घर-घर हाथ दिखावै जसुदा दूध पिवै नहिं सोवै।
राई नोंन उतारि जसुदा, सूरज प्रभुहि सुवावै।[3]

"इस प्रकार की आशंका माता के लिए स्वाभाविक है और फिर यशोदा के लिए तो यही निधि है। इस आशंका का अधिक विशद रूप श्रीकृष्ण की उन लीलाओं में मिलता है जहाँ वे असुरों का नाश करते हैं। पूतना, तृणावर्त, कालिय-दमन, आदि के प्रसंगों में मातृ हृदय का यह भाव बहुत उभर कर आया है।"[4] जब कृष्ण यमलार्जुन उद्धार के समय बाल-बाल बच जाते हैं तो "गौमूत्र, गोपृच्छ और गोरोचन"[5] से दृष्टि उतारी जाती है। यशोदा का हृदय जब, "लोक-विश्वासों और टोने टोटकों की शरण लेता है, तो स्वाभाविकता और भी बढ़ जाती है। मंत्र, यंत्र, तंत्र, राई-नोन उतारना, कुल देवता की मनौती-दान-पुण्य आदि कितने ही उपायों से माता का शंकाकुल हृदय पुत्र क्षेम की योजना करता है।"[6]

---

1. परमानन्ददास—अष्टछाप पदावली, पृष्ठ 225
2. नन्ददास पदावली—पद—37
3. सूरग्रंथावली पंचम खण्ड—पद 5689
4. नन्ददास विचारक, रसिक कलाकार—रूपनारायण, पृष्ठ 123
5. अष्टमहिषी कल्याणमु—चिन्नन्ना, पृष्ठ 25
6. सूरसाहित्य-नवमूल्यांकन—डा. चन्द्रभान रावत, पृष्ठ 246

माखन चोरी तथा अन्य उलाहने सुन कर माता उन्हें मानने के लिए तैयार ही नहीं होती क्योंकि "यह जु ग्वालिन जीवन मदमाती झूठे ही दोष लगावै।"[1] क्योंकि "मेरे गोपाल तनक सौं, कहा करि जाने दधि चोरी।"[2] उसे समझ में नहीं आता कि–"मेरो कान्ह निपट बालक क्यों चोरी माखन खायो।"[3] अत: यशोदा गोपियों से यह कह कर टाल देती है कि "तुम्हारे घरों में माखन चोरी करने की आवश्यकता मेरे लाड़ले को क्या पड़ी है ? हमारे घर में ही बहुत है।"[4] यदि चोरी की भी तो इसमें दोष बालक का नहीं, गोपिकाओं का ही है, क्योंकि "क्या तुम्हारे घर बाल बच्चे पलते नहीं ? तुम्हें नहीं मालूम कि बच्चों को दूध-मक्खन बड़े प्यारे लगते हैं और मिल जाने से उन पर हाथ मारे बिना नहीं रहता। अत: उन वस्तुओं को सावधानी से रखना हम बड़ों का काम है।"[5] हाँ, इन सबके बीच अपने कान्ह को भी सीख सिखाना नहीं भूलती, जो एक माँ का प्रथम कर्तव्य है–

"मेरे मोहन अनत न जैये घरहि खेलो दोऊ भैया।
ए तरुनि जौवन मदमाती झूठे ही दोष लगावै दैय्या।"[6]

इस संदर्भ में परमानन्ददास ने ठीक कहा है कि–

"ताहि यशोदा सिखवन लागी त्रिभुवन गुरु गोपालें।–[7]

जब शृंगार सम्बन्धी शिकायत की कि तुम्हारे बेटे ने मेरे कुचों का मर्दन किया है तो यशोदा झट टाल देती है–"मेरे कुंवर कन्हैया कहाँ तनक सौं तू है कुचनि कठोर।"[8] आखिर एक दिन यशोदा को मानना ही पड़ा कि कृष्ण चोरी कर रहा है। बार-बार शिकायतें सुन कर रोष से भरी माँ बच्चे को ऊखल में बाँध ही लेती हैं और हाथ में सांटी ले कर सजा देना प्रारम्भ करती हैं। लेकिन इसे ग्वालिनें सह न सकीं और कहा–

---

1. अष्टछाप पदावली-चतुर्भुजदास पद–पृष्ठ 194
2. सूरसागर–पद 911
3. अष्टछाप पदावली-चतुर्भुजदास–पद पृष्ठ 196
4. अष्टमहिषी कल्याणमु–चिन्नन्ना, पृष्ठ 34
5. अन्नमाचार्य आध्मात्म संकीर्तन (वा. 3) पद 321
6. अष्टछाप पदावली–चतुर्भुजदास पद पृष्ठ 197
7. अष्टछाप और परमानन्ददास–कृष्णदेव झारी से उद्धृत
8. सूरसागर पद, 911

"विड्वुमनवीरोलुविड्वु मो तल्लि ।
विड्मनवो वेस वेरचीनि बाल्डु ।"[1]

अर्थात् पछताती हुई ग्वालिनें कह रही हैं कि यशोदा तुम कैसी निर्दयी बन गयी। छुड़ाओ, तुरन्त छुड़ाओ। देख बच्चा रो रो कर कैसे दीन बन गया। बच्चे को कोई ऊखल से बाँधते हैं क्या ? यह भी खूब रही। गोपियों ने शिकायत भी खुद ही की और अब उलटा यशोदा को ही भला बुरा कहने लगीं। यह सब सुन-सुन कर वात्सल्य, पश्चाताप और व्याकुलता के मारे मशोदा कह पड़ती है—

"कहन लगी अब बढ़ि बढ़ि बात।
ढोटा मेरो तुमहिं बंधायो, तनकहि माखन खाता।"[2]

यह सीधी सादी डेढ़ पंक्ति हैं। यहाँ "न कोई वक्रोक्ति है, न कोई अलंकार, पर एक-एक शब्द यशोदा के मातृ हृदय का पूरा चित्र खींचने के लिए पर्याप्त है। "कहन लगी अब बढ़ि बढ़ि बात" से गोपियों की (यशोदा के अनुसार) झूठी सहानुभूति और यशोदा का उनके प्रति अमर्ष व्यंजित है। ढोटा शब्द से कृष्ण की अबोधता और उसके प्रति यशोदा की ममता फूटी पड़ती है।"[3] अन्त में अपने आपको कोसती है कि मैं कैसी माँ हूँ ? मैंने इसे ऊखल से बाँधा ही क्यों ?

"कंठ लगाई लिये मुख चूमति सुंदर श्याम बिहारी।
काहे को ऊखल सों बांध्यौ कैसी मैं मेहतारी।[4]

कृष्ण गिरिराज उठाने की बात सुन कर माता आश्चर्य चकित हो जाती है। उसे अपनी छाती से लगाती हुई सोचती है कि शायद उसका नन्हा सा हाथ दुख रहा होगा। अपने लाड़ले के मुँह में नन्हें दाँत देख कर, उसे चलते, नाचते और अन्य क्रीड़ाओं को करते देख यशोदा का हृदय ममता से भर जाता है। अपने पति नन्द को भी बुला-बुला कर इस आनंद का आस्वादन करती हैं जो एक माँ के हृदय की विशेष भावना है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के ये शब्द अक्षरशः सत्य हैं—यशोदा के वात्सल्य में वह सब कुछ है जो माता शब्द को इतना महिमाशाली बना देता है। यशोदा

---

1. अन्नमाचार्य आध्यात्म संकीर्तन (बा. 5) पद 57
2. सूरसागर—पद 973
3. सूर और उनका साहित्य: प्रो. हरवंशलाल शर्मा, पृष्ठ 323
4. सूरसागर—पद 1006

हँसी खेल में भी यह नहीं चाहती कि कृष्ण उसका नहीं है। इसीलिए जब कृष्ण ने यह शिकायत की कि "मो सो कह मोल को लीन्हो, तू जसुमति कब जायो।"[1] तो झट से गोधन की सौगंध खा कर यशोदा अपने बच्चे को सांत्वना देती हैं कि तू मेरा पुत्र और मैं ही तेरी माँ हूँ। अंत में एक ऐसा चित्र प्रस्तुत है, जिसमें वात्सल्य रस के समस्त तत्व हैं—

"बलि गइ बाल रूप मुरारी।
पांव पैंजनि रटति रुन-झुन, नचावति नंद नारि।
कबहुं हरि को लाइ अंगुरी, चलन सिखवत ग्वारि।
कबहुं हृदय लगाइ हित करि, लेत अंजलि डारि।
कबहुं हरि को चितै चूमति, कबहुं गावति गारि।
कबहुं ले पाछे दुरावति ह्या नहि बनवारि।
कबहुं अंग भूषनि बतावति, राइ-लोन उतारि।
सूर सुर नर सबै मोहे, निरखि यह अनुहारि।[2]

प्रो. हरबंशलाल शर्मा के अनुसार इसमें "कृष्ण आलंबन हैं यशोदा आश्रय, कृष्ण की अनुपम छवि, रुनक-झुनक पैंजनियाँ बजाते हुए चलना, नाचना आदि उद्दीपन हैं। यशोदा का हरि को देखना, चूमना और आंचर में में छुपाना, पीछे की ओर दुराना आदि अनुभाव और हर्ष संचारी भाव।"[3]

5.3.13. असुर निकंदन बालकृष्ण :

अपनी माँ की गोद में खेलते ही बालकृष्ण पूतना, तृणावर्त और शकटासुर का संहार कर देते हैं।[4] इन असुरों के संहार के सन्दर्भ में माता-पिता का ही नहीं वरन् सम्पूर्ण ब्रजवासियों का वात्सल्य जागृत होता है। पूतना के प्राण कृष्ण चूस लेते हैं। इसे देख सारे ब्रजवासी घबरा जाते हैं, नजर उतारते हैं और कृष्ण के बच जाने पर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। माता यशोदा भगवान् से प्रार्थना करती है—

"पद पूजि हौं बेगि यह बालक करि दे मोहि बड़ोई।"[5]

शकटासुर भंजन को देख सारे ब्रजवासी चकित हो गए।[6] तृणावर्त तो

1. सूरसागर—पद 832 2. सूरसागर—पद 736
3. सूर और उनका साहित्य—पृष्ठ 319
4. दृष्टव्य है—अन्नमाचार्य संकीर्तन—वाल्यूम—पद 90
5. सूरसागर—पद 674
6. सूरसागर—पद 680 तथा अष्टमहिषी कल्याण, पृष्ठ 26

मानो माँ की गोद को सूना करने के लिए ही आया। तृणावर्त प्रचण्ड वायु के रूप में कृष्ण को उड़ा ले गया तो यशोदा—

'परि धरनि धुकि यों बिललाइ।
ज्यौं मृतबच्छ गाइ डिडिमाइ।"[1]

कितनी हृदय स्पर्शी स्थिति है। गोपियाँ भी साश्रु थीं। राक्षस के वध पर सभी संतुष्ट हुए। गोपियों ने यशोदा को सलाह दी—

"भली नहीं यह प्रकृति जसोदा, छांड़ि अकेली जाति।
गृह कौ काज इनहूँ तैं प्यारौ नैं कहुँ नाहिं दराति।"[2]

माँ का हृदय न जाने कितना उद्वेलित हो उठा होगा। किन्तु बच्चे के छोटे-छोटे दांत देखकर माता सब कुछ भूल गई। कालिय दहन के संदर्भ में माता-पिता के वात्सल्य का विस्तृत वर्णन हुआ है।[3] यह आपत्ति टल जाने पर माता राई-नोन उतारती है।[4] इसी प्रकार उलूख बंधन का पर्यवसान यमुलार्जुन उद्धार में होते देख यशोदा के साथ-साथ अन्य ब्रजांगनायें भी आश्चर्य में डूब जाती हैं। यहाँ वात्सल्य का पुट भी मिलता है। कवि चिन्नन्ना ने अपने "अष्ट महिषी कल्याणमु" में कालिय दहन के सदर्भ में वात्सल्य से अधिक कृष्ण के शौर्य तथा अद्भुत रस पर दृष्टि डाली है।

"उक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि राक्षस-वध की लीलाओं के साथ वात्सल्य का एक हलका सा पुट लगा हुआ है। संकट में पड़े हुए अपने बालक के प्रति माता की जो भावना होती है उनके स्फुट चित्र दोनों क्षेत्र के कवियों ने दिए हैं। पर सूर की यशोदा और गोपियाँ अधिक भोली हैं क्योंकि वे प्रसंगों की अलौकिकता को भुला देती हैं।"[5]

5.3.14. वात्सल्य वियोग :

वास्तव में वात्सल्य वियोग का आरम्भ देवकी से ही मानना चाहिए। परिस्थितियों के कारण कृष्ण जन्म के पश्चात् कुछ क्षणों के लिए ही माता देवकी के पास रहते हैं। इस अल्प समय में भी वहाँ करुण भाव प्रस्फुटित होता है न कि वात्सल्य। नन्ददास के शब्दों में—

1. भाषा दशम स्कंध—नंददास, पृष्ठ 211
2. सूरसागर–पद–687
3. सूरसागर–पद–1158, 1159, 1161, 1162, 1163 आदि।
4. भाषा दशम स्कंध-नंददास, पृष्ठ 208
5. हिन्दी और तेलुगु वैष्णव भक्ति साहित्य: डा. के. रामनाथन् पृष्ठ 307

"देवकि दौरि कंठ लपटाये । प्रानतें अधिक पियारे पाये ।
... ...
लै लटि रही कंठ लपटाइ । अति सुन्दर सुत दियौ न जाइ ।
पुनि कंस तैं महा डरी डरी । पिछले पूतन की सुधि करी ।
लीनौ तनक पयोधर प्याइ । फूल सौं जिन मग में कुम्हलाइ ।
पुनि पुनि बदन चन्द्रमा चूमि । दीनी सुत पै अति दुख धूमि ।[1]

"कृष्ण के प्रति माता देवकी के वात्सल्य का आभास मात्र उनके जन्म सुअवसर पर व्यक्त होता है । पुत्र के सुन्दर मनोमुग्धकारी रूप को देख कर माता देवकी मन ही मन चकित हो जाती है । आनन्दातिरेक से माता यशोदा की ही तरह अपने आनन्द में वसुदेव से भाग लेने को कहती है—"[2]

"देखहु आई पुत्र मुख काहै न, ऐसी कहुँ देखी न दई ।"[3]

इन्हीं परिस्थितियों के कारण कवियों के देवकी से वात्सल्य का चित्रण करने का अवसर नहीं मिला । वात्सल्य के संयोग और वियोग दोनों का परिपाक माता यशोदा के द्वारा ही संभव हुआ । अष्टछापी कवियों में केवल सूर ने इसका गुरु गम्भीर वर्णन किया है तो परमानंद दास ने भी इस प्रसंग को लिया है । अष्टछाप के अन्य कवियों में और ताल्लपाक के कवियों में वात्सल्य के वियोग पक्ष का अभाव है । अतः सूर और परमान्ददास के वात्सल्य वियोग के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

माता यशोदा के लिए वियोग की घड़ियाँ पहले तब आती हैं, जब बालक कृष्ण कालिय दमन के लिए यमुना में कूद पड़ते हैं । उस समय यशोदा की व्यग्रता का हृदयस्पर्शी चित्र सूर ने खींचा है—

"खन भीतर खन बाहिर आवति, खन आँगन इहि भांति
सूर स्याम को टेरत जननी, नैकु नहीं मन सांति ।[4]

कृष्ण के मथुरा गमन का संदर्भ तो ब्रजवासियों के लिए सबसे बड़ी आपत्ति थी । अक्रूर का आगमन और कृष्ण को मथुरा ले जाने का प्रसंग सुन कर नन्द मूछित हो गये और यशोदा पुत्र वियोग की आशंका से सिहर उठी । अपने लाड़ले, सुकुमार तथा निर्धन को धन को कैसे मथुरा भेज सकती हैं ? क्योंकि—

---

1. भाषा दशम स्कंध, पृष्ठ 200
2. सूरदास और पोतना—वात्सल्य की अभिव्यक्ति—डा. लीला ज्योति, पृष्ठ 121
3. सूरसागर—पद 626, 627
4. वही—पद 1162

"मथुरा असुर-समूह बसत है, कर-कृपान जोधा हत्यारे।"[1]

माँ तो यों बिलख पड़ती है कि क्या इस ब्रज में ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं है जो चलते हुए गोपाल को रोक सकें? यशोदा ही नहीं मातृहृदया एक गोपी को भी यह बात समझ में नहीं आती कि—

"गोपाल बिन कैसे कें ब्रज रहिबो,
धूसरि धूरि उठाय गोद लै लाल कोन सौं कहिबो।
जो मधुपुरी दिवस लागत हैं सोच सूल तन सहिबो
परमानन्द स्वामी को तजि के सरन कौन की गहिबो।[2]

यशोदा अक्रूर के पाँव पड़ कर प्रार्थना करती है कि

"ब्रज जन देखो ही जीयत।
मेरे नैन चकोर सुधा कर हरि मुख दिष्टि पीयत।
तुम अक्रूर चले लै मधुवन हरि मेरे प्रान आधार।
राम कृष्ण गोकुल के लोचन सुन्दर नंदकुमार।"[3]

उसके जाने पर अब ब्रज में रखा ही क्या है? अंधकार ही अंधकार। लेकिन जब स्वयं कृष्ण हीं मथुरा जाना चाहते हैं तो यशोदा पृथ्वी पर लोट जाती हैं और कृष्ण से प्रार्थना करती हैं—एक बार मेरे गले लग जा। करुणा भरे स्वर में कहती हैं—"राखि मोहि जात जननी को।" अंत में कृष्ण का अक्रूर के साथ रथ में जाने के वे दुर्भर क्षण आ ही जाते हैं। उस समय उनका हृदय भर गया, वाणी मूक हो गयी और कण्ठ गदगद्। इस दशा में वाणी का काम आँखें करती हैं। विरह की चरम अनुभूति का यह चित्रण सूर के ही शब्दों में—

जब ही रथ अक्रूर चढ़े।
तब रसना हरि नाम भाषिवे, लोचन नीर बढ़े।
महरि पुत्र कहि सोर लगायो, तरु ज्यों धरनि लुटाइ।
देखति नारि चित्र सीं ठाड़ी, चितयें कुंवर कन्हाइ।"[4]

रोहिणी, नन्द और ब्रजवासी भी दुखी हैं। कृष्ण चार-पाँच दिनों में आने का वादा तो कर गये थे लेकिन नन्द के संग वापस लौटे नहीं। बस,

---

1. सूरसागर—पद 3586
2. डा. दीनदयाल गुप्त के परमानन्ददास पद, संग्रह—पद 220
3. परमानंद सागर
4. सूरसागर—पद 3610

एक मात्र आशा भी टूट गयी। माता के सहज क्षोभ के कारण यशोदा नन्द को भी भला-बुरा कह देती हैं। यहाँ तक कि,

"तुम धिक ये चरन अहौ पति, अध-बोलत उठि धाए।
सूर स्याम बिछुरन की हम पै, दैन बधाई आए।"[1]

नन्द ने भी ये बातें सुन-सुन कर यह कहा कि—"तब तू मारिबोई करत" और अब कृष्ण के लिए पछता रही है। लेकिन फायदा क्या ? एक माता होने के नाते अपने पुत्र को आँखों के समक्ष बसाने के लिए यशोदा आखिर ब्रज छोड़ कर मथुरा में बस कर वसुदेव और देवकी की दासी बन जाना भी पसन्द करती हैं। क्या करें ? उसकी विवशता ही ऐसी है क्योंकि दिन भर अपने लाड़ले के मन पसन्द वस्तुओं को देख कर उसके मन में यह आशंका उठती है कि उसकी देखभाल कौन कर रहा है ?

"सूल होत नवनीत देख मेरे मोहन के सुख जोग।
प्रातःकाल होत उठि माखन रोटी को बिनु माँगें दैहै।
को मेरे वा कान्ह कुवर कौ छिनु-छिनु अंकम लैहैं।[2]

सूर ने केवल माता का ही नहीं, कृष्ण का भी वियोग चित्रित किया है—

"जद्यपि इहा अनेक भाँति सुख, तदपि
रह्यो नहिं जाई।"[3]

और ऊधव द्वारा संदेशा भेजते हैं—"हम आवेंगे दोऊ मैया।" यहाँ तो हमें कोई भी कान्हा कह कर नहीं बुलाते।

मुरली तथा अन्य वस्तुओं को सम्हाल कर रखने के लिए भी कहा है नहीं तो "मति लै जाइ चुराई राधिका, कछुक खिलौना मेरो।"[4] लेकिन माता के हृदय की विरहाग्नि को ऐसे वचनों से शान्त कर सकते हैं ? कदापि नहीं। अपने वात्सल्य को छिपा न सकने के कारण देवकी–को संदेश भेजती है— "प्रातः उठत मेरे लाल लड़तैं माखन रोटी भावे।"[5] शायद पुरानी स्मृति आ गयी होगी जब कि उसने अनजान में ही कह दिया था—"हों माता तू पूत" वह भी गोधन की कसम खा कर। इसीलिए आज टूटे हुए हृदय को व्यंग्य के रूप में व्यक्त करते हुए सिर्फ इतना ही कहती है, "हों तो धाय तिहारे सुत की।" चाहे अपने मन की भावनाएँ, अभिलाषाएँ या कटुता या पीड़ा चाहे

---

1. सूरसागर—पद 3752
2. वही—पद 3791
3. वही—पद 3438
4. वही—पद 3439
5. वही—पद 3793

जो भी हो, सच्चे अर्थों में एक माँ होने के कारण अपने पुत्र को शुभ आशीष ही भेजती है–

"कहियौ जसुमति की आसीस।
जहाँ रहो वहाँ नंद-लाड़िलो, जीवो कोटि बरीस।"[1]

वात्सल्य वियोग सम्बन्धी इस लघु विवरण के अन्त में आचार्य हजारी-प्रसाद द्विवेदी जी के ये वचन प्रस्तुत करना असंगत न होगा—"यशोदा के वात्सल्य में वह सब कुछ है, जो "माता" शब्द को इतना महिमाशाली बनाये हुए हैं। यशोदा के बहाने सूरदास ने मातृ-हृदय का ऐसा स्वाभाविक, सरल और हृदयग्राही चित्र खींचा है कि आश्चर्य होता है। माता संसार का ऐसा पवित्र रहस्य है, जिसे कवि के अतिरिक्त और किसी को व्याख्या करने का अधिकार नहीं। सूरदास जहाँ पुत्रवती जननी के प्रेम पूर्ण हृदय को छूने में समर्थ हुए हैं, वहाँ वियोगिनी माता के करुणा-विगलित हृदय को भी छूने में समर्थ हुए हैं।"[2]

5.4. सख्य भाव :

पुष्टि संप्रदाय की मान्यता के अनुसार अष्टछाप के आठों कवियों ने सख्य भाव को अपनाया था। इस क्षेत्र में भी सूरदास अन्य कवियों की अपेक्षा बहुत आगे चले गये हैं। "सूरदास के सखा भाव में यह विशेषता है कि उसमें एक ओर तो मनोवैज्ञानिक रूप ने मानवीय संबन्धों का निर्वाह किया गया है और दूसरी ओर भक्ति भाव की पूर्ण तल्लीनता और भावात्मकता की भी अनुभूति दी गयी है।"[3] संप्रदाय में इनके सखा और सखी रूप को मान्यता दी गयी है जिसका उल्लेख पीछे हो चुका है।[4]

दक्षिण भारत में संप्रदाय गत साधना के अन्तर्गत सख्य भाव से उपासना न होने के कारण ताल्लपाक के कवियों में सख्य भाव केवल हास-परिहास तथा बाल सुलभ लीलाओं के वर्णन तक ही सीमित मिलता है। हाँ, यहाँ उल्लेखनीय विषय यह है कि ताल्लपाक के कवियों ने भी नवधा भक्ति के अंतर्गत सख्य भाव को अवश्य ग्रहण किया है।

कृष्ण काव्य में सख्य भाव के उदाहरण बाल और गोचारण लीलाओं के साथ-साथ सुदामा चरित आदि प्रसंगों में प्राप्त होते हैं। माखन चोरी के

---

1. सूरसागर–पद 4707
2. सूर साहित्य–पृष्ठ 129-130
3. सूर और उनका साहित्य : प्रो. हरवंशलाल शर्मा, पृष्ठ 241-242
4. देखिए—प्रस्तुत प्रबन्ध पृष्ठ 52

लिए कृष्ण अपने साथ अन्य बालकों को भी ले जाकर घर-घर में दूध-दही मक्खन आदि चुराकर, हांडियाँ फोड़ कर ऊधम मचाते हैं। इसमें अन्य बच्चे भी रस लेते हैं क्योंकि ऐसे मनोरंजक और उत्साह पूर्ण घटना में कौन बालक पीछे रहना चाहता है ? सूर ने इन सभी भावनाओं को सखा भाव से इस प्रकार एक के बाद एक प्रस्तुत किया है—

"करें हरि ग्वाल संग विचार।
चोरि माखन खाहु सब मिलि, करहु बाल-विहार।
यह सुनत सब सखा हरषैं, भली कही कन्हाइ।
हंसि परस्पर देत तारि सौंह करि नंद राई।
कहाँ तुम यह बुद्धि पाई स्याम चतुर सुजान।
सूर प्रभु मिलि ग्वाल बालक, करत हैं अनुमान।[1]

तथा

"सखा सहित गये माखन चोरी।
देख्यो स्याम गवाच्छ-पंथ ह्वै, मथति एक दधि भोरी।···
पैठे सखनि सहित घर सूनैं, दधि माखन सब खाये।
··· ··· ···
भुज गहि लियौ कान्ह एक बालक, निक्से ब्रज की खोरी।[2]

कृष्ण के सखाओं में सूर ने सुबल सुदामा और श्रीदामा का विशेष रूप से उल्लेख किया है। भाई बलराम भी सखाओं में से हैं। इसीलिए कृष्ण को सदा छेड़छाड़ करते हैं। दोनों में स्पर्धा भी होती है। चिढ़कर कृष्ण अपनी शिकायत माँ तक ले जाते हैं कि—

"मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायो।
मो सो कहत मोल को लीन्हों, तू जसुमति कब जायो।
गोरे नन्द यशोदा गोरी, तू कत स्यामल गात।
चुटुकी दै दै ग्वाल नचावत, हंसत सबै मुसकात।[3]

इतना ही नहीं बलराम कृष्ण को डराते भी हैं—

"मैया बहुत बुरो बलदाऊ।
कहन लग्यौं बन बड़ों तमासो सब मौड़ा मिलि आऊ।

---

1. सूर सागर—पृष्ठ 148
2. वही—पृष्ठ 148-149
3. वही—पद 833

मोहूँ को चुचकारि गयो लै, जहाँ सघन वन झाऊ।
भागि चलो, कहि गये उहांते, काटि खाइ रे हाऊ।"[1]

परमानन्ददास ने भी ठीक ऐसा ही चित्र खींचा है—

"देखो री रोहनी मैया, ऐसे हैं बल भैया,
जमुना के तीर मोकों चुचकाय बुलाओ।
सुवल श्रीदामा साथ, हंसि, हंसि मिलि वें बात,
आपु डरप्यो और मोहूँ डरपायो।
जहाँ तहाँ बोलें मोर, चितवे तिनकी ओर,
भाजो रे भा जो मैया उहि देखो आयो।
आपु चढ़े तरु पर, मोहि छांड यो धर तर,
धर धर छाता करे धरु हूँ को आयो।"[2]

कृष्ण अपने आपको हमेशा बलराम से तुलना करते हैं और माँ से कहते हैं कि मेरी चोटी मैया की चोटी जैसी कब बनेगी ?

इसका अर्थ यह नहीं कि हमेशा दोनों भाई छेड़-छाड़ में ही बिताते हैं। बालकों की सरल स्वाभाविक चित्तवृत्तियों का भी वर्णन सूर ने किया है—

"मैया री मोहिं दाऊ टेरत।
मोको बन-फल तोरि देत हैं, आपुन गैयन घेरत।
और ग्वाल संग कबहुं न जैहों, वे सब मोहि खिझावत।
मैं अपने दाऊ संग जैहों, बन देखें सुख पावत।"[3]

इसमें एक बड़े भाई के प्रेम के साथ-साथ समवयस्कों के बीच का स्नेह भी चित्रित है।

बलराम तथा अन्य बालकों के समान स्वयं कृष्ण भी गोचारण के लिए जाना चाहते हैं—

"मैया हों गाइ चरावन जैहों।
तू कहि महर नंद बाबा सों बड़ो भयो न डरे हों।[4]

वहाँ गोचारण में कृष्ण का अपने सखाओं के साथ बैठकर छाक खाना और विशेष कर जूठन खाना भी चित्रित है। कितना आह्लाद पूर्ण दृश्य है—

"ग्वालिन करतें कौर छुड़ावत।
जूठे लेति सबनि के मुख को, अपने मुख लै नावत।

---

1. सूरसागर—पद 1099
2. परमानन्ददास सागर पद 100
3. सूरसागर—पद 1042
4. वही—पद 1030

षट रस के पकवान धरे सब, तिनमें रुचि नहिं लखत।
हा-हा करि-करि मांग लेत हैं, कहत मोहि अति भावत।"[1]

"सहनोभुनक्तु" का यह आचरण, गोपालों का यह पारस्परिक स्नेह, सहभोज का यह प्रभावशाली दृश्य भी वस्तुत: दृष्टव्य है जिसमें आधुनिक सभ्य मित्रों की तकल्लुफ और फार्मेलिटि से पूर्ण पार्टी का मजा चाहे न हो, पर सरल हृदयों से उमड़ती प्रेम रसधारा का माधुर्य बरस रहा है।"[2]

नन्ददास ने अपने भाषा दशम स्कंध में वन का सौन्दर्य, ग्वाल बालों का खेलना, गायों को टेरना आदि का वर्णन किया है—

"इति विधि बिहरत वृन्दावन में, छिन छिन अति रति उपजत मन में।
कबहुँ निरखि मराल सुचाल। तिनि संग खेलत लाल गुपाल।......
कबहूँ दूरि जाइ जब गाइ। ललित कदंबिनि पर चढ़ि जाइ।
आनंद धन सम सुन्दर टेरनि। इत उत वह हेरनि पट फेरनि।
हे गंगे, हे गोदावरी! हे जमुने, हे भांवरि चांवरि।
कबहूँ मल्लजुद्ध मिलि खेलत। मद गज ज्यों टेलत पग पेलत।
... ...
केइ कोमल पद लेकर भींजत। केइले कुसुम वीजना वीजत।
केइ अति मधुर मधुर सुर गावत। सांवरे कुंवरहि नींद अनाबत।[3]

परमानन्ददास ने भी गोप बालकों के दुह-दुह कर दूध पीने तथा छांक बाँट कर खाने का चित्रण यों किया है—

दुहि दुहि लयावत धोरी गइया।
कमल नैन को अति भावतु है मथि मथि प्यावत घैया।
हंसि हंसि ग्वाल कहत सब बातें सुन गोकुल के रैया।
ऐसे स्वाद कबहूँ न चखायो अपनो सोंह कन्हैया।
मोहन अधिक भूख जो लागी छाक बाँट लेहु मैया।
परमानन्ददास को दीजे पुनि पुनि लेत बलैय।।"[4]

तेलुगु के कवियों ने भी कृष्ण बलराम तथा अन्य सखाओं का घूमना,

---

1. सूरसागर—पद 1086
2. सूर और उनका साहित्य : प्रो. हरवंशलाल शर्मा, पृष्ठ 327
3. भाषा दशम स्कंध—नन्ददास, पृष्ठ 239-40
4. डा. दीनदयाल गुप्त के परमानन्ददास पदावली से—पद 293

फिरना, माखन-चोरी और गोचारण के समय सह भोज आदि का वर्णन किया है। अन्नमाचार्य जी कहते हैं–

देखो री सखी ! वे दोनों बच्चे राम और कृष्ण हैं। गाँव में अपने सखाओं के साथ हर स्थान पर दिखाई देते हैं। वह साँवले रंग का छोटा कृष्ण है और गोरे रंग का बड़ा बलराम। लेकिन दोनों यमल जैसे दिखते हैं और बड़े-बड़े काम करते फिरते हैं। माखन चोरी में दोनों बराबर हैं।[1] माखन चोरी के समय सभी ग्वाल बाल कृष्ण के नायकत्व को मान लेते हैं। बस तरह तरह के उपाय निकालना और आधा खाना और आधा फेंकना ही नहीं, वरन दूध दही की हांडियाँ भी फोड़ना दिखाया गया है। इसीलिए तंग आकर गोपियाँ यशोदा से कहती हैं कि हमारी गलियों में दूध और दही की बाढ़ आ गयी है।[2]

अष्टछाप और ताल्लपाक के कवियों ने कृष्ण तथा अन्य सखाओं के गोचारण के समय तरह तरह की कलेऊ सामग्री ले जाना और मिल जुल कर खाने का वर्णन किया है किन्तु स्थानीय भेद के साथ। सूर के कृष्ण का कलेऊ सद्य नवनीत, मीठा दही, मधु, मेवा और पकवान है[3] तो चिन्नन्ना के कृष्ण सोंठ, अदरक, काली मिर्च, मुरुकुल, और विभिन्न प्रकार की चटनी ले जाते हैं।[4] ताल्लपाक के कवियों ने भी सखाओं का एक दूसरे की चीज ले कर खाने का चित्रण किया है–

"गोमरु गोल्ललु चुट्टु गोलुवुंड दानु
नारगिंपग जिदु नन्नंबु मिहि
यूरिवारलकु नोर्हरिचुचुंड
गवलंबु चेत निक्कावलंबु चूपि
कबलिचु नोकनिचे कबलमोक्करुडु
चिक्कमु चेलिमितो जिक्कमुवेनुक।"[5]

अर्थात् गोप सखाओं के बीच वन में कृष्ण विराजमान थे। एक दूसरे को अपने पदार्थ दिखलाते हुए सभी मिल कर भोजन करने लगे। इसमें एक दूसरे का कौर चुराने का भी चित्रण है। इसी प्रसंग में चिन्नन्ना ने अघासुर तथा

---

1. आध्यात्म संकीर्तन–(वा. 8) पद 4
2. वही (वा. 3) 294
3. सूरसागर–पद 1080
4. अष्टमहिषी कल्याणमु–चिन्नन्ना, पृष्ठ 47
5. वही–पृष्ठ 50

धेनुकासुर वध तथा ब्रह्म को माया का और कृष्ण के द्वारा नूतन सृष्टि का भी उल्लेखकर कृष्ण के तख्य प्रेम पर भी प्रकाश डाला है।[1]

सख्य भाव का एक तत्व खेल-कूद है। इसका भी वर्णन हिन्दी तथा तेलुगु काव्य में हुआ है। सूर ने कृष्ण के चकडोरी से खेलने का उल्लेख किया है। जैसे—

दे मैया भौंरा चकडोरी।[2]

तथा

"अपने कर गहि गगन बतावत खेलन को मांगो चंदा।
चकई गोरी पाट के लटकन लेहु मेरे लाल खिलौना।"[3]

परमानन्ददास के शब्दों में—

"गोपाल माई खेलत हैं चकडोरी
लरिका पाँच सात संग लीने निपट सांकरी खोरी।"[4]

अन्नमाचार्य ने भी इसी खेल का उल्लेख चक्रपु-बिल्ला—के नाम से किया है।[5] इसके अलावा कृष्ण की क्रीड़ा सामग्री में बुर्रलु कोम्मुलु, लट्टू आदि हैं।[6]

लट्टू के खेल को परमानन्ददास ने बंगी के नाम से उल्लेख किया है—

"गोपाल फिरावत है बंगी।"[7]

सूर तथा अन्नमाचार्य ने कृष्ण की बाँसुरी तथा किन्नरी[8] का भी उल्लेख खिलौनों में किया है।

"नोई बेंत विवान, बाँसुरी, द्वार अबेर सबेरे।[9]

सामूहिक रूप से अपने सखाओं के साथ गेंद खेलने का विशेष उल्लेख तो है ही। सूरसागर में तो कालियदमन के लिए इसी कन्दुक-क्रीड़ा को पृष्ठभूमि बनाया गया है। श्रीदामा और कृष्ण में इसी गेंद के लिए स्पर्धा चलती है।

---

1. अष्ट महिषी कल्याणमु—चिन्नन्ना, पृष्ठ 48 से 54 तक
2. सूरसागर—पद 2287
3. वही—पद 192
4. डा. दीनदयाल गुप्त के परमानन्ददास पद संग्रह से पद 55
5. आध्यात्म संकीर्तन (वा. 3) पद 114
6. वही—(वा. 3) (वा. 14) पद 114—148 (वा. 14, 3) पद 76, 129
7. डा. दीनथयाल गुप्त के परमानंद पद संग्रह से पृष्ठ 57
8. सूरसागर—पद 3439
9. वही—पद 535

भी कृष्ण के मनोज्ञ तथा राजसी रूपों का वर्णन किया है। जैसे "सुन्दर कपोलों पर झूमने वाले मकर कुंडल, सुन्दर केशों पर लगाया गया मोर पंख, हंसियों को बिखरने वाली बड़ी बड़ी आँखें, होठों पर मुरली, वक्ष:स्थल पर हार, शंख जैसा गला और ललाट पर तिलक के साथ मानों सोने की चाँदनी के समान कृष्ण हैं।[1] उनके राजसी वर्णन में तत्तकालीन विजयनगर के राजा कृष्णदेव राय की छटा हमें मिलती है। ताल्लपाक के कवियों ने विभिन्न कृतियों में कृष्ण के अलावा अनिरुद्ध, अर्जुन आदि नायकों का भी मनमोहक वर्णन किया है।

नायक के इस अद्भुत सौन्दर्य के कारण नायिकायें उन पर न्यौछावर हो जाती हैं। अद्भुत सौन्दर्य के नायकों की नायिकाओं का सौन्दर्य भी अनुपम ही होना चाहिए। इसीलिए अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों ने अपनी सभी रचनाओं में राधा, लक्ष्मी, रुपमंजरी, अलमेल मंगा, उषा और सुभद्रा के अनुपम सौन्दर्य का चित्रण भी सुन्दर शब्दों में किया है। सूर ने तो पहली बार कृष्ण और राधा का परिचय और एक दूसरे के प्रति आकर्षित होने का बहुत स्वाभाविक चित्र खींचा है। जब कृष्ण अपने सखाओं के साथ खेलने निकलते हैं तो राधा के सौन्दर्य को देख कर ठग जाते हैं और उसका परिचय पूछते हैं—

"बूझत स्याम कौन तू गोरी।[2]

अब तनिक अष्टछाप के अन्य कवियों के नायिका वर्णन का अवलोकन करें—

"राधिका रसिक गोपालहिं भावै,
सब गुन निपुन नवल अंग सुंदर प्रेम मुदित कोकिल स्वर गावे।
पहेरि कुसुंभी कटाव की चोली चन्द्र बधू सी ठाड़ी सोहे।
सावन मास भूमि हरिया मृग नैनी देखत मन मोहे।
उपमा कहा देउं बोलाइक केहरि की वाही मृग लोचनि।
परमानन्द प्रभु प्राण वल्लभा चितवनि चारु काम सर मोचनि।"[3]

नन्ददास के शब्दों में राधा का सौन्दर्य है—

"चिबुक कूप पिय मन परयो अधर सुधा रस आस,
कुटिल अलक लटकत काढ़न को कंटक डारयो प्रेम के पास।

---

1. दृष्टिव्य—पृष्ठ 156 आदि
2. सूरसागर—पद 1291
3. परमानन्द सागर—पद 369

चंचल लोचन ऊपर ठाढ़े हैं अंचन को मानो मधुहास ।
नन्ददास प्रभु प्यारी छवि देखें बढ़ि हैं अधिक पियास ।"[1]

नन्ददास ने अपनी रूप मंजरी में नायिका रूप मंजरी के सौन्दर्य का विस्तृत वर्णन किया है । केवल छोटा सा उदाहरण प्रस्तुत है—

"ता भूपन के भवन कोऊ दीप न बारत सांझ ।
बिन ही दीपहि दीप जिमि, दिपय कुंवरि घर सांझ ।
सहज सुगंध सांवरी अलकें, बिनहिं फुलैल उलले सो झलकें ।
... ...
भौंहन की छवि रहि मो मनही । बालक मनमथ की जनु धनुही ।
... ...
उज्जवल हौंन लगे अंग नीके । कंचन भूषन ह्वै चले फीके ।"[2]

कुंभनदास भी अपने पदों में राधा के सौन्दर्य का वर्णन प्रस्तुत करते हुए कहते हैं—

तेरे तन की उपमा को देख्यो मैं विचारिके,
कोउ नाहिन भामिनी ।
कहा वपु सों कंचन कदली कहाँ कैहरि गज कपोत कुंभपिक,
कहाँ चन्द्रमा और कहाँ वपुरी दामिनी ।
कहाँ कुरंग, शुक बंधूक केकी, कमल,
या आगे श्री देखिये सबनि कामनी ।[3]

तथा

कुंवरि राधिका तब सकल सौभाग्य सीमा,
या बदन पर कोटि शत चंद्र वारों ।
खंजन कुंरप शतकोटि नयननि ऊपर ।
वारनें करत जिय में विचारो ।
कदली शत कोटि जंघन ऊपर ।
सिंह शतकोटि पर न्योछावर उतारों ।......[4]

ताल्लपाक के कवियों ने भी अपनी नायिकाओं के सौन्दर्य को शब्दों में इस प्रकार से बाँधा है—अन्नमाचार्य इस प्रकार कहते हैं—

---

1. नन्ददास—पदावली—पद 63 2. रूप मंजरी—पृष्ठ 106
3. अष्टछाप पदावली—सोमनाथ गुप्त, पृष्ठ 156
4. वही

"जलजाक्षि के लावण्य को बढ़ाने के लिए मुख चन्द्र का आविर्भाव हुआ तो मन्मथ रूपी विष को काटने के लिए अधरामृत का जन्म हुआ।"[1]

अलमेलमंगा के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहते हैं—

"सखी, तुम देखोगी तो कमल दलों से पूजा होती है और मुस्कुराने से कुंद कुसुमों से पूजा होती है। तुम उसांस छोड़ो तो चंपा पुष्पों से पूजा और अपने तन में पुलकें उठाओ तो मुकुलों से अर्चना हो जाती है।[2]

नायिका का मुख चन्द्रोदय, उसकी हंसी चाँदनी, उसके अधर चमकते हुए तारे, उसके वज्रों का तिलक सूर्योदय, उसके आँखों की चमकार धूप, उसके भालों पर गिरने वाले घुंघराले बाल कमल, और उसका पसीना ही बरसात है।[3]

इतना ही नहीं कवि का कहना है कि नायक को आइना देखने की आवश्यकता ही नहीं क्योंकि उसका मुख ही दर्पण है। वह लक्ष्मी होने के कारण अंग-अंग पर मानों मणि माणिक्यों की निधियाँ बसी हैं। उसका केश कलाप नील माणिक्य राशि है और अधर विद्रुम रत्न हैं। थोड़ा सा मुस्कुराती है तो मोती बरसते हैं और क्रोध करती है तो माणिक्य बिखर जाते हैं। ऐसी नायिका को पाकर भगवान वेंकटेश्वर लखपति बन गये हैं। नायिका का सौन्दर्य वेंकटेश्वर के लिए क्रीड़ोद्यान है तो उसकी देह की सहज सुगंध उनके लिए पुष्पोद्यान है।[4] अन्नमाचार्य एक और स्थान पर कहते हैं—नायिका का सौन्दर्य सहज दुर्ग है, उसमें नायक वेंकटेश्वर अपने मदन-साम्राज्य का भार सुख से संभालते हैं। नायिका की दृष्टि मेघ मध्यगत तडित रेखा सी है जो नायक के दिल का अंधेरा दूर करती है। उसका मुख चन्द्रमा ही है इसीलिए नायक के नैन-कुमुद नित्य प्रफुल्लित रहते हैं।"[5]

पेदतिरुमलाचार्य ने एक संकीर्तन में भगवान के लीलाओं को नायिका के सौन्दर्य के साथ जोड़ते हुए अद्भुत चित्रण किया है। वे कहते हैं—"हे नायिका ! तुम्हारी चाल गज गमन जैसे होने के कारण तुम्हारे पति ने गजेन्द्र का उद्धार किया है। तुम्हारे नितम्ब चक्र के समान होने के कारण अपने

---

1. शृंगार संकीर्तन—स्वर सहित पृष्ट 293
2. वही—(वा. 12) पद 95
3. शृंगार संकीर्तन अन्नमाचार्य—(वा. 18) पद 144
4. अन्नमाचार्य और सूरदास—संगमेशम के आधार पर पृष्ठ 260
5. वही—

हाथ में उन्होंने चक्र को ग्रहण किया है। तुम्हारा आवास कमल होने के कारण वे स्वयं कमलनाथ हो गये। तुम्हारा कंठ शंख के समान होने के कारण उन्होंने पांचजन्य को धारण किया। शायद तुम्हारे काले-काले केशों के प्रति मोह के कारण स्वयं नीलवर्ण के हो गये।"[1] रुक्मिणी के सौन्दर्य का वर्णन इस प्रकार है—"इस इंदुवदना के मुख की किस चन्द्र से तुलना करें ? इसके आँखों की तुलना किन कमल दलों से करें ? इसके कुचों की तुलना किन पर्वतों से करें ?[2] कहते हुए कवि चिन्नन्ना ने अन्य स्थानों पर रुक्मिणी के सौन्दर्य का वर्णन किया।[3] इसी प्रकार से अष्ट महिषियों के नख शिख सौन्दर्य का वर्णन है। चित्र-विचित्र रीतियों में इन सभी के वर्णन कवि ने निर्वाह किया है। नायिका के सौन्दर्य वर्णन के इस अध्ययन में एक ऐसा संकीर्तन प्रस्तुत है जिसमें अन्नमाचार्य ने नायिका के अवयवों को नवरसों से तादात्म्य करते हैं "यह नलिनाक्षि तो नवरसों से भरी हुई है। उसके मुख पर शृंगार रस, नखूनों में वीर रस, लाल होठों पर करुण रस, उसके कुचों में अद्भुत रस, उसके हास में हास्य रस, पतली कमर में भय रस, उसकी तीक्षण दृष्टि में बीभत्स रस, उसके भौंहो के त्योरी चढ़ाने में रौद्र रस, रति के समय शान्त रस और इन सबके अलावा नायक के प्रति 'अति मोह' रस दसवाँ रस है। जब वेंकटेश्वर से मिलन होता हैं तो प्रसन्न रस का आविर्भाव होता है।"[4] कैसी सुन्दर कल्पना है।

एक अन्य संकीर्तन में नायिका के अवयवों के सौन्दर्य की नवरत्नों[5] से तुलना की गयी तो एक और स्थान पर विभिन्न पुष्पों से।[6]

5.5.3. संयोग शृंगार :

अष्टछाप ही नहीं वरन् ताल्लपाक के कवियों ने भी अपनी रचनाओं में रसिक शिरोमणि कृष्ण के जीवन के शृंगार की झाँकियों को सुन्दर शब्दों में बाँधा है। कृष्ण की जीवनी की विशेषता यह है कि उनके बाल्यकाल की लीलायें ही क्रमिक रूप में यौवन कालीन लीलाओं में परिणित हो जाती

1. शृंगार संकीर्तन—पद 1
2. अष्टमहिषी कल्याणमु—चिन्नन्ना, पृष्ठ 108
3. वही—पृष्ठ 204
4. शृंगार संकीर्तन—अन्नमाचार्य (वा. 13) पद—282
5. वही—(वा. 3) पद 276
6. वही—(वा. 3) पद 434

हैं। अतः यह एक आकस्मिक घटना नहीं है। इसीलिए गोपियाँ भी कहती हैं—"लरिकाई की प्रेम कहो अलि कैसे छूटत।"[1]

सूर ने तो प्राकृतिक वातावरण की पृष्ठभूमि में कृष्ण, राधा तथा गोपियों के प्रेम को पनपते हुए चित्रित किया है। "कृष्ण और गोपियों के प्रेम का विकास प्रकृति के सुन्दर वातावरण में हुआ है। बाल्यावस्था में साथ-साथ खेलने वाले सरल प्रकृति वाले सखा और सखी किशोरवस्था के आकर्षण, कौतूहल जिज्ञासा आदि भावों से गुजरते हुए यौवन काल के प्रिय और प्रिया वन गये। उनके प्रणय की निष्पत्ति में साहचर्य और सौन्दर्य-प्रियता दोनों का ही योग है।"[2] यह आकर्षण साथ-साथ उठने-बैठने, खेलने और स्वाभाविक हंसी-मजाक और छेड़छाड़ के साथ परिपुष्ट हुआ है। सूर ने कृष्ण और राधा का प्रथम दर्शन और आकर्षण के अंकुरित होने का चित्रण अपने पद—

"खेलन हरि निकसे ब्रज खोरी"[3]

तथा

"बूझत स्याम कौन तू गोरी" में किया है।

इस आकर्षण का आरम्भ कृष्ण के माखन चोरी के दिनों से ही हो जाता है। जैसा कि वात्सल्य के अध्ययन में यह देखा गया है कि कृष्ण गोपियों के कुच मर्दन कर या आलिंगन चुंबन कर भाग जाते हैं। यद्यपि गोपियाँ उलाहना देती है फिर भी गोपियों को ये सभी चेष्टायें मन ही मन प्रिय लगती हैं। शृंगार का भाव यहाँ जो अस्नष्ट था, परवर्ती काल ऊखल बंधन और गोचारण तक आते-आते मुखरित हो जाता है इस प्रकार से इन सभी प्रसंगों में वात्सल्य और सख्य के साथ साथ माधुर्य की भावना भी अन्तर्वाहिनी के रूप में प्रवाहित रहती है।

माधुर्य का स्पष्ट रूप चीरहरण लीला से आरम्भ होता है क्योंकि अब गोपियाँ भी स्पष्ट रूप से कृष्ण को पति के रूप में पाने के लिए यमुना में खड़ी होकर प्रार्थना करती हैं। अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों ने इस प्रसंग का वर्णन किया है।

"सूर स्याम सुन्दर पति पावे आवें यही हमारी आस।"[4]

कहकर सूर की गोपियाँ शिव और शक्ति से प्रार्थना करती हैं तो

---

1. सूरसागर—पद—4664
2. सूर और उनका साहित्य—हरवंशलाल शर्मा, पृष्ठ 327
3. सूरसागर—पद 1910
4. वही—पद 1383

नन्ददास की गोपियों की प्रार्थना है—

"अये गवरि ! ईश्वरि सब लायक ।
महामाइ बरदायि सुभायक ।
देविदया करि ऐसें ढरौ ।
नंद-सुवन हमरो पति करो ।"[1]

तेलुगु में चिन्नन्ना ने अपने अष्टमहिषी कल्याणमु में गोपियों के द्वारा विष्णु की प्रार्थना करवायी है कि कृष्ण हमें पति के रूप में प्राप्त हों ।[2] बस इसी समय कृष्ण आकर उसके वस्त्रों को चुराकर वृक्ष पर चढ़ जाते हैं । इसके पश्चात् कृष्ण का गोपियों को हाथ ऊपर उठाकर बाहर आने के लिए कहना और गोपियों का अन्त में विवश होकर आज्ञा का पालन करना वर्णित है । इसके पश्चात् गोपियाँ शृंगार की पराकाष्ठा रासलीला में सम्मिलित होने के लिए अधिकार प्राप्त करती हैं । "रास लीला संयोग शृंगार का चरम है ।··· जिस मानसिक और आध्यात्मिक पृष्ठभूमि की आवश्यकता निष्काम रसरमण के लिए थी वह रास पूर्व लीलाओं में प्रस्तुत की गयी है । चीरहरण उस माया जन्य आवरण का ही हरण है जो जीव को परमात्मा से अलग रखता है और जिसमें छिपकर जीव अपने छल व्यापारों को भगवान से भी गुप्त समझता है । इस तरह सब प्रकार से अनावृत्त जीव ब्रह्म के अन्तर्बाह्य के रसास्वाद का अधिकारी बनता है । इस प्रकार गोपियाँ रास की अधिकारिणी होकर कृष्ण के सघन सान्निध्य को रास के रूप में प्राप्त करती हैं ।"[3] रासलीला तक आते-आते हिन्दी में प्रधान गोपी राधा का विकास हुआ जिसका तेलुगु में अभाव है ।

रासलीला की पृष्ठभूमि के रूप में अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों ने मुरली वादन को प्रस्तुत किया है । वेणुनाद को सुनते ही सूर के अनुसार जड़ जंगम हो गये और जंगम जड़ । यमुना और पवन की गति रुक गयी । पशुओं ने घास चरना बन्द कर दिया । यह सब देख सनकादि भी मोहित हो गये ।[4] मुरली के सौभाग्य का क्या कहना ? इसीलिए गोपियाँ कहती हैं—

"मुरली कौन सुकृत फल पाये ।
अधर-सुधा पीवति मोहन को, सबै कलंक गंवाये ।[5]

---

1. भाषा दशम स्कंध—पृष्ठ 258 2. पृष्ठ 70
3. हिन्दी और तेलुगु वैष्णव भक्ति साहित्य—डा. के. रामनाथन्, पृष्ठ 340
4. सूर सागर—पद 1238 तथा 1276 5. वही—पद 2279

तेलुगु में भी कहा गया है कि कृष्ण की मुरली की ध्वनि सुनते ही वन के पशु अपनी गर्दनों को ऊपर उठा कर आधे बंद आँखों से अपनी सुध बुध खो कर रह गयीं। शिलायें द्रवित हो कर बहने लगीं। इसे सुन गोपियाँ मंत्र मुग्ध हो कर जैसी की तैसी कृष्ण की ओर आने लगीं।[1] सूर तथा चिन्नन्ना ने यही चित्रण किया है कि गोपियाँ गृह व्यवहार, आर्य पथ को त्याग कर अपने वस्त्रों को भी संभाले बिना दौड़ती हुई आ गयीं। सूर[2], नन्ददास[3] तथा चिन्नन्ना[4] ने इस संदर्भ में आह्लादकारी प्रकृति का भी मनमोहक वर्णन किया किया है। गोपियाँ सभी बाधाओं को लांघ कर कृष्ण के पास पहुँची तो कृष्ण ने लोक-लाज गुरुजन आदि का भय दिखाया। यह सब सुन—

जुवति व्याकुल भई, धरनि सब गिरि गई।

गोपियाँ कृष्ण से स्पष्ट कह देती है कि हम विरह में जल रही है अब तुम्हारे बिना और कोई गति नहीं। इसी संदर्भ में गोपियाँ कृष्ण के अलौकिक-तत्व का भी उल्लेख करती हैं। चिन्नन्ना की गोपियाँ प्रार्थना करती हैं कि हमारी मदन—पीड़ा का शमन करो।[5] सूर ने गोपियों की अन्तर्वेदना को अधिक चित्रित किया है।

"रुदन-जल नदी-सम बहि चलयो उरज बिच
मनो गिरि फोरि सरिता पनारी।[6]

चिन्नन्ना की गोपियों में यह दीनता का भाव नहीं। वे कृष्ण को ललकारिती भी हैं कि तुमने अपनी उंगली पर गोवर्धन को उठाया था, क्या हमारे कुच द्वयों को निभा नहीं सकते ?[7]

"रास" का वर्णन अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों ने किया है। आह्लादकारिणी शरद पूर्णिमा की रात "रास" का जन्म होता है। उस आह्लादकारी प्रकृति वर्णन के पश्चात् रास का वर्णन इस प्रकार है—

नव मर्कत-मनि स्याम कनक-मनिगन ब्रज बाला।
बृन्दावन को रीझि मनहुं पहिराई माला।

---

1. अष्टमहिषी कल्याणणु—चिन्नन्ना, पृष्ठ 88—89
2. सूरसागर—10/1019
3. रासपंचाध्यायी—पद 38 से 45 तक
4. अष्टमहिषी कल्याणमु—चिन्नन्ना, पृष्ठ 86—87
5. वही—पृष्ठ 91·92·93
6. सूरसार—10/1019
7. अष्टमहिषी कल्याणमु, पृष्ठ 94

नूपुर, कंकन, किंकिनि करतल मंजुल मुरली ।
ताल मृदंग उपंग चंग एकै सुर जुरली ।
मृदुल मुरज टंकार तार झंकार मिली धुनि ।
मधुर जंत्र की सार भंवर गुंजार रली पुनि ।
ग्रीव ग्रीव भुज मेलि केलि कमनीय बढ़ी अति ।
... ...
अद्‌भुत रस रह्यो रास गीत धुनि सुनि मोहे सुनि ।
सिला सलिल ह्वै चली सलिल ह्वै रह्यौ सिला पुनि ।[1]

गोपी कृष्ण इस रास में इतने उन्मत्त हैं कि एक दूसरे के वस्त्र में वस्त्र, और आभूषण में आभूषण उलझ गये हैं ।[2] सूर ने भी वाद्यों का, नृत्य की भंगिमाओं का वर्णन करते हुए नृत्य की गति के साथ आभूषणों के हिलने तथा विभिन्न हाव-भावों का उल्लेख रास के वर्णन में किया है । जैसे—

'चंचल चलत झूमका, अंचल अद्‌भुत है वह रूप ।'

प्रिया और प्रियतम की उलझन का वर्णन सुन्दर शब्दों में बाँधा है—कुण्डल से लट उलझ गयी तो बेसर से पीत पट उलझ गया । वनमाल में तो दोनों उलझ गये । प्राण से प्राण और नैन से नैन अटक गये ।[3]

चिन्नन्ना भी रास के वर्णन के संदर्भ में कहते हैं कि कृष्ण राधा के साथ युगल गान करने लगे । विभिन्न राग रागिनियों का और नृत्य भंगिमाओं का प्रस्ताव कवि ने सफलता पूर्वक किया है ।[4] इस अदभुत रास नृत्य को देख आकाश से देवता फूलों को बरसाते हैं । रास के आरम्भ के पहले गोपियों की काम चेष्टाओं का विस्तृत वर्णन चिन्नन्ना ने किया है । जैसे एक गोपी अपने वक्षों को कृष्ण के पीठ को थामती है तो एक और गोपी अधरों से अधर मिलाती है । एक और गोपी कृष्ण के कपोलों को काट लेती है । अन्य गोपियाँ भी कभी आहें भरती हैं तो कभी कृष्ण को अपने प्रगाढ़ आलिंगन में फँसा लेती हैं ।[5] रास लीला के पश्चात् हिन्दी और तेलुगु दोनों भाषाओं में जलक्रीड़ा का विस्तृत वर्णन हुआ है ।

कथा के सूत्र में बाँधनेवाले उपयुक्त उदाहरणों के अलावा अष्टछाप और ताल्लपाक के कवियों ने ऐसे अनेक श्रृंगार के मौलिक चित्र प्रस्तुत किये हैं कि

---

1. रास पंचाध्यायी—नन्ददास, पृष्ठ 17-18
2. वही—
3. सूरसागर—10/1149
4. अष्टमहिषी कल्याणमु—पृष्ठ 108
5. अष्टमहिषी कल्याणमु—चिन्नन्ना, पृष्ठ 103

जिनको पढ़कर पाठक मुग्ध हो जाते हैं। सूर ने एक पद में अपनी अद्भुत कल्पना शक्ति का परिचय दिया है—

"बहुरि फिरि राधा सजति सिंगार।
मनहुं देति पहिरावनि अंग, रन जीते सुरत अपार।"[1]

संयोग शृंगार के इस पद में सूर ने यह कल्पना की है कि रति संग्राम में विजय पाने पर राधा सम्मुख रहकर डटकर युद्ध करने वाले अंगों को पुरस्कृत करती है और विमुख रहकर कायरता दिखलाने वाले केशों को बंधन का दण्ड देती है। विजयोत्सव के उपलक्ष्य में हाथों को कंकण, भुजाओं को आभूषण नेत्रों को काजल, नासिका को नथ, ललाट को तिलक, अधरों को बीड़ा और वक्षःस्थल हार के पारितोषिक मिले। "सूर की इस कल्पना से मन इतना मुग्ध हो जाता है और हृदय इतना प्रसन्न हो जाता है कि नेत्रों के आगे से यह प्रस्तुत किया गया शृंगार चित्र हटता ही नहीं है। सूर का यह काव्य कौशल कितना चकित कर देने वाला है कि एक ओर तो शृंगार की सज्जा के अंगीभूत आभूषणों का वर्णन किया गया और दूसरी ओर विजयोत्सव के उपलक्ष्य में उपहारों का वितरण भी करा दिया।"[2]

इसी प्रकार नंददास ने अपनी नायिका रूपमंजरी के नख शिख वर्णन के साथ-साथ वयः संधि का चित्र किन अद्भूत शब्दों में बाँधा है, यहाँ प्रस्तुत है—

"जुवन-राव जब उरपुर लयो। सैसव-राव जघन वन गयो।
अरन लगे तब दोऊ नरेसा। छीन पर्यो तव तियमधि देसा।"[3]

एक प्रातिभ कवि होने के कारण कवि ने यह कल्पना की है कि रूपमंजरी का रूप चन्द्रकला के समान दिन-दिन बढ़ता गया और यौवन आने पर यौवन के राजा ने कुच-उर-गढ़ पर अधिकार जमा लिया और शैशव राजजघन रूपी वन में चला गया। जब दोनों नरेशों में खैंचातानी हुई तो मध्य प्रदेश (कटि) क्षीण पड़ गया। क्या अनोखा है चित्रण !

अन्नमाचार्य भी कहते हैं कि नायिका की कटि दिनों दिन इस तरह क्षीण हो रही है कि मानों वह उसके नायक की प्रिया बन जाने की अवधि के संकोच

---

1. सूरसागर—पद—2801
2. सूरदास और नरसी मेहता : तुलनात्मक अध्ययन
—प्रो. ललित कुमार पारिख, पृष्ठ 131
3. रूपमंजरी—नंददास, पृष्ठ 107

का संकेत कर रही है।[1] अन्नमाचार्य को वेंकटेश्वर के गले में लटकती हुई लक्ष्मी का हार देखते हुए लगता है कि नायिका को अत्यन्त गर्व हो रहा है। उनके मिलन का वर्णन इस प्रकार है—

"गले लगी नेवेद्य हुआ, फिर
विनय दिखाया प्रणति हुई।
अधर दिया ताम्बूल बना बस,
रति ही पति की पूजा भई।"[2]

इतने पास रहकर भी कवि कभी-कभी यह अनुभव करते हैं—

"डर है, आलिंगन करने से
दब जायें उदरस्थ चराचर।
नयन मूंदने पर, केली वश
अंधेरा हो जायें जगत भर।"[3]

ताल्लपाक के कवि की कल्पना के अनुसार नायक और नायिका के मिलन के समय सभी ऋतुएं एक साथ आ गई हैं। जैसे नायिका के कपोल लाल हो गए तो लगता है कि वसंत का आगमन हो गया है। नायिका की आँखों से आनंदाश्रु टपकने लगे तो लगता है कि वर्षा ऋतु का आगमन हो गया है। अगर नायिका विरह में जलती है तो ग्रीष्म ऋतु का आभास होने लगता है। नायिका के मुख पर प्रसन्नता की लहर दिखाई देती है तो वह शरत्काल जैसी मनमोहक हो जाती है। नायक को देख लज्जा के मारे नायिका सिकुड़ जाती है तो हेमन्त ऋतु प्रतीत होती है।[4]

इस प्रकार से अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों ने संयोग श्रृंगार के अनगिनत अद्भुत चित्र प्रस्तुत किये हैं। अनेक स्थानों पर दोनों क्षेत्र के कवियों ने नायक और नायिका को अभेद मानते हुए चित्र खींचा है। जैसे—

साँची प्रीति भयी इकठौर।
मृगनैनी कमलदल लोचन, लाल स्याम राधा तन गोर।
तुम सिर सोहत पाटकी डोरी हरि सिर रूचिर चंद्रिका मोर।
तुम रसिकिनि वे रसिक सिरोमनि तुम ग्वालनि वे माखन चोर।

---

1. श्रृंगार संकीर्तन—(वा-4) पद—100
2. अनुवाद—एम संगमेशम्
3. वही
4. श्रृंगार संकीर्तन-पेद तिरुमलाचार्य पद—522 तथा 525

तुम करिनि वे गज बल नायक तुम मालति वे भोगी भोंर।
"परमानंद" नंदनंदन को राधा सी गोरो नहिं और।"[1]

इसी प्रकार से ताल्लपाक के कवि भी कहते हैं कि नायक और नायिका की जोड़ी अद्भुत है। वे दो होते हुए भी एक ही हैं। जैसे—

"सती का मुख चन्द्र है तो पति के आँखों को कमलों से तुलना की जा सकती है। जिस प्रकार से आँख दो होने पर भी दृष्टि एक ही होती है उसी प्रकार से तुम दोनों के शरीर अलग होने पर भी मन के विचार एक ही होते हैं। मन के भाव अलग-अलग हो सकते हैं किन्तु आलिंगन के समय—परवशता की भावना एक ही होती है।"[2]

5.5 3.1. संभोग वर्णन : अष्टछाप और ताल्लपाक के कवियों ने संभोग का भी विस्तृत वर्णन किया है क्योंकि यह वैष्णव संप्रदाय में मान्य है। एक दो उदाहरण प्रस्तुत हैं—सूरसागर में तीन स्थानों पर संभोग समागम का वर्णन है। "वे हैं—सुख विलास, यमुनागमन—युगल समागम और मानलीला तथा दंपति विहार। इनके अलावा दृष्टकूट पदों में तो संभोग के अत्यन्त गुह्य चित्र मिलते ही हैं। सूर ने यहाँ तक वर्णन किया है कि राधा अपने कण्ठहार को भी उतार रही हैं जिससे आलिंगन में बाधा न पड़े। आलिंगन, अधरामृत पान, कुच-स्पर्श आदि सभी हो जाते हैं। राधा सेज बनाती है, शृंगार करती है। पहले कुछ हिचकिचाने पर भी राधा ने कृष्ण से प्रोत्साहन पा कर प्रिय के चुम्बन का प्रत्युत्तर दिया। अधर से अधर, नयन से नयन मिल जाते हैं। चोली—का बंधन टूट जाता है और पूर्ण संभोग होता है।[3]

संभोग का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत है—

"उर भुज नील कंचुकी फाटी, प्रगटे हैं कुच कोरी।
नव-धन मध्य देखियत मानहुं, नवससि की छवि थोरी।
आलस नैन सिथिल कज्जल, बलि, मनि ताटंकनि मोरी।
मानहु खंजन, हंस कंज पर, लरत चंचु-पुट तोरी
बिथुरी लटलटकी भृकुटी पर, मांग सुमनि नंगरोरी
मानहुं कर कोदंड काम अलि-सैन, कमल हित जोरी।[4]

---

1. परमानंद सागर—पद—244
2. द्रष्टव्य है—अन्नमाचार्य तथा पेदतिरुमलाचार्य के शृंगार संकीर्तन।
3. हिन्दी और तेलुगु वैष्णव भक्ति साहित्य के आधार पर
—डा. के. रामनाथन पृष्ठ 378
4. सूरसागर—पद 3274

एक और उदाहरण प्रस्तुत है—

बिलसत विविध विलास हास नीबी कुच परसत ।······
ताहि साँवरी कुंवर रीझि हंसि लेत भुजनि भरि ।
चुंबन करि सुख-सदन बदन ते दे तमोल ढरि ।[1]

ताल्लपाक के कवि भी इस प्रकार के वर्णन में पीछे नहीं हैं । श्रृंगार मंजरी तथा चक्रवाल मंजरी में नायिका की विरहावस्था के पश्चात् नायक के साथ संभोग का वर्णन है ।[2] अन्नमाचार्य कहते हैं कि श्री कृष्ण को सामने पा कर नायिका संभोग क्रियाओं को ही भूल गयीं । फिर चुंबन, आलिंगन और सामान्य का क्रमिक वर्णन है ।[3] संभोग वर्णन कहीं-कहीं सखियों के वचनों से भी दृष्टव्य है । जैसे सखियाँ नायक से कह रही हैं—"तुमने उसके आँचल को खींच लिया, उसकी चोली और साड़ी शरीर से हट गये तो बेचारी नायिका के अपने केश से लज्जा की रक्षा करनी पड़ी ।"[4] एक स्थान पर वे कहते हैं—

"पलुकु देनेल तल्लि पर्वलिचेनु
कलिकितनमुन विभुनि कलसिनदिगान ।[5]

अर्थात् मधु जैसी मीठे वचन वाली नायिका अभी तक सो रही है क्योंकि रात में बड़ी देर तक तक प्रिय से उसका मिलन हुआ । अभी भी उसका आँचल खिसका हुआ है । उसकी कमल जैसी आँखों में अभी भी उस श्रृंगार की झलक दिखाई दे रही है ।

एक अन्य संकीर्तन में भी संभोग श्रृंगार का सुन्दर वर्णन इस प्रकार है—

एमोको चिगुरुटधरमुन येडनेड गस्तूरि निंडेनु
भामिनि विभुनकु व्रासिन पत्रिक गादु कदा ।[6]

कवि कहते हैं कि नायिका के होठों पर लगी कस्तूरी अपने प्रिय को लिखा गया पत्र तो नहीं ? नायक के मुख पर एकटक लग गये नायिका की दृष्टि को वहाँ से हटा देने के कारण आँख माणिकों के समान लाल हो गये । नायिका के वक्षस्थल पर नखक्षत गर्मियों में चांदनी के समान हैं ।

---

1. रास पंचाध्यायी—नन्ददास, पृष्ठ
2. द्रष्टव्य है—क्रमशः पृष्ठ 13 और 14
3. द्रष्टव्य है—श्रृंगार संकीर्तन (वाल्यूम 12) पद 31
4. श्रृंगार संकीर्तन (वा. 3) 117
5. वही—स्वर सहित—पृष्ठ
6. श्रृंगार संकीर्तन—स्वर सहित—पृष्ठ

इनमें कवि ने कोमल से कोमल शब्दों में अत्यन्त कोमल रूप में संभोग शृंगार का वर्णन किया है तो कहीं कहीं अत्यन्त विशृंखल वर्णन भी मिलते हैं, जैसे रति के पश्चात् नायिका नायक से अपने आपको ढकने के लिए वस्त्र माँगती है।

5.5.3.2. नायिका भेद :

अष्टछाप और ताल्लपाक के कवियों से अपनी रचनाओं में परम्परागत रूप से प्रचलित नायिकाओं का वर्णन किया है।

नायिका भेद की सर्वश्रेष्ठ नायिका 'स्वकीया' है। 'जो विवाहिता स्त्री मन, वचन और कर्म से सदा अपने पति के अनुकूल रहे और स्वप्न में भी पर पुरुष की ओर आकर्षित न हो उसे स्वकीया नायिका कहते हैं।'[1] इसीलिए अष्टछापी कवियों ने कृष्ण और राधा का विवाह सम्पन्न कर नायिका राधा को स्वकीया के रूप में हा प्रस्तुत किया है। गोपियों के माध्यम से सूर "धन बड़भागिनी राधा तेरे वश गिरिधारी" कह कर उसके भाग्य को सराहते हैं। ताल्लपाक के कवियों की नायिका अलमेलमंगा या लक्ष्मी भी अथवा अष्ट महिषियां स्वकीया नायिका ही हैं। इसीलिए कवि कहते हैं—'नायिका का जीवन सफल हो गया है। यही उसका तप: फल है। क्योंकि उसके मन में केवल अपने पति के प्रति ही मोह है और उससे मिल कर परवश हो जाती है। वेंकटेश्वर को ही अपना सब कुछ समर्पण कर लेने के कारण उसकी आत्मा धन्य है।"[2] नायिका के काम यज्ञ का भी वर्णन कवियों ने किया है।

'परकीया' का उदाहरण अष्टछाप के कवियों ने गोपियों में दिखाया है। गोपियाँ मुरलीवादन सुनते ही सुध-बुध भूल जाती हैं—

"जबहिं वन मुरली स्रवन परी।
चकित भई गोप कन्या सब, काम-धाम बिसरी।
कुल मर्याद वेद की आज्ञा, ने-कहुं नहीं डरी।"[3]

पुष्टि संप्रदाय की मान्यता के अनुसार चन्द्रावली परकीया है। नन्ददास की रूप मंजरी भी परकीया ही है।

ताल्लपाक के कवियों ने परकीया का चित्रण तिरुमल पर्वत के आसपास रहने वाले पहाड़ी जातियों की स्त्रियाँ-भिल्ल-कोल-किरात आदि के माध्यम से

1. ब्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद—प्रभुदयाल मीतल, पृष्ठ 177
2. शृंगार संकीर्तन—अन्नमाचार्य (वा. 12) पद 17
3. सूरसागर—पद 1917

किया है। वे वाक्‌चतुरा, व्यंग्योक्ति निपुण और प्रगल्भा व प्रौढ़ नायिकायें हैं। अन्य संकीर्तनों में भी पर पुरुष से संभोग करने वाली और गर्भवती होने वाली परकीया नायिकाओं का वर्णन तक किया है—नायिका कहती है कि मैं एक घर की बहू हूँ और एक पुरुष की पत्नी। तुम्हारे साथ मेरे रहस्य सम्बन्धों का तुमने भंडाफोड़ कर दिया।[1] अब तो मैं गर्भवती हूँ। मेरा पति गाँव में नहीं। आसपास के लोग मेरी अवश्य निन्दा करेंगे। अब मैं बंधु जनों को कैसे अपना मुँह दिखाऊँगी ?[2]

'अज्ञात यौवना' नायिका वह है जिसे अपने यौवन आगमन का ज्ञान न हो।

> वह सुनि चकित भई ब्रज वाला।
> तरुनी सब आपुस में बूझति, कहा, कहत गोपाल।[3]
>
> तथा
>
> "नीचित्त मैट्लुन्नदो नेमेमी नेरुगमु।
> चूचि मामनसुलैते चोक्कि करगीनि।"[4]

इसमें कवि कह रहे हैं कि नायिका को अभी काम चेष्टाओं के बारे में कुछ नहीं मालूम। नायक से मिलन हो गया है फिर भी नायिका को इसका ज्ञान नहीं।

नायिका को जब अपने यौबन का ज्ञात होने लगता है, उसे 'ज्ञात योक्ता' कहते हैं।

> सखी कहै बलि तुव कुच नये।
> इकठे उभय संभु से भये।
> सो सुकृती वह निज नख धरि है।
> इन कहुं चन्द्रचूड़ जो करि है।
> मुसुकि सखी कौं मारे जोई।
> ज्ञात जोबना कहिये सोई।[5] तथा
> "बतुकु मनवे इंका वेपे दानु
> रतिकेल पिलिचेवे रानी वे तानु।"[6]

---

1. अन्नमाचार्य श्रृंगार संकीर्तन (वा. 12) पद 3
2. वही (वा. 17) पद 258
3. सूरसागर—पद—2168
4. श्रृंगार संकीर्तन—अन्नमाचार्य (वा. 18) पद 350
5. रसमंजरी—नन्ददास, पृष्ठ 128
6. श्रृंगार संकीर्तन—अन्नमाचार्य—व. 18, पद 24

नायिका अपनी सखी से कह रही है कि देखो मेरा प्रियतम मुझे तरह तरह से मना कर मुझे अपना लिया है।

जिस नायिका का नायक सदा उसके वशीभूत रहे, उसे 'स्वाधीन पतिका' कहते हैं। अष्टछाप के कवियों ने राधा को और ताल्लपाक के कवियों ने अलमेलमंगा को स्वाधीन पतिका के ही रूप में चित्रित किया है। सूर की राधा अपने नृत्य, कोक कला आदि से कृष्ण के मन में बस गयी।[1] अलमेलमंगा तो सदा वेंकटेश्वर के वक्षस्थल में ही रहती है।

अपने प्रियतम का निश्चित मिलन जान कर उससे मिलने के लिए साज शृंगार और संभोग सामग्री एकत्रित करने वाली नायिका 'वासक सज्जा' कहलाती है।

"राधा रुचि रुचि सेज संवारती।
तापर सुमन सुगंध बिछावति, बारंबार निहारती।"[2]

और

"गुरिगा बान्पुवरचुकोनि वुन्नदि
मेरसि पेंडि्लकिवले मेलु कट्लुगट्टिंचि
पिरिगोन मुत्यालपेट पट्टु पेट्टेनु।"[3]

अर्थात् नायिका अपने सेज को तथा अपने आपको मोतियों की मालाओं से और घर में बन्दनवार आदि से सजा कर नायक की प्रतीक्षा कर रही है।

केलि स्थान में नायक की उत्सुकता पूर्वक प्रतीक्षा करने वाली नायिका को 'उत्कंठिता' कहते हैं।

"साँझ समय आवन कहि आए, सौंह बहुत करि नंदकुमार।
वह बैठि हरि-मारग जोवति, इक इक पल बीतत इक जाम।"[4]

तथा

विन्नविंचवे ओ रमणि ! विभुनिकिविंत लिंक नेले।
उन्नति दन्नु नैनेमेन नंटिना ओरूचु कोम्मनवे।"[5]

कामार्त होकर स्वय नायक के पास जाने वाली अथवा उसे अपने पास बुलाने वाली नायिका 'अभिसारिका' कहलाती है।

---

1. सूरसागर—पद 3062
2. वही—पद 2647
3. शृंगार संकीर्तन—अन्नमाचार्य—वाल्यूम 28 पद 406
4. सूरसागर—पद 3069
5. शृंगार संकीर्तन—चिन तिरूमलाचार्य पद—2

"कीन्हौं है सिंगार नख-सिख लौं कुरंग नैनी,
अंगना अनूप अनुराग अंग धसिके ।
कंचन की बेली सी अकेली चली केलि भौन,
करिके मनोरथ रसीले रस रसिके ।
मंद-मंद चोरी सी करन जात नंदमुखी
नन्ददास कोठे के समीप गई लसिके ।"[1] तथा
"पुव्वु गट्टिनट्टि मेनंबुक्किलिंचि चेमटनी
जव्वनुपु मदमे घो चल पट्टिनि ।"[2]

इसमें अभिसारिका प्रिय को अपने पास बुलवायी है । नायिका के शरीर से निकलने वाले सुगंध से आर्कषित होकर नायक आ गया ।

केलि स्थान पर नायक को न पाकर व्याकुल होने वाली नायिका 'विप्रलब्धा' कहलाती है ।

"राधा चकित भई मन माहीं ।
अबही स्याम द्वार ह्वै झाँके, ह्यां आये क्यों नांहीं ।"[3]

तथा

"पौद्दिक नेन्नडु पोडुचुनो पोइन चेलि रादायनु
निद्दुर कंटिकि दोपदु निमुषं बोक येडु ।"[4]

अर्थात् नायिका सोच रही है कि नायक ही नहीं उसे बुलाने के लिए गयी सखी भी नहीं आयी । अतः नींद नहीं आती और एक क्षण एक युग जैसे लग रहा है ।

रात्री में कहीं रम कर प्रातःकाल आने वाले अपने नायक के तन पर स्त्री संसर्ग के चिह्न देखकर ईर्ष्या करने वाली नायिका को 'खंडिता' कहते हैं । अष्टछाप कवियों ने अधिक मात्रा में ही खण्डिता के सम्बन्ध में पद रचे हैं ।

"जागे हो रैन सब तु नैना अरुन हमारे ।
तुम कियो मधुपान घूमत हमारो मन काहे तेंजु नंद दुलारे ।"[5]

तथा

---

1. नन्ददास–पदावली–पद
2. शृंगार संकीर्तन–अन्नमाचार्य– (वा. 3) संकीर्तन–350
3. सूरसागर–पद 2693
4. शृंगार संकीर्तन–अन्नमाचार्य (वा. 12) पद 138
5. अष्टछाप पदावली–(नन्ददास के खंडिता पद) पृष्ठ 170-171

"इतनी बार तुम कहाँ रहे।
सगरी रैन पथ चाहत चाहत नैन दुहे।"[1]

और

"वेडुक नेव्वतेराडुवक निन्नटि
वाडुदेरेवलपुलवन्नेलु वेट्टिनदि।"[2]

अर्थात् नायक से पूछ रही है कि वह कौन है जिसने तुम्हारे कपोलों पर नखक्षत किये हैं। इसी प्रकार से अपने प्रिय के शरीर पर अन्य संभोग के लक्षणों को देखकर नायिका खण्डिता बन जाती है।

अपने नायक का अपमान कर पुनः पश्चाताप करने वाली नायिका को "कलहांतरिता" कहते हैं—

"सखि मिलि करौ कछुक उपाउ।
मारमारन चढ्यो बिरहिनि, निदिरि पायो दाउ।"[3]

और

"एंच निन्निटिकि लौनयितिगा नेवु।
अंचेल दलचुकोंटे नरुदय्यी नाक।"[4]

प्रिय के जाने के पश्चात् प्रिया दुखित हो रही है कि मैंने यह गलती क्यों की ? अब तो चाँदनी भी धूप जैसी ताप दे रही है।

दूर देश गये अपने प्रियतम के वियोग से दुखित विरहिणी नायिका 'प्रोषित पतिका' कहलाती है।

"बिछुरे री मेरे बाल-संवाती।
निकसि न जात ये प्रान पापी फाटत नाहिन छाती।"[5]

तथा

चिलुकचे माटलु चेप्पिचि मरु
चिलुकल पालुग जेयनेल
कलगनि लेचि लेकलु व्रासि का
कल बोरलुचुने नीकड़ कपेजेलिया।"[6]

---

1. अष्टछाप पदावली—कुंभनदास के खंडिता पद—पृष्ठ 152-153
2. श्रृंगार संकीर्तन—अन्नमाचार्य—वा. 12 पद 158
3. सूरसागर—पद 2703
4. श्रृंगार संकीर्तन—अन्नमाचार्य (वा. 15) पद 52
5. सूरसागर—पद 3999
6. श्रृंगार संकीर्तन—चिनतिरुमलाचार्य—पद 47

अर्थात् बार बार प्रिय की विरहिणी नायिका पत्र लिख रही है।

इनके अलावा ताल्लपाक के कवियों ने शंखिणी, हस्तिनी, चित्रिणी और पद्मिनी नायिकाओं का चित्रण भी किया है। एक ही संकीर्तन में चारों प्रकार की नायिकाओं का उल्लेख है—

"अन्नि जातुलु दाने यै उन्नदि
कन्नुल कलिकिकि माय मरचे नो यनग।"[1]

मुग्धा का उदाहरण "सुभद्रा कल्याणमु" की सुभद्रा ही नहीं, निम्न लिखित संकीर्तन में भी प्राप्त होता है—

"दग्गरि उन्नाडतडु तलवंचनेले
सिग्गुबड़ पोद्दु लेदा चेल्लबोनीवु
अग्गमे चिन्नदानवु अयिते नोदुवुगाक।"[2]

इसमें प्रिय के सामने लज्जा के साथ गड़ जाने वाली नायिका को सखी सीख सिखा रही है।

इस प्रकार से अष्टछाप और ताल्लपाक के कवियों की रचनाओं में नायिका भेद का चित्रण प्राप्त होता है। नायक कृष्ण तथा वेंकटेश्वर को उन्होंने "दक्षिण" चित्रित किया है। नायक और नायिकाओं के अलावा आलोच्य कवियों ने सखी, दूती आदि का चित्रण भी किया है, जो नायक और नायिका के मिलन में सहायकारी बनती है। जैसे नन्ददास की इन्दुमती, कहीं-कहीं सूर की गोपियाँ तथा चिन्नन्ना की चित्रलेखा, मंजरी काव्य तथा संकीर्तनों में चित्रित सखियाँ, दूती आदि। अन्नमाचार्य ने सखियों के मुख से कहलवाया है—

"अलमेलमंगा और वेंकटेश्वर तो अभिन्न हैं। हमसे क्या मतलब? हम तो सेविकायें हीं ठहरीं। हमारा काम है एक दूसरे की बात पहुँचाना। तुम कोई भेंट दो तो हम उसे पहुँचाएँगी और वह कोई उपहार भेजे तो तुमको ला देंगी।"[3]

5.5.4. विप्रलंभ श्रृंगार :

5.5.4.1. प्रस्तावना : जब प्रेम की प्रबलता और प्रिय समागम का अभाव हो, उस अवस्था को विप्रलंभ अथवा वियोग श्रृंगार कहते हैं। "न विना

---

1. श्रृंगार संकीर्तन—अन्नमाचार्य—(वा. 12) 113
2. वही—(वा. 14) पद 170
3. (वाल्यूम—10) पद 202

विप्रलंभेन संभोगः पुष्टि मश्नुते" के अनुसार केवल विप्रलंभ के पश्चात् के संयोग में माधुर्य अधिक रहता है। इसीलिए अन्नमाचार्य का कथन है कि गाँव के बिना सरहद नहीं होती और नाम के बिना जीवन निष्फल है। जिस प्रकार से ये दोनों मिलकर ही रहते हैं उसी प्रकार से धूप छाँव के समान मिलना और बिछुड़ना भी होता है। जैसे धूप के बिना छाँव का आनन्द नहीं वैसे ही विरह के बिना समागम का भी आनन्द नहीं।[1] इसीलिए सहृदय कवियों ने संयोग से भी कहीं कहीं अधिक मात्रा में ही वियोग का वर्णन किया है। अपने आलोच्य कवि भी इसके अपवाद नहीं। विप्रलंभ श्रृंगार के चार भेद माने जाते हैं—पूर्वानुराग, मान, प्रवास और करुण।

5.5 4.2. पूर्वराग : पूर्वराग अवस्था की उत्पत्ति प्रेम के अवलम्बन के सौंदर्यादि गुणों के श्रवण अथवा रूप वर्णन से मानी गयी है। गुणों का श्रवण, दूत, भाट अथवा सखी-सखा के द्वारा होता है और दर्शन, चित्त में, स्वप्न में अथवा साक्षात् रूप में होता है।[2] सूर और परमानन्ददास के पदों के अलावा पूर्वराग का परिचय नन्ददास कृत श्याम सगाई, रुक्मिणी मंगल, रूप मंजरी और पदावली में प्राप्त होता है। रुक्मिणी के मन में कृष्ण के प्रति आकर्षण रुक्मिणी को तब से हुआ—

जब तैं तुम्हारे गुनगन मुनि जन नारद गाये।
तब तैं औरु न भाये अमृतैं अधिक सुहाये।"[3]

"रूपमंजरी" को सखी इंदुमती ने कृष्ण के रूप और गुणों का वर्णन किया, जिससे उसके मन में कृष्ण के प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ। इस गुण श्रवण से अभिलाषा का जो बीज मन में पड़ा, वह स्वप्न-दर्शन से अंकुरित हुआ। वह ऐसे बढ़ने लगा जेसे—"छिन छिन भाव बढ़त चल्यो ऐसें, शरद दूज शशि कला न जैसे।"[4] इस स्थिति में कवि का कथन है—

तिय हिय दर्पण तनरुई, रही हुती पुट पाग।
प्रीतम रवि की किरण लगि, जाग परी तन आग।[5]

"श्याम सगाई" में राधा और कृष्ण का अनुराग प्रथम दर्शन से आरम्भ हुआ है।

---

1. वाल्यूम—3, पद—55
2. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय—डा. दीनदयाल गुप्त, पृष्ठ 808
3. रुक्मिणी मंगल—नन्ददास, पृष्ठ 279
4. रूपमंजरी—नन्ददास, पृष्ठ 115
5. वही—पृष्ठ 114

"मोर चंद्रिका धारि, सु नटवर मेष बनाई,
बरसांने के बागहि, मोहन बैठे जाई।
सब सखियन के झुण्ड में, देखता चली गुपाल,
अरस परस दोऊ भये, कुंवरि किसोरी, लाल।
मनहिं फूले फिरें।[1]

जब कृष्ण ने राधा के मन को हर लिया तो—

"भई सिथिल सब देह, बात कछु कहि न जाई।"[2]

तथा

स्यान स्याम रटि बै लगी, एकहि बैर ब्हैंकु।
बदति ज्यों बावरी।[3]

"पदावली में रूपासक्ति के पदों की प्रधानता से यह स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ अनुराग का कारण सौंदर्य दर्शन है।"[4] एक गोपी की स्थिति है—

"जल को गई सुधि बिसराई, नेह भर लाई,
परी है चटपटी दरस की।
इत मोहन गाँस, उत गुरुजन त्रास।
चित्र सो लिखी ठाढ़ी नाऊँ धरत सखि अरस की।"[5]

परमानन्ददास के पदों में भी रूप दर्शन के कारण पूर्वराग का चित्रण है। जैसे कोई एक ग्वालन यमुना के पनघट पर पानी भरने गयी तो—

"औघट घाट चढ्यौ नहिं जाई रपटति हौं कालिन्दी महियाँ।
सुन्दर स्याम कमल दल लोचन देखि स्वरूप ग्वालि उरझानी।
... ...
परमानन्द ग्वालिनी सयानी कमल नैन तन परख्यो भावे।[6]

कृष्ण के सुन्दर रूप पर कोई ग्वालिन—

"गोरस बेचत ही ठगी" तो और कोई पनघट पर मोहित हुई। गोपियाँ कृष्ण दर्शन के लिए आतुर रहती हैं। इस तीव्रता में वे सोचती हैं—

---

1. नन्ददास—छन्द, 9
2. वही—छन्द 10
3. वही—छन्द 11
4. नन्ददास : विचारक रसिक कलाकार—रूपनारायण, पृष्ठ 126
5. नन्ददास पदावली—पद 80
6. डा. दीनदयाल गुप्त के परमानन्द पद संग्रह से—पद 60

देखन दे मेरी बैरन पलकें।

नन्दनन्दन मुख ते आलि बीच परत मानो ब्रज की सलकें।[1]

सूरसागर में भी दर्शन तथा गुण श्रवण के कारण पूर्वराग का वर्णन है जैसे—राधा ने पहले सुना था कि नन्द का लड़का माखन चोरी करता है। जब एक बार अचानक भेंट होती है तो वह विरह से छटपटाने लगती है। रूप दर्शन के कारण अपनी विरह दशा का वर्णन स्वयं राधा के शब्दों में देखिए—

तब तैं मेरो ज्यो न रहि सकत।

जित देखो तितही मुद्र मूरति नैनन में नित लागि रहत।

... ...

सुर स्याम मेरो मन हर लियो, सकुच छाँड़ि मैं तोसे कहत।"[2]

पूर्व राग की दशा इतनी तीव्र हो जाती है कि नन्ददास की गोपियाँ अपना सारा क्रोध इस प्रकार उतारती हैं—

"जर जाओ री लाज, मेरो ऐसो कौन काज,

आवत कमल नैन नीके देखन दीने।[3]

"जर जाओ शब्द में स्वर का तीखापन बहुत स्पष्ट है जो नायिका की अधीरता को व्यंजित करता है। गोपियों की अनुराग भरी अवस्था इस दशा को पहुँच गयी कि वे श्रीकृष्ण के दर्शन के अभाव में बीते क्षण को चार युग के समान मानती है। यही तीव्रता पूर्वराग की वियोग की अवस्था सिद्ध कर देती है।"[4]

ताल्लपाक के कवियों ने भी पूर्वराग की स्थिति का वर्णन अति सुन्दर शब्दों में किया है। उनके श्रृंगार संकीर्तनों में, चिन्नन्ना कृत उषा कल्याणमु, अष्टमहिषी कल्याणमु तथा अन्नमाचार्य की श्रृंगार मंजरी तथा पेदतिरुमलाचार्य कृत चक्रवाल मंजरी में यह पूर्वराग विरह का वर्णन है।

श्रवण और दर्शन के कारण नायिका के मन में प्रेम के उदय होने का वर्णन है—"नायक के वीक्षणों में फँस गयी नायिका के वियोग रूपी अग्नि को बुझाने के लिए सखियाँ कमल पुष्पों से उसका शरीर उपशमन करने लगीं

---

1. नन्ददास पदावली–पद 79
2. सूरसागर–पद 1286
3. नन्ददास पदावली–पद 81
4. नन्ददास : रसिक विचारक कलाकार–रूपनारायण, पृष्ठ 127

क्योंकि नायक के प्रथम वीक्षण तो मानों नायिका के सारे शरीर पर एक परदे के समान छा गये। नायक की वाणी सुन कर भी नायिका को विरह होने से सखियाँ मकरंद दे कर उपशमन करने लगीं क्योंकि नायक के मीठे वचन नायिका के शरीर पर परदे पर छा गये।[1] एक अन्य स्थान पर पूर्व राग में स्थित नायिका न किसी से बोलती है और न किसी की ओर आँख उठा कर देखती है। उसे रात-दिन नींद नहीं और खोई खोई सी रहती है। केवल नायक के बारे में कुछ प्रसंग उठाने वाले ही उसे पसन्द हैं, अन्य सभी बैरी ही लगते हैं।[2] नायिका को सखियाँ कमलों से, मधु से, पुष्पों के रज तथा पंखुड़ियों से उपशमन करने का प्रयत्न करने पर भी उसका विरह क्षण क्षण बढ़ता ही है। नायिका की स्थिति कुछ विचित्र हो गयी है—"प्रिय के बारे में सोचते सोचते उसके रूप को अपने मन में लाते-लाते कभी कभी वह हवा से आलिंगन कर लेती है। या नहीं तो आकाश की ओर देख कर उसके आँखों में हर्ष का भाव-संचार होता है।[3] अपने घर के शुक को वेंकटेश्वर का नाम रट-रट कर पढ़ाती है। कभी कभी नायक को घोड़े पर सवार होते देख कर अपने आपको इतना भूल जाती है कि सखियों के कहने तक अपने शिथिल आँचल को भी ठीक नहीं करती।[4] कभी कभी वह अपने प्रियतम को सपने में देख, सखियों के कहने पर भी उस भ्रम को सच ही मान बैठती हैं।[5]

चिन्नन्ना कृत उषा कल्याणमु की नायिका उषा को भी अनिरूद्ध के दर्शन स्वप्न में ही हो जाते हैं। उस मन्मथाकार युवक से उसे स्वप्न में संभोग का सुख भी प्राप्त होता है।[6] जागृदावस्था में आने पर उसे विरह का आरम्भ होता है।[7] अष्टमहिषी कल्याणमु में भी कवि चिन्नन्ना के रुक्मिणी के पूर्व राग का चित्रण किया है। कृष्ण के प्रति रुक्मिणी का प्रेम श्रवण के कारण होता है। उसे अब मीठे वचन कहने वाले तोते के शब्द कठोर भैरव के रोदन जैसे लगने लगे। इसी प्रकार मलय मारुत, पुष्पों के रज आदि भी उसे कटु ही लगने लगे।[8] सखियाँ उसे शीतलोपचार वगैरह करती हैं और लाख अनुरोध करती हैं। कवि ने ब्राह्मण को कृष्ण के पास भेजने के पश्चात् मुहुर्त

---

1. शृंगार संकीर्तन—अन्नमाचार्य (वा. 12) पद 144
2. वही—पद 28
3. वही—(वा. 4) पद 94
4. वही—(वा. 2) पद 352
5. वही—(वा. 3) पद 40
6. पृष्ठ 29
7. वही—पृष्ठ 25 से 28
8. अष्टमहिषी कल्याणमु—चिन्नन्ना, पृष्ठ 176–177

का समय निकट आ जाने के कारण रुक्मिणी के मन में उठी आशंकायें तथा अन्य भावनाओं का भी सुन्दर वर्णन किया है।

श्रृंगार मंजरी में अन्नमाचार्य तथा चक्रवाल मंजरी में पेदतिरुमलाचार्य ने भी श्रृंगार रस के अधिपति वेंकटेश्वर की ख्याति सुन विरह में डूबने वाली एक बाला का चित्रण किया है। सखियाँ उसे उपशमन के लिए उद्यान ले जाती हैं किन्तु वसंत ऋतु के आगमन के कारण नायिका का विरह उद्दीप्त हो जाता है। शरीर में ताप बढ़ गया, सांस नहीं आहें ही भरने लगी तथा उसे हर रात शिवरात्रि जैसे ही अनुभव होने लगा।[1]

इस पूर्वराग के पश्चात नायक और नायिका का मिलन होता है। अतः यह विरह स्वल्पकाल के लिए ही है।

5.5.4.3. **मान** : विरह में मान का बड़ा महत्व है। मान भी मिलन में पड़ने वाली गाँठ का सूचक है। केवल छोटी सी बात पर भी रूठ जाना मान कहलाता है। इसीलिए एक जगह पर बैठे हुए दो प्रेमी प्रेमिकाओं में भी मान के कारण संयोग सुख की अनुभूति न होने के कारण विरह हो सकता है। स्त्रियों में अपने प्रिय को दूसरी स्त्रियों के प्रति आकर्षित देख कर मान करने की भावना अधिक होती है।[2]

यह मान अकारण भी हो सकता है, जैसे कृष्ण के वक्षस्थल पर अपना ही प्रतिबिम्ब देख कर राधा रूठ जाती है। कभी कभी सकारण भी। जैसे प्रिय के पर-रति के चिह्न देख कर प्रिया मान करती है—

तहंइ जाह जहं रैन गंवाई।
काहे को मुखं परसन आए जानत हौं चतुराई।[3]
अथवा
ढीले ढीले पग धरत ढोली पाग ढरकि रही,
ढीले से ढहे से ऐसे कौन पे ढहे हो।
... ...
"नन्ददास प्रभु साँची क्यों न बोली भयो प्रात,
कहो बात प्यारे तुम रात कहाँ रहे हो?"[4]

1. श्रृंगार मंजरी—अन्नमाचार्य, पृष्ठ 4–5
2. सूरदास और उनका भ्रमरगीत—डा. श्रीनिवास, पृष्ठ 52
3. अष्टछाप पदावली (सूरदास पद) पृष्ठ 14
4. वही—नन्ददास पद—पृष्ठ 170

नन्ददास ने मान-लीला के उद्देश्य से ही नाममाला की रचना की। उनके अनुसार—

गूँथनि नाना नाम को, अमर कोष के भाय।
मानवती के मान पर, मिले अर्थ सब आय।[1]

कृष्ण के पास से आयी हुई सखी के द्वारा मानिनी राधा का मनाना और राधा कृष्ण का मिलन होना इसका विषय है। मानजनित क्रोध के कारण राधा का मुख कमल कभी मुरझा जाता है[2] तो कभी उसका रुठना और मान, "अमर बेलि जिमि मूल बिन,"[3] होता है। क्रोध के कारण उसकी लटें ललाट पर फैली हुई हैं। मुख रूखा हो आता है। दर्पण में अपने हृदय में बसी प्रियतम की मूर्ति का प्रतिबिम्ब देख वह क्रोध में दर्पण फेंक देती हैं।[4] अपनी प्रेमिकाओं का मान-मोचन करने के लिए कभी कृष्ण किसी सखी को भेजते हैं या स्वयं सखी वेश धारण कर मनाने चले जाते हैं। कृष्ण के प्रति राधा को इतना क्रोध आता है—

मिलों न नित सों भूल, अब जों लों जोव जीयों।
सहौं बिरह की सूल, बरु ताकी ज्वाला जरों।
अब मैं अपने मन यह ठानी। उनके पंथ न पीवो पानी।
कबहुं नैन न अंजन लाऊं। मृग मद भूले न अंग चढ़ाऊँ।[5]

राधा की इस दृढ़ प्रतिज्ञा पर कृष्ण की प्रतिक्रिया क्या है ?

सुनत पिया की बात सुहाई। हरषत ठाढ़े पोरि कन्हाई।[6]

इतना होने पर भी नायक का थोड़ा सा कटाक्ष मिल जाता है तो सारा क्रोध कपूर जैसा गल जाता है।

ताल्लपाक के कवियों ने सैकड़ों संकीर्तनों में प्रेमी और प्रेमिका दोनों के मान का वर्णग किया है। अन्नमाचार्य की नायिका अपने प्रेमी को अन्य कान्ता के प्रति आकर्षित देखकर उसे धोखा मानकर कहती है—कि तुम उस निगोड़ी ग्वालिन के पास ही जाओ क्योंकि—

"भूली मैंने भेद कहा तो, तुमने उससे बता दिया।
अंगूठी को पहनाया तो उसको भी ले उसे दिया ?"[7]
कैसा न्याय है ? और कहाँ तक सह सकती ?

---

1. दोहा–3 2. दोहा—98 3. दोहा–110 4. दोहा–67
5. सूरसागर–पद 6. परमानंद सागर के 'मान' संबंधी पद दृष्टव्य हैं।
7. अनुवाद–एम. संगमेशम्

इसीलिए मुँह मोड़ लेती है। अब नायक किसी तरह सखियों के द्वारा पत्र भेज कर या संदेशा भेज कर उसे मनाने का प्रयत्न करता ही है। सखियाँ कहती हैं—

सुनो, तुम्हारे प्रिय के ये रहस्य प्रणय—

पत्र सुनो ! कहता है कि वह विरह के ताप में जलकर कष्ट अनुभव कर रहा है।[1]

अन्य कान्ताओं से प्रेमी के सम्बन्धों के कारण ईर्ष्या मान होता है। नायिका नायक से कहती है कि मैंने तुम्हें चंपा के फूल पहनाये थे, अब ये कर्पूर पुष्प कैसे बन गये ? मैंने तुम्हारे गले में पदक पहनाया था, अब ये हार कहाँ से आ गया ? मैंने तुम्हें कस्तूरी का लेपन किया था, लेकिन अब यह जवाजि कैसे आ गयी ? मैं तुम्हारी सारी चेष्टाओं को जानती हूँ।[2] नायक से नायिका प्रश्न करती है—

"मैंने तुम्हें संध्या के समय तक आने के लिए कहा था लेकिन तुम आये रात के याम हो जाने के बाद। इतना ही नहीं मैंने जो सखी को तुम्हारे पास भेजा था उसी से तुमने प्रेम कलाप किया। शायद तुम्हारा मन और किसी स्त्री के वश में होने के ही कारण मैंने कर्पूर भेजने के लिए कहा था तो तुमने चन्दन दिया।"[3] उसके शरीर पर पर स्त्री के रति चिह्न देखकर उपालम्भ देती है कि छुटपन में दूध चोरी के समय जो गरम दूध पी लिया था, क्या वे ही छाले अभी भी तुम्हारे अधरों पर बच गये हैं ? क्या मैं नहीं जानती हूँ कि तुम किसी नारी के जाल में फंस गये हो ?[4] तब नायक नाना प्रकार से नायिका को मनाने का प्रयत्न करता है। वह उसके पैरों तक पकड़ कर कहता है—"अब मेरी बात मानो। नायिका कहती है "ये सब विद्यायें तुमने कहाँ सीखी ?"[5] कभी कभी नायक भी मान करने लगता है तो नायिका अत्यन्त चतुराई से नायक के पास जाकर तरह-तरह से मनाती है। जैसे आँखों से ही हँसना, चमत्कार पूर्ण बातें करना, भौंहों को टेढ़ा करना, नायक के गालों को हाथों से दबाना, कपूर मिला कर पान देना आदि-आदि करती हैं तो कौन पुरुष माने बिना रह सकता है ? कभी-कभी साधु नयना होकर अपने प्रेमी से अनजान में

---

1. शृंगार संकीर्तन—अन्नमाचार्य (वा 3) पद 374
2. शृंगार संकीर्तन—पेदतिरुमलाचार्य पद 475
3. वही—पद 6
4. शृंगार संकीर्तन—अन्नमाचार्य (वा. 3) पद 26
5. वही—(वा. 13) पद 33

हो गये अपराधों की क्षमा माँगती हैं, क्योंकि उसे डर है कि स्वामी छोटी सी बात पर भी रूठ कर चले जाते हैं—

"विरह ताप वश विकल हुई तो
कहा सुनी कुछ कर बैठेगी।
बुरा न मानो क्षमा करो, हम
अबलायें कब चुप बैठेंगी ?[1]

5.5.4.4. प्रवास :

प्रिय का किसी कारण परदेश चले जाना और उसकी अनुपस्थिति में अनुभव किया गया वियोग प्रवास जन्य वियोग होता है। प्रवास विरह के तीन कारण हो सकते हैं। शाप, भय, अथवा कार्य के कारण प्रिय का दूर चले जाना। कृष्ण काव्य में कृष्ण का प्रवास कार्य कारण से हुआ है। मथुरा राज-कार्य से चले जाते हैं। अब यह चिर विरह बन जाता है। इसका वर्णन सूरसागर में विस्तृत रूप से होकर भ्रमरगीत जैसी महान् रचना की सृष्टि हुई।

ताल्लपाक के कवियों के संकीर्तनों में प्रिय के किसी कारण वश परदेश जाना और विरह में जलती हुई प्रिया को सखियों द्वारा उपशमन करने के प्रयत्न करने के अनगिनत उदाहरण हैं। सखियाँ कहती हैं कि किसी तरह तुम इस विरह को सहन कर लो। तुम्हारा प्रिय आ जाएगा।

इनके अलावा चिन्नन्ना कृत अष्टमहिषी कल्याण में भी गोपियों के प्रवास विरह का वर्णन है। कृष्ण के मथुरा गमन के समय गोपियों को अक्रूर क्रूर ही लगते हैं। चिन्नन्ना की गोपियाँ कहती हैं कि इसका नाम "धियातौरे" जैसे ही है।[2] (धी केवल नाम में किन्तु वास्तव में नहीं) सूर की गोपियाँ यह मानती हैं कि चाहे सबके लिए अक्रूर हो सकता है, किन्तु हमारे लिए तो क्रूर ही है।[3] गोपियों को कृष्ण की काम चेष्टाओं का स्मरण आ कर व्याकुलता होती है कि क्या वे फिर प्राप्त होंगे ?[4] यद्यपि सूर की गोपियाँ विधाता को दोषी नहीं ठहराती, चिन्नन्ना की गोपियाँ तो यह तर्क प्रस्तुत करती हैं कि हमारे मन में विधाता को प्रेम उत्पन्न नहीं करना था, अगर उत्पन्न किया तो आज यह विरह क्यो दिया ?[5] जहाँ चिन्नन्ना की गोपियाँ विरह वेदना में

1. अनुवाद—एम. संगमेशम्।
2. अष्टमहिषी कल्याणमु—पृष्ठ 128 3. सूरसागर—पद 3598
4. अष्टमहिषी कल्याणमु—पृष्ठ 127, 128 तथा सूरसागर पद 3584, 2603
5. अष्टमहिषी कल्याण—पृष्ठ 128

गिड़गिड़ाती हुई अक्रूर तथा अन्य देवी देवताओं को मनौतियाँ और प्रार्थना करना चाहती हैं, वहाँ सूर की गोपियाँ निर्लिप्त दिखाई देती हैं, मानों इन सब पर से उनका विश्वास उठ गया है। दोनों ने रोती-गिड़गिड़ाती गोपियों का वर्णन किया है। इसके पश्चात् कृष्ण का संदेशा ले कर उद्धव का ब्रज आगमन, उद्धव और गोपियों का संवाद और भ्रमर गीत नामक प्रसिद्ध उपालंभ काव्य की सृष्टि हिन्दी में हुई है। चिन्नन्ना में यह नहीं है। सूर की गोपियाँ स्पष्ट पूछती—'लरिकाई को प्रेम कहो अलि कैसे छूटत ?' लाख प्रयत्न करने पर भी उर में चुभे माखन चोर को निकालना संभव नहीं। कृष्ण के चले जाने के पश्चात् भी ब्रज में वे सारी चीजें हैं किन्तु गोपियों के लिए तो वह पहला ब्रज नहीं रहा, क्योंकि ब्रजपति ही नहीं तो ब्रज बालाओं के लिए सब कुछ सूना ही है—

"बिचारत ही लागे दिन जान।
तुम बिन नंद सुवन इहिं गोकुल, निसि भई कल्प समान।
मुरलि सब्द कल धुनि की गुंजनि सुनियत नाहिं कान।"[1]

स्वप्न में भी उनका कृष्ण से मिलन नहीं होता क्योंकि वे पलक को मूँदती ही नहीं। उन्हें तो यमुना भी कृष्ण के विरह के ही कारण काली दिखाई देती है। वे मधुवन को कोसती हैं—

"मधुवन तुम क्यों रहे हरे ?......
सूरदास प्रभु विरह दवानल, नख सिख लौन जरे।"[2]

"सूर का विरह वर्णन हिन्दी-साहित्य में बेजोड़ है। भ्रमरगीत में गोपियों के तर्क के सामने उद्धव भले ही कुछ उत्तर दे सके, पर उनके प्रेम विह्वल अटपटे वचनों से उन्हें भी हार माननी पड़ी। उनकी प्रेम-रस धारा में उद्धव के ज्ञान की गुरु गठरी न जाने कहाँ बह गयी ? इस प्रसंग गोपियों की अन्तर्दशा का जैसा वर्णन सूर ने किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।"[3]

5.5.4.5. **करुण** : विरह की अंतिम स्थिति करुण की अनुभूति कहीं कहीं हो जाती है। जैसे राधा की ये उक्तियाँ—ऊधौ। जो हरि आवैं तो प्राण रहें। गा को जाने कब छूट जायगो स्वांस रहे जिय साधौ। कुछ विद्वान इन्हें करुण मानते हैं किन्तु अधिकतर विद्वान नहीं। यह है विरह का शास्त्रीय पक्ष का अध्ययन।

1. सूरसागर—पद 3831   2. वही—पद 3828
3. सूर और उनका साहित्य : हरिवंशलाल शर्मा, पृष्ठ 344

अष्टछाप और ताल्लपाक के कवियों ने अपनी रचनाओं में विरहिणी की दयनीय दशा का वर्णन किया है। उद्धव कृष्ण से राधा के सम्बन्ध में कहते हैं कि उसके अंग—प्रकंपित थे और दिल धड़क रहा था। इस मलिन दशा में श्रृंगार की अथवा विलास की कोई वस्तु अच्छी नहीं लगती यहाँ तक कि—

"जब ते गये नंदलाल मधुपुरी चीन न कोऊ धोये।
मुख न तंबोर नैन कहिं कज्जर विरह सरीर बिगोवे।"[1]

तथा

जब ते हरि मधुपुरी सिधारे उर के हार रहत सब छूटे।[2]

ताल्लपाक के कवियों ने भी विरहिणी की दशा का वर्णन किया है। नायिका को न वीणा वादन ही अच्छा लगता है न सखियों के साथ हास-परिहास वे अपने प्यारे तोते को भी कुछ नहीं सिखलाती। यहाँ तक कि अपने वक्षःस्थल को ढकना भी भूल जाती। कस्तूरी तथा पुष्प आदि श्रृंगार साधन भी उन्होंने त्याग दिये। कभी कभी प्रलाप भी करने लगती हैं।[3] केवल दिन रात विरह की अग्नि में जलती हैं।

विरह के इस शास्त्रीय तथा सहज दोनों प्रकारों के वर्णनों के साथ-साथ कहीं कहीं विरह में ऊहात्मकता भी आ गयी है। जैसे सूर की गोपियाँ कृष्ण को पुत्र को इसलिए स्पर्श नहीं करती क्योंकि विरहाग्नि से जलती हुई उँगलियों के स्पर्श से यह जल न जाए। अथवा आँसुओं की धारा से पत्र गल न जाय।[4] अन्नमाचार्य भी कहते हैं कि नायिका के दीर्घ उच्छ्वास से पवन भी गरम हो गया।[5] साथ साथ वे प्रकृति की विपरीत दशा की चर्चा करती हैं। जैसे सूर की गोपियों को चन्द्रमा में शीतलता की कमी दिखाई देती है[6] तो अन्नमाचार्य की विरहिणी नायिका के लिए चन्द्रमा भी ग्रीष्म के समान संतापकारी हो गया।[7] अन्नमाचार्य ने इसीलिए कहा है कि जब देव ही विपरीत हो जाता है तो प्रकृति भी विपरीत हो जाने में कोई विचित्रता नहीं।

---

1. दीनदयाल गुप्त के परमानन्द पद संग्रह से—पद 195
2. वही—पर 258
3. श्रृंगार मंजरी—अन्नमाचार्य, पृष्ठ 10, 11
तथा चक्रवाल मंजरी-पेदतिरुमलाचार्य।
4. सूरसागर-पद 4109
5. श्रृंगार संकीर्तन—(वा. 12) पद—12
6. सूरसागर—पद 6970
7. श्रृंगार संकीर्तन—(वा. 13) पद 189

यथा स्थान अष्टछाप के कवियों ने कृष्ण का और ताल्लपाक के कवियों ने अपने नायक के विरह का भी वर्णन किया है। सूर के कृष्ण को ब्रजवासियों के स्मरण के साथ साथ ब्रज की लतायें, वृक्ष और करील कुंज स्मरण आते हैं।

ताल्लपाक के कवियों ने अनेक पदों में नायक का विरह चित्रित किया है। कहीं-कहीं नायक और नायिका दोनों के विरह का वर्णन भी है। जैसे नायिका यहाँ आहें भरती है तो वहाँ नायक उदास बैठे रहते हैं। नायिका अकेली बैठ कर आँसू बहाती है तो नायक खिन्न। चाँदनी में बाहर निकलना नायक को इसलिए पसन्द नहीं, क्योंकि नायिका की (चन्द्र मुखी) याद आती है। अब की हर लता उनको अपनी लतांगी नायिका की याद दिलाती है।[1]

सखियों के द्वारा संदेशा भी भेजते हैं कि इस विरह सो अब मैं सह नहीं सकता। एक जगह कवि ने नायिका के अंग प्रत्यंगों के वर्णन के साथ-साथ नायक के विरह का चित्र भी खींचा है—

"कोयल की कुहुक सुन कर नायक अपनी प्रिया की पुकार समझता है तो मयूर का नृत्य देख अपनी प्रिया समझ कर पकड़ने दौड़ता है। लता को हिलती हुई देख कर अपनी प्रिया के संकेत मानता है। तालाब में कमल देख कर अपनी नायिका का ही मुख समझ कर पकड़ने का प्रयत्न करता है।[2]

जिस प्रकार से वात्सल्य वियोग में माता अपने पुत्र के हित को ही चाहती हैं उसी प्रकार शृंगार की वियोग दशा में नायिका भी नायक के प्रति शुभ कामना ही प्रकट करती है। सूर की गोपियाँ अनेक उपालम्भ और व्यंग्य कसने के बावजूद अन्त में उद्धव से यही कहती हैं कि कृष्ण कहीं भी रहें भगवान उन्हें करोडों वर्षों की आयु दें और से सुखी रहें।[3] अन्नमाचार्य की नायिका भी नायक की निन्दा सुनना नहीं चाहती। वह चाहे, जहाँ भी हों हम दोनों एक दूसरे के लिए हैं। मेरी इच्छा यही है कि वे जहाँ भी हों कुशल मंगल रहें।

वियोग शृंगार सम्बन्धी उपर्युक्त अध्ययन से यह विदित होता है कि आलोच्य कवियों ने "विरह को साधना के रूप में ग्रहण किया है। विरह वह पद्धति है, जिससे प्रेम समस्त चेतना में व्याप्त हो जाता है। यह प्रेम का

---

1. शृंगार संकीर्तन (वा. 4) पद 89 (वा. 3) पद 386 आदि
2. वही (वा. 3) पद 191
3. सूरसागर—पद 4114

शुद्धतम रूप है क्योंकि आंगिक स्पर्श के न होने से प्रेम-वासना-रहित हो आता है।"[1] इसीलिए सूर की गोपियाँ कहती हैं कि—

"ऊधौ विरही हो प्रेम करे।
ज्यों बिन पुट पट गहत न रंगहि पुट गनि रसहि परे।
... ...
सूर गोपाल प्रेम पथ चकि कै को उन दुःखहिं डरें।"[2]

अन्नमाचार्य ने भी विरह की महत्ता को स्वीकारते हुए नायिका के मुख से कहलवाया है कि विरह वेदना भी अत्यन्त वांछनीय है। यदि यह न होती तो मुझे संयोग के सुख के बारे में क्या मालूम ? पति से मिल कर परवश होने की अपेक्षा विरह में उनसे अलग रहना ही सुखदायक है, क्योंकि विरहावस्था में नायक के हर एक गुण-विलास आदि के स्मरण से क्षण-क्षण नवीन आनंद प्राप्त होता है।[3]

विरह की दशा में गोपियाँ आत्म विस्मृत-सी हो जाती हैं—

"मोहनलाल रसाल की लीला इनहीं सो हैं।
केवल तन्मय भई कछु न जानति हम को है।"[4]

5.6. अन्य रस :

5.6.1. प्रस्तावना : अष्टछाप के काव्य में प्रमुख रूप से सख्य, वात्सल्य श्रृंगार और दास्य भाव ही मिलते हैं। अन्य रसों के विस्तार में उन्होंने रुचि नहीं दिखाई। किन्तु ताल्लपाक के कवियों ने इन सभी का यथा संभव विस्तृत चित्रण किया है। अत: जहाँ तक हो सके दोनों क्षेत्रों के काव्यों में प्राप्त इन भावों का या रसों का विवेचन प्रस्तुत है।

5.6.2. वीर रस : "शत्रु का उत्कर्ष, उसकी ललकार, दीनों की दशा, धर्म की दुर्दशा आदि से किसी पात्र के हृदय में उनको नष्ट करने के लिए जो उत्साह उत्पन्न होता है और तदनुसार क्रियाशील हो जाता है। उसी के वर्णन से वीर रस का स्रोत पाठक या श्रोता में उमड़ पड़ता है। इसका स्थायी भाव उत्साह है।"[5] भगवान कृष्ण के अपने भाई बलराम के साथ मथुरा पहुँचने

---

1. हिन्दी और तेलुगु वैष्णव भक्ति साहिय: डा. के. रामनाथन्, पृष्ठ 401
2. सूरदास और उनका भ्रमर गीत—डा. श्रीनिवास शर्मा, पृष्ठ 50
3. श्रृंगार संकीर्तन
4. रास पंचाध्यायी—नन्ददास, पृष्ठ
5. हिन्दी और मलयालम के कृष्ण भक्ति काव्य—भास्करन नायर, पृष्ठ 266

पर क्रूर कंस ने उन पर कुलवया पीड़ नामक गज और चाणूर–मुष्टिक नामक मल्ल योद्धाओं को भेजा। इन प्रसंगों के वर्णन में सूर ने वीर रस का पोषण किया। उदाहरण के लिए–कुवलयापीड़–वध में श्रीकृष्ण और बलराम की वीरता का सुन्दर उदाहरण है–

"खेलत गज संग कुंवर स्याम राम दोऊ।......
स्याम झटकि पूँछ लेत, हलधर कर सूंडि देत,
महल महल नारि चरित देखति यह भारी।
ऐसे आतुर गुपाल, चपल नैन मुख रसाल।
लिए करनि लकुट लाल मनो नृत्यकारी।
सुरगन व्याकुल विमान, मन मन करत ज्ञान।
बोलत यह बचन अजहुं मारयोनहिं हाथी।"[1]

तथा मल्लयुद्ध प्रसंग–

"गह्यौ कर स्याम भुज मल्ल अपने धाई।
झटकि लीन्हौ तुरत झटकि धरनी।
भटकि अति सब्द भयो खटक नृप के हियो।
अटकि प्राननि परयो चटक करनि।"[2]

इस प्रसंग के अलावा सूर ने निम्न प्रसंग में भी वीर रस का चित्रण किया है–

आजु जो हरिहिं न सस्त्र गहाऊँ।
तो लाजों गंगा जननि कों सांतुन सुत न कहाऊँ।
स्यन्दन खण्डि महारथ खण्डों, कपि ध्वज सहित गिराऊँ।
पांडव दल सम्मुख ह्वै धाऊँ, सरिता रुधिर बहाऊं।
इती न करों सपथ तो हरि की, छत्रिय गतिहिं न पाऊँ।
सूरदास रन-भूमि विजय-बिनु जियत न पीठि दिखाऊँ।[3]

ताल्लपाक के कवियों की रचनाओं में वीर रस के प्रसंग अधिक मात्रा में हैं। अष्टमहिषी कल्याणमु में चिन्नन्ना ने भी कृष्ण बलराम का मल्ल योद्धा, कुवलयापीड़ और कंस के साथ युद्ध का वर्णन वीर रस पूर्ण किया है।

कुवलयापीड़ वध :

दिट्टये निलिचि दैतेय मर्दनुडु
गदिय पादमुल नक्करि नादि कडिमि

1. सूरसागर–पद 3675 2. वही–पद 3691 3. वही–पद 270

गतिमि यंकुश गति गार्विप गजमु
कडुरेसिनिजतुंड कांडंबुसाचि···

इसमें कृष्ण के द्वारा हाथी के सूंड को मोड़ देना, मुक्के मारते हुए उसके कुंभस्थल पर वार करना और मारने का वीर रस पूर्ण वर्णन है। इसी प्रकार से चाणूर-मुष्टिकों को मारने का भी विस्तृत वर्णन है।[1] इनके मरण को देखकर राक्षसगण थर-थर काँपने लगे। वीररस का चित्रण चिन्नन्ना ने अन्य स्थानों पर भी किया है। जैसे रुक्मिणी को ले जाते समय कृष्ण के शिशुपाल तथा अन्यों से भयंकर युद्ध का वर्णन ओज पूर्ण है। कवि का कहना है कि वाहिनी पति के समान बहुत बड़ी वाहिनी को लेकर उत्साह के साथ गर्जन करते हुए अपनी कुशलता को दिखाते हुए कृष्ण ने अपनी सेनाओं के साथ शिशुपाल पर आक्रमण किया।[2] इसमें कृष्ण नायक है। आलंबन शिशुपाल और स्थायी भाव समरोत्साह है। वीरता, पराक्रम आदि भाव अनुभाव हैं। अमर्ष, उत्सुकता आदि संचारी भाव। इसके अलावा अन्नमाचार्य के संकीर्तनों में भी वीर रस के उदाहरण मिलते हैं। जैसे नरसिंह का खम्भे से प्रकट होना, हिरण्य कश्यप को मारना आदि के वर्णन में वीर रस भरा हुआ है।

एंचु चूचिते नितनि केव्वरेदुरु
कोंचडेमिटिकि वीडे घोरनारसिंहुडु।[3]

इसमें उन्होंने घोर नरसिंह की संज्ञा दी है जो वीर रस के आलंबन हैं। हिरण्यकश्यप उद्दीपन विभाव और वीर्य पराक्रम प्रभाव आदि अनुभाव हैं। हिरण्यकश्यप को दबा कर पकड़ने में स्थायी भाव उत्साह का चित्रण है।

5.6.3. **करुण रस** : भवभूति के अनुसार "एकोरसः करुण एव निमित्त भेदात्" अर्थात् एक मात्र करुण ही रस है और वही श्रेष्ठतम है। सूर ने दावानल के प्रसंग में करुण रस की व्यंजना की है। यथा—

अब के राखि लेहु गोपाल।
दसहूँ दिसा दुसह दावाग्नि उपजी है इहि काल।
पटकत बांस-बांस कुस चटकत, लटकत ताल तमाल।
उचटत अति अंगार फुटत पर, झपटतलपट कराल।
धूम धूँधि बाढ़ी उर अंबर' चमकत बिच-बिच ज्वाल।

---

1. पृष्ठ 136, 137
2. अष्टमहिषी कल्याणमु—चिन्नन्ना, पृष्ठ 192-197
3. आध्यात्म संकीर्तन—अन्नमाचार्य—(वा. 10) पद 162

हरिन वराह-मोर-चातक-पिक, जरत जीव बेहाल ।[1]

इस पद में दुःख एवं शोक स्थायी भाव हैं । अंगारों का उचटना, बाँसों का पटकना, कराल लपटों का झपटना और बेहाल जीवों का जलना-उद्दीपन एवं आलंबन विभाव कृष्ण को रक्षा के लिए पुकारना । स्मरण संचारी भाव है । इसके अलावा कृष्ण के विरह में शोक की मूर्ति राधा का भी चित्रण सूर ने इस प्रकार किया है—

देखी मैं लोचन युवत-अचेत ।
मनहु कमल ससि त्रास ईस को, मुक्ता गनि गनि देत ।
कहुँ कंचन कहुँ गिरी मुद्रिका कहूँ टाड़ कहुँ नेत ।
चेतति नहीं चित्र की पुतरी, समुझाई सोचेत ।
द्वार खरी इकटक मग जोवति ऊर्ध उंसासनि लेत ।
सूरदास कछु सुधि नहिं तन की, बंधी तिहारें हेत ।[2]

तेलुगु में करुण रस का समावेश निम्न स्थान पर हुआ—पालकी में गोदा देवी (आंडाल) को ले जाते समय श्री रंगेश (विष्णु) उसे गायब कर देते हैं । अपनी पुत्री को न पा कर आंडाल के पिता "विष्णुचित्त" विलाप करते हैं— "हे रंगेश । तुम्हें ऐसा करना उचित नहीं । इस प्रकार चुराने के लिए तुमने मेरी प्रिय पुत्री को गोपिकाओं के घर का नवनीत समझा था क्या ? जगत् के पिता अगर तुम ही इस प्रकार का अन्याय करोगे तो अन्यों को कैसे रोका जा सकता है । ?"[3] इस प्रकार के आँसुओं का अन्त ही नहीं । इसमें अपनी पुत्री पर प्रेम आलंबन, उसका दिखायी न देना उद्दीपन, रोदन अनुभव हैं तो निर्वेद, मोह और दैन्य संचारी भाव हैं ।

इसी प्रकार से पैदा होते ही कृष्ण से बिछुड़ जाने के संदर्भ में देवकी और वसुदेव तथा मथुरा गमन के पश्चात् यशोदा नन्द आदि के वात्सल्य वियोग में करुण रस का आभास भी है ।

5.6.4. रौद्र रस : रौद्र रस की अभिव्यक्ति सूर ने गोवर्धन लीला के संदर्भ में की है । कृष्ण के कहने पर ब्रजवासी इन्द्र की पूजा को त्याग गोवर्धन की पूजा करते हैं । इन्द्र कोप के मारे सात दिन तक ब्रज पर कुंभ वृष्टि करते हैं । इन्द्र के कोप में रौद्र रस की अभिव्यक्ति हुई है—

---

1. सूरसागर—पद 1233
2. वही—पद 4333
3. परम योगि विलासमु—चिन्नन्ना, पृष्ठ 354

प्रथमहिं देउं गिरिहिं बहाई ।
ब्रजघातनि करौ चुरकुट देऊँ धरनिमिलाइ ।
मेरी इन महिमा न जानि, प्रकट देऊँ दिखाइ ।
बरसि जल ब्रज धोइ डारों लोग देऊँ बहाइ ।[1]...

नन्ददास ने भी इसका चित्रण किया है—

"अब देखो कैसी सिखलाऊँ । गोकुल गाँवहिं खोदि बहाऊँ ।
बोले मेघन के मन सोई । जिनके जल जग परलै होई ।
बेगि जाहु जहँ नंद को गोकुल । दूरि कर करौ तहँ तैं सबको कुल ।"[2]

अन्नमाचार्य ने अपने एक संकीर्तन में नरसिंह के कोप का वर्णन किया है—

अडरे नेट्टेवुनि कोपाग्नुलु बेडिदपु
मिड्गुरुल तोडुत मिन्नुल मुट्टे
पिडुगुलु रालेटि भीकर नखरमुलु
गडुसु रक्कसुनिकि गालमुलै तगिलै ।[3]

इसमें नरसिंह का कोप और उत्साह स्थायी भाव और राक्षस आलंबन है। भयानक आँखें और भीकर नख उद्दीपन हैं। कवि कहते हैं कि भगवान के नख काँटा बन राक्षस को फँसा लेते हैं। हिरण्यकश्यप की हड्डियों को कड़कड़ाहट की ध्वनि के साथ अपनी जाँघों पर बिठाकर नरसिंह ने तोड़ दिया।

अन्नमाचार्य के इस संस्कृत संकीर्तन में भी रौद्र रस है—

"काल नेत्रानल प्रबल विद्युलता
केलि विहार निश्चल नरसिंहा ।
प्रलय मारुत घोर मस्त्रिका फूत्कार
ललित निश्वास डोला रचनया ।"[4]

उषा कल्याणमु में चिन्नन्ना ने रौद्र रस का चित्रण किया है। जब नारद के द्वारा अनिरुद्ध के बाणासुर के द्वारा कारावास में डालने की वार्ता श्रीकृष्ण को मिलती है तो आग्रह के साथ अपनी सेना को लेकर उस पर चढ़ाई करते हैं।[5] यहाँ शत्रु बाणासुर के अनिरुद्ध को कारावास में डालने के कारण

1. सूरसागर—पद 1470
2. गोबरधन-लीला—नन्ददास, पृष्ठ 168
3. आध्यात्म संकीर्तन—(वा. 11) पद 213
4. आध्यात्म संकीर्तन (वा. 5) पद 184   5. पृष्ठ 56

कृष्ण को उत्पन्न क्रोध स्थायी भाव है। बालक के साथ बाणासुर का कटु व्यवहार आलंबन और उसे बाँध कर रखना उद्दीपन। धैर्य तथा शौर्य अनुभाव हैं तो अमर्ष संचारी भाव। इन सबसे सम्मिश्रित इस घटना का वर्णन रौद्र रस से भरपूर है।

5.6.5. हास्य रस :

विकृत वाक्, आकार या वेष-भूषा और चेष्टाओं के कारण हास्य का जन्म होता है। "कुशल कवि अपनी शब्द शक्ति के द्वारा ही हास्य को उत्पन्न कर सकता है। जैसे सूर की शैली से ही उनकी विनोद प्रियता टपकती है। प्रारम्भ से अन्त तक उनके सुख और उल्लास, अश्रु और निःश्वास सभी में हास्य का पुट मिलता है। बाललीला के वर्णन में कृष्ण की चेष्टायें बहाने और राधा की सरल उक्तियाँ हास्य की सृष्टि करती हैं। संयोग में राधा या अन्य गोपी की साड़ी और आभूषण धारण कर लेना और फिर भेद खुलने पर चातुर्य पूर्ण उत्तर बनाना आदि तथा विप्रलम्भ में गोपियों द्वारा उद्धव के निर्गुण धज्जियाँ उड़ा कर उन्हें बनाना हास्य का संचार करने वाली घटनाएँ हैं।"[1] कुछ उदाहरण हैं—

"मैया मैं नहिं माखन खायो।"[2]

तथा

"देखत हो गोरस में चींटी, काढ़न कों करि नायो।"[3]

तथा

"संदेसनि मधुबन कूप भरे"[4] आदि आदि।

अन्नमाचार्य अपने संकीर्तनों में अपने इष्टदेव वेंकटेश्वर से सरस हास्योक्तियाँ करते हैं। उनका कहना है—तुमको दो नारियों की चाह हुई तो चार भुजायें धारण करनी पड़ी ताकि दो-दो भुजाओं से एक एक नारी का आलिंगन कर सको।[5] जब दो नारियों से भी संतृप्ति नहीं मिली और अनेक नारियों की चाह हुई तो अनेक रूप धारण करने पड़े।[6] पहले तुमने नारी का

1. सूर और उनका साहित्य : प्रो. हरबंशलाल शर्मा, पृष्ठ 366
2. सूरसागर : पद 952
3. वही—पद 897
4. सूरदास और उनका भ्रमरगीत : डा. श्रीनिवासशास्त्री, पृष्ठ 199
5. आध्यात्म संकीर्तन—(वा. 2) पद 153
6. वही—पद 105

वध किया था जिसके फलस्वरूप आज तुम्हें नारी को हृदय में स्थान देना पड़ा ।[1] रामायण सम्बन्धी संकीर्तनों में एक स्थान पर अन्नमाचार्य ने रावण की सेना की घबराहट, वार्तालाप में हकलाना आदि के द्वारा हास्य रस का पोषण किया है ।[2] चिन्नन्ना ने भी विकृत वेष धारण तथा वार्तालाप के द्वारा हास्य रस को उपजाया है । जैसे भक्ति सार योगि घोर तपस्या कर शंकर के प्रसन्न होने पर शायद घबराहट में यह वर माँगता है कि मुझे सुई में धागा घुसाने का वरदान अभी दीजिए ।[3]

5.6.6. अद्भुत रस : अभूतपूर्व घटना या वस्तु के देखने पर जो भाव उत्पन्न होता है उसे अद्भुत रस कहते हैं। वास्तव में बालकृष्ण की सभी लीलाएँ—राक्षसों का वध, गोवर्धन पर्वत उठाना, कालीयदहन आदि सभी लीलायें अद्भुत ही हैं। माटी भक्षण लीला में यशोदा कृष्ण के मुख में सारे ब्राह्मण्ड के दर्शन कर जो भाव का अनुभव करती हैं, वह अति अद्भुत ही है। "स्वर्ग-पाताल, धरनि, बन, पर्वत, बदन मांस रहे आनी। नदी सुमेर देख चकित भाई, याकी अकथ कहानी।"[4] तथा

प्रथम चह्यौ भूगोलिक तहाँ दीप, समुद्र गिरि जहाँ।
जोति चक्र, जल तेज समीरा अगिन अरक, ससि, तारक मीरा।[5]

चिन्नन्ना ने भी इसी प्रकार मां यशोदा के विस्मय के द्वारा अद्भुत रस का चित्रण किया है।[6] इसके अलावा कालिय पर नृत्य करते हुए कृष्ण के चित्रण में भी चिन्नन्ना ने अद्भुत रस का ही पोषण किया है। यथा—

"कृष्ण कालिय नाग पर एक दम से कूद पड़े और अपनी भुजाओं को फुला कर मुक्के मारने लगे। मानों नृत्य पद्धतियों के अनुसार उस नाग के फण पर ताण्डव नृत्य कर रहे थे। वह जल प्रदेश ही रंगस्थल बन गयी। इस घोर नृत्य के कारण कालिय के सभी फनों से मणियाँ दाँतों के समान उखड़ कर गिरने लगीं।"[7]

---

1. श्रृंगार संकीर्तन–(वा. 2) पद 157
2. आध्यात्म संकीर्तन (वा 2) पद 164
3. परम योगि विलासमु–चिन्नन्ना, पृष्ठ 369
4. सूरसागर–पद 874
5. भाषा दशम स्कंध–नंददास, पृष्ठ 215
6. अष्टमहिषी कल्याणमु, पृष्ठ 34
7. वही—पृष्ठ 62–63, 64–65

अन्नमाचार्य ने अपने एक संकीर्तन में हनुमान जी की वीरता का वर्णन करते हुए अद्‌भुत रस को ही सामने रखा है, समुद्र को लांघ कर सारी लंका को जलमग्न करने वाले हनुमान के वर्णन में अद्‌भुत रस का स्थायी भाव विस्मय है। हनुमान आलंबन हैं। समुद्र को एक पग में लांघने के लिए जो भारी शरीर है वह उद्दीपन विभाव है, समुद्र को लांघ कर लंका को जल मय कर देना अनुभाव है तो संतोष संचारी भाव।[1]

5.6.7. भयानक रस :

सूर ने दावानल प्रसंग में भयानक रस का चित्रण सजीव रूप में किया है—

'महरात महरात दावानल आयो।
घेरि चहुँ ओर, करि सौर अंदोरबन,
धरनि आकास चहुँ पास छायो।"
बरत बनबांस थरहरत कुस कांस जरि उड़त है मांस अति प्रबल धायो।
झपटि झपटत लपट, फूल-फल चट कि फटक लटि लटकि द्रुम द्रुम नवायो।
अति अगिनि–झार भंमार धुंधारकरि, उचटि अंगार झंझार छायो।
बरत बन पात महरात झहरात अररात तरु महा धनि मिनायो।"[2]

ताल्लपाक के कवियों ने भयानक रस का चित्रण कई स्थानों पर किया है।

नरसिंह का खम्भे से निकलना, अपने नाखूनों से हिरण्य कश्यप को मारने का चित्रण करते हैं—

"वाडि गोल्ल चेत वडि हिरण्युनि जंपि
वेड्क नेत्तुरु लेल्ल वेदजल्लुचु......[3]

अर्थात् भगवान आज खंभे से निकल कर अपने तेज नाखूनों से राक्षस को मार कर चारों ओर रक्त को फैला रहे हैं। यहाँ रुधिर को चारों ओर फैलते हुए देख दर्शक डर जाते हैं। भयानक रस के लिए यह भय ही स्थायी भाव है। नरसिंह आलंबन, तेज नाखून उद्दीपन विभाव, तथा वध करना और रक्त को फैलाना अनुभाव और त्रास संचारी भाव।

भयानक रस का एक और संदर्भ बाणासुर और कृष्ण के बीच के युद्ध के समय का है। बाणासुर की सहायता के लिए शिव अपनी सारी सेना के

---

1. आध्यात्म संकीर्तन- (वा. 11) पद 172
2. सूरसागर—पद 1214
3. आध्यात्म संकीर्तन—(वा. 11) पद 171

साथ प्रस्तुत हैं। विष्णु और शिव सेनाओं के बीच घोर युद्ध चल रहा है। कृष्ण अपना ब्रह्मास्त्र निकालते हैं जिसे देख भय के मारे शिव की हार होती है।[1] इस वर्णन में शिव के मन में उठी शंका (पराजय की) और भय स्थायी भाव, ब्रह्मास्त्र आलंबन, स्तंभित होना, रोमांचित और कंपित होना सात्विक भाव। ग्लानि और त्रास संचारी भाव। अतः भयानक रस का सम्पूर्ण रूप से पोषण हुआ है।

5.6.8. वीभत्स रस : अष्टछाप के काव्य में इस भाव का अभाव है। क्योंकि उन्होंने भगवान को केवल वात्सल्य, सख्य तथा शृंगार परक भावों से ही भेजा था।

ताल्लपाक के कवियों ने अन्य रसों के समान इसे भी यथा स्थान चित्रण किया है। अन्नमाचार्य संकीर्तन—

"विनरय्य विनरय्य नरसिंह विजयमु"[2] में वीर और भयानक रसों के साथ-साथ वीभत्स का भी प्रभावशाली चित्रण हुआ है। नरसिंह के द्वारा हिरण्यकश्यप के अंतडियों को नाखूनों से निकाल कर अपने गले में डालने का दृश्य दर्शकों के मन में जुगुप्सा उत्पन्न करता है। नरसिंह आलंबन और अंतड़ी उद्दीपन।

"उषा परिणयमु" में हरि-हर के बीच घोर समर के पश्चात् के वर्णन में कवि ने वीभत्स रस का ही चित्रण किया है। तेज नाखूनों के साथ उस युद्धभूमि में शवों को खाने के लिए आने वाले गीध, पेट को चीर कर रक्त पी लेने वाले काक, जहाँ देखो वहाँ अध कटे लाश, रक्त धाराओं से और भूत गणों से भरा उस युद्ध क्षेत्र का वर्णन अत्यन्त जुगुप्सा पूर्ण है।[2] यही इस रस के लिए स्थायी भाव है।

5.6.9. शान्त रस : अष्टछाप के विनय के पद और ताल्लपाक के कवियों के आध्यात्म संकीर्तनों में शान्त रस का पोषण हुआ है। इसका स्थायी भाव निर्वेद है। चिन्नन्ना ने अपने "परमयोगि विलासमु" में बारह आलवारों की जीवनी का चित्रण किया है जिसमें अपने आप शान्त रस का ही चित्रण हुआ है। विष्णुचित्त की कथा, यामुनाचार्य की कथा आदि इसके उदाहरण हैं।

इस प्रकार से अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों ने यथा स्थान नव रसों का पोषण किया है।

---

1. उषा कल्याणमु—चिन्नन्ना, पृष्ठ 73
2. आध्यात्म संकीर्तन (वा. 11) पद 218
3. चिन्नन्ना—पृष्ठ 83-84

5.7. अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों के भाव-पक्ष का तुलनात्मक अध्ययन :

"भाव पक्ष पर विचार करना सरल कार्य नहीं है क्योंकि मानव मन की वृत्तियाँ बड़ी अगम्य और जटिल हैं जिससे उनकी विचित्रता और विविधता में एक रूपता का अन्वेषण बड़ा दुष्कर कार्य है। ये भाव हमारे मानसिक जीवन के अभेद्य अंग बनकर उसमें तिलों में तेल की भाँति व्याप्त रहते हैं तथा प्रत्येक प्रकार के ज्ञान के मूल कारण होते हैं। भाव प्रत्येक व्यक्ति के अन्तस का एक धर्म है, इसलिए वर्णनातीत और केवल अनुभवगम्य है।"[1] अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों ने अत्यन्त कुशलता के साथ अपने मन के भावों को साहित्य के रूप में प्रस्तुत कर पाठकों को आनन्द विभोर कर लिया है।

अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों ने विभिन्न भाव अथवा रस के आलंबन के नायक कृष्ण तथा वेंकटेश्वर को बनाया है। हाँ, ताल्लपाक के कवियों की कुछ अन्य रचनाओं में अर्जुन तथा अनिरुद्ध भी नायक हैं। आलोच्य कवियों ने विभिन्न भावों के अनुसार आश्रयों को ग्रहण किया है। जैसे वात्सल्य भाव में यशोदा, सख्य में गोप बालक तथा श्रृंगार में राधा, अलमेलमंगा तथा गोपियाँ आदि। वात्सल्य तथा श्रृंगार दोनों भावों में आलंबन के मन मोहक रूप को आलोच्य कवियों ने सफलता पूर्वक चित्रित किया है, क्योंकि सर्वप्रथम बाह्य रूप ही दर्शकों को आकर्षित करता है। अतः आलंबन के सौंदर्य पक्ष का चित्रण सफलता पूर्वक हुआ है। इसीलिए कहते हैं—"बलि गइ बाल रूप मुरारि"[2] यह ऐसा रूप है जिस पर "सुर-नर सबै मोहे, निरखि यह अनुहारि।"

ताल्लपाक के कवि भी बालक के सौन्दर्य का वर्णन करते हैं किन्तु अष्टछाप जैसी स्वाभाविकता के साथ नहीं। बहुधा कृष्ण की साज-सज्जा और बाहरी वेश-भूषा को ले कर परिगणन शैली में वर्णन हुआ है। यही बालक यौवन काल में सभी युवतियों की चर्चा का विषय बन जाता है। बस, स्याम के बिना उन्हें और कुछ अच्छा नहीं लगता, चाहे कोई कितना ही क्यों न समझाये। इसीलिए—

---

1. सूर और उनका साहित्य—प्रो. हरवंशलाल शर्मा, पृष्ठ 315–316
2. सूरसागर—पद 736

"तरुनी निरखि हरि अंग
कोउ निरखि नख-इन्दु भूली कोउ चरन-जुग-रंग ।
... ...
कोउ निरखि हृदय नाभि की छवि डारयो तन मनवारि ।"[1]

नायक के इसी दिव्य सौन्दर्य के कारण अनेक नायिकायें उन पर न्यौछावर हो जाती हैं । अतः नायक दक्षिण बन जाता है ।

स्थान स्थान पर आलोच्य कवियों ने नायिकाओं के सौन्दर्य का वर्णन भी किया है । प्रथम परिचय में ही राधा के अद्भुत सौन्दर्य पर चकित कृष्ण स्वयं पूछते हैं कि गोरी तुम कौन हो ? कहाँ रहती हो ? क्योंकि—

"कुंवरि राधिका तब सकल सौभाग्य सीमा ।
या बदन पर कोटि शत चन्द्र वारो ।"[2]

ताल्लपाक के कवियों ने तो सभी रसों की साकार मूर्ति के रूप में अपनी नायिका को प्रस्तुत किया है । यह है आलोच्य कवियों में बाल-तथा यौवन रूप चित्रण में साम्य ।

अब तनिक अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों ने विभिन्न रसों और प्रसंगों का निर्वाह किस प्रकार से किया है—इसका अध्ययन करें । बालभाव का चित्रण अर्थात् वात्सल्य रस में तो सूर का स्थान अद्वितीय है ही । यह सर्वमान्य है क्योंकि सूर ने तो वात्सल्य के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का स्वाभाविक और हृदय स्पर्शी वर्णन किया है । ताल्लपाक के कवियों ने भी यथा स्थान वात्सल्य के पुट को दिखाया है, किन्तु हिन्दी कवियों के समान वह सहज नहीं है ।

अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों ने वात्सल्य भाव के अन्तर्गत कृष्ण की बाल लीलाओं का वर्णन मूल भागवत से समान रूप से ग्रहण किया है । अतः दोनों कवियों में वात्सल्य रस की आधार भूत सामग्री में बहुत सीमा तक समानता मिल जाती है जैसे कृष्ण जन्म का पूर्व प्रसंग, कृष्ण का जन्म, नन्द के घर में पहुँचाना, गोकुल में जन्मोत्सव, बाल्यकाल में पूतना, तृणावर्त आदि विभिन्न असुरों का वध, नामकरण, घुटनों चलना, बालछवि, गोपियों का उपालम्भ, मातृ हृदय, मृत्तिका भक्षण, उलूख बंधन, यमलार्जुन उद्धार, फल बेचने वाली पर कृपा आदि प्रसंग । इन सभी प्रसंगों को समान रूप

---

1. सूरसागर—पद 1252
2. अष्टछाप पदावली (कुंभनदास पद) सोमनाथ गुप्त, पृष्ठ 156

से दोनों क्षेत्रों के कवियों ने ग्रहण किया है। कवियों ने अपनी रुचि तथा कुशलता के अनुसार इन प्रसंगों को घटया या बढ़ाया है। इसी स्थान पर थोड़ा बहुत अन्तर पड़ जाता है। थोड़ा सा उन अन्तरों पर प्रकाश डालना समीचीन होगा। जहाँ हिन्दी में भगवान का देवकी के गर्भ में प्रवेश और देवताओं द्वारा गर्भस्तुति[1] करवायी गयी है, वहाँ अष्टमहिषी कल्याणमु में चिन्नन्ना ने देवकी के गर्भ का वर्णन[2] प्रस्तुत किया है। हिन्दी और तेलुगु काव्यों में कृष्ण के जन्म के अवसर पर लोक संस्कृति पर अधिक बल दिया गया है। यहाँ अष्टछाप के कवियों ने अष्टसिद्धियों से झाडू लगवायी है और नवनिधियों से स्वस्ति करवायी है। यह तत्व ताल्लपाक के कवियों में नहीं है। कृष्ण के नहलाने का विस्तृत वर्णन अष्टमहिषी कल्याण में हुआ है।

अष्टछाप के कवियों ने, विशेषकर सूर ने कुछ ऐसे प्रसंगों का वर्णन किया है जिनका ताल्लपाक के कवियों में नितान्त अभाव है। जैसे अन्नप्राशन, कनछेदन, वर्षगाँठ, कलेवा वर्णन, शालिग्राम प्रसंग, कृष्ण की दिनचर्या आदि। उसी प्रकार से जहाँ सूर तथा अन्य कवियों ने घुटुरुओं चलने, पैर थमने, बाल क्रीड़ा आदि का वर्णन स्वाभाविक रूप से किया है, वहाँ इन प्रसंगों में ताल्लपाक के कवियों ने अलौकिक तत्वों को अधिक समावेश कर लिया है। कालीय दमन के प्रसंग में सूर ने जहां माता के बिलखने का और वात्सल्य की सुन्दर-अभिव्यक्ति करायी है वहाँ चिन्नन्ना ने अपने अष्टमहिषी कल्याणमु में कृष्ण के शास्त्रीय नृत्य तथा वीरता प्रदर्शन पर अधिक बल दिया है।

कहीं-कहीं कुछ ऐसे प्रसंग भी हैं—जो दोनों क्षेत्रों के कवियों ने समान रूप से लिये हैं किन्तु निर्वाह भिन्न ढंग से किया है। उदाहरण के लिए फल बेचने वाली पर कृष्ण की कृपा का प्रसंग ले सकते हैं। यह प्रसंग सम्पूर्ण ग्रामीण वातावरण में ही चित्रित है। परमानन्ददास ने इसका चित्रण इस प्रकार किया है—

> कोउ मैया बेर बेचन आई।
> सुनति ही टेरि नंद रावरि में लई भीतर बुलाई।
> सूकत धान परे आंगन में कर अंजुलि बनाई।
> ठुमुक ही ठुमुक चलत अपने रंग गोपी जन बलि जाई।

---

1. सूरसागर—पद 622 तथा भाषा दशम स्कंध—नन्ददास, पृष्ठ 195-198
2. पृष्ठ 17

लोए उठाय उछंग रीझि करि मुख चुंबत न अघाई।
परमानन्द स्वामी आनंदे बहुत बेरि जब पाई।"[1]

यहाँ परमानन्ददास ने बालक का उल्लास और माता की ममता की मानों तस्वीर ही खींची है। इसी प्रसंग को चिन्नन्ना ने भी लिया है। लेकिन अन्त में बेर बेचन वाली अपनी टोकरी में कृष्ण के द्वारा दिये गये धान के स्थान पर मणि माणिक्यों को पाकर आश्चर्य में डूब जाती है।[2] यहाँ कृष्ण के अलौकिक तत्व पर बल दिया गया है। उसी प्रकार से चन्द्र प्रस्ताव में बालक कृष्ण के हठ को सूर और अन्नमाचार्य ने समान रूप से चित्रित किया है। सूर की यशोदा स्वाभाविक रूप से मधु-मेवा खिलाने या नयी दुलहिन लाने का वादा करती है तो अन्नमाचार्य के कृष्ण कुछ ऐसा संकेत करते हैं कि माता को लगता है कि चाँद स्वयं नीचे आ गया। अत: यहाँ यह बात स्पष्ट है कि अष्टछाप में बालकृष्ण की लीला माधुरी मानव सुलभ और सामान्य मानव के बुद्धि ग्राह्य रूप में ही अधिक चित्रित हुई मिलती है, जबकि ताल्लपाक के कवियों में उसके अलौकिक रूप का भी समान रूप से चित्रण मिलता है।

अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों ने गोपियों के उपालम्भ-जो कभी कभी शृंगार से भी सम्बिन्धत होते हैं, माता का हृदय तथा माखन चोरी आदि प्रसंगों को स्वाभाविकता से, अत्यन्त उत्साह के साथ चित्रण किया है। वात्सल्य के अधिक तत्व इनमें प्राप्त होते हैं। वियोग का तो चित्रण केवल हिन्दी केकवियों ने किया है।. ताल्लपाक के कवियों ने इसे छुआ भी नहीं है।

वल्लभ संप्रदाय में मान्यता तथा महत्व होने के कारण अष्टछाप के कवियों ने वात्सल्य के समान सख्य को भी चरम सीमा पर पहुँचा दिया है। किन्तु ताल्लपाक के कवियों का ऐसे किसी संप्रदाय विशेष के साथ सम्बन्ध न था। अत: नवधा भक्ति के अन्तर्गत सख्य भक्ति को ग्रहण करते हुए उन्होंने सख्य भाव सम्बन्धी लीलाओं का वर्णन केवल बाल सुलभ चेष्टाओं तक ही सीमित कर दिया है। हाँ अलौकिकता की पुट को हिन्दी और तेलुगु दोनों कवियों ने ग्रहण किया है। गोचारण जाते समय कलेऊ ले जाना, एक दूसरे

---

1. अष्टछाप पदावली (परमानन्द पद) सोमनाथ गुप्त, पृष्ठ 111-112
2. अष्टमहिषी कल्याणमु—पृष्ठ संख्या 39-40 (गोविन्द गोस्वामी ने भी इस प्रसंग का वर्णन इस प्रकार से किया है—"पक्व खजूर जंबु बदरी फल लेहो" काछिनी टेरो द्वार।......हीरा रतन सों पूरित भाजन ऐसे परम उदार।)
(अष्टछाप पदावली पृष्ठ 282)

का चुराकर भी खाना, खेल-कूद, एक दूसरे को छेड़छाड़ करना, स्पर्धा की भावना, रीझना, रिझाना, एक दूसरे के प्रति प्रेम आदि प्रवृत्तियाँ समान होते हुए भी अष्टछापी कवियों में अधिक सरलता, स्वाभाविकता और सहजता का वातावरण है। जैसे "मैया मोहि दाऊ बहुत खिजायो।" तथा "हाय हाय करि सखनि पुकारयो" आदि उक्तियाँ तथा सखाओं के बीच वार्तालाप सख्य भाव को आमुखरित करते हैं। दोनों क्षेत्र में बालकों की क्रीड़ा सामग्री का उल्लेख हुआ है। अष्टछाप के कवि कृष्ण तथा अन्य सखाओं के मानसिक पक्ष का उद्घाटन किया है। सुदामा चरित, कालिय दमन के प्रसंगों में सख्य भाव को चरम सीमा पर अष्टछाप के कवियों ने पहुँचाया है। ताल्लपाक के कवि अर्जुन तथा कृष्ण की मित्रता को सराहते हुए आनन्द विभोर हो उठते हैं। एक वाक्य में हम कह सकते है कि "तेलुगु कवियों के प्रसंगों ने सख्य बाह्य पक्ष को अधिक यथार्थ बनाया है तो हिन्दी कवियों ने अनुभूति की दृष्टि से उसे यथार्थता प्रदान की है।"[1]

अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों ने शृंगार भाव की झाँकी वात्सल्य भाव के साथ ही प्रस्तुत की है। "दोनों की गोपियों में शृंगार भावना की जागृति को कृष्ण के बालरूप व द्युति के निकट सम्पर्क व साहचर्य का फल दिखाया गया है। माखन चोर कृष्ण को दोनों ने गोपी मानस चोर भी दिखाया है।"[2] अत: क्रमिक रूप में माखन चोरी, उलूख बंधन, चीरहरण तथा महारास तक संयोग शृंगार का विकास दिखाया है। रासलीला के वर्णन में वेणु वादन, गोपियों की प्रतिक्रिया, आह्लादकारिणी प्रकृति आदि समान रूप से मिलते हैं। किन्तु सूर की गोपियाँ मुरली के प्रति जो सौतिया डाह रखती हैं वह तेलुगु में नहीं। रास के लिए आयी हुई गोपियों को कृष्ण लोक लाज आदि समझाते हैं तो उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप सूर की गोपियों की अन्तर्वेदना अधिक प्रस्फुटित हुई जहाँ ताल्लपाक के कवियों ने गोपियों के मुख से दुर्दमनीय काम से प्रेरित उक्तियाँ कहलवायी हैं। अष्टछापी कवियों ने जहाँ रासमण्डल का आध्यात्मिक रूप प्रदान किया है, वहाँ तेलुगु में कृष्ण के अलौकिकत्व का बार-बार कथन हुआ। दोनों ही कवियों ने समान रूप से रास नृत्य के समय गोपी तथा कृष्ण के आभूषण केशपाश, नैन तथा हृदय, एक दूसरे में उलझ जाने का चित्रण किया है। दोनों भाषाओं में शृंगार रस के ही अन्तर्गत नायक

---

1. हिन्दी और तेलुगु वैष्णव भक्ति साहित्य—डा. के. रामनाथन्, पृष्ठ 330
2. अन्नमाचार्य और सूरदास—डा. एम. संगमेशम्, पृष्ठ 255

तथा नायिका के रूप वर्णन, साज-सज्जा आदि के साथ-साथ नायिका भेद के विभिन्न उदाहरण मिल जाते हैं। ताल्लपाक के कवियों का पाण्डित्य प्रतिभा इस संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय है। नायिका भेद आदि शास्त्रीय पक्षों के विवरण में ताल्लपाक के कवियों का प्रकाण्ड पांडित्य उभर आता है। नायिकाओं के सभी भेद, स्वीया, परकीया, मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा धीरा ही नहीं उनके सूक्ष्म भेदों का भी समावेश हो गया है। संभोग श्रृंगार के अन्तर्गत दोनों क्षेत्रों के कवियों ने अश्लीलता के धरातल तक पहुँचा दिया है। जैसे—

ता मैं (कुंज में) सेज सुपेसल ऐसी। आलबाल रति बेली जैसी।
कछु छल कछु बल कछु मनुहारि। लै बैठे तहँ लाल बिहारी।
मन चह रम्यो चहे न भम्यो। कामिनी के एक कौतुक लग्यो।
प्रथम समागम लज्यति तिया। अंचल पवन सिरावति दिया।
दीप न बुझहि बिहंसि बर बाला। लपटि गई पिय उरसि रसाला।[1]

अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों ने वियोग श्रृंगार का भी विस्तृत चित्रण प्रस्तुत किया है। पूर्वराग, मान, प्रवास-वियोगों का विस्तृत चित्रण है। पूर्वराग विरह-रुक्मिणी तथा रूपमंजरी को श्रवण के कारण और उषा को स्वप्न में दर्शन के कारण होता है। इन नायिकाओं का मिलन अन्त में नायक से हो जाता है। राधा, अलमेलमंगा तथा अन्य नायिकायें कई बार मान कर बैठती हैं। ताल्लपाक के कवियों के नायक भी। किन्तु अन्त में एक दूसरे को मना कर किसी तरह मिलन हो जाता है। प्रवास का उदाहरण कृष्ण के मथुरा चले जाने के प्रसंग में है। यह दुरन्त ही नहीं अनन्त भी है। अष्टछाप के कवियों की प्रतिभा ने यहाँ भ्रमरगीत नामक प्रसिद्ध उपालम्भ काव्य का जन्म दिया। सगुण भक्ति की श्रेष्ठता और तर्क वितर्क और पांडित्य के साथ साथ गोपियों की तीव्र वेदना भी व्यक्त हुई है।

"निसि दिन बरसत नैन हमारे" "उर में माखन चोर गड़े"

"ऊधो मन नाहीं दस बीस" आदि बीसों उक्तियों में गोपियों की विरह वेदना उभर आयी है। तेलुगु में उद्धव गोपी संवाद का यह रूप नहीं है। अपने संकीर्तनों में ताल्लपाक के कवियों ने प्रवास विरह का चित्रण किया है। करुण प्रवास तो ताल्लपाक के कवियों में नहीं हो सकता क्योंकि वे विरह के भी पद के अन्तिम चरण में संयोग करके ही संतुष्ट होते हैं।

---

1. रूपमंजरी—नन्ददास, पृष्ठ 124

अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों ने संयोग तथा वियोग दोनों पक्षों में कुछ ऐसे अनुपम चित्र खींचे हैं जो अपने आप में बेजोड़ हैं। जैसे—संयोग में विजय प्राप्त सूर की राधा का, अथवा नन्ददास की रूपमंजरी की वयः संधि का अथवा अन्नमाचार्य की यह कल्पना कि नायक-नायिका के मिलन में सभी ऋतुएँ आ जाती है। अन्नमाचार्य के अन्दर के कुशल कवि नायिका के विभिन्न अंगों में ही विभिन्न रसों का या पुष्पों का या नवरत्नों का आभास पा लेता है। ऐसे वर्णन ताल्लपाक के कवियों ने अनेक किये हैं। नख-शिख वर्णन परम्परा के अनुसार करते हुए भी ये कवि इस प्रकार की नवीन उक्तियों से अत्यन्त आकर्षक बनाते हैं। विरह में ऊहात्मकता का समावेश दोनों की रचनाओं में हो गया है। विरह में व्याकुल नायक और नायिका-दूती सखी,[1] चाँद, कपोत या पतंग[2] के द्वारा एक दूसरे को संदेश भेजते हैं। मिलन कराने में संतुष्ट हो कर सखियों का मन सतुष्ट होता है।

अब तक सति के प्राणों के बच जाने की आस नहीं
अब पति वेंकट प्रभु की करुणा से प्राण बचे, भय लेश नहीं।[3]

अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों के शृंगार के आलंबन अलौकिक नायक और नायिका ही हैं। अष्टछाप का शृंगार अलौकिक होकर भी लौकिकता की परिधि में ही प्रदर्शित हुआ है। उनके नायक और नायिका दिव्य होकर भी अक्सर मानव रूप में उपस्थित होते हैं। ताल्लपाक के कवि अपने आलंबन की अलौकिकता को कभी नहीं भूलते। उनका शृंगार लौकिकता की परिधि को अक्सर पार कर लेता है। सूर के कृष्ण राधा की धमकियाँ सह लेते हैं और होली के दिन गोपियों के हाथों में अपना बुरा हाल भी बना लेते हैं।

यद्यपि यशोदा स्वयं अपने श्याम के लिए रिश्ता माँगती है, फिर भी राधा की माता कीर्ति कुमारी इसीलिए अपनी लड़की का रिश्ता कृष्ण से ठुकरा लेती हैं क्योंकि—

रानी उत्तर दयो, सुहों नहिं करों सगाई,
सूधि राधे कुंवरि स्याम है अति चरबाई।
नन्द-ढोटा लंगर महा, दधि माखन को चोर

---

1. विरह मंजरी—नन्ददास
2. शृंगार मंजरी, चक्रवाल मंजरी
3. अन्नमाचार्य संकीर्तन—अनुवाद—डा. एम. संगमेशम

कहति, सुनति, लज्जा नहीं, करिति और ही और ।
—कि लरिका अपचलों ।"[1]

किन्तु ताल्लपाक के कवियों के वेंकटेश्वर बहुत सीमा तक गंभीर व उदात्त ही रहते हैं । जहाँ हिन्दी के कवियों के वात्सल्य और सख्य के समान शृंगार भी सहज ग्रामीण, प्राकृतिक वातावरण में पनपा है, वहाँ ताल्लपाक के कवियों ने अंतःपुर जीवन तथा संभ्रान्त परिवार के परिप्रेक्ष्य में अधिक चित्रण किया है ।

एक प्रमुख अन्तर अष्टछाप और ताल्लपाक के कवियों की रचनाओं में यह है कि अष्टछाप के कवियों ने संयोग और विशेष कर वियोग वर्णन में ऋतु वर्णन बारह मासा आदि विभिन्न रूपों में विशेष कर उद्दीपक रूप में प्रकृति वर्णन किया है, जो ताल्लपाक के कवियों की रचनाओं में अप्राप्य है ।

वात्सल्य, शृंगार तथा सख्य के अलावा अष्टछाप और ताल्लपाक के कवियों ने अन्य रसों का भी यथा स्थान चित्रण किया है । किन्तु यहाँ अष्टछापी कवियों से ताल्लपाक के कवि बहुत आगे निकल जाते हैं ।

1. स्याम–सगाई–नन्ददास, पृष्ठ 170

षष्ठ अध्याय

अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों का कलापक्ष

"इन कवियों के गीतों में प्रबन्ध सूत्र भी है, संवाद भी हैं, चित्र भी हैं और वर्णन भी है। इन गीतों में सरलता भी है, अलंकृति भी है, शास्त्रीय झलक भी है और लोकगीतों की सरलता भी है।···अलंकार निरपेक्ष सौंदर्य भी चरम पर है और अलंकार विधान भी कितना गत्यात्मक और प्रयोग-सिद्ध।" (डा. चन्द्रभान रावत—सूर साहित्य : नवमूल्यांकन)

"ऐसा लगता है कि इस पृथ्वी पर कभी-कभी गंधर्वों का जन्म हो जाता है। अन्नमाचार्य भी वैसे ही एक गंधर्व थे।" (पुट्टपर्ति नारायणाचार्युलु)

* * *

6.1. प्रस्तावना : "कला अमूर्त भावों को मूर्त रूप देने की एक प्रक्रिया है। कवि का अनुभव चाहे कितना ही विस्तृत क्यों न हो, पर वह तब तक बोधगम्य नहीं हो सकता जब तक उसे रूपात्मक स्थिति में न ले आया जाये। क्योंकि अमूर्त भावों के सहृदय तक सम्प्रेषण के लिए मूर्त आधार अनिवार्य है। यही कारण है कि कवि अपनी अनुभूतियों को आस्वाद्य बनाने के लिए उन्हें रूपात्मक आधार देकर प्रस्तुत करता है। भावों को रूपात्मक आधार में प्रस्तुत करने की प्रक्रिया में कवि अपनी अनुभूतियों तथा विचारों की यथा सम्भव रक्षा ही नहीं करता, किन्तु उन्हें इस ढंग से सजाता है कि वे अधिक सरल, सरस और सग्राह्य हो सकें।"[1] अत. यह माना गया है कि यद्यपि काव्य में भावपक्ष ही प्रधान होता है, तथापि कलापक्ष भावपक्ष को अधिक सुन्दर, प्रभावोत्पादक तथा पूर्ण बनाने में सहायक सिद्ध होता है। इसलिए कलापक्ष का स्थान भी गौण नहीं है। प्राय. इसी कारण पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वानों ने भावपक्ष तथा कलापक्ष के उचित तथा सुन्दर समन्वय पर बल दिया है। पण्डितराज जगन्नाथ ने "रमणीयार्थ प्रतिपादक: शब्द: काव्यम्"[2] कहा है तो आचार्य विश्वनाथ ने "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्"[3] कहा है। पाश्चात्य विद्वानों का भी यही अभिप्राय है। जैसे हर्बर्ज रीड़ के अनुसार "कला सुन्दर भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति है।"[4] कुशल तथा सफल कवि अपने इन दोनों कर्मों में से

---

1. नन्ददास–विचारक रसिक कलाकार–रूपनारायण, पृष्ठ 166
2. रस गंगाधर–1/1 3. साहित्य–दर्पण–1/3
4. नंददास-रसिक विचारक कलाकार–रूपनारायण, पृष्ठ 166 से उद्धृत

किसी की भी उपेक्षा नहीं कर सकता। अपने आलोच्य कवियों के साहित्य में कला-पक्ष भी भाव-पक्ष के समान ही सुन्दर और हृदय स्पर्शी है। भाव और कला–इन दोनों के साथ साथ संगीत भी मिलकर एक त्रिवेणी संगम बन गया है और वर्णित भावों की मधुरता और मार्मिकता मधुरतम और मार्मिकतम रूप में प्रस्तुत हुई है। प्रस्तुत अध्याय में अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों की भाषा, शैली, छन्द, अलंकार, वर्णन-कुशलता आदि अभिव्यक्ति पक्ष के सम्बन्ध में अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

6.2. भाषा :

"भाषा विचार-भाव आदि की अभिव्यक्ति का सर्वाधिक श्रेष्ठ एवं प्रमुख साधन है। भाव-विचार अपने मूल रूप में अमूर्त एवं निराकार रहा करते हैं, उन्हें अनुभूति बनाकर काव्यत्व का आयाम भाषा ही प्रदान करती है।···इस विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि काव्य का काव्यत्व अपने मूल रूप में भाषा पर ही आधारित रहा करता है।"[1]

अष्टछापी कवियों में सूर, नंददास तथा परमानंद दास की ब्रज भाषा अत्यन्त सुन्दर, कोमल और प्रसादगुण पूर्ण है। अन्य कवियों की भाषा को सामान्य ही कह सकते हैं। इन तीनों कवियों की भाषा के सम्बन्ध में प्रमुख विद्वानों के कथन इस प्रकार हैं—"बोलचाल" की भाषा को साहित्यिक रूप देने का सूर का प्रयास नितांत सराहनीय है। ······उनकी भाषा पात्र और परिस्थिति के अनुकूल ही है।[2] सूर निर्णय के लेखकों के मत में 'संस्कृत साहित्य में जो स्थान आदि कवि वाल्मीकि का है, ब्रज भाषा में वही स्थान सूरदास को दिया जाता है। ब्रज भाषा साहित्य के आरम्भिक काल में ही सूरदास ने अपनी विलक्षण प्रतिभा द्वारा जैसा सर्वांगपूर्ण काव्य उपस्थित किया, वैसा कई शताब्दियों के साहित्यिक विकास के उपरान्त भी कोई कवि कर नहीं सका। यही एक बात सूर काव्य की विशेषता को चरम सीमा पर पहुँचा देने वाली है।"[3] "नंदनास ब्रज भाषा के चितेरे थे। भाषा पर उनका अपूर्व अधिकार था।······ स्वर्णकार दो प्रकार के होते हैं। एक वे जो सोने को गढ़कर आभूषण बनाते हैं और दूसरे वे जो उन गढ़े हुए आभूषणों में कुन्दन

1. भारतीय काव्य शास्त्र के सिद्धान्त–डा. सुरेश अग्रवाल, पृष्ठ 174
2. सूर और उनका साहित्य–प्रो. हरबंशलाल शर्मा, पृष्ठ 307
3. सूरदास तथा वामन पंडित: एक तुलनात्मक अध्ययन
   डा. सुशीला व्यापारी, पृष्ठ 337 से उद्धृत

से रत्नों को जड़ते हैं। यह बारीक कलापूर्ण कार्य उन आभूषणों की शोभा वृद्धि का मुख्य कारण होता है। निश्चय ही नंददास ने भाषा, विषय-उत्पादन सब सूरदास, भागवत पुराण आदि से गड़े हुए ही प्राप्त किये, पर अपनी कला प्रियता से उनमें एक चित्रकार की सी कारीगरी प्रकट की। यह जड़िया की सिद्धि उन्हें भाषा—प्रयोग से ही मुख्यत: हुई है।"[1]

"परमानंददास की भाषा में भावमत्ता का गुण एक बड़ी मात्रा में है। भाव के अनुकूल ही उन्होंने शब्दों का चयन किया है। ···उनके सम्पूर्ण काव्य की भाषा सरस और भाववाहिनी ही है। कर्ण कटु शब्दों का प्रयोग उन्होंने कहीं भी नहीं किया है।"[2]

"अष्टछाप की भाषा में वर्तमान प्रचलित ब्रजभाषा का सुन्दर रूप बहुत अंश में मिलता है। अष्टछाप के कवियों की, एक दूसरे की भाषा में भी बहुत बड़ी समानता है। वार्ता साहित्य से विदित होता है कि अष्टछाप के पद दूर दूर प्रदेशों में अपनाये और समझे जाते थे। इसलिए कहा जाता है कि अष्टछाप की ब्रजभाषा साहित्यिक होते हुए भी अपने समय की प्रचलित तथा सजीव भाषा थी। ······जो भाषा सूर ने बाल और विरह वर्णन में लिखी है, वह उस समय की सजीव साहित्यिक ब्रजभाषा है।"[3]

ताल्लपाक के कवियों ने अपनी रचनायें उस समय में प्रचलित व्यावहारिक तेलुगु भाषा (जानु तेलुगु) में ही अधिक मात्रा में की। अधिकतर रचनाऐं गेय शैली में होने के कारण सरसता और संगीतमयता का अपने आप समावेश हो गया है। प्रमुख विद्वान अन्नमाचार्य जी की कविता को शक्कर की गुड़िया मानते हैं, जिसमें सर्वत्र मिठास ही मिठास है। श्री वेटूरि आनन्द-मूर्ति जी का कथन है कि "ताल्लपाक के कवि पंडित, बहु भाषा कोविद तथा सुकवि शेखर थे। वांङमय संसार का मंथन कर भाषा तत्व का अवगाहन करने वाले शब्द शास्त्र वेत्ता थे। अपनी रचनाओं में सभी प्रकार से भाषा का सम्पूर्ण उपयोग कर सकने की अपूर्व क्षमता भी उन्हें थी। भाषा के सम्बन्ध में उन्होंने संप्रदाय के साथ-साथ लोक-व्यवहार को भी कहीं विस्मृत नहीं किया।"[4] मान्यवर विद्वान उनकी भाषा को मोम से भी तुलना करते हैं जो उनके हाथों में मन चाहा आकृति पा सकती है।

1. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय—डा. दीनदयाल गुप्त, पृष्ठ 749
2. अष्टछाप और परमानंददास—डा. कृष्णदेवझारी, पृष्ठ 90
3. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय—डा. दीनदयाल गुप्त, पृष्ठ 754
4. ताल्लपाक कवुल पद कवितलु—भाषा प्रयोग विशेषालु, पृष्ठ 367

अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों ने अपनी भाषा की समृद्धि के लिए विभिन्न प्रकार के शब्द–तत्सम्, अर्थ तत्सम, तद्भव, देशज तथा विदेशी शब्दों के प्रयोग के साथ-साथ लोकोक्तियों और मुहावरों के सफल प्रयोग की भी सहायता ली है। उनके काव्यों में प्रयुक्त शब्द भंडार में से केवल कुछ चुने हुए उदाहरण नीचे प्रस्तुत हैं—

6.2 1. अष्टछाप के काव्य के तत्सम शब्द :

संस्कृत से ग्रहीत तत्सम शब्द अष्टछाप के काव्य में प्राप्त होते हैं—यथा—

"मंद परस्पर हंसी लसीं, तिरछी अंखियाँ अस।
रूप उदधि उतराति रंगीली मीन पांति जस।"[1]
सोभाया जिनके अधीन नित रहत मृगी जस।
विश्व-प्रभव-प्रतिपाल-प्रलय कारक आरसु बस।[2]
अविगत आदि अनंत अनूपम अलख पुरुष अविनासी।
पूरण ब्रह्म प्रकट पुरुषोत्तम नित निज लोक विलासी।[3]

6 2.2. ताल्लपाक के कवियों के काव्य के तत्सम शब्द :

ताल्लपाक के कवियों ने हजारों की संख्या में संस्कृत में संकीर्तनों की रचना की है। इसके अलावा उन्होंने अपनी तेलुगु रचनाओं में भी तत्सम शब्दों का बहुल प्रयोग किया है। यथा

"एतदखिलंबुनकु नीश्वरुंडे सकल, भूतमुल लोन दा बोदलु वाडितडु।···
तापसोत्तमुल चिंता सोधमुललोन, दीपिंचु सुज्ञान दीपमितडु।[4]

अपने तेलुगु के आध्यात्म संकीर्तनों में उन्होंने संस्कृत के प्रसिद्ध वाक्यों को जैसे का तैसा ही ग्रहण किया है। उदाहरण के लिए प्रस्तुत है—

'न मे भक्त प्रणुस्यति' यनुमाट
अमोघमे नीवान तिय्यगा···
नाडु 'मामेकं शरणं व्रज' यनुमाट
पोडिमि दिक्कुल नीवेप्पुडु चाटगा···

1. रास पंचाध्यायी–नन्ददास–छन्द–74
2. सिद्धान्त पंचाध्यायी–नन्ददास–छन्द 5
3. सूरसारावली–1, 2
4. पेदतिरुमलाचार्य–(वा. 2) पद 57

अल 'योगक्षेमं वहाम्यहं' यनुमाट
अलमुचु तुदि पद मै युंडगा..."[1]

6.2.3. अष्टछाप के काव्य में तद्भव शब्द :

स्वाभाविकता और व्यवहारिकता के लिए तद्भव शब्दों का प्रयोग किया जाता है—

"पसरि पर्‌यो अंधियार सकल ससार घुमड़ि धुरि !"[2]
"दादुर रहत फनी फन छाहीं ।"[3]
"जसुमति मन अभिलाष करे।...
कब मेरो अंचरा गहि मोहन, जोइ-सोइ कहि मो सों झगरे ।"[4]
"सत्यवती सराप भय मान रिषि को वचन कियो परमान ।"

6.2.4. ताल्लपाक के कवियों के काव्य में तद्भव शब्द :

"गारवंबु लेनि प्रियमु कदिय नेटिके ।"[6]
(यहाँ गौरव के लिए गारवंबु शब्द का प्रयोग हुआ है ।)
संदेकाड बुट्टिनट्टि चायल पंट येंत ।[7]
(संध्या के लिए संदे शब्द का प्रयोग हुआ है ।)

6.2.5. अष्टछाप के काव्य में देसज शब्द :

ब्रजभाषा के अनेक देशज शब्द अष्टछापी काव्य में प्रयुक्त हुए हैं । यथा—

"पोढ़िए में रचि सेज बिछाई ।......
बदन जंभात अंग ऐंडावत, जननि पलोटति पायी ।"[8]
"रघुपति अपनो प्रन पति पारयो ।
तोरयो कोपि प्रबल गढ़, रावन टूक टूक करि डारयो ।"[9]

नन्ददास के काव्य में प्रयुक्त देशज शब्दों के कुछ उदाहरण हैं—

वीर, रूसि, बिरिया, लुनाई, घुमारे, नेरे, अहुरि, बहुरि, ह्वैं कि आदि । परमानंद सागर में प्रयुक्त देशज शब्द-अलार, ठगौरी, ढोंटा, पुरई, पाहूनी आदि ।[10]

---

1. पेदतिरुमलाचार्य—(वा. 2) पद 57
2. रासपंचाध्यायी—नन्ददास, पृष्ठ
3. रूपमंजरी—नन्ददास, पृष्ठ 123
4. सूरसागर—पद 694
5. वही—पद 229
6. शृंगार संकीर्तन—अन्नमाचार्य (वा. 2) पद 55
7. अध्यात्म संकीर्तन—अन्नमाचार्य (वा. 11) पद 47
8. सूरसागर—पद 860
9. वही—पद 603
10. परमानंद सागर—गोवर्धन नाथ शुक्ल, पृष्ठ 42

6.2.6. ताल्लपाक के कवियों के काव्य में देशज शब्द :

ताल्लपाक के कवियों ने अपनी रचनाओं में अत्यन्त प्रीति के साथ देशज शब्दों का प्रयोग किया है। उनके अनुसार देशज शब्द सुकुमार पुष्पों के समान हैं। उन्हें वैसा ही ग्रहण कर आनन्द ग्रहण करना चाहिए, न कि उन्हें कुचल कर। उनके मत में सुकवि देशज शब्दों का भी उसी रूप में उपयोग करता है, अपभ्रंश समझ कर उन्हें दूर नहीं रखता।[1] उनके कुछ देशज शब्द हैं—

वच्चीनि—आकर, चेसीनि—कार्य कर, पोयीनि—जा कर,

अम्मलाल, मनुजुलाल, अय्यलाल आदि सम्बोधन कारक शब्द।

स्वच्छन्द ग्रामीण वातावरण के परिप्रेक्ष्य में अन्नमाचार्य का एक संकीर्तन हैं—

"जिगुरुवंटिवाडे सिनकाटि—चित
चिगुरुम्मं बोनींडे सिनकाटि" [2]

इसमें नायक की तुलना गोंद से की गयी है, अर्थात् उतना अनुराग उसमें है। तथा चिचोटक बेचने जाना आदि में ग्रामीण वातावरण का चित्र आ जाता है।

कुछ ऐसे शब्द भी इनके काव्य में प्रयुक्त हुए हैं जिनको अभी तक तेलुगु के कोशों में स्थान प्राप्त नहीं हुआ है। केवल संदर्भ के अनुसार ही विद्वान उनका अर्थ समन्वय करते हैं।

6.2.7. अष्टछाप के काव्य में प्रयुत विदेशी शब्द :

तत्कालीन शासक मुसलमान होने के कारण अष्टछाप के काव्य में अरबी, फारसी, तुर्की आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। जैसे—

"साँचो सो लिखन हार कहावे।...
जमा खरच नीके करि राखे, लेखा समुझि बनावे।
सूर आप गुजरान मुसाहिब ले जवाब पहुँचावे।[3]

इसके अलावा खुमारी, दरबानी, जहाज, सिरताज, नफा, रेशम, खसम, कुजूर, हजार, संदूक, अफसोस, सरकार, परदा, बेसरम आदि शब्द भी मिलते हैं।

मान्यवर विद्वानों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि नन्ददास और परमानन्ददास के काव्य में सूर की अपेक्षा बहुत स्वल्प मात्रा में ही अरबी

---

1. संकीर्तन लक्षण—चिनतिरुमलाचार्य—विवरण वे. आनन्दमूर्ति
2. वेटूरि आनंदमूर्ति के आधार पर 3. सूरसागर पद—142

फारसी के शब्द प्रयुक्त हुए हैं । नन्ददास के ग्रंथों में केवल चार शब्द ही प्राप्त हुए हैं । वे हैं—गरज, लायक, अरदास और महल ।[1] परमानन्ददास की भाषा की एक बड़ी विशेषता यह है कि उसमें फारसी, अरबी शब्दों का एक प्रकार से बहिष्कार ही है । फारसी और अरबी के दस-पाँच शब्द ही उनके सम्पूर्ण परमानन्द सागर में मिलेंगे । वे हैं—लायक, कागद, सादा, सिरताज, बिहाल, सूरत, दाद ।[2] इसी संदर्भ में 'परमानंदसागर' के संकलन कर्ता गोवर्धन नाथ शुक्ल के भी विचार दृष्टव्य हैं ।[3]

अष्टछाप के काव्य में ब्रज भाषा के अलावा अवधी, बुन्देलखण्डी, आदि उप भाषाओं के शब्द भी मिलते हैं । जैसे चुचुकाय, उहि, नीको, कत, नाहिन, काहे, हमरी आदि अवधी शब्दों का प्रयोग परमानन्ददास ने किया है । नन्ददास ने भी रावरे, कीनी, माहि, अस, दीनी, इह, आही आदि शब्दों को ग्रहण किया है ।

अन्त में कह सकते हैं कि, वास्तव में सूर के शब्द प्रयोग की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने शब्दों के निर्वाचन में साहित्यिक-असाहित्यिक अथवा शिष्ट-विशिष्ट का कोई विचार नहीं किया और परिस्थिति के विचार से जिन शब्दों को उन्होंने उपयुक्त समझा उनका प्रयोग करने में उन्हें इस बात का संकोच नहीं हुआ कि वे किस श्रेणी अथवा किस उद्गम के हैं । इनकी भाषा में तत्सम शब्द, खड़ी बोली, पूर्वी हिन्दी, बुन्देलखण्डी, राजस्थानी, गुजराती, पंजाबी, अरबी और फारसी शब्दों का प्रयोग हुआ है, जिनसे इनकी भाषा को और भी अधिक बल मिला है ।···शब्द चयन भाषानुसार है ।[4] प्राय: अष्टछाप के अन्य कवियों के लिए भी यही बात लागू होती हैं ।

6.2.8. ताल्लपाक के कवियों के काव्य में प्रयुक्त विदेशी शब्द :

ताल्लपाक के कवियों ने अधिक संख्या में ही तमिल, कन्नड़ आदि द्रविड़ भाषाओं के शब्दों को अपनी रचनाओं में स्थान दिया है । यथा—

अलमेलमंगा—कमल पर बैठने वाली लक्ष्मी (द्रविड़)

आंडाल—गोदा देवी (द्रविड़)

तिरु—श्री का विकृत रूप (द्रविड़)

---

1. नन्ददास : रसिक विचारक कलाकार—रूपनारायण, पृष्ठ 245
2. अष्टछाप और बल्लभ संप्रदाय–डा. दीनदयाल गुप्त के आधार पर–पृष्ठ 755
3. पृष्ठ 41
4. हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ—डा. शिवकुमार शर्मा, पृष्ठ 302

नंबि—वैष्णव पुजारी (द्रविड़)

इनके अलावा नाच्चियार, पल्लांडु, पेरुमाल्लु, आदि अनेक शब्द मिलते हैं। इसके साथ-साथ यत्र-तत्र उर्दू, अरबी आदि भाषाओं के शब्द भी प्राप्त होते हैं। जैसे टोपी, ईनाम, कलासी, दीनार, हल्लू, जंखाना, लूटी, फौज, तोप, तुरक, शबाश आदि।

ताल्लपाक चिन तिरुमलाचार्य ने अपने अष्ट भाषा दंडक में संस्कृत, प्राकृत, शौरसेनी, मागधी, पैशाची, प्राची, अवन्ती और सार्वदेशी भाषाओं में अपने पांडित्य को प्रदर्शित किया है।

अष्टछाप और ताल्लपाक के कवियों ने सभी प्रकार के शब्दों के साथ-साथ अनेक अनुकरणात्मक शब्दों का भी प्रयोग कर अपने काव्य सौन्दर्य में चार चाँद लगायें हैं। जैसे—

"लटकनि मटकनि झलकनि कल कुंडल हारन की।"[1]
"सुभग घटा पर छटा छबीली थिरकि रहत ज्यों।"[2]
"चरन पैंजनियाँ छम छम बाजे।[3]

सूर ने भी दावानल प्रसंग में ध्वन्यात्मक चित्र खींचा है—

"झहरात झहरात दवानल आयो।···
झपटि झपटत लपट, फूल-फल चट चटकि।
फटत, लटलटकि द्रुम द्रुमनवायो।"[4]

नरसिंह के बारे में वर्णित पद में अन्नमाचार्य ने कई अनुकरणात्मक शब्दों का प्रयोग किया हैं—

विनरय्य नरसिंह विजयमु···
चिटचिट चिट मनि पेट पेट पेट मदि
पट पट मनुचुनु बगिले कंबमु ···।[5]

(चिट चिट और पट-पट की ध्वनि से खम्भ टूट रहा है और नरसिंह का आगमन हो रहा है।)

6.3. मुहावरे और लोकोक्तियाँ :

भाषा को प्रौढ़ता प्रदान करने में मुहावरे और लोकोक्तियों का कितना

---

1. रासपंचाध्यावी—नंददास, पृष्ठ 27
2. वही
3. अष्टछाप पदावली—परमानंद-पद 117
4. सूरसागर
5. (वा. 11) पद 218

हाथ है, यह बताने की आवश्यकता नहीं । इन सीधी और सरल उक्तियों में मानव समाज का चिरकाल का अनुभव संचित है, इनका आधार मनोवैज्ञानिक है, अतएव देश और काल की सीमा से ये परे हैं और मानव मात्र के हृदय को समान रूप से स्पर्श करने की क्षमता रखती हैं ।[1]

6.3.1. अष्टछाप के काव्य में प्रयुक्त मुहावरे :

गोविन्द गाढ़ै दिन के मीत (सू. सा.—पद 31)
एक बात की बीस बनाई (वही—पद 3250)
काहे को द्वै नाव चढ़त है (वही—पद 1925)
मिली दूधज्यों पानी (वही—पद 1898)
अपने ही सिर लादन (वही—पद 2446)
पानी पर पाथर तिरे (नाममाला—नन्ददास)
दाधे पर जस लागत लौन (विरह मंजरी—नन्ददास)
जबहिं लौं बाँधी मूठी (भ्रमर गीत—नन्ददास)
ग्यान की आँखिन देखी (वही)
गाँठ की खोइ के (नन्ददास)
पारस परसै लोह मात्र ह्वै जाई (वही)
होनी होय सो होउ (परमानन्ददास)
मढ़हा तर के गीत (वही)
भलो पोच अपनी न बिचारयो (वही)

6.3.2. ताल्लपाक के कवियों की रचनाओं में प्रयुक्त ।[2]

आसोदालु नेरुपु—चमत्कार दिखाना
नी चेल्लेलि तोडु—तुम्हारी बहन की कसम
वेरिवानि चेतिरायि—मूर्ख के हाथ का पत्थर (अनिश्चित विषय)
गोडुलि नानबेट्टु—मीन मेष करना
कंचमुलोनि कूडु—परोसा गया भोजन
इनपगुग्गिल्लु—लोहे के चने
एंडमावुल नील्लु—मृग तृष्णा का पानी

---

1. सूर और उनका साहित्य—प्रो. हरवंशलाल शर्मा, पृष्ठ 313
2. विशेष अध्ययन के लिए दृष्टव्य है ग्रंथ—
ताल्लपाकवारि पलुकुबडुलु—रामलक्ष्मी आरुद्र ।

करतलामलकमु—करतलामलक
गजस्नानमुलु—गज स्नान (व्यर्थ काम)
गौडपै सुन्नमु—दीवार पर लगाया गया चूना
चक्केर बोम्म—शक्कर की गुड़िया
सूदिवेंटदारमु—सुई के साथ धागा
तामराकुनीरु—कमल के पत्ते पर पानी
मुंजेति कंकणमुन कद्दमु—कंगन के लिए दर्पण
जलधिलोवानलु—समुद्र में वर्षा
नेतिबीरकाय नेयि—घी तोरे का घी
हव्यमु कुक्कल किच्चिनट्लु—हवन कुत्ते को देने के समान
वेसालेल्ल ग्रासाल कोरके—उदर निमित्तं बहुकृत वेषं
तेगिन गालिपड़ग—कटी पतंग

6.3.3. अष्टछाप के काव्य में प्रयुक्त लोकोक्तियां :

कंचन खोई, कांच ले आए (सूरसागर)
जाके हाथ पेड़, फल ताको (वही)
जीवन रूप दिवस दस ही के (वही)
सावन सरित न रुकै करै जो जतन कोउ अति (नन्ददास)
अति सर्वत्र भलो नहीं (वही)
अलिबिन कंवलहि को पहचाने। (नन्ददास)
विधि गत जब विपरीत तब पानी ही में आग (वही)
घर आये नाग न पूजहिं बावी पूजन जाहिं। (वही)

6.3.4. ताल्लपाक के कवियों के काव्य में प्रयुक्त लोकोक्तियां :

आकलि गोन्नवानिकवन्नमुपै नुंडिनट्लु
=भूखे के खाने पर ध्यान के समान।
काकल विटु चूपु कांत पै युंडि नट्लु
=जार की दृष्टि कामिनी पर जैसे।
देवुडु वरमिच्चिना पूजारिवरमीडु—
=भगवान प्रसन्न होने पर भी पुजारी बीच में रुकावट बनता है।
गुम्मडिकायंत मुत्तेमैते गट्टवच्चुना—
=मोती कुम्हड़ा जितना हो तो धरना कैसे
वेंड्रुक पट्टुक बोइ वेस कोंडवाकुट—
=बाल का सहारा ले कर पहाड़ चढ़ने की कोशिश करना।

वेन्नेललु चीकट्लु वेलदि सुखदुःखमुलु
=सुख और दुःख चाँदनी और अंधेरे के समान होते हैं।
वेन्न चेतबट्टि नेयि वेदकरानेल—
=हथेली में मक्खन रख कर घी के लिये क्यों ढूंढ़ना।
वित्तोकटिवेट्टगानु वेरोकटि मोलिचेना—
=जैसे बीज बोये तैसे ही वृक्ष पाये।

कभी कभी अन्नमाचार्य और सूरदास की रुचि एक ही पद में अनेक मुहावरों व लोकोक्तियों के प्रयोग की ओर हुई नज़र आती है। ऐसी जगहों में भाषा पर इन कवियों का अधिकार देखते ही बनता है। ऐसा लगता है कि मानों भाव और भाषा परस्पर कंधे से कंधा मिला कर चल रहे हैं। "अन्नमाचार्य में एक विशेष आदत भी दिखती है। पद के आरम्भ में या टेक में अगर कोई मुहावरा या लोकोक्ति आये, तो वे पद के हर चरण में तदनुरूप मुहावरों या लोकोक्तियों का प्रयोग करके पद में एक तरह का विशेष समन्वित रूप और एक प्रकार की विशिष्ट संतुलित गति संपादित करते हैं।"[1] उदाहरण के लिए प्रस्तुत है—

प्रलपन वचनैः फलमिह किं
चंचल कुड्य क्षालनया किं।
इतर वधू मोहितं त्वां प्रति
हित वचनै री हितु मिह किं।
सततं तवानुसरणमिदं मम
गत जल सेतु करणं किं।
विकल विनय दुर्विटंत्वां प्रति
सुकुमारार्द्र स्तुत्या किं।
प्रकट बहुल कोपनं मम ते
सकलं चर्वित चर्वण मेव।
शिरसा नत सुस्थिरं त्वां प्रति
विरसालपन विधिना किं।
तिरुवेंकट गिरि देव त्वदीय
विरह विलपनं वृथा वृथा।[2]

1. अन्नमाचार्य और सूरदास—एम. संगमेशम्, पृष्ठ 324
2. अन्नमाचार्य संकीर्तन—(वा. 12) पद 49

वैसे ही सूरदास के निम्न पद में मुहावरे व लोकोक्तियों की मानो बाढ़ सी आ गयी है।—

आए जोग सिखावन पांडे ।
परमारथी पुराननि लोद ज्यों वन जोर टांडे ।
हमरे गति-पति कमल नयन की, जोग सिखे ते रांडे ।
कहौ मधुप कैसे समाहिगे, एक म्यान दो खांडे ।
बहु षट पद कैसे खैयतु है, हाथिन के संग गांडे ।
काकी भूख गयी बयारि भवि बिना दूध घृत मांडे ।
काहै को झाला लै मिलावत, कौन चार तुम डांडे ।
सूरदास तीनों नहिं उपजात, धनिया धान, कुम्हाड़े ।[1]

इस प्रकार से इन कवियों ने लोकोक्तियों और मुहावरों के सफल प्रयोग कर अर्थ में सौंदर्य में एवं गांभीर्य गुणों का समावेश किया है ।

6.4. अलंकार :

काव्य के सौन्दर्य को बढ़ाने के लिए अलंकार अत्यन्त सहायकारी होते हैं। इसका कारण यह है कि अलंकार शब्द की व्युत्पत्ति 'अलम्' धातु से हुई है जिसका अर्थ है भूषित करना। अर्थात् भूषित करने वाले उपादान ही अलंकार है। आचार्य वामन ने "सौन्दर्यमलंकार :[2] कहा है जिसके अनुसार काव्य के सभी प्रकार के सौन्दर्यों को अलंकार में ही अन्तर्भूत कर दिया है। अलंकारों की चर्चा के सम्बन्ध में आचार्य केशवदास जी की उक्ति अवश्य स्मरणीय है—"भूषण बिनु न बिराजई कविता बनिता मित्र।"

अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों के काव्यों में अलंकारों की भरमार है जिनके द्वारा सौन्दर्य बोध हुआ है। सूर को तो मुक्तकंठ से सभी विद्वानों ने अलंकारों के प्रयोग में बेजोड़ माना है। आचार्य शुक्ल जी के अनुसार "सूर में जितनी सहृदयता और भावुकता है प्राय: उतनी ही चतुरता और वाग् विदग्धता भी है।"[3] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने सुन्दर शब्दों में सूर को अलंकारों के प्रयोग में निपुण मानते हुए कहा है—"सूरदास जब अपने विषय का वर्णन शुरू करते हैं तो मानों अलंकार शास्त्र हाथ जोड़ कर उनके पीछे पीछे दौड़ा करता है। उपमाओं की

1. सूरसागर—पद 4222
2. काव्यालंकार
3. भ्रमरगीत सार—पृष्ठ 23

बाढ़ आ जाती है, रूपकों की वर्षा होने लगती है।...पद-पद पर मिलने वाले अलंकारों को देखकर भी कोई अनुमान नहीं कर सकता कि कवि जान-बूझ कर अलंकारों का प्रयोग कर रहा है। पन्ने पर पन्ने पढ़ते जाइए, केवल उपमाओं और रूपकों की छटा, अन्योक्तियों का ठाट, लक्षण और व्यंजना का चमत्कार यहाँ तक कि एक ही चीज दो-दो दस दस बार तक तक दुहराई जा रही है, फिर भी स्वाभाविक और सहज प्रवाह कहीं भी आहत नहीं हुआ।"[1] अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों ने अपने भावों को व्यक्त करने के लिए अर्थ तथा शब्दालंकारों का प्रयोग किया है।

6.4.1. उपमा :

"भृकुटी धनुष, नैन सर साधे, सिर के सरि को टीको।
मनु घूंघट—पट मैं दुरि बैठ्यो, पारथि रति-पतहि को।"[2]

सूर ने सबसे अधिक अलंकृत रूप का वर्णन सुरतांत और रतिश्रान्ता राधा का किया है। डा. ब्रजेश्वर वर्मा के शब्दों में "कवि ने सुरति के चिह्नों से युक्त राधा के स्वरूप का वर्णन बड़े मनोयोग से किया है। यहाँ उसकी कल्पना में अभिनय चमत्कार उत्पन्न हो गया है। यद्यपि उपमान साधारण और परम्परा युक्त हैं पर सुरति की व्यंजना करने के लिए कवि ने उसमें नये-नये संशोधन कर दिये हैं।"[3]

"स्याम भये राधा बस ऐसे।
पातक स्वाति चकोर चंद्र ज्यों, चक्रवाक रवि जैसे।"[4]
"पुलकित सुमुखी भई स्याम-रस ज्यों जल में
काँची गागरि गरि।"[5]

"कच्ची गागर के जल में घुल-मिल जाने के समान राधा के श्याम मय हो जाने की उपमा कितनी मौलिक, स्वाभाविक एवं हृदय को छूने वाली है। अनन्य कृष्ण भक्त के लिए जहाज के पक्षी की उपमा हमें तो अत्यन्त प्रिय प्रतीत होती है, प्रत्युत सूर को भी अत्यन्त प्रिय है क्योंकि अपने पदों में एक से अधिक बार वे इसी उपमा का प्रयोग करते हैं।"[6]

---

1. हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ—डा. शिवकुमार शर्मा, पृष्ठ 302 से
2. सूरसागर—पद—2320
3. सूरसाहित्य—नवमूल्यांकन—डा. चन्द्रभान रावत से उद्धृत
4. सूरसागर—पद 2756 5. वही—पद—738
6. सूरदास और नरसिंह मेहता : तुलनात्मक अध्ययन
—ललित कुमार पारिख, पृष्ठ 257

नन्ददास ने भी कई उपमाओं का प्रयोग सफलता पूर्वक किया है। जैसे—

ह्वै गयी कछु बिबरन-तन, छाजत ज्यों छवि छाई।
रूप अनूपम बेलि तनक मनु धाम में आई।"[1]

अनुराग में रंगी गोपिका का कृष्ण में तल्लीन हो जाना ऐसा ही है जैसे—

"नन्ददास प्रभु यो मन मिलि गयो, ज्यों सारंग में पानी।[2]

कवि का कहना है कि गोपियों की कृष्ण दर्शन जन्य व्याकुलता मछली की तड़प के समान है।[3] विरह में रूप में मंजरी का हृदय" अवां अगिनि जिमि अंतर जरे।"[4] के समान है।

नन्ददास ने कृष्ण का रुक्मिणी को राजाओं के बीच से उठा ले जाने का सुन्दर उपमान देते हुए कहते हैं—

"ले चले नागर नगधर नवल तिया कों ऐसें।
मांखिन—आंखिन धूरि पूरि मधुआ मधु जैसे।
गरुड़ हरि जिमि सुधा दर्प सरपन कों सब हरि।
तैसे हरि ले चले आपुनो सहज खेल करि।"[5]

ताल्लपाक के कवियों ने भी उपलंकार का सर्वत्र प्रयोग किया है। अन्नमाचार्य अपने एक आध्यात्म संकीर्तन में कहते हैं—"भूखे को जिस प्रकार से भोजन की चाह होती है, उसी प्रकार भक्त को भगवान पर दृष्टि होनी चाहिए। इसी प्रकार से स्त्रियों पर विटों को, दूध पर बच्चे को, और धनवान को धन के लिए मोह होता है, वैसे ही भगवान वेंकटेश्वर पर भक्ति होनी चाहिए।"[6] श्री वेंकटेश्वर का नाम भी वे कई प्रकार की उपमाओं के साथ प्रस्तुत करते हैं। वे हरि नाम को प्यासे के लिए शीतल पानी, पतिव्रता को मंगलसूत्र, दरिद्र के आंगन का धन, धूप में चलने वाले को ठंडी छाया आदि से तुलना करते हैं।[7] उनके अनुसार जीवन दिये में डाला गया तेल के समान है और यह देह भूसा। दोनों ही अशाश्वत हैं। पेदतिरुमलाचार्य ने भी कई उपमालंकारों के माध्यम से अपनी भक्ति को प्रकट किया है। जैसे क्षीराब्धि शयना। जिस प्रकार कमल सूर्य के लिए प्रतीक्षा करता है उसी प्रकार मेरा

---

1. रुक्मिणीमंगल—दोहा—24
2. पदावली—पद 84
3. सिद्धान्त पंचाध्यायी—95
4. रूप मंजरी—पृष्ठ 117
5. रुक्मिणी मंगल—पृष्ठ 184
6. वा—2, संकीर्तन—52
7. आध्यात्म संकीर्तन—वा. 2 पद 289

हृदय भी तुम्हारे लिए प्रतीक्षा कर रहा है। जिस प्रकार से कुमुद चन्द्रोदय की प्रतीक्षा करते हैं, वैसे ही मेरे नयन कुमुद भी आपके मुखचन्द्र का दर्शन पाना चाहते हैं। मयूर मेघों को देखकर जिस प्रकार से आनन्द प्राप्त करते हैं, वैसे ही मेरा हृदय भी आपके श्यामल शरीर का स्मरण कर आनन्द मग्न हो रहा है।[1]

चिन्नन्ना ने अपने "अष्टमहिषी कल्याणमु" में रुक्मिणी को उठा कर ले जाने वाले कृष्ण की उपमा अमृत भाण्ड को उठा कर ले जाने वाले गरुड़ से की है। अनेक स्थानों पर उन्होंने रामायण, महाभारत और भागवत की उपमाओं को प्रस्तुत किया है। चिन्नन्ना के अनुसार जिस प्रकार से राम की पद रज के स्पर्श से पत्थर स्त्री बन गया वैसे ही उनकी जिह्वा में पड़ते ही तृण जड़ रूपी भाषा को भी निज रूप मिल गया।[2] उनकी अपूर्व क्षमता यह है कि वे दैनिक जीवन के कई चित्रों को उपमाओं में प्रस्तुत करते हैं। जैसे उनके अनुसार वृद्ध के पके हुए बाल गन्न की छूंछ (सीठी) के समान हैं।[3]

6.4.2. रूपक : सूर ने सांग रूपक का प्रयोग अधिक मात्रा में किया है।

"हरि हौ सब पतितन को राजा।
निन्दा पर मुख पूरि रह्यो जग, यह निसत नित बाजा।"[4]

नृत्यकार के सांग रूपक के द्वारा अपने दोषों का विस्तृत विवरण देते हुए उन्हें दूर करने की प्रार्थना है—

"अब मैं नाच्यो बहुत गुपाल।
काम क्रोध को पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल।"[5]

विनय सम्बन्धी पदों में दार्शनिकता के साथ-साथ सूर ने रूपक प्रस्तुत किये हैं।

नन्ददास की नायिका का हृदय जब भट्टी के समान विरह के कारण जलता है तो प्राकृतिक पदार्थ उसे और भी अधिक संतप्त करते हैं। इसलिए

"द्वैज चंद दिखि मैं भरि भारी। उगी गगन जनु काम कटारी।"[6]

नन्ददास ने रूपमंजरी की वय: संधि के चित्रण में सुन्दर रूपक बाँधा है—

"जुवन-राव जब उर पुर लयो। सैसव राव जघन बन गयो।
अरन लगे तब दोऊ नरेसा। छीन परयो तब तिय मधि देसा।"[7]

---

1. वैराग्य वचन मालिका गीतालु–14   2. परमयोगि विलासमु, पृष्ठ 100
3. वही—पृष्ठ 88   4. सूरसागर–पद 145   5. वही—पद 153
6. रूपमंजरी–पृष्ठ 117   7. वही—पृष्ठ 107

तथा

"लोचन तृषित चकोरन के चित चोंप चढ़ावत ।"[1]

ताल्लपाक के कवियों ने भी सांग रूपक के रूप में रूपकालंकार का प्रयोग किया है। यथा अन्नमाचार्य का कहना है कि नायिका ने लज्जा रूपी झाड़ पौधों को खोद कर फेंक दिया है और अपने चित्त रूपी खेत को कामना की प्रथम बहार में ही जो दिया। अब उसमें वह अभिलाषा रूपी बीज बो चुकी है। इसका फल यह मिला कि उसका घर प्रणय रूपी फसल से संपन्न हो गया।[2] अपने दार्शनिक विचारों के संदर्भ में अन्नमाचार्य रूपकालंकार का प्रयोग करते हैं—"संसार रूपी वृक्ष का भगवान ही फल हैं। कर्म रूपी निर्मल साम्राज्य के लिए भगवान ही राजा हैं। मन रूपी घोड़े के लिए भगवान ही घुड़सवार हैं। भक्ति रूपी चन्द्रोदय के लिए श्री वेंकटेश्वर ही समुद्र हैं।[3] नायिका के वर्णन में तो सहस्रों की संख्या में रूपकों का प्रयोग हुआ है। उसका लावण्य समुद्र से, मुख चन्द्रमा से, अधरों को मधु से, कुचों को पर्वतों से, नायिका की इच्छाओं को घोडों से, विरह को बड़वानल से और यौवन को क्षीर सागर से रूपक बाँधते हुए अन्नमाचार्य ने सम्पूर्ण क्षीर सागर मंथन का चित्र अनुपम रूप से प्रस्तुत किया है।[4] एक और रूपक है—देह एक यागशाला है। अज्ञान पशु है। वैराग्य तलवार है। ज्ञान अग्नि है। श्रीवैष्णव सभासद हैं। श्रीपाद तीर्थ सोमरस है। संकीर्तन सामगान है।[5] इस प्रकार से सम्पूर्ण मोक्ष साधना को ज्ञान यज्ञ के रूपक में बांधा है। पेदतिरुमलाचार्य भी रूपकों का प्रयोग अपने वैराग्य वचन मालिका गीतालु में किया हैं। वे इस सम्पूर्ण जगत की एक रंगमंच (नाट्य शाला) से तुलना करते हुए कहते हैं—मेरे सभी पुराने जन्म तुम्हारे सामने नाचने वाले नट-नटी हैं। पत्नी, पुत्र बंधु आदि ताली बजाने वाले हैं।[6] तिम्मक्का ने अपने सुभद्रा कल्याणमु में पुरुषों को कृष्ण सर्प माना है।[7]

6.4.3. **उत्प्रेक्षा :** उत्प्रेक्षा के अनेक उदाहरणों से सूरसागर भरा है। कृष्ण के मुख छवि का उदाहरण है—

---

1. रासपंचाध्यायी—पृष्ठ 165 2. अनुवाद—डा. के. रामनाथन
3. आध्यात्म संकीर्तन (वा. 2) पद 143
4. शृंगार संकीर्तन—(वा. 4) पद 164
5. आध्यात्म संकीर्तन (वा. 6) पद 148
6. संख्या—30 7. पृष्ठ 42

"मुख छवि कहा, कहौं बनाई ।
निरखि निसिपति वदन-सोभा गयो गगन दुराइ ।......
निकसि सरतें मीन मानो लरत कीर छुराइ ।"[1]

तथा

"मेरे भाई स्याम मनोहर जीवन ।
कुंतल कुटिल मकर कुंडल, भ्रुव नैन बिलोकनि बंक ।
... ...
मनहु नक्षत्र समेत इन्द्र-धनु सुभग मेघ अभिराम ।"[2]

कहीं कहीं सूर ने उत्प्रेक्षाओं के माध्यम से राधा का रूप चित्रित किया है। राधा के घूँघट उठाते ही उत्प्रेक्षाओं की छटा बरसा दी।

"प्रिया मुख देखो स्याम निहारि ।...
क्षीरोदक घूँघट हातो करि सन्मुख दियो उघारि ।
मनो सुधा कर दुग्ध सिंधु ते कढ्यो कलंक पखारि ।"[3]

उत्प्रेक्षाओं के माध्यम से चित्रित रति चिह्नों से युक्त राधा—

"उर भुज नील कंचुकी फाटी, प्रगटे हैं कुचकोरी ।
वन-वन मध्य देखिग्रत मानहुं, नवससि की छवि थोरी ।
आलस नैन सिथिल कज्जल, बलि, मनि ताटंकिनी मोरी ।
मानहुं खंजन, हंस कंज पर, लरत चंचु-पटु तोरी ।।"[4]

नन्ददास की रचनाओं में उत्प्रेक्षालंकार के उदाहरण दृष्टव्य हैं—

बाल बचे को रूप जनु दीप जग्यो जग ऐन
उड़ि-उड़ि परत पतंग जिमि नरनारिय के नैन ।"[5]
"भरि आये जल नैन प्रेम रस ऐन सुहाय ।
जनु सुन्दर अरविन्द अलिन दल बैठी हलाये ।"[6]
कोऊ इक नैननि अटकि गये ह्वै लोभ लुभारे ।
भरे भवन के चोर भए बदलत ही हारे ।"[7]

नन्ददास की उत्प्रेक्षाएँ बड़ी मार्मिक हैं। एक पद में रुक्मिणी के चलने पर इस प्रकार कहते हैं—

---

1. सूरसागर—पद 970
2. वही—पद 772
3. वही—पद 2736
4. वही—पद 3274
5. रूपमंजरी—छन्द 78
6. रुक्मिणी मंगल—पृष्ठ 142
7. रुक्मिणी मंगल, पृष्ठ 150

"अरुन चरन प्रतिबिम्ब अवनि मैं यों उनमानी ।
जनुधर अपनी जीभ धरत पग कोमल जानी ।"[1]

उत्प्रेक्षालंकार द्वारा नन्ददास ने राधा को यों सजाया है—

चिबुक कूप प्रिय मन परयो अधर सुधा रस आस,
कुटिल अलक लटकत काढ़न को कंटक डायो प्रेम के पास ।
चंचल लोचन ऊपर ठगढ़े हैं अंचन को मानो मधु हास,
नन्ददास प्रभु प्यारी छवि देखें बढ़ि है अधिक पियास ।[2]

तथा द्वारका पुरी के वर्णन के संदर्भ में नन्ददास कहते हैं कि

तोता, कोकिल, चातक आदि पक्षियों का मीठा शब्द ऐसा प्रतीत होता है मानो कामदेव की पाठशाला में विद्यार्थी वर्ग अपना पाठ याद कर रहा हो ।"[3]

ताल्लपाक के कवियों ने भी नायक नायिका के वर्णनों के अवसर पर उत्प्रेक्षाओं की छटा बरसा दी है । अन्नमाचार्य अपने एक संकीर्तन में नायिका में पद्मिनी, हस्तिनी चित्रिणी और शंखिणी जातियों का आरोप उत्प्रेक्षाओं के ही आधार पर लगाते हैं ।[4]

"अन्नमाचार्य की उत्प्रेक्षाएँ अपनी सानी नहीं रखती । स्वरूप, हेतु और फल तीनों प्रकार की उत्प्रेक्षाओं में कवि की चातुरी खूब झलकती है । वे अतिशयोक्तियां व अत्युक्तियां कर खिलवाड़ नहीं करते । हेतु प्रत्यतन कल्पना में भी संभावना सत्य सी मालूम पड़ती है । नायक भगवान वेंकटेश्वर श्रीवत्सलांछित है । उनका रंग काला है । इन दोनों को ले कर कवि का उक्ति चमत्कार देखिए—

"सखि, तुम्हारी डीठ लगी तो
छाती पर वह दाग भया ।
अच तुम्हारे विरह ताप से
तप कर नील शरीर भया ।"[5]

6.4.4. यमक : सूर की साहित्य लहरी में यमकालंकारों का प्रयोग

---

1. रुक्मिणी मंगल—नन्ददास छन्द 108
2. नन्ददास पदावली—पद 63
3. रुक्मिणी मंगल—पृष्ठ 144–145
4. श्रृंगार संकीर्तन—(वा. 12) पद 123
5. अन्नमाचार्य और सूरदास—एम. संगमेशम, पृष्ठ 302

अधिक मात्रा में दिखाई देता है। उन्होंने हरि, दधि, सारंग आदि शब्दों को ले कर यमक का उपयोग किया है। जैसे

"गहें सारंग करन सारंग सुर सम्हारत वीर :
नैन सारंग नैन मोतन, कवि जान अधीर।"[1]

तथा सूरसागर में—

"चली यवन मन हरि हरि लीन्हों।
पग द्वै जाति ठठकि फिरि हैरति,
जिय यह कहति कहा हरि कीन्हों।"[2]

नन्ददास की रचनाओं में यमक के कुछ उदाहरण हैं—

"माह मास के कदन कर, मास रह्यो नहिं देह,
स्वास रहें घट लपटि के बदन चहन के नेह।"[3]

ताल्लपाक के कवियों की द्विपद रचनाओं में विशेष रूप से यमक का प्रयोग हुआ है। जैसे विभिन्न फल और पुष्पों के नामों की इस परम्परा में—

पनस भू जातमुल पारि जात मुलु
घनसार पूगमुल कनक पूगमुलु
चिरि बिलववारमुल् सिंधुवारमुलु
सरस रसालमुल चक्रसाल मुलु। ...[4]

अन्नमाचार्य के संकीर्तनों में भी यमकालंकारों के विभिन्न उदाहरण प्राप्त होते हैं। जैसे एक संकीर्तन में पर्वत शब्द को ले कर नायिका के स्तन तथा कृष्ण के गाय चराने का और "टेढ़ा" शब्द को ले कर नायिका के कुटिल कुंतल और नायक का गलियों में घूमना आदि चमत्कार दिखाये गये हैं।[5] विद्वानों के अनुसार ताल्लपाक के कवि यमकालंकार के प्रयोग में अत्यन्त कुशल हैं। क्योंकि यमकों के भेद-उपभेदों का भी प्रयोग इन्होंने किया है।

6.4.5. **संदेहालंकार :** संदेहालंकार के उदाहरण हैं—

"जनु घन तें बिछुरी विजरी मानिनि तनु काछे,
किधौं चंद्र सों रुसि चन्द्रिका रहि गई पाछै।"[6]

---

1. साहित्य लहरी—पद 42
2. पद—2068
3. विरह मंजरी—छन्द 158
4. परमयोगि विलासमु—चिन्नन्ना, पृष्ठ 53
5. शृंगार संकीर्तन—(वा. 3) पद 416 तथा (वा. 20) पद 53, 64, (वा. 3) पद 147 आदि
6. रास पंचाध्यायी—नन्ददास

अन्नमाचार्य के अनुसार कमल पर भ्रमरों को देख प्रिया का मुख समझ कर, और यह सोच कर कि वह सरोवर में तैर रही है, नायक भी सरोवर में कूद जाता है ।"[1]

6.4.6. प्रतीपालंकार :

मृगज लजे खंजन लजैं कंज लजेंछविहीन
दृगन देखि दुख छीन ह्वै मीन भये जललीन ।[2]

"हे रमणी । तुम्हारे अधरामृत के पान करने वाले को अमृत की आशा क्यों रहेगी ?" कहते हुए ताल्लपाक के कवि नायिका के अरुणाधर कुच, बाहु, दाँत और नायिका के साथ मिलन को (उपमेय) क्रमशः अमृत कुंभ, कल्पलतिका, चिन्तामणि, देव साम्राज्य—से उपमान देते हुए कहते हैं कि उनके होते हुए (उपमेय) इनकी (उपमान) आवश्यकता क्या है ?[3]

4.6.7. विषमालंकार :

"कहाँ हमारी प्रीति कहाँ तुम्हारी निठुराई ।"[4]
"एनुगु लावेन्त इल मावटीडेंत"[5]

अर्थात् कहाँ का हाथी और कहाँ का महावत ? कहाँ का घोर अंधकार और कहाँ छोटा सा दिया ? कहाँ का घना जंगल और कहाँ का परशु ?

6.4.8. अनुप्रास :

"धरनि पग पटकि कर झटकि भौंहनि
मटकि अटकि मन तहाँ रीझै कन्हाई ।"[6]
"थलज जलज झलमलत, ललित बहु भंवर उड़ावै ।
उड़ि उड़िपरत पराग कछू छवि कहत न आवै ।"[7]

पेद तिरुमलाचार्य का शृंगार वृत्त पद्याल शतकमु में सुन्दर अनुप्रास मिल जाते हैं । जैसे—

"श्री रमणी मणी प्रमद जीवन जीवन वासवा धार विशेष शेष वसुधा धर नाथ विहार हार······"

अन्नमाचार्य का भी अनुप्रास प्रिय अलंकार है एक उदाहरण प्रस्तुत हैं—

---

1. शृंगार संकीर्तन—(वा. 19) पद 67
2. रूपमंजरी—नन्ददास, पृष्ठ 108
3. परम योगिविलासमु—चिन्नन्ना, पृष्ठ 51-52
4. रास पंचाध्यायी—नन्ददास
5. नीति शतकमु—पेद तिरुमलाचार्य, 52
6. सूरसागर—पद 1041
7. रास पंचाध्यायी—नन्ददास, 6

"भोगीन्द्र शयन परिपूर्ण पूर्णानंद
सागर निज वास सकलाधिप...... ।"[1]

ताल्लपाक के कवियों की रचनाओं में शब्दालंकारों का भंडार है। जैसे—

"कनु पट्टं गनुपट्टमेल नतिवं गापाडरा पाडरा
मनकेला मनकेल नुन्नदि दे ।"[2]

व्यंग्योक्तियाँ अष्टछाप और ताल्लपाक के कवियों में बराबर यथा स्थान दिखते हैं। जैसे सूर की गोपियाँ तो व्यंग्य कसने में अपना सानी नहीं रखतीं। एक से बढ़ कर एक व्यंग्य बाण बेचारे ऊधव पर छोड़ती हैं। जैसे—

"ऊधौ जोग कहा है कीजतु ।
ओढ़ियतु है या बिछैयतु है, किधौ खैयतु है, किधौ पीजतु ।"[3]

अथवा

"ऊधौ जोग बिसर जनि जाहु ।
बाँधहु गांठ कहू जनि छूटे, फिर पाछै पछिताहु ।
ऐसी वस्तु अनूपम मधुकर, मरम न जानै और ।
ब्रजवासिन के नहिं काम की, तुम्हारे ही है ठौर ।"[4]

नन्ददास की भी गोपियाँ कम नहीं। कुब्जा को ले कर उनका कहना है—

"गोकुल में जोरी कोऊ पावत नाहिं मुरारि ।
मानों त्रिभंगी आपु हैं करी त्रिभंगी नारि ।
रूप गुन साल की ।"[5]

अन्नमाचार्य भी व्यंग्योक्ति करने में सिद्धस्त्र हैं। अवतारों को लेकर उनका कहना है—"यह स्वामी कभी छोटा और नाटा होकर जमीन नापते हैं तो बस, दूसरे ही क्षण आसमान छू लेते हैं। अब विरागी बन कर जंगल जाते हैं तो अगले ही क्षण अनुरागी होकर औरत के लिए युद्ध तक कर बैठते हैं। आज चोरी करते हैं तो कल बुद्धिमान बन बैठते हैं।"[6]

6.5. शैली : अष्टछाप की सम्पूर्ण रचना गेय मुक्तक पद शैली में ही

---

1. वा. 5 पद 25
2. श्रृंगार वृत्त पद्य शतकमु—पेदतिरुमलाचार्य—पद्य 23 तथा 30, 33, 16 आदि।
3. सूरसागर—पद 4585
4. वही—पद 4428
5. भंवरगीत—छन्द 54
6. अन्नमाचार्य और सूरदास—एम. संगमेशम, पृष्ठ 309

हुई। इसका कारण यह है कि "गीत शैली हृदय की कोमल भावनाओं को व्यक्त करने के लिए नितांत उपयुक्त हैं क्योंकि गीत लय की मधुर लहरियों को स्वरों के रेशमी सूत्र में बाँध कर चलते हैं।"[1] केवल नन्ददास की रचनाओं में ही शैली का वैविध्य थोड़ा बहुत दिखाई देता है। यद्यपि उन्होंने संस्कृत के आधार पर भाषा दशम स्कंध का अनुवाद किया है, किन्तु इसमें महाकाव्य शैली के लक्षण सम्पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं हैं। कुछ विद्वानों ने नन्ददास के रुक्मिणी मंगल और रूप मंजरी को खण्ड काव्य माना है। अष्टछाप के सम्पूर्ण काव्य को पद शैली के अन्तर्गत ही रखा जाता है। इस गीत शैली में भी विषय के अनुरूप वैविध्य अवश्य दिखाई देता है। अष्टछाप के प्रतिनिधि कवि सूरदास की गीत शैली का विभाजन निम्न रूप से किया जा सकता है।।[2]

जैसे—1. भागवत या कथा सम्बन्धी गीत
2. अवांतर कथा या कथनक गीत
3. सामान्य चरितात्मक गीत
4. प्रसंग वर्णन के गीत
5. लीला वर्णन के गीत
6. रूप वर्णन के गीत
7. प्रभाव वर्णन के गीत
8. आध्यात्म तत्व वर्णन के गीत
9. दृश्य-वर्णन के गीत तथा
10. दृष्ट-कूट गीत।

"सूर गीत-सम्राट हैं। भावों का प्रचुर वैविध्य शैलीगत वैविध्य में प्रच्छादित हैं। गीतों के पात्र पहली बार महाकाव्य के पात्रों से होड़ ले रहे हैं। सूर के गीतों की यशोदा, गोपी, और राधा सभी का प्रगीतपरक संस्कार हुआ है।...सूरसागर के गीतों में प्रबन्ध सूत्र भी है संवाद भी है, चित्र भी हैं, और वर्णन भी है। इन गीतों में सरलता भी है, अलंकृति भी है, शास्त्रीय झलक भी है और लोक गीतों की सरलता है। संक्षेप में सूर के गीत-साहित्य में वह सब कुछ है जो गीत काव्य की आत्मा के चरमोत्कर्ष के लिए आवश्यक है"[3]। मोटे रूप में अष्टछापी कवियों के गीतों को वल्लभ संप्रदाय की मान्यता

1. सूर और उनका साहित्य—प्रो. हरबंशलाल शर्मा, पृष्ठ 286
2. अन्नमाचार्य और सूरदास—एम् संगमेशम् के आधार पर
3. सूर साहित्य—नव मूल्यांकन—डा. चन्द्रभानु रावत, पृष्ठ 394

के अनुसार हास्य, सख्य और माधुर्य, तीन भावों के पदों में विभाजित कर सकते हैं।

ताल्लपाक के कवियों के विशाल साहित्य के अध्ययन के सम्बन्ध में हमने यह देखा है कि उन्होंने तेलुगु भाषा की प्रचलित सभी काव्य शैलियों को अपनाया है। जैसे—पद, द्विपद, शतक, दंडक, रगड़, उदाहरण, वचन संकीर्तन, लक्षण ग्रंथ, व्याख्यान आदि। इन सभी शैलियों के परिचय के परिप्रेक्ष्य में उनके साहित्य का अध्ययन पीछे दिया जा चुका है।[1] ताल्लपाक के कवियों ने भी अधिक मात्रा में मुक्तक गेय पद शैली को ही अपनाया है। उनके प्रतिनिधि कवि अन्नमाचार्य के गीतों का वर्गीकरण निम्नलिखित रूप से कर सकते हैं।[2]

1. स्तुति गीत
2. उपदेश गीत
3. आध्यात्म गीत
4. कथानक गीत
5. वर्णनात्मक गीत
6. लीलापरक गीत
7. संवाद गीत
8. भावात्मक गीत
9. लोक गीत
10. संस्कृत के गीत

ताल्लपाक के कवियों के संकीर्तनों के पिछले अध्ययन से पता चलता है कि वे मोटे रूप से अध्यात्म तथा शृंगार संकीर्तनों में विभाजित हैं। उनकी रचनाओं में लोक गीतों का भी समुज्जवल भंडार है। अनगिनत संख्या में रचे गये उनके लोक गीतों के केवल चन्द नाम उदाहरण के लिए नीचे प्रस्तुत हैं—

अल्लोनेरेल्लु, कूगुगु, दोबूचि आदि क्रीड़ा गीत।

अत्ताकोडल्लु (सास गहू), सौत आदि संवाद गीत।

एला. गोल्ल, चेंचीत, तुम्मेदरो, बोय, वेन्नेल, सिन्नेका, ओबावा आदि शृंगार गीत।

मेलुकोलुपु, वेगु, आदि जगाऊ गीत।

ओलाल, सुव्वि आदि ऊखल गीत।

इनके अलावा आरती, अभ्यंजन, मांगलिक, झूला, आखेट, चन्दा, केलि मंथान, व्रत, विजयगीत, पालना, उपालम्भ, दरबार, विवाह गीत आदि हजारों की संख्या में लोकगीतों की शैली में बंधे हुए हैं। इस प्रकार से ताल्लपाक के कवियों ने शिष्ट साहित्य के साथ साथ लोक साहित्य को भी समुचित स्थान दिया है।

---

1. प्रस्तुत—प्रबन्ध का-अध्याय तीन देखिए
2. अन्नमाचार्य और सूरदास—डा. एम. संगमेशम के आधार पर

अन्नमाचार्य के पदों की विशेषताओं की प्रशंसा उनके पुत्र स्वयं पेद तिरुमलाचार्य ने इस प्रकार से की—शक्कर के समान मीठे, वज्रों के समान कांतिमान, दर्पण के समान स्वच्छ, पुष्प, गुलाब जल तथा कपूर के समान सुगंध बिखेरने वाले, मोतियों के समान स्वच्छ होकर अन्नमय्या के पद गुरु के समान दर्शन का प्रबोध कर, वेंकटेश्वर की प्रशंसा के पात्र बनने में सहायकारी होते हैं।[1]

संकीर्तन लक्षण में यह भी कहा गया है कि अन्नमाचार्य के पद वेद, शास्त्र, पौराणिक कथाएँ, सुज्ञान सार, यति लोक में विहार करवाने वाले विपुल मंत्रार्थ सहित, नीति युक्त रचनाएँ हो कर श्री वेंकटेश्वर के श्रृंगार क्रीड़ा रहस्यों की स्तुतियाँ हैं।[2]

6.6. **छन्द :** छन्दोबद्ध रचनाएँ स्मरण करने के लिए अधिक सुविधा-जनक होती हैं। इसलिए विश्व का समस्त प्राचीन साहित्य छन्दोबद्ध ही है। वेदों को तो छन्द के नाम से ही व्यवहार किया जाता है। छन्द दो प्रकार के होते हैं—वार्णिक और मात्रिक। हिन्दी और तेलुगु भाषाओं के प्रवृत्तिगत भेद के अनुसार हिन्दी काव्य में मात्रिक छन्दों का प्रयोग अधिक हुआ है। इसके विपरीत तेलुगु साहित्य की मुख्य प्रवृत्ति संस्कृत वर्णवृत्तों के प्रयोग की ओर है। विद्वानों के अनुसार सूरदास ने अपने वर्णनात्मक प्रसंगों के लिए परम्परागत चौपाई, चौपई, दोहा, रोला आदि तथा उन पर आधारित छन्दों को अपनाया है। इनके अलावा चन्द्र, भानु कुण्डल, सुखदा, राधिका, उपमान आदि छोटे छन्द तथा गीतिका, विष्णुपद हरि पद, सरसी, लावणी, मत्त सवैया, हरिप्रिया आदि बड़े छन्दों का प्रयोग किया है।[3]

सूर के छन्दों के विषय में डा. ब्रजेश्वर वर्मा लिखते हैं, "केवल उसने आवश्यकतानुसार छन्दों में परिवर्तन और परिवर्धन करके अपनी मौलिक उद्भावना प्रदर्शित की है, वरन् प्रायः उसने मात्राओं के नियमों का सर्वत्र पालन नहीं किया है। सावधानी से चुने हुए उदाहरणों में भी यति-भंग दोष तो प्रायः किसी भी छन्द में सरलता से मिल सकता है। लिखित रूप में पढ़ने से गति भी भंग होते दिखाई देती है। ये त्रुटियाँ वस्तुतः इस कारण से हैं कि इन पदों के निर्माण में संभवतः पिंगल की अपेक्षा संगीत का अधिक ध्यान रखा गया है।"[4]

---

1. आनन्दमूर्ति के आधार पर
2. चिनतिरुमलाचार्य
3. द्रष्टव्य है—डा. ब्रजेश्वर वर्मा, प्रो. हरवंशलाल शर्मा आदि विद्वानों के ग्रंथ
4. अन्नमाचार्य तथा सूरदास—डा. एम. संगमेशम से उद्धृत, पृष्ठ 334

परमानन्ददास की रचना गेय पद शैली में हैं, जो विभिन्न राग-रागिनियों पर आधारित है। उनके कुछ लंबे प्रसंगों में चौपाई तथा दोहा का प्रयोग मिलता है। जैसे भ्रमर गीत सम्बन्धी लंबा पद—

'कमल नैन मधुबन पढ़ि आई, गोपिन पास पठाए।
ब्रज जन जीवन हैं केहि लागी, रहते संग सदा अनुरागी।'

इसी प्रकार से "सार" छन्द का प्रयोग किया गया है। "सार" छन्द में 28 मात्रायें होती हैं और 16, 12 के बीच यति होती है।[1]

नन्ददास ने विभिन्न शैलियों के साथ साथ विभिन्न छन्दों का भी प्रयोग किया है। जैसे—रास पंचाध्यायी, सिद्धान्त पंचाध्यायी और रुक्मिणी मंगल में रोला छन्द का प्रयोग स्पष्ट रूप से किया है। "किन्तु भ्रमर गीत की रचना का आरंभिक छन्द त्रिलोकी है और उसके बाद के सभी छन्द रोला-दोहा का मिश्रण है। इसके बाद दस पंक्तियों की टेक भी दी गयी है। श्याम-सगाई की रचना भी इसी छन्द में की गयी है। रोला छन्द के अतिरिक्त अनेकार्थ भाषा और नाम माला में दोहा छन्द का प्रयोग किया गया है। दोहा-चौपाई छन्द में तीन मंजरियों—रूप मंजरी, विरह मंजरी, रस मंजरी के अतिरिक्त सुदामा चरित, गोवर्धन लीला और भाषा दशम स्कंध की रचना हुई है। पदावली में पद और छन्दों का मिश्रण है। पदों के रूप में जिन विभिन्न छन्दों का कवि ने प्रयोग किया है वे हैं—सरसी, चौपाई, विष्णु पद, चौपई, सोरठा दोहा कवित्त और सवैया।"[2]

डा. दीनदयाल गुप्त के मत में "अष्टछाप में संगीत और शब्दों की अर्थानुगामिनी ध्वनि का सबसे अधिक मधुर गुण नन्ददास की भाषा में है और विशेष रूप से उनकी रास पंचाध्यायी में। नन्ददास के रोला छन्दों की भाषा में जैसी लय और संगीतात्मकता है, वह ब्रजभाषा के किसी भी कवि की रचना में नहीं है।"[3]

ताल्लपाक के कवियों की रचनाओं में द्विपद छन्द, मंजरी द्विपद, रगड़ा, उदाहरण, दंडक तथा वचन छन्दों का प्रयोग हुआ है। इनके अलावा कलिका, उत्कलिका, उत्साह, विषम, सीस आदि मात्रा छन्दों के साथ साथ लोक गीतों

---

1. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय—डा. दीनदयाल गुप्त के आधार पर
2. नन्ददास-विचारक रसिक कलाकार—रूपनारायण, पृष्ठ 251–52
3. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय—पृष्ठ 761

के छन्दों का भी ताल्लपाक के कवियों ने अपने संकीर्तनों में तथा अन्य काव्य रूपों में प्रयोग किया है।

6.6.1. द्विपद : पिछले अध्याय में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि तेलुगु साहित्य को मार्गी और देशी कविता नामक दो शाखाओं में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम पंडितों का साहित्य है तो द्वितीय लोक जीवन से सम्बन्धित। देशी कविता ने ही "द्विपद" नामक दो चरणों के छन्द को जन्म दिया, जो अत्यन्त प्रख्यात है। तेलुगु साहित्यकारों के अनुसार द्विपद छन्द अन्य कई छन्दों की जननी है। यह एक मात्रिका छन्द है, जिसमें दो चरण ही नहीं मालिका के रूप में कई चरण भी होते हैं। प्रत्येक चरण में तीन इन्द्र गण और एक सूर्य गण का विधान रहता है।[1] दो चरणों की संधि "प्रास" से होता है। साथ ही, प्रत्येक पंक्ति में "यति" की योजना भी रहती है। प्रास से तात्पर्य चरण के द्वितीयाक्षर से है जो छन्द के सभी चरणों में द्वितीयाक्षर के रूप में दुहराया जाता है। उदाहरण के लिए निम्न छन्द में प्रास अक्षरों को रेखांकित किया गया है—

"वाणीश नुतकुनु व्रतकक्षि विचल
देणिकि श्रीवेंकटेशु राणिकिनि
सारस गेहकु जारुबाहकुनु
सार लावण्यकु सकल गण्यकुनु।"[2]

"यति" से तात्पर्य है यति स्थान पर आने वाला वह वर्ण जो चरण के आदि अक्षर से वर्ण-मैत्री अथवा ध्वनि साम्य रखता है। उदाहरण के लिए रेखांकित अक्षर यति हैं।

"ई राज बिम्बम्मु नीडेन्नुट्टेलु
श्री राम राम यच्चेलव मोमुनकु······
पंकज नेत्रि यप्पड़ति लावण्य
मि—कोक्क तेरगुन नेरिंतितु विनुमु।"[3]

द्विपद छन्द अपनी सरलता के लिए प्रसिद्ध है। इस छन्द के प्रति अपने विशेष प्रेम के ही कारण चिन्नन्ना ने अपनी चारों कृतियों को द्विपद छन्द में ही बाँधा। द्विपद छन्द में रचे काव्य पाठ्य और गेय भी हैं।

---

1. डा. वेटूरि आनन्द मूर्ति के आधार पर
2. अष्टमहिषी कल्याणमु—चिन्नन्ना, पृष्ठ 58 3. वही—पृष्ठ 186

6.6.2. मंजरी द्विपद : द्विपद छन्द से ही मंजरी द्विपद की सृष्टि "प्रास" नियम को हटा देने से हो जाती है। द्विपद के अन्य लक्षण अर्थात् तीन इन्द्र गण और एक सूर्य गण तथा यति नियम रहते हैं। ताल्लपाक के कवियों की शृंगार मंजरी (अन्नमाचार्य) चक्रवाल मंजरी (पेद तिरुमलाचार्य) तथा सुभद्रा कल्याणमु (तिम्मक्का) नामक रचनाएँ इसी छन्द में रची गयी हैं।

6.6.3. रगड़ा : जहाँ द्विपद में केवल आदि प्रास का ही प्रयोग होता है वहाँ रगड़ा में आदि और अन्त में प्रास नियम है। उदाहरण के लिए पेद तिरुमलाचार्य के "सुदर्शन रगड़ा" को ले सकते हैं—

"ओंकाराक्षर युक्तमु चक्रमु
सांक मध्य वलयांतर चक्रमु
शठमत खडन चतुरमु चक्रमु
कठिन पवि निकर कल्पित चक्रमु"[1]......

इसमें 108 पंक्तियाँ अर्थात् 59 रगड़ाएँ हैं।

6.6.4. उदाहरण : यह वर्ण वृत्त और मात्रिक छन्दों का मिश्रित रूप है। इसका ढाँचा विभक्तियों के अनुसार बनता है। अष्ट विभक्तियों के अनुसार इस काव्य का विभाजन रहता है। प्रत्येक विभक्ति के साथ पहले वर्ण वृत्त रहता है जो चंपक, उत्पलमाला, शार्दूल और मत्तेभ में से कोई भी वृत्त हो सकता है। वर्ण वृत्त के पश्चात् दो मात्रिक देशी छन्द रहते हैं। इनके नाम क्रमशः कलिका और उत्कलिका हैं। कलिका में आठ चरण होते हैं और उत्कलिका में चार।[2] पेदतिरुमलाचार्य कृत "श्री वेंकटेश्वरोदाहरणमु" इसी छन्द में लिखा गया है। शायद छन्दोबन्धन अधिक होने के कारण इसका बहुत अधिक प्रचार नहीं हो सका।

6.6.5. दंडक : गद्य और पद्य के बीच दंडक आते हैं। दंडकों में प्रमुख रूप से एक ही अक्षर गण आरम्भ से ले कर अन्त तक पुनरावृत्त होता रहता है। लघु-गुरु वर्णों का एक सुनिश्चित विधान रहने पर भी यह वर्ण वृत्त के अन्तर्गत नहीं आ सकता। ताल्लपाक के कवियों ने शृंगार दंडक (पेद तिरुमलाचार्य) तथा अष्टभाषा दंडक (चिनतिरुवेंगलाचार्य) की रचना की। शृंगार दंडक की एक झलक प्रस्तुत है—

---

1. पृ. सं—64

1. हिन्दी और तेलुगु वैष्णव भक्ति साहित्य—डा. के रामनाथन्, पृष्ठ 258 के आधार पर

"संशोभिहस्तार विदुन, सदानंदु, गोविंद नंकिंचि
यंकिंचि, मय्यिंदिरानाथु गांभीर्य चातुर्य...... ।"[1]

6.6.6. **शतक** : टेक के आधार पर शतक का नामकरण ही नहीं वरन् छन्द भी निर्भर रहते हैं। जैसे "सुमती" टेक के कारण सुमती शतक की रचना कंद छन्द में हुई। उसी प्रकार से वेमना शतक को आटवेलदि छन्द में बाँधना पड़ा क्योंकि उसकी टेक "विश्वदाभिराम विनुर वेमा" है। ताल्लपाक के कवियों ने इसमें निम्न रचनाएँ की—वेंकटेश्वर शतक (अन्नमाचार्य)—चंपक-माला छन्द, शृंगार वृत्त पद्य शतक (पेदतिरुमलाचार्य)—शार्दूल, चंपकमाला, उत्पलमाला, मत्तेभ आदि छन्द, नीति पद्याल शतक (पेदतिरुमलाचार्य) सीस छन्द। पेदतिरुमलाचार्य ने अपने शृंगार वृत्त पद्याल शतकमु में प्रास को केवल द्वितीय अक्षर तक ही सीमित न कर, तृतीय अक्षर तक भी बढ़ा कर अद्भुत चमत्कार किया है। किन्तु, इससे भाव में किसी प्रकार की बाधा भी नहीं आने दी। जैसे—

"कलरा नाकिल
गलरा नीवल
वलरा जव्वल
कोलरा काकल"[2]

तथा

"गरुपारं दमिरेचि बं
गरुपारा वतनेमि—वान्पुड
गरुपारा जवमेंत—भावं बेरुं
गरुपारं बुग......[3]

ताल्लपाक के कवियों ने तेलुगु तथा संस्कृत दोनों प्रकार के संकीर्तनों में प्रास नियम का पालन किया है, (वास्तव में संस्कृत संकीर्तनों के लिए इसकी आवश्यकता नहीं) जो उनकी एक खास विशेषता है। उदाहरण के लिए

करेण किं माँ गृहीतुं ते,
हरे फणि शय्या संभोग......[4]

---

1. पृ. सं—87 2. पद्य—6 3. वही—पद्य 13
4. अन्नमाचार्य संकीर्तन (वा. 4) पद 116

6.6.7. लोक गीतों के छन्द :

लोक गीतों के अनुसार ही उनमें छन्दों का प्रयोग भी हुआ है। उनमें त्रस्य गति, चतुरस्य गति, खंड तथा मिश्र गति प्रमुख हैं। श्री वेटूरि आनन्द-मूर्ति[1] के आधार पर निम्न उदाहरण प्रस्तुत हैं।

त्रस्य गति—तकिट के अनुसार प्रत्येक चरण में आठ पद होते हैं।

वेंक टाद्रि विभुनि बासि विरहि यैन रमणि जूचि

चतुरस्य गति : किटतक—किटतक के अनुसार प्रत्येक चरण में छह पद होते हैं।

एक्कडि मानुष जन्मं बेत्तिन फलमे मुन्नदि।

खंड गति—तकतकिट—तकतकिट के अनुसार सात पद प्रत्येक चरण में होते हैं।

अलरचं चलमैन आत्मलं देखनी अलवाटु चेसेनी उय्याला।

मिश्र गति—तकिट तक तक—तकिट तक तक के अनुसार प्रत्येक चरण में चार पद आते हैं—

"एमिचित्रं बेमिमहिमलु एमिनीमाया विनोदं

6.7. संगीत : "जिस प्रकार मूर्त विधान के लिए कविता चित्र-विद्या की प्रणाली का अनुसरण करती है, उसी प्रकार नाद—सौष्ठव के लिए वह संगीत का कुछ कुछ सहारा लेती है। नाद—सौन्दर्य से कविता की आयु बढ़ती है। ताल-पत्र, भोज पत्र, कागज आदि का आश्रय छूट जाने पर भी वह बहुत दिनों तक लोगों की जिह्वा पर नाचती रहती है।···अतः नाद सौन्दर्य का योग भी कविता का पूर्ण स्वरूप खड़ा करने के लिए कुछ न कुछ आवश्यक होता है।"[2] अर्थात् कविता में लय के कारण माधुर्य की सृष्टि होती है जो उस कविता के स्थायित्व को बढ़ाने में सहायकारी बनता है। अतः कवि का ध्यान अवश्य ही संगीत और लय की ओर जाता है।

आलोच्य युग तक आते-आते संगीत और नृत्य भक्ति साधना में प्रवेश कर चुके थे। अतः उत्तर और दक्षिण दोनों ही प्रदेशों के मंदिरों का वातावरण इनसे भर गया था। इसी के साथ-साथ पद साहित्य की प्रतिष्ठा भी बढ़ने लगी थी। सगुण भक्ति में संकीर्तन सेवा का महत्व होने के कारण तथा स्वयं

1. दृष्टव्य हैं—ताल्लपाक कवुल पद कवितलु-भाषा प्रयोग विशेषालु
2. चिन्तामणि-रामचन्द्र शुक्ल—भाग 1 पृष्ठ 179

उच्चकोटि के गायक होने के कारण इनके पदों के साथ-साथ अन्य काव्यों में भी संगीत का समावेश हो गया है। सूर ने स्वयं कहा था "ताते सूर सगुन लीला पद गावे।"[1]

सूर तो संप्रदाय में दीक्षित होने से पहले से ही गवैये के रूप में विश्रुत थे। अतः उनकी रचनायें राग और ताल के अनुकूल हैं। सूरसागर के हर पद पर उसके राग का नाम दिया गया है। शुक्ल जी कहते हैं—सूर में कोई राग या रागिनी छूटी नहीं होगी। यह भी कहा जाता है—सूर के गान ऐसे राग-रागिनियों में हैं जिनमें से कुछ के तो लक्षण भी अब प्राप्त नहीं हैं। ऐसी राग-रागिनियां या तो सूर की अपनी सृष्टि है या अब उनका प्रचार नहीं हैं। सूरदास द्वारा प्रयुक्त राग-रागिनियों में से कुछ नाम हैं—राग बिलावल, धनाश्री, सारंग, केदारा, असावरी, कल्याण, गान्धार, गूजरी, झिझोटी, टोड़ी, जै जैवंती, गौरी, नटनारायण आदि लगभग 69 रागों का प्रयोग किया है।[2] डा. रामकुमार वर्मा के शब्दों में, सूर की कविता में संगीत की धारा इतनी सुकुमार चाल से चलती हैं कि हमें यह ज्ञात होने लगता है कि हम स्वर्ग के किसी पवित्र भाग में मंदाकिनी की हिलती हुई लहरों का स्पर्शानुभ कर रहे हैं।"[3] परमानन्द दास ने भी कान्हरा, गौरी, सारंग, गुजरी, देवगांधार विभासु, मलार, बसन्त, जैतश्री आदि रागों का प्रयोग किया है।[4] नन्ददास के काव्य में सर्वत्र संगीत का तत्व विराजमान है। उन्होंने भगवान को पाने के लिए रूप मार्ग के अलावा नाद मार्ग का भी उल्लेख किया है। "नाद मार्ग से कवि का अभिप्राय मुरली ध्वनि श्रवण कर उसी का अनुसरण करते हुए श्रीकृष्ण तक पहुँचना है।"[5] इसीलिए गोपियाँ मुरली ध्वनि के अमृत रस का आस्वादन करते ही लोकलाज, भय सब कुछ त्याग कर कृष्ण की ओर खिंची जाती हैं। सिद्धान्त पंचाध्यायी में मुरली को "शब्द ब्रह्म मय" कहा गया है।

---

1. सूरदास—रामचन्द्र शुक्ल
2. द्रष्टव्य है—लेख—"सूरसागर के राग तथा उनका परिचय"
   —डा. चितरंजन ज्योतिषी
3. हिन्दी साहित्य: युग और प्रवृत्तियाँ
   —डा. शिवकुमार शर्मा, पृष्ठ 302 से उद्धृत
4. अष्टछाप और बल्लभ संप्रदाय—दीनदयाल गुप्त, पृष्ठ 671
5. नन्ददास रसिक, विचारक, कलाकार—रूपनारायण, पृष्ठ 114

उनकी पदावली भी विभिन्न राग-रागिनियों के आधार पर है। जैसे रामकली विलावल, टोड़ी, विभास, ईमन, केदारो, कल्याण आदि।[1]

ताल्लपाक के कवियों के मूल पुरुष अन्नमाचार्य हजारों की संख्या में विभिन्न राग-रागनियों में संकीर्तन रचते रहे। विद्वानों के अनुसार करीब करीब 93 राग-रागनियों के नाम अन्नमाचार्य में मिलते है। जिनमें से 19-20 प्रिय रागों का उन्होंने बार बार प्रयोग किया है। उन्होंने पाडि, सामंत, अमर सिंध, गुज्जरी, हेज्जेज्जि, मुखारि, नारायणि, सालंग, मुखारिपंतु, बलहंस, अहिरि, सौराष्ट्र, कांभोजी[2] आदि अनेक रागों में अध्यात्म तथा शृंगार संकीर्तनों को संस्कृत व तेलुगु दोनों भाषाओं में रचा है। पेदतिरुमलाचार्य के संकीर्तन भी ललिता, मुखारि, भैरवी, श्री, सामंत, अहिरि, मालविगोल, नादनाम क्रिया, कांबोदी, पाडि[3] आदि रागों में बंधे मिलते हैं। ताल्लपाक के कवियों ने रागों के साथ साथ तालों को भी निर्दिष्ट किया है। जैसे एकताल, अटताल, झंपेताल आदि।

शायद संगीत तथा नृत्य के साथ उनके सम्बन्धों के ही कारण अष्टछाप और ताल्लपाक के कवियों ने अपनी रचनाओं को संगीत बद्ध करने के अलावा स्थान स्थान पर तत्सम्बन्धी शब्द, वर्णन, नाद सौन्दर्य से भी भर दिया है। जैसे सूर सारावली में सूर ने एक स्थान पर 36 रागों का नाम अंकित किया है। इसी प्रकार अन्नमाचार्य के एक ही पद में कई रागों के नामों का समावेश भी होना कोई आश्चर्य की बात नहीं। यत्र तत्र वीणा, मुरज, मृदंग, किन्नरी, भेरी, डोल, डफ, शृंगिनाद, झाल्लरी आदि वाद्यों का नाम अन्नमाचार्य ने लिया तो सूर ने मुरज, बीन, रबाव, डफ, आनब, महुवर, झाँझ, किन्नरी जैसे वाद्यों का उल्लेख किया है। रास क्रीड़ा और मुरली वादन के संदर्भ में आलोच्य कवियों ने संगीत तथा नृत्य सम्बन्धी अपना ज्ञान प्रकट किया है। नन्ददास ने रास पंचाध्यायी में एक साथ नृत्य, मुद्रा, घुँघुरु और रास में प्रयुक्त विभिन्न वाद्यों का झंकृत वातावरण इस प्रकार से खींचा है—

"नूपुर कंकन किंकिनि करतल मंजुल मुरली।
ताल मृदंग उपंग चंग ऐके सुरमुरली।

---

1. नंददास ग्रंथावली
2. अन्नमाचार्य के अध्यात्म व शृंगार संकीर्तन—गायक प्रति के आधार पर
3. पेदतिरुमलाचार्य के अध्यात्मक तथा शृंगार संकीर्तनों के आधार पर

मृदुल मुरज करतार तार झंकार मिलि धुनि ।
मधुर जंत्र की सार भंवर गुँजार रली पुनि ।
तैंसिय मृदु पद पटशनि चटकनि करतारन की ।
लटकनि पटकनि झलकनि कल कुण्डल हारन की ।"[1]

"प्रथम पंक्ति में घुंघुरुओं की झंकार और मुरली की मीढ़ का काम करता है । द्वितीय पंक्ति में मृदंग, उपंग, चंपग, चंग इत्यादि वाद्यों के स्वर अनुप्रास के कारण ही कान में ठन करते जान पड़ते हैं और अंतिम दो पंक्तियों की सजीवता तो पटकनि, चटकनि लटकनि, भटकनि और झलकनि के द्वारा ही बन पड़ी है ।'[2]

होली और फाग के वर्णन में नन्ददास उल्लास का वर्णन करते हैं—

"सखी पंग, आवजः सुन-बीन, अनाघात, गति बाजहीं ।
सखि ताल मृदंग उपंग रूंज मुरज डफ गाजहीं ।"[3]

नृत्य गति के भी उदाहरण हैं—

तत्थेइ शब्द करत सकल नृत्य भेद सहित ।
सुलफ सची डरप तिरप लेत नागरी ।[4]
"नृतत मोहन रसिक सखन सहित
ग्र ग्र ता तत्तथै ततथै तत्ता ।
मृदंग ध्रुपु ध्रमु ध्रमु ताल············
किंकिनि झिनि झिनि गति लेत, गावत सुर सप्ता ।"[5]

ताल्लपाक के कवियों में अन्नमाचार्य ही नहीं अन्य कवियों ने भी संगीत, नृत्य तथा चित्रकला आदि ललित कलाओं के सम्बन्ध में अपने ज्ञान का परिचय दिया है । चिन्नन्ना ने भी वेणु वादन के समय के चित्रण में संगीत के प्रति अपनी रुचि दिखाई है । यथा—

"सम शुद्ध सालग संकीर्ण गतुलु
क्रममुन नेडु रागमुलु नर्ति ।"[6]

अर्थात् मुरली वादन के समय विभिन्न एक विंशति (21) श्रुतियों में,

---

1. पद 6, 7, 8 ।
2. कृष्णभक्ति काव्य में अभिव्यंजना शिल्प—डा. सवित्री सिन्हा, पृष्ठ 125
3. पदावली—पद 178 4. वही—पद 124
5. अष्टछाप पदावली—गोविन्ददास पद—सोमनाथ गुप्त, पृष्ठ 241
6. अष्टमहिषी कल्याणमु—पृष्ठ 88

सप्त स्वरों के अनुसार, आरोह और अवरोह में शुद्ध गतियों में मानो सामने राग ही नाच रहे हैं।

चिन्नन्ना ने अपने उषा कल्याणमु में भी वीणा का श्रुति करना, उंगलियों से तंत्रियों को कोमलता से छूकर झंकृत करना, आरोह, अवरोह में गाते हुए बजाना आदि का सुन्दर वर्णन किया है। नृत्य का वर्णन प्रस्तुत है—

पलु मरु नंदि संभ्रममु रेट्टिटंपततततत्त जकिकिणा ततिबुदिद्धिमिकु
तततोंगिणचु गौतंबुग्गलिप चंडीशुड्डनु भृंगिसरि नारज मुल—[1]

इसमें नाट्य शास्त्र सम्बन्धी पारिभाषिक शब्द भी हैं। विवाह के समय सौभाग्यवती स्त्रियों के द्वारा धवल आदि विवाह गीत गाने का भी उल्लेख है।[2] चित्रकला सम्बन्धी वर्णन भी कवि ने किये हैं—जैसे यादव वीरों को चित्रित करने के लिए चित्र लेखा विभिन्न चित्र लेखन की सामग्री का उपयोग करना, स्वर्ण शलाका से रंगों के द्वारा चित्रित करना आदि का वर्णन है।[3]

कर्नाटक संगीत के मान्यवर विद्वानों के अनुसार अन्नमाचार्य की शृंगार परम्परा क्षेत्रय्या में, आध्यात्म संकीर्तन त्यागराज तथा रामदास में विकसित हुई हैं। ताल्लपाक के कवियों ने स्त्रियों के गाने योग्य, पुरुषों के गाने योग्य, संवाद गीत, बालकों के गीत, विवाह गीत, उत्सव सेवाओं के लिए गाने योग्य गीत, लोक गीत, आदि लिखे हैं।

6.8. **वर्णन कुशलता :** "भाव के लिए पद, पद के लिए संगीत, संगीत के लिए श्रुति, राग और ताल चित्र के लिए नेपथ्य की रचना, स्त्रियों के लिए अलंकार जिस प्रकार से सौन्दर्य को मुखरित करते हैं, उसी प्रकार से अष्टादश वर्णन भी काव्य वस्तु को विशद कर, मन पर गहरा प्रभाव डालने में समर्थ होते हैं।"[4] हाँ, ये सभी वर्णन केवल नेपथ्य में रहकर काव्य के सौन्दर्य को बढ़ाने में साधक होते हैं। कुशल कवि, इन्हें अपनी सीमा में रखकर काव्य के सौन्दर्य को बढ़ाने की चेष्टा करता हैं। संस्कृत विद्वानों ने महाकाव्य के लक्षणों के अन्तर्गत अष्टादश वर्णनों को एक लक्षण माना है। वे हैं—

नगरार्णव शैलार्तु चन्द्रार्कादय वर्णनम्
उद्यान सलिल क्रीड़ा मधुपान रतोत्सवाः

---

1. उषा कल्याणमु—चिन्नन्ना, पृष्ठ 85
2. वही—पृष्ठ 89
3. वही—पृष्ठ 28
4. ताल्लपाक कवुल साहित्य सेवा—डा. विद्यावती, पृष्ठ 177

विप्रलंभो विवाहश्च कुमारोदय वर्णनम्
मंत्रद्यूत प्रणयाजि नायकाभ्युदया अपि !"[1]......

6.3.1. नगरवर्णन : अष्टछाप के कवियों में नन्ददास ने अपनी रुक्मिणी मंगल में द्वारका पुरी का और रूप मंजरी में निर्भयपुर का वर्णन किया है। यथा—द्वारका का वर्णन इस प्रकार है—

उज्जवल मनिमय अटा, घटा सों बातें करई।
जगमग-जगमग ज्योति होति रवि ससि सों अरई।
चपल पताका फरकें झलकें अरन-किरन जहं।
धाम न कबहूँ परसे नित ही छाँह रहत तहं ।।......
कृष्ण भावती पुरी, निरखि द्विज हरख भयो अस।
जगत द्वंद्व तैं छुट्या ब्रह्म आनंद मिल्यौ जस।"[2]

निर्भयपुर का वर्णन—

"ऊँचे अटा घटा बतराहीं, तिन पर केकी केलि कराही।"
... ...
गुड़ी उड़ी कवि देत अति, असल कुछ रहयो बान।
देखन आवत देव जनु, चढ़ि चढ़ि बिमल बिमान ।।
आसपास अमराय बराबरि। जहं लग फूल तिती फुलवारी।"[3]

ताल्लपाक के कवियों में चिन्नन्ना ने भी द्वारका पुरी के वैभव का वर्णन इस प्रकार से किया है कि "ऊँची ऊँची अटारियाँ, नवरत्नों से भरे शिखर, आकाश से वार्तालाप करने वाले सोने से भरे महल आदि के साथ ब्राह्मण आदि चारों वर्णों से युक्त नगर मानों दूसरा बैकुण्ठ ही लग रहा है। "इह" और "पर" के लिए देहरी होने के कारण श्रीकृष्ण ने इस सुन्दर द्वारका को अपना निवास स्थान बनाया।"[4] चिन्नन्ना ने मथुरापुरी के वर्णन में भी गोपुर, परिखा, गवाक्ष, विविध पक्षी, केकी वृन्द, बाजार, द्विज, सरोवर,[5] आदि आदि का उल्लेख किया है। सूर ने भी द्वारका के वर्णन के साथ साथ उस नगर के निवासियों की हरि भक्ति का भी वर्णन किया है।[6] दोनों ही भाषा

---

1. प्रतापरुद्रीयम्-विद्यानाथ—(काव्य प्रकरण श्लोक—69, 70, 71)
2. रुक्मिणी मंगल-नंददास—छन्द 35 से 40 तक
3. रूप मंजरी—नन्ददास, पृष्ठ 104–105
4. अष्टमहिषी कल्याणमु, पृष्ठ 183 5. वही—पृष्ठ 131, 132, 133
6. सूरसागर—पद 4784

के कवि नगर वर्णन के साथ-साथ नदी, तालाब, पशु, पक्षी, पुष्प, उद्यानों का वर्णन करना भूले नहीं।

6.8 2. युद्ध : युद्ध का वर्णन अष्टछाप के काव्य में नहीं है क्योंकि उनका मन कृष्ण के बाल सुलभ तथा शृंगारिक चेष्टाओं में ही रमा था। ताल्लपाक के कवियों में चिन्नन्ना ने युद्ध वर्णन अत्यन्त कुशलता से किया है। जैसे उषा कल्याणम् में हरि से बाणासुर तथा शिव का युद्ध तथा अष्टमहिषी कल्याणम् में रुक्मिणी को ले जाते समय रुक्मि तथा अन्य राजाओं से युद्ध का वर्णन। नायिकाओं के वर्णन में स्त्री वर्णन भी स्थान स्थान पर आ गया है।

6.8.3. प्रकृति : प्रकृति वर्णन का जो रूप हिन्दी में है, वह तेलुगु में नहीं है। अष्टछापी कवियों ने आलंबन और उद्दीपन दोनों रूपों में संयोग और वियोग की दोनों अवस्थाओं में प्रकृति वर्णन किया है।

नन्ददास की रचनाओं में प्रकृति के अनेक रूप गोचर होते है–आलंबन, उद्दीपन, संवेदात्मक रूप और मानवीकरण के रूप। प्रकृति के विभिन्न रूप रास पंचाध्यायी और रूप मंजरी में प्राप्त होते हैं। विरह मंजरी में बारह मासे का वर्णन, भावोद्दीपक के लिए हुआ है। कहीं कहीं अलंकार और उपदेश के लिए भी प्रकृति का आश्रय लिया गया है।[1]

ताल्लपाक के कवियों ने भी प्रकृति वर्णन किया है, किन्तु उस रूप में नहीं। कहीं कहीं वे नायिका के सौन्दर्य का वर्णन विभिन्न पुष्प अथवा ऋतुओं के अनुसार करते हैं।[2] अथवा वसन्त वन विहार तथा दोहद क्रियाओं के रूप में हैं। विरह की दशा में उद्यान के वसन्त ऋतु का आगमन देख कर नायिका का विरह उद्दीप्त होना शृंगार मंजरी और चक्रवाल मंजरी में क्रमशः अन्नमाचार्य तथा पेदतिरुमलाचार्य ने किया है।

शरद का वर्णन रास के संदर्भ में हिन्दी और तेलुगु दोनों कवियों ने किया है जिसका उल्लेख भावपक्ष के अन्तर्गत हुआ है। परमानन्ददास ने कहा है कि शरद् की रातें फीकी हैं।

"माई अब तो यह शरद निसा लागत है फीकी।"[3]

वर्षा वर्णन तो सूर का प्रसिद्ध है ही। गोपियों के लिए तो जब से श्याम

---

1. नन्ददास–विचारक, रसिक, कलाकार
   —डा. रूपनारायण, पृष्ठ 161–165 के आधार पर
2. भावपक्ष के अन्तर्गत नायिका के रूप वर्णन में दिया गया है।
3. दीनदयाल गुप्त के परमानन्द सागर–पद 241

चले गये, तब से केवल वर्षा ऋतु ही है। एक जगह वे कहते हैं कि विद्युत की तलवार को साधे हुए कामदेव की फौज का विरहिणी के वध के लिए आ रहा है।[1] चिन्नन्ना भी एक वीभत्स कल्पना करते हैं कि, मन्मथ ने कामीजनों को टुकटे-टुकड़े कर दिया है जो मांस खण्ड इन्द्र वधुओं के रूप में पृथ्वी पर दिखाई दे रहा है।[2]

ऋतुओं के साथ-साथ कोयल, कीर, मधुकर, कोक, कपोत तथा केकी आदि पक्षियों के नाम, भ्रमर तथा शुक, विभिन्न लता, पुष्प आदि के वर्णन भी मिलते हैं। प्रकृति वर्णन के अन्तर्गत सूर्य तथा चंद्रोदयों[3] का वर्णन भी ताल्लपाक के कवियों ने किया है। हाँ प्रकृति के माध्यम से रूप वर्णन दोनों क्षेत्रों में हुआ है। अष्टछापी कवियों के समान षड्ऋतु और बारहमासे का वर्णन ताल्लपाक के कवियों ने नहीं किया।

जलकेलि का वर्णन, कृष्ण तथा गोपियों का, कृष्ण तथा सत्यभामा और जांबवती का हुआ है।[4] इसी संदर्भ में वन केलिका[5] भी वर्णन हुआ है। पुत्रोपत्ति का वर्णन दोनों ही भाषाओं में कृष्ण के जन्म का तथा अष्टमहिषी कल्याण में रुक्मिणी के पुत्रोदय का वर्णन ले सकते हैं। विवाह वर्णन तो कई हैं, जैसे अष्टमहिषियों का, उषा का, सुभद्रा का आदि। विरह वर्णन में तो दोनों क्षेत्रों के कवि बेजोड़ हैं।

इन परम्परागत वर्णनों के अलावा दोनों ही क्षेत्रों के कवियों ने पाक शास्त्र के सम्बन्ध में भी अपना ज्ञान दिखाया है। जैसे—

कान्हर बलि आरि न कीजै, जोइ जोइ भावै सोई लीजै।
खोवा मय मधुर मिठाई, सो देखन अति रुचि उपजाई।
सुठि सरस जलेबी बोरी, जिहिं जेवत रुचि नहिं थोरी।
... ...
षटरस परिकार मंगाए, जे बरनि जसोदा गाए।[6]

कलेऊ के पदों में, गोचारण और अन्नकूटोत्सव सम्बन्धी पदों में भी विभिन्न पकवानों के नाम हैं।[7]

---

1. सूरसागर—पद 3924
2. अष्ट महिषी कल्याणमु, पृष्ठ 67
3. अन्नमाचार्य संकीर्तन (वा. 11) पद 47
4. अष्टमहिषी कल्याण, पृष्ठ 70, 238
5. वही—पृष्ठ 237
6. सूरसागर पद 801 तथा 1831
7. दृष्टव्य के नन्ददास, चतुर्भुजदास, गोविन्ददास आदि के पद

ताल्लपाक के कवियों ने भी अपने इष्टदेव को विभिन्न नैवेद्यों की व्यवस्था के साथ-साथ उनका वर्णन भी किया है। ताल्लपाक के कवियों ने विवाह के वर्णनों के अवसर पर विभिन्न प्रकार के पकवानों का भी उल्लेख किया है। जैसे—खीर, बड़े, मलाई से भरा दही, कई प्रकार की सब्जियाँ मोदक, दोसे, मधु, मेवा, मक्खन आदि परोसे गये। अष्टमहिषियों के विवाह के अवसर पर दी गयी राजसी दावत, कृष्ण की कलेऊ सामग्री तथा छींके[1] का उत्सव आदि के संदर्भ के वर्णनों में अपना पाक सम्बन्धी परिज्ञान दिखाया है। अन्नमाचार्य ने वेंकटेश्वर शतक में विभिन्न प्रकार के पकवानों के नामों का उल्लेख किया है। अन्नमाचार्य ने अपना चमत्कार वर्णन इसमें भी नहीं छोड़ा है क्योंकि प्रकृति और पकवानों का कैसा मिश्रण है देखिए—

इडलियाँ मेरु और मंदर पर्वतों के समान, थालियाँ सूर्य और चन्द्र की तरह, उसमें परोसा गया चावल नक्षत्र राशि की तरह, सोना तथा चाँदी की कटोरियाँ समुद्रों की तरह, मक्खन के गोले पहाड़ों की तरह, चटनी और सब्जियाँ पके हुए फसलों के समान तथा शक्कर से भरा दूध चाँदनी रस के समान हैं।[2] ऐसा वर्णन शायद ही अन्य किसी कवि ने किया होगा।

6.9. अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों के कला पक्ष की तुलना :

भक्ति और भाव को प्रधानता देते हुए भी अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों का कलापक्ष का भी अत्यन्त सुन्दर होना, उनकी प्रतिभा का परिचायक है। अपने मन की भाव तरंगों को व्यक्त करने के लिए आलोच्य कवियों ने अपने समय में प्रचलित भाषाओं—क्रमशः ब्रज तथा तेलुगु का सहारा लिया है। ये दोनों ही भाषाएँ मधुरता के लिए प्रसिद्ध हैं और बहुत हद तक "उ" करांत भी हैं। इन कवियों के पास तत्सम, तद्भव तथा देशज शब्दों का बड़ा भंडार था। साथ ही, बिना किसी पूर्वाग्रह के इन कवियों ने अपने समय में प्रचलित विदेशी शब्दों का भी प्रयोग उदारता से किया है। इतना ही नहीं, दोनों भाषाओं के कवियों ने शब्दों को अपने भाव के अनुरूप तोड़ा, मरोड़ा या नया रूप दिया है। इतना सब कुछ होते हुए भी "वागर्थाविव संप्रुक्तौ वागर्थः प्रतिपत्तये" के अनुसार शब्द और अर्थ का समुचित प्रयोग हुआ है। उनके भाव को व्यक्त करने में किसी भी प्रकार की बाधा नहीं आयी है। अध्ययन से पता चलता है कि अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों की भाषा कहीं कहीं

1. पुष्ठ 230 आदि।
2. (वा. 9) पद—10

व्याकरण के नियमों के प्रतिकूल भी है। इतना होते हुए भी बोलचाल की भाषा को साहित्यिक रूप देने का श्रेष्य इन कवियों को ही मिलता है। उनकी भाषा पात्र और परिस्थिति के अनुकूल है।

अष्टछाप के कवियों में नन्ददास को छोड़कर अन्य सातों कवियों ने केवल मुक्तक पद शैली में ही रचना की। नन्ददास ने ही कथात्मक प्रसंगों को चुनकर खण्ड काव्य की शैली में लिखने का प्रयास किया। ताल्लपाक के कवियों ने प्रबन्ध तथा मुक्तक दोनों ही शैलियों को अपनाया। अपने समय में प्रचलित सभी शैलियों का परिमार्जित रूप देने का श्रेय भी ताल्लपाक के कवियों को ही है। मुक्तक शैली में स्तुतिपरक गीत, लीलावर्णन के गीत, रूपवर्णन के गीत, वर्णनात्मक गीत, लोकगीत, आदि समान रूप में दोनों भाषाओं में हैं। लोकगीतों को भी शिष्ट साहित्य के समकक्ष इन कवियों ने ही स्थान दिया।

छन्दों के क्षेत्र में अष्टछाप व ताल्लपाक के कवि नितान्त अलग हो जाते हैं। जहाँ अष्टछाप के कवि मात्रिक छन्दों का प्रयोग करते हैं, वहाँ ताल्लपाक के कवि संस्कृत वर्णवृत्तों की ओर झुकते है। इसका कारण है—तेलुगु भाषा और व्याकरण पर संस्कृत का सीधा प्रभाव। अष्टछाप के काव्य में दोहा, रोला, सोरठा, सार, चौपाई-चौपई प्रमुख छन्द हैं। ताल्लपाक के कवियों ने तेलुगु भाषा के द्विपद, सीस, कन्द, रगड़ आदि देशी छन्दों का प्रयोग कर पंडितों की भी सराहना पायी। जिस प्रकार से हिन्दी साहित्य में दोहा छन्द महत्वपूर्ण है, उसी प्रकार से तेलुगु के क्षेत्र में द्विपद छन्द। जिस प्रकार से दोहे से सोरठा छन्द का जन्म होता है, उसी प्रकार से द्विपद से मंजरी द्विपद, तरुवोजा, रगड़ा, सीस आदि छन्दों का जन्म होता है। इन सभी का सफल प्रयोग आलोच्य कवियों ने किया।

आलोच्य कवियों ने अपने काव्य में भाषा, शैली और छन्दों के सफल निर्वाह के साथ-साथ अलंकार और मुहावरों और लोकोक्तियों का भी अनुपम प्रयोग किया है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, यमक, विषम आदि अलंकारों का बिना किसी प्रयास के ही इनकी रचनाओं में समावेश हो गया है। जहाँ सूर स्वभावोक्ति के राजा हैं, वहाँ व्याज और विरोधमूलक अलंकारों की कल्पना अन्नमाचार्य में अधिक मिलती है। कहीं कहीं एक ही प्रकार के उपमानों को देख कर हम विस्मय में भी डूब जाते हैं। जैसे रुक्मिणी हरण के समय कृष्ण की की तुलना दोनों क्षेत्रों में अमृत भांड ले जाते हुए गरुड़ से हुई है। सूरदास अपने मन को एक गाय से तुलना करते हुए कहते हैं—

माधो । जू मेरी यह मेरी इक गाइ ।
अब आप तैं आप आगे दई, ले आइये चराई ।
यह अति हरहाई, हटकत हूँ बहुत अमारग जाति ।
फिरति वेद–वन ऊख उखारति, सब दिन अरु राति ।
हितकरि मिलै लेहु गोकुलपति, अपने गोधन मांह ।[1]

अन्नमाचार्य भी कहते हैं–हे भगवान । यह लो हमारा मृग । यह बड़ा नटखट है । दुनिया भर में घूमता है । हर जगह दौड़ता है । जंगल जंगल जाता है । सब कुछ खा डालता है । फिर न जाने कहीं घुस छिप जाता है । तुम्हीं इसे वश में ले कर ठीक करो ।[2] वैसे ही नायिका के सौंदर्य का वर्णन करते हुए भी प्राय: एक ही प्रकार के कवि समयों का प्रयोग हुआ है । जैसे

अद्भुत एक अनुपम बाग ।
जुगल कमल पर गज बर क्रीड़त, तापर सिंह करत अनुराग ।
रुचिर कपोत बसत ता ऊपर, ता ऊपर अमृत फल लाग··· ।[3]

वैसे ही अन्नमाचार्य ने भी कमल पर दो कुमुद कह कर मुख और आँखों का, नासिका को चंपक से तथा कटि को सिंह से तुलना कर नायिका के सौंदर्य का और उसकी हंस चाल का वर्णन किया है ।[4] इन सबके बीच कहीं कहीं लगता है कि उभय क्षेत्र के कवि अलंकारों में चमत्कारों के प्रदर्शन में भी लग गये हैं । जैसे बालकृष्ण के चिकुर जाल के मणि-माणिक्यों के विभिन्न रंगों के आधार पर सूर ने एक चित्र उतारा है–

"भाल विशाल ललित लटकनि मनि
बाल दसा के चिकुर सुहाये
मानों गुरु सनि कुज आगे करि
ससिहिं मिलन तम के गन आये ।"[5]

उसी प्रकार से अन्नमाचार्य ने भी नायिका वर्णन के संदर्भ में चमत्कार का प्रदर्शन किया है–

भौंह धनुष अरु नयन मीन हैं,
कटि है सिंह उरोज कुंभ हैं ।

---

1. सूरसागर–पद 51
2. (वा. 11) पद 22
3. सूरसागर–पद 2728
4. श्रृंगार संकीर्तन–(वा. 13) पद 327
5. सूरसागर–पद 722

मकरांचल है, मकर राशि, खुद,
कन्या है, गति तुला दंभ है।[1]

यहाँ कवि नायिका की वय: संधि के वेला के अंग प्रत्यंग सौंदर्य के वर्णन में कवि समय प्रसिद्ध उपमानों के काम लेते हुए, दूसरी ओर से ज्योतिष शास्त्र के प्रसिद्ध मेषादि द्वादश राशियों के नाम गिनने के प्रयत्न में लगे हैं जो चमत्कार के सिवा अन्य कोई प्रयोजन नहीं साधता।[2]

इसी संदर्भ में नंददास द्वारा वर्णित रूप मंजरी की वय: संधि का रूपक अवश्य स्मरणीय है। इसमें चमत्कार होते हुए भी रस में बाधा उत्पन्न नहीं हुई। किन्तु यह समझना नहीं चाहिए कि आलोच्य कवियों ने सर्वत्र चमत्कार को महत्व दिया है। मुहावरे और लोकोक्तियों की तो मानों वर्षा ही हो गयी हो। अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों के साहित्य के अध्ययन से पता चलता हैं कि इन कवियों के शब्द, अलंकार, मुहावरे और लोकोक्तियों के अलग अलग कोश बनने चाहिए।

संगीत तो आलोच्य कवियों के साहित्य का प्राणाधार है। संगीत के प्रवाह में स्वयं कवि बह जाता है। वह अपने आपको भूल जाता है। काव्य में इस तन्मयता के साथ शास्त्रीय पद्धति का निर्वाह विरल है। नाद सौंदर्य को उत्पन्न करने वाले शब्दों को लेकर, संगीत सरणियों के अनुकूल नृत्य तथा अन्य कलाओं को समेटते हुए इनकी रचनाएँ हुई हैं। भक्ति और साहित्य को इन कवियों ने रागमय बना दिया है। ऐसी अनेक राग-रागिनियाँ हैं जिनका आज प्रयोग नहीं हो रहा है क्योंकि उनके लक्षण विस्मृत से हो गये हैं। नृत्य तथा गायन दोनों के लिए इनके पद उपयुक्त हैं। लोक गीतों का तो भंडार ही है।

विभिन्न प्रकार के वर्णनों के साथ इन कवियों की रचनाएँ हृदय को छू लेती हैं। जहाँ अष्टछाप के कवि प्रकृति चित्रण को अधिक महत्व देते हैं वहाँ ताल्लपाक के कवि—युद्ध, वन, जल आदि संदर्भों के वर्णन में अधिक रूचि लेते हैं। कृष्ण के वियोग में गोपियों को ब्रज में—

"सबै ऋतु और लागत आहिं।" क्योंकि............
"षटऋतु ह्वै इक ठाम कियो तनु, उठे त्रिदोष जुरे।
सूर अवधि उपचार आजु लों, राखे प्रान जुरे।"[3]

---

1. अनुवाद—एम. संगमेशम
2. अन्नमाचार्य और सूरदास—एम. संगमेशम्, पृष्ठ 305
3. सूरसागर—पद 3963

यह सूर की कल्पना है तो पेदतिरुमलाचार्य से एक ही पद में नायक-नायिका के मिलन तथा वियोग के आधार पर षडऋतुओं का चित्रण किया है।[1] अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों के प्रकृति वर्णन के संदर्भ में इतना कह सकते हैं कि जहाँ अष्टछापी कवियों ने षड्ऋतु वर्णन और बाराह मासा-उद्दीपन के रूप में किया है, वहाँ ताल्लपाक के कवियों ने केवल उपमान चयन के लिए ही प्रकृति का उपयोग किया है। नगर वर्णन, विभिन्न प्रकार के पाक संबंधी वर्णन आदि दोनों कवियों में एक प्रकार से ही हुए हैं।

कलापक्ष के अध्ययन में कहीं-कहीं लगता है कि अष्टछाप के कवियों से ताल्लपाक के कवियों की प्रतिभा बहुमुखी है। इसका कारण उनका विस्तृत शास्त्रीय अध्ययन तथा पाण्डित्य है। अष्टछाप के कवि तो संस्कृत काव्य शास्त्र के मर्मज्ञ न होकर स्वच्छन्द कीर्तनियाँ थे। उनमें केवल नन्ददास ही विस्तृत अध्ययन के साथ आये थे। कहीं कहीं ताल्लपाक के कवियों में कला पक्ष की प्रमुखता मिलने का एक कारण राजा-महाराजाओं का साहित्य के प्रति झुकाव हो सकता है। इन कवियों ने राजाश्रय को ठुकराया फिर भी वे तत्कालीन युग के ऐश्वर्य पूर्ण वातावरण से प्रभावित थे। एक ही प्रकार के पौराणिक स्रोतों को ग्रहण करने पर भी जहाँ ताल्लपाक के कवि चमत्कार प्रदर्शन करते हैं, वहाँ अष्टछाप के कवि नहीं। उदाहरण के लिए दशावतार गाथाओं को ले सकते हैं।[2] सभी प्रकार के वर्णनों में ताल्लपाक के कवियों ने वैविध्य के साथ साथ पूर्णता भी प्रदर्शित की है।

अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों की असीम प्रतिभा उनके जीवन काल में ही दूर-दूर तक फैल चुकी थी। उनकी काव्य कला की भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी थी। जैसे अष्टछाप के बारे में कुछ प्रसिद्ध उक्तियाँ—

"उत्तम पद गंग के···
सूर तीन गुन धीर।"
"और सब गढ़िया, नन्ददास जड़िया।"
"सूरसागर", परमानन्द सागर" आदि आदि हैं।

ताल्लपाक के कवियों के सम्बन्ध में भी कहा जाता है कि द्विपद के लिए चिन्नन्ना, पदों के लिए पेदतिरुमलाचार्य और गद्य-पद्य दोनों के लिए नरसिंगन्ना सबसे आगे हैं। अन्नमाचार्य को "हरिसंकीर्तनाचार्य" तथा 'पदकविता पितामह',

---

1. शृंगार संकीर्तन—पद—525
2. अन्नमाचार्य संकीर्तन (वा. 5) पद 67

पेदतिरुमलाचार्य को "कवितार्किक केशरी" और चिनतिरुमलाचार्य को "अष्टभाषा चक्रवर्ती" की उपाधियाँ प्राप्त थीं।

अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवियों की काव्य-कला अथवा कला पक्ष सम्बन्धी इस अध्ययन के अन्त में कह सकते हैं कि इन कवियों की कविता में सर्वत्र मिठास ही मिठास है और भाषा मोम की भांति आवश्य रूप ग्रहण कर सकती है। उनका संगीत अर्थ और भाव प्रधान है। ऐसा लगता है कि इस पृथ्वी पर कभी कभी गंधर्वों का जन्म हो जाता है। अष्टछाप तथा ताल्लपाक के कवि भी ऐसे ही गंधर्व थे, जिन्होंने उसी जन्म में मुक्ति पायी।

उपसंहार

भारत के इतिहास में मध्य युग का एक महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि इस युग में भारत की प्रजा को राजनैतिक, सामाजिक तथा अन्य कई क्षेत्रों में प्रबल संघर्ष करते हुए, अपने आपको सुस्थिर बनाना पड़ा। यहाँ तक आते आते देश पर विदेशी आक्रमणकारी अपना शासन, धर्म तथा सामाजिक मान्यताओं को फैलाने और दृढ़ करने में सफल रहे। भारत की प्रजा ने अपनी आँखों से इन झंझामारुतों को देखा, अनुभव किया और सहा और फिर भी सजग रहने की चेष्टा की। किन्तु अन्त में परिस्थितियों के कारण उन्हें सिर झुकाना पड़ा। यह सब इतिहास के पन्ने बखान करते हैं।[1] इन जटिल परिस्थितियों में ही सारे देश में भक्ति की लहरें उमड़ पड़ी। जब तक देश में हिन्दू, बुद्ध, जैन, शैव, शक्ति, नाथ, सिद्ध आदि विभिन्न संप्रदाय पनपते रहे। राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियों के अनुकूल उनमें परिवर्तन और सशोधन भी होते रहे। किन्तु उतरी और दक्षिणी परम्पराओं के समन्वय का कोई अवसर न आ सका था। वह कार्य केवल विभिन्न आचार्य पुरुषों के द्वारा ही संभव हो सका। समन्वय की भावना शंकराचार्य ने आरम्भ की। किन्तु सिद्धान्तों की जटिलता के कारण उनका मत केवल विद्वानों तक ही सीमित रह सका। उनके पश्चात वैष्णव आचार्यों ने शास्त्रीय पक्ष के साथ-साथ लौकिक पक्ष का भी निर्वाह किया। इस प्रकार से मध्य युग में भक्ति का आन्दोलन दक्षिण से आरम्भ होकर देश व्यापी हो गया। वैष्णव आचार्यों द्वारा प्रतिपादित भक्ति के सुलभ मार्ग को मध्य युग के सन्तों ने तथा भक्तों ने जन सामान्य तक पहुँचाने का कार्यभार अपने कंधों पर लिया। भक्ति मार्ग की सहज सरलता के साथ-साथ जनता की भाषा में अभिव्यक्ति के कारण भक्ति अधिक से अधिक जनमानस को चुम्बक की भाँति आकर्षित करने लगी। इसी संदर्भ में उल्लेखनीय विषय यह है, "हिन्दी क्षेत्र में दाक्षिणात्य आचार्यों के द्वारा प्रवर्तित या प्रभावित संप्रदायों के अतिरिक्त बंगाली–वैष्णव आचार्यों और राधावल्लभ तथा हरिदासी संप्रदाय जैसे स्थानीय संप्रदाय भी सक्रिय थे।"[2] किन्तु दक्षिण में, विशेषकर तेलुगु प्रदेश पर रामानुजाचार्य जी द्वारा प्रतिपादित श्रीसंप्रदाय की मान्यता अधिक रही। इस युग में जब उत्तर भारत में हिन्दू और मुसलमानों के बीच संघर्ष चल रहे थे तो दक्षिण भारत में शैव

---

1. द्रष्टव्य है प्रस्तुत प्रबन्ध का–1.4
2. हिन्दी और तेलुगु वैष्णव भक्ति साहित्य–डा. के. रामनाथन्, पृष्ठ 463

और वैष्णवों के बीच संघर्ष का वातावरण था। जैसा कि पिछले अध्ययन में देखा गया है वैष्णव भक्ति अपनी सुलभता और सार्वजनीनता के कारण अधिक लोगों को आकृष्ट करने लगी। अत: दक्षिण के शैव राजा भी वैष्णव धर्म को अपनाने लगे।[1] विधर्मियों के हाथों में शासन होने के कारण उत्तर भारत में सामाजिक परिस्थितियाँ भी विकट थीं। दक्षिण में राजा और प्रजा दोनों ही हिन्दू धर्मावलम्बी थे। अत: वर्णाश्रम धर्म का पुनरुद्धार होने लगा।[2] फिर भी, सम्पूर्ण देश में शायद वैष्णव भक्ति के आन्दोलन के ही कारण जात-पांत आदि का विरोध भी दिखने लगा। धार्मिक तथा सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित हो कर, तत्कालीन परिस्थितियों के अनुकूल, वैष्णव भक्ति साहित्य का उदय हुआ। इसी भक्ति आन्दोलन के ही कारण इस युग में सभी भारतीय भाषाओं में विपुल भक्ति साहित्य का निर्माण हुआ। साहित्य में भक्ति की इस प्रधानता के ही कारण आचार्य शुक्ल जी जैसे विद्वानों ने हिन्दी साहित्य के इस काल को "भक्ति काल" की संज्ञा दी। जैसा कि पिछले अध्ययन में देखा गया है, तेलुगु साहित्य में तो भक्ति के आधार पर ही साहित्य का काल विभाजन हुआ है।[3] इन सब बातों से हम यह तथ्य जान सकते हैं कि भक्ति साहित्य कितना महत्वपूर्ण रहा है।

जिस प्रकार से हिमालय से निकली गंगा सुदूर समुद्र में मिलने से पहले अपने आप में कई छोटे मोटे प्रवाहों को आत्मसात् कर लेती है, उसी प्रकार से भारतीय साहित्य की धारा भी भागवत, रामायण, महाभारत आदि पौराणिक स्रोतों का आधार लेते हुए आज तक अविरल धारा के रूप में नये-नयें मोड़ों के साथ संशोधित और परवर्द्धित होकर चली आ रही है। इस प्रकार मध्य युग के साहित्य स्रष्टाओं को भी भागवत, रामायण, महाभारत, हरिवंश पुराण आदि रचनाओं का आधार मिला। उन्होंने पुराण पुरुष राम और कृष्ण की कथाओं के साथ-साथ आलवार भक्तों की प्रेम भावना, वैष्णव आचार्य पुरुषों की भक्ति भावना एवं दर्शन आदि को समेटते हुए स्वांत: सुखाय के साथ-साथ पर जन हिताय की भावना को भी लेकर अपनी रचनाएँ कीं। आश्चर्य इस बात का है कि भारत की भाषाओं की भिन्नता होने पर भी अधिकतर रचनाओं में समान तत्व गोचर होते हैं। बाह्य रूप से वैविध्य होते हुए भी मूलभूत भावों में एकता विद्यमान है। "मध्ययुगीन भारतीय साहित्य के कण कण में एक ही भावसार भक्ति व्याप्त है। इस

---

1. दृष्टव्य है—प्रस्तुत प्रबन्ध का—1.5 2. वही—1.6 3. वही—1.7.2.2

एक सूत्रता का श्रेय भक्ति आन्दोलन को है।"[1] भारतीय भाषाओं के भक्ति साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन इसी तथ्य को निरूपित करते हैं।

पंद्रहवीं और सोलहवीं शती में निर्मित भक्ति साहित्य अत्यन्त उत्कृष्ट है। इसी समय उत्तर भारत में महात्मा सूरदास तथा अष्टछापी कवि हुए जिन्होंने ब्रजभाषा में उत्तम कृष्ण काव्य की रचना की। उसी प्रकार से दक्षिण भारत में ताल्लपाक के कवि अन्नमाचार्य और उनका सम्पूर्ण परिवार पीढ़ी के बाद पीढ़ी उत्तम तेलुगु एवं संस्कृत रचनाओं से साहित्य भडार को भरते रहे। जहाँ अष्टछापी कवियों ने ब्रज में स्थित श्रीनाथ जी की भक्ति में सहस्रों की संख्या में पद रचे वहाँ ताल्लपाक के कवियों ने भी तिरुपति क्षेत्र में स्थित भगवान वेंकटेश्वर अथवा बालाजी को अपना आराध्य मान कर उन्हें कृष्ण से अभेद मानकर अपनी रचनाओं को कृष्ण की लीलाओं से और भक्ति से भर दिया। इनके भक्ति, साहित्य और संगीत की त्रिवेणी धारा में आज तक हम सब गोता लगा रहे हैं।

इतने विलक्षण साहित्य के स्रष्टाओं की जीवनी और व्यक्तितत्व का भी अत्यन्त विलक्षण होना स्वाभाविक ही है। पिछले अध्ययन से स्पष्ट है कि वे परिवार में रहते हुए भी उससे बंधे नहीं थे। न किसी राजा-महाराजा या बादशाह का डर था और न ऐहिक सम्पत्ति से मोह। जहाँ अष्टछापी कवि शासकों के अनुग्रह व सम्पत्ति को "संतन को सीकरी सो कहा काम" कह कर ठुकरा देते हैं तो ताल्लपाक के कवि स्वीकार करते हैं किन्तु अपने लिए नहीं। "त्वदीयंवस्तु गोविन्द। तुभ्यमेव समर्पये" के अनुसार उन्होंने सारा वैभव भगवान के अंग रंग वैभव में ही लगा दिया।[2] उनके लिए सच्चा धन "हरिभक्ति" ही रहा। अष्टछापी कवि प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अपनी भक्ति में तल्लीन रहे। दूसरी ओर ताल्लपाक के कवि अनुकूल परिस्थितियों में भी मात्र अपनी भक्ति में डूबे रहे। इस तथ्य से उभय क्षेत्र के कवियों का भक्ति परक व्यक्तितत्व साफ झलकता है।

वल्लभाचार्य जी के शुद्धाद्वैत सिद्धान्त में अष्टछापी कवि तथा रामानुजाचार्य जी के विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त में ताल्लपाक के कवि क्रमशः दीक्षित थे। उभय क्षेत्र के कवियों ने भक्ति के रंग में अपने आपको रंग लिया। ज्ञान, कर्म और योग की तुलना में भक्ति की श्रेष्ठता और सुलभता

---

1. सूरदास और वामन पंडित—डा. सुशीला व्यापारी, पृष्ठ 497
2. द्रष्टव्य है—प्रस्तुत प्रबन्ध का, 2.4

को घोषित करते हुए वे केवल भक्ति की और भक्त जनों की सेवा में ही संलग्न रहे। वे परमात्मा के सामने अपने दीनत्व को स्वीकारते हुए सत्संग और गुरु की महानता घोषित करते हुए, हरिस्मरण और हरिभक्ति रूपी जहाज पर इस भवसागर को पार करने में जुटे रहे। सकीर्णता के उस युग में भी ये कवि हरि के सभी अवतारों को समेटते हुए, सगुण और निर्गुण दोनों प्रकार के भगवान को मानते हुए भी सगुण भक्ति के प्रचार व प्रसार में दत्त-चित्त रहे। इसीलिए अन्नमाचार्य कहते हैं हे परमेश्वर ! आपको वैष्णव विष्णु मानते हैं, शैव शिव मानते हैं, तो दार्शनिक परब्रह्म स्वरूप।[1] अर्थात् परमात्मा तो एक ही है, किन्तु आराधना, पूजा अलग अलग से की जाती है। सूर भी कहते हैं "ताते सूर सगुन लीला पद गावै"[2] क्योंकि सगुण भगवान को पाना सुलभ है। अतः वे अपने तन, मन और धन को भगवान को अर्पित कर मंदिर सेवा और संकीर्तन सेवा में जुटे रहे। ब्रज तथा तिरुपति क्षेत्र के कृष्ण और वेंकटेश्वर के नित्योत्सव, पक्षोत्सव, मासोत्सव और वर्षोत्सव, के आयोजन के कारण इन क्षेत्रों को अपूर्व वैभव प्राप्त हुआ। इसी संदर्भ में उल्लेखनीय बात यह है कि दक्षिण के अन्य मंदिरों से अधिक तिरुपति क्षेत्र के रीति रिवाज ब्रज क्षेत्र में अधिक मात्रा में अपनाये गये हैं। लगता है कि ऐसे भक्तों को पा कर भगवान को और वैसे करुणामय जगत् कर्ता को पा कर इन भक्तों को समान रूप से यश, कीर्ति और मोक्ष प्राप्त हुए। विभिन्न प्रकार के निष्काम भक्ति के आचरणों के ही कारण इन भक्त कवियों को भगवान के साक्षात्कार की दिव्य अनुभूति भी प्राप्त हुई। भक्ति के क्षेत्र में आलोच्य कवियों ने भागवत की नवधा भक्ति,[3] नारद जी द्वारा कथित भक्ति की आसक्तियाँ[4] ही नहीं वरन् आलवारों द्वारा प्रतिपादित आत्मसमर्पण पूर्वक माधुर्य भक्ति को भी अपनाया। भगवान के विरह से उत्पन्न अपनी प्रेम वेदना को केवल कवि स्वयं ही व्यक्त कर सकते हैं।

"प्राननाथ बिछुरै की वेदना और न जानै कोइ।
... ...
बिरह बिथा अंतर की वेदन सो जाने जिहिं होइ।"[5]

---

1. अध्यातम संकीर्तन—अन्नमाचार्य (वा. 7) पद 159
2. सूरसागर—पद 2
3. द्रष्टव्य है—प्रस्तुत प्रबन्ध का,—4.5.1
4. वही—4.6.
5. सूरसागर—पद 3998

अपने मन की अनुभूतियों को सुन्दर से सुन्दर रूप में व्यक्त करने के कारण आलोच्य कवियों का भावपक्ष अत्यन्त समृद्ध है। सूर ने तो वात्सल्य और श्रृंगार के क्षेत्रों का कोना-कोना झांका था। विरले ही अन्य कवियों में ऐसे भाव मिलते हैं। अष्टछाप के कृष्ण अपने हाथों में माखन लिये, या पैरों में पैंजनियाँ पहन नाचते हुए, या शिकायतों के उत्तर में "ग्वाल बाल सब बैर पड़े हैं" कह कर अपनी सफाई देते हुए बाल सुलभ लीलाओं से जनमानस को प्रमुदित करते रहे। यही कृष्ण ताल्लपाक के कवियों की रचनाओं में बाल सुलभ लीलाओं को दिखाते हुए भी अलौकिक ही बने रहे। हिन्दी में जहाँ वात्सल्य के संयोग और वियोग दोनों पक्षों को विस्तार मिला, वहाँ तेलुगु में वियोग का अभाव बना रहा। इतना सब कुछ होते हुए भी बाल भाव के चित्रण में माता का हृदय, गोपियों के उलाहने और बालक कृष्ण की नटखट चेष्टाओं के चित्रण करने में दोनों क्षेत्र के कवि प्राय: समान ही दिखते हैं।[1] संप्रदायगत मान्यता के अनुसार अष्टछापी कवियों ने सख्य भाव को भी प्रश्रय दिया। गोचारण प्रसंग के साथ-साथ माखन चोरी आदि प्रसंगों में अष्टछापी कवियों के कृष्ण सामान्य ग्वाल बालक ही चित्रित हुए हैं। अन्य सखा भी "खेलन में काको गुसैंयाँ" कह कर अपने को कृष्ण के समकक्ष मानते हैं। किन्तु ताल्लापाक के कवियों ने सख्य भाव को केवल कुशल हास-परिहास, व्यंग्य आदि तक ही सीमित रखा है। वे कृष्ण के प्रभुत्व को कभी नहीं भूलते।[2] इसलिए अष्टछापी कवियों ने सुदामा और श्रीदामा बन कर कृष्ण के साथ यमुना के किनारे विशाल प्रकृति में विहार किया है तो ताल्लपाक के कवियों ने पग-पग पर उपदेश पाने वाले अर्जुन के सख्य भाव को ही आत्मसात् किया। रसराज श्रृंगार के वर्णन में तो उभय क्षेत्र के कवि अपना सानी नहीं रखते। दोनों क्षेत्रों में आलंबन नायक और नायिका अलौकिक ही हैं। किन्तु वहाँ भी मौलिक भेद यह है कि अष्टछापी कवियों ने अकसर श्रृंगार भाव को भी लौकिक परिधि में ही प्रदर्शित किया है। ताल्लपाक के कवि लौकिकता की परिधि को लांघ कर अलौकिक वातावरण में ही विचरण करते हैं। अष्टछापी कवियों का श्रृंगार चित्रण पूरे ग्राम चित्रण में, यमुना के कछारों में जीवन का साथ देता हुआ चित्रित हुआ है। उनके कृष्ण अपने सखाओं के साथ होली खेलते हैं, गोपियों से छेड़-छाड़ करते हैं और उनके हाथों में बुरी तरह हार कर भी उनका हृदय जीत लेते हैं। ताल्लपाक के कवियों का श्रृंगार वर्णन ऐश्वर्य

---

1. द्रष्टव्य है—प्रस्तुत प्रबन्ध का, 5.2

2. वही—5.4

पूर्ण संभ्रान्त परिवार के अन्त:पुर में ही अधिक हुआ है। हाँ, लोक गीतों में ग्रामीण नायिकायों के चित्रण में वे पर्याप्त संलग्न हुए हैं। नायक और नायिका के दिव्य शृंगार को, सूक्ष्म से सूक्ष्म रति रहस्यों को इन कवियों ने अपने अन्त: चक्षुओं से देखा और संसार के सामने अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया। विरह के सम्बन्ध में भी इतना कह सकते हैं कि सूर ने तो भ्रमर गीत काव्य के द्वारा हिन्दी साहित्य को अत्यन्त समृद्ध बना दिया। संयोग और वियोग दोनों प्रकार के शृंगार चित्रण में हिन्दी और तेलुगु काव्यों में रूप चित्रण, नख शिख वर्णन, नायिका भेद आदि शास्त्रीय पक्ष का भी समावेश अनायास ही हो गया है।[1] इन सभी विषयों के अध्ययन में यह तथ्य हमारे सामने आया है कि जहाँ अष्टछापी कवियों में सहजता का समावेश होता गया है वहाँ ताल्लपाक के कवियों में शास्त्रीयता का प्राधान्य रहा है। अन्य रसों के वर्णन में जितना ताल्लपाक के कवियों रुचि ली है, उतनी अष्टछापी कवियों ने नहीं। वैसे ही प्रकृति वर्णन जितना अष्टछापी कवियों ने किया है, उसकी तुलना में ताल्लपाक के कवियों में उसका अभाव ही रहा है।

अपने मन की भावनाओं के साथ-साथ भक्ति को भी व्यक्त करने के लिए आलोच्य कवियों ने अपने समय में प्रचलित साहित्य की अनेक शैलियों को तथा भाषाओं की ग्रहण किया है। अष्टछापी कवियों ने अपने मनोनुकूल आत्माभिव्यक्ति के ढंग पर मुक्तक गेय शैली को अपनाया है। ताल्लपाक के कवि संस्कृत भाषा, साहित्य और दर्शन शास्त्र के प्रकांड पंडित थे। इस कारण गेय पद शैली के अतिरिक्त उन्होंने अपने समय में प्रचलित विभिन्न काव्य शैलियों में भी रचनाएँ की हैं। इन्होंने लक्षण ग्रंथों के साथ-साथ व्याख्या ग्रंथों की भी रचना की। उन्होंने संस्कृत निष्ठ गंभीर भाषा के साथ-साथ बोलचाल की भाषा "जानुतेनुगु" को भी प्रश्रय दिया। अष्टछापी कवियों में नन्ददास ने भी पदावली के अतिरिक्त कथात्मक काव्य रूप तथा शैलियों में कृष्ण भक्ति सम्बन्धी विपुल रचनाएँ कीं।[2] हिन्दी कवियों ने भी पहली बार बहुत कुछ परिमार्जित ब्रजभाषा का प्रयोग किया। उभय-क्षेत्रों के कवियों ने विभिन्न शैलियों के साथ-साथ अन्य भाषाओं के शब्द भी ग्रहण किये। ये शब्द अन्य प्रदेशों की बोलियों से भी लिये गये और विदेशी अरबी, फारसी आदि से भी। सूर ने अधिक संख्या में विदेशी शब्दों को ग्रहण किया।

---

1. द्रष्टव्य है—प्रस्तुत प्रबन्ध का—5.5
2. दृष्व्य है—प्रस्तुत प्रबन्ध का—तीसरा अध्याय

ताल्लपाक चिनतिरुवेंगलनाथ को "अष्टभाषा चक्रवर्ती" की उपाधि मिली थी। इन कवियों ने बाहरी शब्दों को ग्रहण करते समय उन्हें अपनी काव्य भाषा के अनुरूप मोड़ा ही नहीं, वरन् उनमें संशोधन और परिवर्धन भी किया। मुहावरे और लोकोक्तियाँ तो एक के बाद एक अनायास ही इनकी रचनाओं में आ जाते हैं। छन्द की दृष्टि से जहाँ हिन्दी के कवि मात्रिक छन्दों की ओर झुकते हैं तो तेलुगु में संस्कृत के प्रभाव के कारण वर्ण-वृत्तों का प्रयोग अधिक हुआ है। फिर भी ताल्लपाक के कवियों ने लोक छन्दों को भी ग्रहण किया। कहीं-कहीं दोनों का मिश्रण भी हुआ है।[1] अपने अपने नायक और नायिका के सौन्दर्य वर्णन के लिए इन कवियों ने अनेक उपमाएँ, रूपकों, उत्प्रेक्षाओं को मानों बरसा ही दिया।[2] इतना ही नहीं, नये नये अलंकारों को खोजकर, नये शब्दों में ढाल कर इन कवियों ने काव्य शास्त्र को अद्भुत योगदान भी दिया। विभिन्न शैलियों का, विभिन्न छन्दों का तथा विभिन्न भाषाओं का प्रयोग केवल उनकी उदारता का ही परिचायक नहीं वरन् हरि भक्त को अधिक से अधिक लोगों तक ले जाने की उनकी अदम्य इच्छा का भी परिचायक है। संगीत तो हिन्दी और तेलुगु दोनों काव्यों का प्राणाधार है। एक ओर तेलुगु आलोच्य कवि वाक् और गेय का उचित समन्वय कर सकने के कारण "वाग्गेयकार" कहलाये और दूसरी ओर अपने इन्हीं गुणों के कारण अष्टछापी कवि "संकीर्तनियाँ" कहलाये। उनके द्वारा विभिन्न राग-रागिनियों में लिखे गये पद आज भी बड़े चाव से गाये जाते हैं, और अभिनीत किये जाते हैं।[3] उनके ये चित्रण मूर्तकला और चित्रकला के भी आधार बने। इन कवियों ने भगवान के मंदिर के कीर्तन के समय "आत्मा की मधुरतम उद्वेलित होने वाली भाव लहरियों को गा-गा कर जीवन के परे जो सत्य और सुन्दर है, उसे बहुत ही सहज भाव से उद्घाटित किया।"[4]

इस प्रकार से तुलनात्मक अध्ययन के लिए जो समान धर्म चाहिए वे अष्टछाप और ताल्लपाक के कवियों में प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। जैसे—दोनों ही सगुण भक्त कवि थे, दोनों ने भगवान के लीला वर्णन के लिए संगीत और साहित्य का माध्यम अपनाया। संकीर्तन सेवा में बिताकर सहस्रों की संख्या में पद लिखे। हिन्दी के विनय के पद और तेलुगु के आध्यात्मिक पदों में एक ही

---

1. दृष्टव्य है प्रस्तुत प्रबन्ध का—6.6
2. वही—6.4 3. वही—6, 7
4. भाषा साहित्य कोश—डा. नगेन्द्र, पृष्ठ 70

जैसे भावों की अभिव्यक्ति देखकर आश्चर्य होता है कि दो भिन्न-भिन्न प्रांत के व्यक्तियों में इतनी समानता कैसे आयी ? इस अंतरंग भावसाम्य के साथ-साथ बहिरंग व्यक्तित्व में कुछ सूक्ष्म भेद अवश्य दिखते हैं। जैसे ताल्लपाक के कवि प्रकांड पंडित, विद्वान तथा शास्त्रार्थ में कुशल थे। अतः उनके काव्य में विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के प्रतिपादन के साथ साथ अन्य मतों का खण्डन भी मिलता है। इसी प्रकार से अपने समय की परिस्थितियों के प्रति वे सजग थे। उन्होंने राजा-महाराजाओं को भी चेतावनी दी, विधर्मियों का खण्डन किया। अपने समय की कुटिल-परिस्थितियों को देख वेदना भी प्रकट की। इन सब बातों की झलक उनके सभी काव्यों में कहीं न कहीं अवश्य मिलती है। इसके विपरीत अष्टछापी कवियों ने अपने काव्य क्षेत्र के साथ साथ जीवन के क्षेत्र को भी ब्रज तथा श्रीनाथ के मंदिर तक ही सीमित रखा। व्यक्तित्व व विद्वत्ता का भेद उनके काव्य में स्पष्ट दिखता है। किन्तु उनके मन की भक्ति और भावों में समानता के सामने ये भेद अत्यन्त स्वल्प ही प्रतीत होते हैं। उनके अंतरंग के भाव साम्य का कारण यह है—'भाषा भेद होते हुए भी मूल में यह सारा साहित्य संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश परम्पराओं से गुजरता हुआ देशी भाषाओं में आकर नयें युग धर्म, नयी सामाजिक पृष्ठभूमि और प्रादेशिक परिवेश के अनुसार विकसित प्राचीन साहित्य का नवीन रूपांतर है।···तेलुगु और हिन्दी पदों में व्यक्त आध्यात्मिक भावधारा और भगवद्लीला माधुरी का मूल उत्स वही प्राचीन भारतीय साहित्य है, जो वैदिक युग से लेकर आलोच्य कवियों के समय तक विभिन्न समयों, विभिन्न प्रान्तों व विभिन्न परिस्थितियों में से क्रमानुगत रूप से विकसित होता आया है।"[1]

1. अन्नमाचार्य और सूरदास—एम. संगमेशम्, पृष्ठ 340

सहायक-ग्रंथ सूची

हिन्दी

1. अष्टछाप पदावली, सोमनाथ गुप्त, हिन्दी भवन लाहौर, 1940 ।
2. अष्टछाप और नंददास, डा. कृष्णदेव झारी, शारदा प्रकाशन, महरौली नयी दिल्ली–1976 ।
3. अष्टछाप और परमानंददास ,, ,,
4. अष्टछाप की वार्ता, पो. कण्ठमणिशास्त्री, विद्याविभाग कांकरोली सं. 2009 ।
5. अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक अध्ययन, डा. मायारानी टंडन, हिन्दी साहित्य भंडार लखनऊ 1960 ।
6. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय (दो भागों में), डा' दीनदयाल गुप्त, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग शक 1892 ।
7. अन्नमाचार्य और सूरदास, डा. एम. संगमेशम, तिरुमल तिरुपति देवस्थानम् तिरुपति–1976 ।
8. अन्नमाचार्य और सूरदास का सांस्कृतिक अध्ययन ,, ,, 1983 ।
9. कवितावली, गो. तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर ।
10. कबीर और समर्थ रामदास का काव्य, डा. नलिनी हर्षे, अमुद्रित शोध प्रबन्ध, (उस्मानिया वि. विद्यालय) ।
11. कृष्ण भक्ति काव्य में प्रयुक्त काव्य रूप, डा. चन्द्रभान रावत, श्रीवेंकटेश्वर विश्वविद्यालय तिरुपति 1978 ।
12. कृष्णभक्ति साहित्य: वस्तु, स्रोत और संरचना ,, ,, 1977 ।
13. गुजराती और ब्रजभाषा कृष्ण काव्य का तुलनात्मक अध्ययन डा. जगदीश गुप्त, हिन्दी परिषद, विश्वविद्यालय, प्रयाग 1958 ।
14. त्रिवेणी, आचार्यरामचन्द्र शुक्ल, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी ।
15. नंददास ग्रंथावली, सं. ब्रजरत्नदास, काशी नागरी प्रचारिणी सभा सं. 2014 ।

15. अ. नन्ददास ग्रंथावली, उमाशंकर शुक्ल, प्रयाग विश्वविद्यालय ।
16. नन्ददास जीवन और काव्य, डा. सावित्री अवस्थी, शोध प्रबन्ध प्रकाश नयी दिल्ली, 1968 ।
17. नन्ददास: विचारक रसिक कलाकार, रूपनारायण, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली 1968 ।
18. नवधा भक्ति, जयदयाल गोयंदका, गीता प्रेस, गोरखपुर सं 2040 ।

19. निष्ठा और निर्माण, बनारसीदास चतुर्वेदी, अभिनंदन ग्रंथ, अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मंडल, मथुरा 1977 ।
20. परमानन्द सागर, सं. गोवर्धननाथ शुक्ल, भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़ 1958 ।
21. ब्रजभाषा के कृष्ण काव्य में माधुर्य भक्ति, रूपनारायण, नवयुग प्रकाशन, दिल्ली 1962 ।
22. ब्रजमाधुरी सार, वियोगीहरि, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, सं. 2006 ।
23. ब्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद, प्रभुदयाल मीतल, अग्रवाल प्रेस, मथुरा सं. 2005 वि. ।
24. ब्रज साहित्य का इतिहास डा. सत्येन्द्र, भारती भंडार, सं. 2024 वि. ।
25. ब्रज साहित्य और संस्कृति, सं. आनंद स्वरूप पाठक, शिक्षा ग्रंथागार मथुरा, 1975
26. ब्रजस्थ वल्लभ संप्रदाय का इतिहास, प्रभुदयाल मीतल, साहित्य संस्थान, मथुरा 1968 ।
27. भक्तिकालीन हिन्दी काव्य में प्रेम भावना, डा. राम कुमार खण्डेलवाल, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा 1976 ।
28. भारतीय काव्य शास्त्र के सिद्धान्त, डा. सुरेश अग्रवाल, अशोक प्रकाशन, नयी सड़क दिल्ली—1976 ।
29. भारतीय कृष्ण काव्य और सूर सागर, सं. डा. नगेन्द्र, सूर्य प्रकाशन, नयी सड़क दिल्ली 1979 ।
30. भारतीय साहित्य कोश, डा. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, दिल्ली—1981 ।
31. भ्रमरगीत सार, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, साहित्य सेवा सदन ।
32. मध्ययुगीन हिन्दी काव्य में नारी भावना, डा. उषा पांडेय, हिन्दी साहित्य संसार दिल्ली—1959 ।
33. मथुरा जिले की बोली, डा. चन्द्रभान रावत, हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद 1967 ।
34. मध्ययुगीन भारत, पी. सरन्, रणजीत पबलिशर्स दिल्ली—1964 ।
35. मध्यकालीन प्रेम साधना, डा. परशुराम चतुर्वेदी, साहित्य भवन लि. इलाहाबाद 1952 ।
36. रसखान ग्रंथावली सटीक, डा. देशराज सिंह, अशोक प्रकाशन, नयी सड़क 1982 ।

37. रामचरित मानस, गो. तुलसीदास, गीता प्रेस गोरखपुर।
38. रास: काव्य रूप और संरचना, डा. चन्द्रभान रावत, जैन प्रकाशन, दरियागंज दिल्ली–1982।
39. लोकगीतों की साहित्यिक पृष्ठभूमि, डा. विद्या चौहान, प्रगति प्रकाशन, आगरा 1972।
40. संत साहित्य की भूमिका, परशुराम चतुर्वेदी, हैदराबाद हिन्दी प्रचार सभा 1958।
41. साहित्य लहरी, सं. प्रभुदयाल मीतल, साहित्य संस्थान, मथुरा सं. 1961।
42. सूरदास, आ. रामचन्द्र शुक्ल, सरस्वती मंदिर, बनारस सं. 2006।
43. सूरदास, ब्रजेश्वर वर्मा, हिन्दी परिषद, विश्व विद्यालय, प्रयाग 1950।
44. सूरदास : एक अध्ययन, रामरत्न भटनागर, किताबमहल, इलाहाबाद 1948।
45. सूर की झाँकी, डा. सत्येन्द्र, शिवलाल अग्रवाल, आगरा 1956।
46. सूरदास और नरसिंह मेहता का तुलनात्मक अध्ययन, डा. ललित कुमार पारिख, बोरा एण्ड कं., बम्बई, इलाहाबाद 1968।
47. सूर और उनका साहित्य, प्रो. हरबंशलाल शर्मा, भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़ 1971।
48. सूरदास और पोतना-वात्सल्य की अभिव्यक्ति, डा. लीला ज्योति, हिन्दी साहित्य भंडार, लखनऊ 1976।
49. सूर पूर्व ब्रजभाषा और उनका साहित्य, डा. शिवप्रसादसिंह, हिन्दी प्रचार पुस्तकालय काशी 1959।
50. सूर और पोतना के काव्य में भक्तितत्व, डा. सी. एच. रामुलु, दक्षिणांचलीय साहित्य समिति, हैदराबाद 1980।
51. सूर साहित्य: नवमूल्यांकन, डा. चन्द्रभान रावत, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा 1977।
52. सूरदास की वार्ता, प्रभुदयाल मीतल, अग्रवाल प्रेस, सं. 2008।
53. सूरदास और वामन पंडित, डा. सुशीला व्यापारी, वामन नाइक मार्ग हैदराबाद 1980।
54. सूरदास (दो भागों में), सं. नन्ददुलारे वाजपेयी, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी सं. 2035।
55. सूर ग्रंथावली, पंचम खंड–सं. सीता राम चतुर्वेदी और अन्य, अखिल भारतीय विक्रम परिषद सं. 2036।

56. सूरसागर, सं. बृन्दावनदास और गोपाल प्रसाद कौशिक, श्याम काशी प्रेस, मथुरा ।
57. सूर सागर सार, सं. धीरेन्द्र वर्मा, साहित्य भवन, इलाहाबाद ।
58. सूरसारावली, सं. मनमोहन गौतम, रीगल बुक डिपो दिल्ली–1970 ।
59. सूरदास के भजन, संग्रहकर्ता एम. सी. गुप्त, देहाती पुस्तक भंडार दिल्ली ।
60. हिन्दी और तेलुगु के प्रतिनिधि कवियों का तुलनात्मक अध्ययन, डा. शिव सत्यनारायण, आं. प्र. हिन्दी प्रचार सभा सिकन्दराबाद–1974 ।
61. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आ. रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी सं. 2009 ।
62. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डा. हरवंशलाल शर्मा व शेखर शर्मा, शिवालक प्रकाशन, नयी दिल्ली–1982 ।
63. हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास, बाबू गुलाब राय, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल आगरा, 1983 ।
64. हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ, डा. शिवकुमार शर्मा, अशोक प्रकाशन, नयी सड़क दिल्ली–1984 ।
65. हिन्दी और मलयालम में कृष्ण भक्ति काव्य, भास्करन नायर. के. ।
66. हिन्दी और तेलुगु वैष्णव भक्ति साहित्य, डा. के. रामनाथन्, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा 1968 ।
67. हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास, पंचम भाग सं. डा. दीनदयाल गुप्त, नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी ।
68. काव्य प्रदीप, पं. रामबहोरी शुक्ल, हिन्दी भवन, इलाहाबाद 1979 ।
69. चिन्तामणि, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ।

तेलुगु

1. अन्नमाचार्य चरित्रा, चिन्नन्ना, तिरुमल तिरुपति देवस्थानम्, तिरुपति–1949
2. अष्टमहिषी कल्याणमु ,, ,, 1936
3. अन्नमाचार्य साहिती कौमुदी, डा. एम. संगमेशम ,, 1981
4. अन्नमाचार्य संकीर्तनलु, कामिसेट्टि श्रीनिवासुलु ,, 1978
5. अन्नमाचार्य हनुमत्संकीर्तनलु, डा. के. सर्वोत्तमन्, पारिजाता प्रचुरणलु तिरुपति–1983
6. अन्नमाचार्युलवारि अध्ययात्म, शृंगार संकीर्तनलु (स्वर सहित) मंचाल जगन्नाथराव, तिरुमल तिरुपति देवस्थानम्, तिरुपति ।

7. अन्नमय्या-त्यागय्या, डा. के. सर्वोत्तमन्, पारिजाता प्रचुरणलु
तिरुपति 1983।

8. आध्मात्म संकीर्तनलु, वा. 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 10, 11, 17 अन्नमाचार्य
तिरुमल तिरुपति देवस्थानम्, तिरुपति

9. आध्यात्म संकीर्तनलु, पेदतिरुमलाचार्य ,, ,,

10. आध्यात्म, श्रृंगार संकीर्तनलु, चिनतिरुमलाचार्य तिरुमल तिरुपति
देवस्थानम्, तिरुपति 1962

11. आंध्र महाभारतमु (आदि पर्व) नन्नया, वाविल्ल सीतारामस्वामि
शास्त्रुल 1927

12. आंध्रुल चरित्रा संस्कृति, आचार्य खंडवल्लि लक्ष्मी रंजनम् और बालेन्दु
शेखरम्, बाल सरस्वती बुक डिपो, मद्रास 1951

13. आंध्रुल सांघिक चरित्रा, सुखरम् प्रताप रेड्डी, साहित्य वैजयन्ती प्रकाशन
हैदराबाद 1982

14. आंध्रुल चरित्रा, ए. बी. एस. एल. हनुमंतराव, त्रिपुर सुन्दरी पब्लिकेशंस,
गुंटूर 1953

15. आंध्रुल चरित्रा, नेलटूरि वेंकटरमणय्या, आंध्र सारस्वत परिषद 1950

16. आंध्र साहित्यमु-सांघिक जीवन प्रतिफलनमु, नंडूरिवेंकट सत्यरामाराव
वैष्णव प्रेस, पेंटपाडू 1979

17. आंध्र वाग्गेयकार चरित्रमु, बालांत्रपु रजनीकांतराव, विशालांध्रा
प्रचरणालय, विजयवाड़ा 1958

18. आंध्रुल कीर्तन वांङ्मय कला सेवा, ऊटुकूरि लक्ष्मीकांतम्मा, मास्टर आर्ट
प्रिन्टर्स, हैदराबाद 1982

19. आंध्र द्विपद साहित्य चरित्रा, टी. सुशीला, टी. सुशीला, नयी दिल्ली 1979

20. आमुक्तमाल्यदा, श्रीकृष्णदेवराय, एमेस्को पाकेट बुक्स

21. उषाकल्याणमु, चिन्नन्ना, तिरुमल तिरुपति देवस्थानम् ति पति 1938

22. ताल्लपाक कवुल साहित्य सेवा, डा. ए. विद्यावती, इंडेपल्लि,
मचिलीपट्टणम् 1979

23. ताल्लपाक अन्नमय्या पाटलु, सं. कामिसेट्टि श्रीनिवासुलु, तिरुमल तिरुपति
देवस्थानम्, तिरुपति 1976

24. ताल्लपाक साहित्यमु आध्यात्म संकीर्तनलु (संपुटि-2)
तिरुमल तिरुपति देवस्थानम्, तिरुपति 1981

25. ताल्लपाकवारि पलुकुबडुलु, श्रीमती रामलक्ष्मी आरुद्रा
आंध्र प्रदेश साहित्य अकादमी, हैदराबाद 1971

26. ताल्लपाक कवुल लघुकृतुलु, तिरुमल तिरुपति देवस्थानम् तिरुपति–1935।
27. ताल्लपाक कवुल कृतुलु विविध साहिती प्रक्रियलु, डा. वेटूरि आनंद मूर्ति, श्रीनिवास, विजयनगर कालोनी हैदराबाद 1974
28. ताल्लपाक कवुल पदकवितलु भाषा प्रयोग विशेषालु, ,,
29. ताल्लपाकवारि श्रृंगार संकीर्तनलु संपुटि-27, तिरुमल तिरुपति देवस्थानम् तिरुपति–1979।
30. ,, ,, संपुटि 28 ,, 1980
31. तिरुमल तिरुपति यात्रा दर्पणमु (स्थल पुराण), वेंकटेश्वरा बुक डिपो तिरुपति–1954।
32. तेलुगु वाग्गेयकारुलु, डा. एम. गंगप्पा, युवभारती, हैदराबाद 1983।
33. तेलुगुलो पदकवितलु, पुट्टपर्ति नारायणाचार्युलु, आंध्र सारस्वतपरिषद हैदराबाद–1973।
34. द्विपद वांङ्मयमु, डा. जी. नागय्या, यूनिर्विसिटी बुक सेंटर 1967।
35. परमयोगि विलासमु, चिन्नन्ना, तिरुमल तिरुपति देवस्थानम् तिरुपति 1938।
36. पांडुरंग माहात्यमु, तेनालि रामकृष्ण, एमेस्को पाकेट बुक्स, सिकन्दराबाद।
37. मनुचरित्रा, अल्लसानि पेद्दना, ,,
38. श्रीमद् भगवद्गीता (वचन), पेदतिरुमलाचार्य, श्री वेंकटेश्वर प्राच्य परिशोधनालयमु तिरुपति–1978।
39. श्रृंगार संकीर्तनलु वा 3, 4, 12, 13, 14, अन्नमाचार्य, तिरुमल तिरुपति देवस्थानम् तिरुपति।
40. श्रीनिवास मंगापुरमु मरियु मन आलयमुल चरित्रा, गोपीकृष्ण, तिरुमल तिरुपति देवस्थानम् तिरुपति 1980।
41. श्रृंगार संकीर्तनलु, पेदतिरुमलाचार्य, तिरुमल तिरुपति देवस्थानम् तिरुपति 1976
42. विजयनगर चरित्रा, एन. पेर्राजु, बाल सरस्वती बुक डिपो करनूल–1958।
43. समग्र आंध्र साहित्यमु, आरुद्रा, एम. शेषाचलम् एण्ड कं. सिकन्दराबाद।
44. सारस्वत व्यासमुलु, आं. प्र. साहित्य अकादमी हैदराबाद 1979।
45. सुभद्रा कल्याणमु, ताल्लपाक तिम्मक्का, तिरुमल तिरुपति देवस्थानम् तिरुपति।

संस्कृत ग्रंथ

1. काव्यालंकार— वामन
2. प्रताप रुद्रीयम्— विद्यानाथ

संस्कृत ग्रंथ

3. बृहत् स्रोत रत्नाकर—
4. नारद भक्ति सूत्र—
5. रघुवंश— कालिदास
6. रस गंगाधर— पंडितराज जगन्नाथ
7. शांडिल्य भक्ति सूत्र—
8. वेंकटेश्वर सुप्रभात—
9. श्रीमद् भगवद् गीता—

पत्र-पत्रिकाएँ

सप्तगिरि

भारती

आंध्र प्रभा

कल्याण

लेख

1. तेलुगु कृष्ण काव्य और सूर सागर—डा. चन्द्रभान रावत
2. दो घंटे में तेलुगु सीखें—आर. रामकृष्णराव
3. मीराबाई एवं अन्नमाचार्य—डा. शिव सत्यनारायण
4. मथुरा की पौराणिक विभूतियाँ—रामस्वरूप सहाय
5. श्री यमुना और उसका प्रदेश—राधेश्याम द्विवेदी
6. संस्कृत कृष्ण काव्य और सूर सागर—डा. राममूर्ति शर्मा
7. संगीत प्रशस्ति—ईमनि शंकर शास्त्री (तेलुगु)
8. अन्नमय्य देशिककवितागानमु—कामसेट्टि श्रीनिवासुलु (तेलुगु)
9. अन्नमयय्य तत्वनीति सारमु— ,,
10. ताल्लपाक कवुल चरित्रा, संप्रदायमु—वेटूरि आनंदमूर्ति (तेलुगु)
11. अन्नमाचार्युनि कविता—राल्लपल्लि अनंत कृष्णशर्मा (तेलुगु)
12. हिस्ट्री एण्ड कलचर आफ इंडियन पीपुल—यू. एन. घोषाल (अंग्रेजी)

ENGLISH

1. An Outline History of the Indian People, H. R. Ghoshal, Ministry of Information and Broadcasting, Govt. of India, 1980.

2. A Short History of Muslim Rule in India, Ishwari Prasad, Indian Press Pvt. Ltd. (1958) Allahabad.
3. A Social, Cultural and Economic History of India, P. N. Chopra, B. N. Puri and M. N. Das, Mac-Millian India Pub. 1974.
4. History of Medieval India, Ishwari Prasad.
5. History of Tirupati, T. K. T. Veera Raghavacharya, Tirumala-Tirupati Devasthanam Publication, 1979.
6. Historical Atlas of Indian Peninsula. Oxford University.
7. Medieval India–A Miscellany, Vol. III. Centre of Advanced Study, Dept. of History, Aligarh Muslim University (Asia Pub. House).
8. The Delhi Sultanate, Editor–R. C. Mujumdar, Bharatiya Vidya Bhavan, Bombay 1980.